Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिव्यध्वनि सार

भाग-1

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिव्यध्वनिसार

भाग १

श्री प्रवचनसार गाथा १ से ५२ तक

परमपूज्य श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य विरचित श्री प्रवचनसार शास्त्र एवं उसकी
परमपूज्य श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य विरचित तत्त्वप्रदीपिका टीका पर
पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रवचन

अनुवादक :
विनोद जैन (एम. कॉम.)
छिन्दवाड़ा

प्रकाशक :
श्रीमती मधुकान्ता रमेशचंद मेहता प्रकाशन, मुम्बई
एवं
पण्डित टोडलमल स्मारक ट्रस्ट
ए - ४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथम संस्करण : ३ हजार
(१८ जून १९९९)
श्रुत पंचमी

मूल्य : पच्चीस रुपये

टाइपसैटिंग :
श्री ऑफसेट प्रिंटर्स
सिवनी रोड, छिन्दवाड़ा (म. प्र.)
फोन : 07162 – 44651

मुद्रक :
जे॰ के॰ ऑफसैट प्रिंटर्स
जामा मस्जिद,
दिल्ली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Dakshaben Sanghvi, Geneva, Switzerland who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of DivyaDwaniSar Part 1 is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	15 February 2008	First electronic version

प्रकाशकीय

आचार्य कुन्दकुन्द के पंचपरमागमों में समयसार ग्रन्थाधिराज के साथ-साथ प्रवचनसार ग्रन्थ भी आत्मकल्याण के लिये उत्कृष्ट परमागम है। उसके गूढ व गंभीर तथ्यों को स्पष्ट करने वाले पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के प्रवचन प्रकाशित होने की महती आवश्यक्ता मुझे बहुत खटकती थी। उक्त संदर्भ में एक बार पं. प्रबोधचन्दजी एडवोकेट छिन्दवाड़ा वालों से चर्चा हुई तो उन्होंने मुझ से कहा पू. स्वामीजी के पांचों परमागमों पर जो प्रवचन हुये थे वे सब "श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद" नामक दैनिक बुलेटिन में प्रकाशित हो चुके हैं। उक्त दैनिक बुलेटिन का संपादन स्व. श्री अमृतलाल नरसीभाई महता, सोनगढ़ में रहकर करते थे। उनके इस संकेत से मुझे भी वह पूरा प्रसंग स्मृति में आ गया। मैं स्वयं इस बुलेटिन का सदस्य रहा था तथा सोनगढ़ में मैंने स्वयं प्रत्यक्ष देखा था कि कितने श्रम से वे बुलेटिन तैयार करते थे और उसको स्व. विद्वान श्री खीमचन्दभाई जेठालाल सेठ के पास बैठकर उनसे शब्दशः जांच एवं पास कराकर पूज्य स्वामीजी को भेंट करने के पश्चात् सदस्यों को भेजते थे। इससे उस बुलेटिन की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। साथ ही श्री प्रबोधचन्दजी ने यह भी कहा कि उक्त प्रवचनों में प्रवचनसार पर हुये प्रवचनों की पूरी व्यवस्थित फ़ाइल मेरे पास है, अगर आप प्रकाशन करावें तो मैं आपको उपलब्ध करा सकता हूँ। उक्त चर्चा से मेरी भावना को बहुत प्रोत्साहन मिला। मैंने उनसे पूरी फाइल की फोटोस्टेट कापी भेजने को कहा तथा यह भी निवेदन किया कि अगर कोई हिन्दी में अनुवाद करनेवाला मिल जावे तो तलाश करें। अनुवाद कराने में जो कुछ भी खर्चा होगा उसकी आप चिन्ता न करें।

इसी बीच पं. प्रबोधचंदजी का शुभ सन्देश मिला कि आपकी भावना को साकार करने के लिये हमारे छिन्दवाड़ा निवासी भाई श्री विनोदचन्दजी जो कि पूज्य गुरुदेवश्री के तत्त्व के पूर्ण श्रद्धानी हैं और पू. गुरुदेव का समागम भी प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने इस महती कार्य को बिना किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिए जिनवाणी की भक्ति से प्रेरित होकर करने की स्वीकृति दे दी है। यकायक मुझे विश्वास नहीं हुआ मैंने उनसे बहुत आग्रह किया कि बिना पारिश्रमिक के यह कार्य बीच में अधूरा रह जावेगा आदि-आदि लेकिन उन्होंने श्री विनोदजी से बात करके मुझे आश्वस्त किया कि वे कोई पारिश्रमिक लेने के लिये तैयार

नहीं हैं, लेकिन विश्वास दिलाते हैं कि वे किसी भी हालत में कार्य को सम्पन्न करेंगे, बीच में नहीं छोड़ेंगे।

मुझे बहुत प्रसन्नता हुई – मैंने डाक्टर हुकमचन्दजी से चर्चा की उनको भी बहुत प्रसन्नता हुई लेकिन उन्होंने समस्या उपस्थित की कि उनका अनुवाद प्रमाणित हुआ है या नहीं इसकी प्रामाणिकता कैसे होगी, मुझे भी इसकी आवश्यकता अनुभव हुई। प्रमाणीकरण करनेवाला विद्वान भी ऐसा होना चाहिये जिसपर समाज को विश्वास हो।

उक्त खोज में तो मैं था ही, एक समारोह के अवसर पर मेरी डाक्टर उत्तमचन्दजी साहब सिवनीवालों से भेंट हुई। बहुत संकोच के साथ उपरोक्त कार्य के लिये मैंने उनसे निवेदन किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनकी स्वीकृति प्राप्त होते ही यह महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न होकर अब महान कृति के रूप में आपके स्वाध्यायार्थ उपलब्ध है।

उपरोक्त कार्य के संपादन में सर्वप्रथम मैं श्री विनोदचन्दजी जैन छिन्दवाड़ा निवासी को धन्यवाद दूँगा कि उन्होंने इस पावन कार्य को दिन रात श्रम करके अनुवाद किया एवं समय-समय पर स्वयं सिवनी जाकर डॉ. उत्तमचन्दजी से जांच कराते रहे।

डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी वालों का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने अपना अमूल्य समय इस अनुवाद को पास कराने में दिया। आपकी इस सेवा द्वारा इस अनुवाद की प्रामाणिकता हो गई है। पं. प्रबोधचंदजी एडवोकेट का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने प्रामाणिक व्यवस्थित प्रवचन उपलब्ध कराकर इस ग्रंथ को प्रकाशन योग्य बनाया।

प्रस्तुत प्रकाशन का मूल्य कम करने में जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग दिया है, उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। अंत में इस ग्रंथराज की मुद्रण व्यवस्था एवं आकर्षक कलेवर से सजाने के लिये प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देता हूँ।

आप सभी आत्मार्थी बन्धु इस "दिव्यध्वनिसार" ग्रंथ का पूर्ण मनोयोग से स्वाध्याय कर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करें इसी भावना के साथ –

महामंत्री	**महामंत्री**
श्रीमती मधुकान्ता रमेशचंद मेहता प्रकाशन	**पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
मुम्बई	**जयपुर**

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दो शब्द

जिनेन्द्रभगवान के प्रवचन (दिव्यध्वनि) का सार कालजयी प्रवचनसार परमागम आचार्य कुन्दकुन्द की सर्वाधिक प्रचलित सशक्त संरचना है। समस्त जगत को ज्ञानतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व (स्व-पर) के रूप में प्रस्तुत करनेवाली यह अमर कृति विगत दो हजार वर्षों से निरन्तर पठन-पाठन में रही है। आज भी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में इसे स्थान प्राप्त है।

प्रमाण और प्रमेय व्यवस्था का प्रतिपादक यह ग्रन्थराज आचार्य कुन्दकुन्द की ऐसी प्रौढ़तम कृति है कि जिसमें वे आध्यात्मिक सन्त के साथ-साथ गुरु गम्भीर दार्शनिक के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं, प्रतिष्ठित हुए हैं।

यद्यपि आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थाधिराज समयसार के समान इस पर भी आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी ने प्रवचन किये हैं; तथापि मुमुक्षुसमाज में यह उतना अधिक प्रचलित नहीं हो पाया, जितना कि समयसार प्रचलित है। इसका एक कारण यह भी है कि समयसार पर हुए स्वामीजी के प्रवचन तो प्रवचनरत्नाकर नाम से प्रकाशित हो चुकें हैं, पर प्रवचनसार पर हुए प्रवचन अभी तक हिन्दी भाषा में अप्रकाशित ही रहे।

चि॰ विनोदकुमार ने यह साहस किया और लगातार वर्षों अथक् श्रम करके यह महान कार्य सम्पन्न किया है। इसके लिए उन्हें जितना भी धन्यवाद दिया जाय, कम हैं। उन्होंने इस कार्य में इस बात का ध्यान रखा है कि स्वामीजी के प्रवचन हूबहू अनुवादित हों।

डॉ॰ उत्तमचन्दजी सिवनी ने उन्हें आद्योपान्त मिलान करके देखा है। अतः अब इनकी प्रामाणिकता के बारे में कोई विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है।

यह तो प्रथम भाग ही है। मैं चाहता हूँ चि॰ विनोदकुमार इसे शीघ्रता से पूरा करें और फिर अन्य परमागमों पर हुए स्वामीजी के प्रवचनों को भी प्रकाश में लावे। मेरी मंगल कामनाएँ उनके साथ है –

१५/५/९९ ई॰ — डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्राक्कथन

भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत ''पवयणसारु''- प्रवचनसार ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्रसूरि कृत अत्यंत गम्भीर, अद्वितीय टीका तत्त्वप्रदीपिका है। इसमें जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि का सार संगृहीत है। उक्त ग्रन्थ एवं टीका पर आध्यात्मिक संत श्री कानजी स्वामी के अतिशय सुगम एवं मर्मस्पर्शी प्रवचन गुजराती में हुए थे। उक्त प्रवचन ''श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद'' (सन् १९५५ में सोनगढ़ से प्रकाशित दैनिक पत्रिका, सम्पादक - श्री अमृतलाल नरशीभाई शेठ) में गुजराती भाषा में तो उपलब्ध थे किन्तु उनका हिन्दी अनुवाद आज तक नहीं हुआ था। छिन्दवाड़ा (म. प्र) निवासी उत्साही युवक श्री विनोद कुमार जी जैन ने उक्त प्रवचनों का हिन्दी भाषान्तरण करके निश्चित ही एक अति महत्वपूर्ण, स्व-पर हितकारी एवं सराहनीय कार्य किया है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने जहाँ एक ओर समयसार रचकर अध्यात्म की गंगा बहाई है, वहीं दूसरी ओर प्रवचनसार बनाकर आगम सागर के सैद्धांतिक तत्त्वों का मंथन किया है। टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र तथा प्रवचनकार पू. गुरुदेव कानजी स्वामी ने प्रवचनसार के ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन तथा चरणानुयोग सूचक चूलिका द्वारा मानों अध्यात्म, आगम तथा आचार-चरणानुयोग की त्रिवेणी प्रवाहितकी है जिसमें अवगाहन करके भव्यजीव चिरकालीन संताप को मिटाकर अविनाशी अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं।

उक्त अनुवाद का ''दिव्यध्वनिसार'' शीर्षक के साथ प्रथम बार प्रकाशन होना अपने आप में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। श्री विनोद कुमार जी ने उक्त कार्य का सम्पादन बड़ी लगन, आस्था एवं सफलता पूर्वक किया है। इसके अनुवाद कार्य में उन्होने अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क कर मार्गदर्शन प्राप्त किया तथा ग्रन्थ के भाषानुवाद को मूलभावानुगामी बनाने का सफल प्रयास किया है। मैंने भी उनके द्वारा कृत अनुवाद का शब्दशः अवलोकन एवं निरीक्षण किया है एवं आवश्यक संशोधन व सुझाव दिये, जिसे अनुवादक ने स्वीकार कर ग्रन्थकार, टीकाकर एवं गुजराती प्रवचनकार के द्वारा उद्घाटित तत्त्व का यथासम्भव यथावत् प्रकाशन करने का प्रयास किया है।

श्री विनोद कुमार जी ने उक्त कार्य अत्यंत निष्पृहभाव से आगम भक्ति से प्रेरित होकर, दिन-रात एक करके पूर्ण किया है। अनुवादक ने बिना कांट-छांट किये प्रवचनों के मूल भावों को यथावत् अनुवादित किया है। यह उनका प्रथम प्रयास है। छायानुवाद होने के कारण साहित्य की दृष्टि से किंचित् कमियां होने की सम्भावना है तथापि ग्रन्थ की उपयोगिता में कोई कमी नहीं आई है।

आदरणीय श्रीमान पं. नेमीचंद जी पाटनी, जयपुर के बहुमूल्य मार्गदर्शन का अनुवाक ने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। इस तरह हम नि:संकोच कह सकते हैं कि उक्त कृति का प्रकाशन परमानन्दरूप अमृतरस के पिपासु भव्यजनों के हितार्थ तत्त्व स्वरूप प्रकट करने वाली साबित होगा। यही ग्रन्थकर्ता टीकाकार की टीका तथा प्रवचनकार के प्रवचनों का मूल अभिप्राय रहा है। अंत में पुन: अनुवादक जी को उक्त सफलता हेतु बधाई देता हुआ लेखनी को विराम देता हूँ।

'इति अलम्' - *डॉ. उत्तमचन्द जैन, प्राचार्य, सिवनी (म.प्र.)*

जैनं जयतु शासनम्

देवाधिदेव श्री सीमंधर परमात्मा की दिव्यध्वनि, जिसे परमोपकारी श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव द्वारा साक्षात् श्रवणकर, अपने और पर के मोक्ष के नाश के लिये पंचपरमागम में अवतरित किया तथा जिनपर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि द्वारा अमृतमयी टीका रची गई।

परमकृपालु पूज्य श्री कानजीस्वामी ने सनातन शाश्वत् सत्य दिगम्बर जैन धर्म के चारों अनुयोगों के शास्त्रों के मंथन से प्राप्त अमृतरस पान से कृतार्थ हो, परमसौख्यमयी मुक्तिदशा के स्वयं पथिक बन, दिग्भ्रांत जगत को निष्पृह करुणाभाव के वशीभूत हो अपनी चमत्कारी दिव्य-वाणी द्वारा सन्मार्ग प्ररूपणाकर अनगिनत जीवों को सही अर्थों में मुमुक्षु बनाया व मुक्तिपथ पर अग्रसर किया।

अमृततुल्य जीवन में चेतना का संचार करनेवाले-जीवन शिल्पी परम आदरणीय बाबू श्री जुगल किशोरजी 'युगल' कोटावालों की अध्यात्म प्रेरणा व मार्गदर्शन – इस कृति की नींव है। जिनके असीम उपकार का वर्णन करने लिए शब्दसागर में शब्द नहीं है। यही भावना है कि सदा ही उनके इस निर्मल ज्ञान – प्रकाश से यह मुमुक्षु जगत आलोकित रहे।

अनेक बार पूज्य गुरुदेवश्री के मांगलिक समागम का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी वाणी सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानों जैसे कोई कर्ण-द्वार से अमृतरस पिला रहा हो – प्रत्येक आत्मप्रदेश में एक मस्ती सी भर जाती थी। सचमुच उनकी अध्यात्म देशना ने तीर्थंकर का विरह भुला दिया है। कहा भी है –

इस दुखम काल विकराल में, तेरो धर्म जहाँ चले।
हे नाथ काल चौथो तहाँ, ईति भीति सब ही टलै।।

पूज्य गुरुदेवश्री की आत्महितकारी वाणी समझकर ऐसा लगा मानो – मात्र यही मेरी ही नहीं वरन् प्राणीमात्र की अनादि की तलाश है। अतः सर्वत्र ही इसका प्रचार हो।

आदरणीय पं. श्री नेमीचंदजी पाटनी द्वारा श्री प्रवचनसार परमागम पर पूज्य गुरुदेवश्री के गुजराती प्रवचनों के हिन्दी अनुवाद का कार्य मुझे सौंपे जाने पर हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ। मैं अपने को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि मुझे पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी के प्रचार-प्रसार में कुछ करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह कृति उन्हीं के अथक प्रयासों का प्रतिफल है। पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त आदरणीय पाटनीजी का हृदय से आभारी हूँ कि जिनका समय–समय पर मार्गदर्शन, प्रेरणा व अविकल अनुवाद के निर्देश प्राप्त होते रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा वर्ष 1955 में जो प्रवनसार ग्रन्थ पर नियमित प्रवचन

होते थे, जिन्ह संशोधित एवं प्रमाणित रूप से गुजराती दैनिक 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' में प्रकाशित किया जाता था, यह ग्रन्थ शब्दशः उसी का हिन्दी अनुवाद है।

प्रत्येक प्रवचन पूज्य गुरुदेवश्री के द्वारा संशोधित व प्रमाणित होने के कारण बिना किसी कांट-छांट के अनुवादित किया गया है। आदरणीय डॉ॰ उत्तमचन्दजी जैन, सिवनी द्वारा काफी परिश्रम से प्रत्येक पंक्ति का मूल से मिलान करने के कारण पूज्य गुरुदेवश्री के भावों को यथावत् रखने में सफलता मिली है। अपने किसी आग्रह के वशीभूत होकर कहीं भावों में व्यभिचार न आ जावे इस भय से पूज्य गुरुदेवश्री की भाषा की सादगी, सरलता व मधुरता को यथावत् कायम रखा गया है। यद्यपि विद्वत् वर्ग को भाषा व साहित्य की दृष्टि से कुछ कमियों का अनुभव हो सकता है, जिसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

यह मेरा प्रथम प्रयास है प्रस्तुत ग्रन्थ में आपको कुछ त्रुटियाँ लगती हों तो मुझे सूचित करने की कृपा करें, जिससे आगामी संस्करण में उसे सुधारा जा सके।

आदरणीय एड. प्रबोधचन्दजी जैन छिन्दवाड़ा ने पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का संकलन बहुत ही परिश्रम से किया है। इस दुर्लभ संग्रह के लिए वे विशेषरूप से धन्यवाद के पात्र हैं। यह भावी पीढ़ी की धरोहर होगी व भविष्य में होनेवाले प्रकाशन की आधारशिला होगी।

मैं विशेषरूप से आदरणीय श्री प्रकाशचन्दजी जैन (बड़ा मन्दिर, छिन्दवाड़ा) व अन्य साधर्मियों का हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ कि जिन्होंने प्रस्तुत अनुवाद को लिखने, जाँचने आदि के कार्य में प्रत्यक्ष व परोक्षरूप से सहयोग दिया।

पूज्य माँ श्री (श्रीमती चंदाबाई पत्नि श्री नागकुमारजी जैन) के द्वारा दिये गये धार्मिक संस्कार व परिवार द्वारा पारिवारिक जिम्मेदारी के बोझ से मुक्ति भी इस कार्य में विशेष सहयोगी रही है। जिसके लिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

श्री हितेश जैन, श्री कम्प्यूटर छिन्दवाड़ा द्वारा ग्रन्थ के कम्पोजिंग आदि कार्य में विशेष योगदान प्रदान किया गया। जिसके लिए वे बहुत-बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

भव-तारणी प्रस्तुत प्रति प्राणी मात्र के कल्याण में निमित्त बने इसी मंगल भावना से पूज्य गुरुदेवश्री और आप के मध्य व्यवधान न बनकर विराम लेता हूँ।

अनुवादक

विनोद कुमार जैन

जैन टेलिकॉम व फोटोकॉपी सेन्टर

छिन्दवाड़ा, मध्यप्रदेश – 480 001

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषय - सूची

(ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन)

	गाथा	पृष्ठ संख्या
१.	श्लोक १	१
२.	श्लोक २	४
३.	श्लोक ३	६
४.	गाथा १ से ५	८
५.	गाथा ६	३९
६.	गाथा ७	४७
७.	गाथा ८	६०
८.	गाथा ९	६८
९.	गाथा १०	८०
१०.	गाथा ११	८८
११.	गाथा १२	९१
	शुद्धोपयोग अधिकार गाथा १३ से २० तक	
१२.	गाथा १३	९५
१३.	गाथा १४	९८
१४.	गाथा १५	१०३
१५.	गाथा १६	१०८
१६.	गाथा १७	१३६
१७.	गाथा १८	१४४
१८.	गाथा १९	१५३
१९.	गाथा २०	१५७
	ज्ञान अधिकार गाथा २१ से ५२ तक	
२०.	गाथा २१	१६२
२१.	गाथा २२	१७३
२२.	गाथा २३	१८०
२३.	गाथा २४ व २५	१८७
२४.	गाथा २६	१९५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा		पृष्ठ संख्या
२५.	गाथा २७	२०४
२६.	गाथा २८	२१४
२७.	गाथा २९	२२२
२८.	गाथा ३०	२२७
२९.	गाथा ३१	२३१
३०.	गाथा ३२	२३६
३१.	गाथा ३३	२४३
३२.	गाथा ३४	२५२
३३.	गाथा ३५	२५९
३४.	गाथा ३६	२६६
३५.	गाथा ३७	२८९
३६.	गाथा ३८	३०५
३७.	गाथा ३९	३१३
३८.	गाथा ४०	३१९
३९.	गाथा ४१	३२५
४०.	गाथा ४२	३३२
४१.	गाथा ४३	३३५
४२.	गाथा ४४	३४३
४३.	गाथा ४५	३५४
४४.	गाथा ४६	३६५
४५.	गाथा ४७	३७४
४६.	गाथा ४८	३८१
४७.	गाथा ४९	३८८
४८.	गाथा ५०	४०४
४९.	गाथा ५१	४०७
५०.	गाथा ५२	४१२
५१.	श्लोक ४	४१८

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मङ्गलाचरण

सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने ।
स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नमः ॥१॥

अर्थ :- सर्वव्यापी (सबका ज्ञाता-दृष्टा) एक चैतन्यरूप (मात्र चैतन्य ही) जिसका स्वरूप है और जो स्वानुभव प्रसिद्ध है (अर्थात् शुद्ध आत्मानुभव से प्रकृष्टतया सिद्ध है) उस ज्ञानानन्दात्मक (ज्ञान और आनन्दस्वरूप) उत्कृष्ट आत्मा को नमस्कार हो।

* * *

श्लोक १ पर प्रवचन

इस प्रवचनसार ग्रन्थ में ज्ञानप्रधान कथन किया गया है; इसमें आत्मा क्या है ? निमित्त क्या है ? विकार क्या है ? आदि का स्वरूप बतायेंगे। यह ग्रन्थ ज्ञानप्रधान कथन करता है, इसलिये इसमें आचार्यदेव सर्वप्रथम 'नमोऽनेकान्ताय' कहकर अनेकान्त को नमस्कार करते हैं।

ग्रन्थ के प्रारंभ में श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित प्राकृत गाथाबद्ध इस प्रवचनसार नाम के शास्त्र की तत्त्वप्रदीपिका नाम की संस्कृत टीका के रचनेवाले श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोक द्वारा मंगलाचरण करते हुए, ज्ञानानन्द स्वरूप परमात्मा को नमस्कार करते हैं।

जो दिव्यशक्ति अंतर में थी - उसे पर्याय में जिन्होंने प्रगट किया है वे देव हैं.

ऐसे भगवान का आत्मा कैसा है ?

उन्होंने पूर्णानन्द को प्राप्त किया है - जो अंतर स्वरूप में था, वह पाया है। वे सर्वव्यापी है अर्थात् त्रिलोकीनाथ देव का ज्ञान सर्वव्यापी है। वे तीनकाल-तीनलोक को देखते हैं। उनकी वाणी में आया कि - शरीर-मन-वाणी और पुण्य-पाप का लक्ष्य छोड़ो और एकमात्र ज्ञान का भंडार जो आत्मा है, उसका लक्ष्य करो। अंतर में सर्व को जानने देखने की शक्ति थी उसके आश्रय से भगवान को पूर्णदशा प्रगट हुई है।

पुण्य-पाप के आश्रय से सर्वव्यापीपना प्रगट नहीं होता। चैतन्य ही उनका स्वरूप है। शरीर-मन-वाणी, बनिया अथवा ब्राह्मण उनका स्वरूप नहीं है। ज्ञान स्वभाव उनका रूप है। परमात्मा में से जो निकल गया वह आत्मा में से निकालने लायक है और परमात्मा में जो रह गया वह आत्मा में रखने लायक है। अपने में शुद्ध आनन्द

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का अनुभव करके सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हैं। उन ज्ञान आनन्द स्वरूप उत्कृष्ट आत्मा को नमस्कार। यहाँ देव को नमस्कार करते हैं। वे दिव्यशक्ति को प्राप्त हुये हैं। अपने ज्ञानस्वभाव का अवलम्बन पाकर पूर्णदशा को प्राप्त किये हैं - ऐसे उन सिद्धों को यहाँ नमस्कार करते हैं।

पर और विकार से निवृत्त होकर पूर्ण ज्ञान और आनन्ददशा को प्राप्त करनेवाले परमात्मा को नमस्कार.

इस ज़गत को आनन्द चाहिए। वह आनन्द कहाँ से आयेगा ?

लेंड़ीपीपर में चौंसठ पुटी तिखास जो भरी पड़ी है उसमें से तिखास आती है। जो स्वभाव भरा है, उस शक्ति का विकास होता है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरे हुये स्वभाववाला है, उसमें से परमात्मदशा प्रगट होती है। जिनने एकमात्र ज्ञान और आनन्द से भरे हुए अन्तर आनन्द-कुण्ड का आश्रय लिया है, उन्हें ज्ञान और आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ है। अज्ञानी जीव को ज्ञान और आनन्द शक्तिरूप है। साधक जीव को ज्ञान और आनन्द शक्तिरूप भी है तथा पर्याय में भी ज्ञान और आनन्द आंशिक प्रगट हुये हैं। परमात्मा को शक्ति में तथा व्यक्ति में भी पूर्ण ज्ञान और आनन्द है। अज्ञानी को ज्ञान और आनन्द जो शक्तिरूप है उसकी खबर नहीं अतः वह वन्दन करने लायक नहीं है। साधकदशा अधूरीदशा है इसलिये उसे यहाँ नहीं लिया है मात्र पूर्ण ज्ञान और आनन्ददशावाले आत्मा ही लिये हैं।

भगवान को तीनकाल-तीनलोक को जानते ही आकुलता नहीं रही और पूर्ण आनन्द प्रगट होते ही दुःख नहीं रहा। उन्हें उत्कृष्ट आत्मा पर्याय अपेक्षा से कहा गया है। शरीर-मन-वाणी से आत्मा पृथक है। हिंसा, झूठ, चोरी तथा दया-दानादि विकार है, किन्तु विकार रहित अंतर स्वरूप ज्ञान और आनन्दमय है जो शक्तिरूप है, जिन्होंने वह दिव्य शक्ति प्रगट की है ऐसे अरहन्त और सिद्ध उत्कृष्ठ आत्मा हैं उन्हें यहाँ नमस्कार किया है। मुनि साधकदशा में हैं, इसलिये केवली परमात्मा को नमस्कार करते हैं।

सर्वप्रथम देव को नमस्कार करते हैं। उन्हें दिव्यशक्ति प्रगट हुई है वे सर्वव्यापी हैं। एक ही आत्मा सर्व में व्याप्त होता हो - ऐसा इसका अर्थ नहीं है किन्तु सभी कुछ उनके ज्ञान में जानने में आ गया है इसलिए उन्हें सर्वव्यापी कहा है। जैसे लेंड़ीपीपर में चौंसठ पुटी तिखास प्रगट करते हैं रात और दिन लेड़ीपीपर को घिसकर तिखास व्यक्त होती है; वैसे ही भगवान के पास ज्ञान और आनन्द पूर्ण व्यक्त होता है। भगवान के आत्मा ने अपनी शक्ति, ज्ञान और आनन्द पुरुषार्थ से व्यक्त किया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हे प्रभु ! आपने निवृत्ति लेकर पूर्ण ज्ञान और आनन्द व्यक्त किया है, इसलिए भगवान को नमस्कार किया है। शरीर-मन-वाणी में सुख नहीं, पुण्य-पाप में सुख नहीं हैं अपितु आत्मा में सुख है। उन्होंने ज्ञान और आनन्दरूपी प्रयत्न से केवलज्ञान और केवल आनन्द प्रगट किया है, ऐसे परमात्मा को यहाँ नमस्कार किया है।

इसतरह प्रवचनसार के प्रारम्भ में मानस्थंभ स्थापित किया है। हे परमात्मा ! आपने पर से तथा विकार से निवृत्ति लेकर परम आनन्द और ज्ञान प्राप्त किया है इसलिये आपको नमस्कार।

आचार्य अपनी पूर्ण शुद्धदशा को भाव नमस्कार करते हैं
और परमात्मा को द्रव्य नमस्कार करते हैं.

प्रश्न :- चैतन्य द्रव्य की महत्ता है अथवा पर्याय की महत्ता है ?

समाधान :- जिस पर्याय ने द्रव्य की महत्ता की उसकी महत्ता है। जैसे सुमेरुपर्वत के नीचे सोना अनादि से पड़ा हुआ है, वह किस काम का; वैसे ही सभी की आत्मा में शक्तिरूप से जो पूर्ण ज्ञान और आनन्द विद्यमान है उसका अनुभव नहीं होता अपितु जिन्होंने शक्ति की यथार्थ समझ द्वारा भान करके उसी में एकाग्रता से पूर्णदशा प्रगट की है उनकी महत्ता है।

संसार की आबरू तथा पुण्य का तो आदर नहीं है किन्तु अधूरीदशा का भी आदर नहीं है अपितु पूर्णदशा का आदर है। वास्तवें में तो इसमें अपने स्वभाव का ही आदर है। यहाँ पूर्णदशा को भाव नमस्कार करते हैं और व्यवहार से विकल्प द्वारा द्रव्य नमस्कार करते हैं। जैसे विवाह करनेवाला वर, बड़ों को नमस्कार करके उनका उपकार मानता है किन्तु वह तो मात्र क्लेष व संसार परिभ्रमण का ही कारण है। किन्तु यहाँ तो संसार तिरने के लिए नमस्कार करते हैं कि - अहो ! पवित्र ज्ञान आनन्द को प्राप्त हुये माननीय महाजनों ! मैं आप सभी को नमस्कार करता हूँ। मेरे चिदानन्द स्वरूप की मुझे लगनी लगी है इसलिए आपको नमस्कार करता हूँ।

* * *

पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत ही सच्ची शुरुआत है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

श्लोक २

हेलोल्लुप्तमहामोहतमस्तोमं जयत्यदः ।
प्रकाशयज्जगत्तत्त्वमनेकान्तमयं महः ॥२॥

अब अनेकान्तमय ज्ञान के मंगल के लिये श्लोक द्वारा स्तुति करते हैं :-

अर्थ :- जो महामोहरूपी अन्धकारसमूह को लीलामात्र में नष्ट करता है और जगत के स्वरूप को प्रकाशित करता है ऐसा अनेकान्तमय तेज सदा जयवन्त है।

* * *

श्लोक २ पर प्रवचन

पर्याय में जो विकार है वह आनन्दरूप नहीं है। आत्मा में अनेक धर्म हैं उसे बतानेवाले ज्ञान और वाणी को यहाँ नमस्कार करते हैं।

पर पदार्थों में तथा पुण्य-पाप में सुख मानना वह मोह भाव है.

अहो ! मैं ज्ञानानन्दमयी आत्मा हूँ। शरीर, शरीर में हैं - शरीर मेरे में नहीं। विकार, विकार में है - विकार मेरे में नहीं, इसप्रकार अनेकान्तमय ज्ञान ही महा मोहरूपी अन्धकार को लीलामात्र में नाश करता है। मैं पाप से, भोजन करने से, मोसम्बी खाने से, विषय भोग से, पैसे से, शरीर से, आबरू से अथवा व्यापार से सुखी हूँ - ऐसा अज्ञानी मानता है। जो इनसे अपने को सुखी मान रहा है वह पाप में सुख मान रहा है। शरीर वर्तमान में ही मिट्टी-धूल है। अज्ञानी, शरीर अथवा बाह्य साधनों में सुख मानता है किन्तु उनके विद्यमान होने पर भी यदि बिच्छु काट जाये तो वहाँ रोने लगता है जबकि ये सब पड़े हुये है तब वह सुखी क्यों नहीं है ?वास्तव में पैसा, आबरू, स्त्री आदि बाह्य साधनों में सुख नहीं है। अज्ञानी द्वारा माना हुआ वह मिथ्याभाव अज्ञान है, संसार है, दुःख है। पुण्य भाव में अथवा उसके फल में सुख माने वह अज्ञान भाव ही है।

अनेकान्त स्वरूप का ज्ञान महामोहरूपी अन्धकार के समूह को लीलामात्र में नष्ट करता है.

आत्मा का स्वरूप सत्चिदानन्द है। ऐसा ही भगवान ने बताया है। शरीर-मन-वाणी अपने-अपने जड़-अचेतन स्वभाव में वर्तते हैं। इसप्रकार ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता होने पर सम्यग्ज्ञान से मोह नाश को प्राप्त होता है। लोग धर्म को कष्टदायक मानते हैं - उपवास में दुःख मानते हैं। वास्तव में जो दुःख होता है वह धर्म नहीं होता। भाई ! तेरा स्वभाव जानना-देखना है, अन्दर गहरे में उतर। पुण्य-पाप और

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शरीर में आनन्द नहीं मिलेगा। चैतन्य, ज्ञान, आनन्द तेरा स्वभाव है, उसकी गहराई में देख, सुख अन्दर में स्वयं है। बाह्य में, पुण्य-पाप में थोड़ा भी आनन्द नहीं है, यही अनेकान्त है। आत्मा शक्ति का पिण्ड है उसी के आश्रय से धर्म प्रगट होता है किन्तु पुण्य-पाप से धर्म नहीं होता - ऐसे सम्यग्ज्ञान से मिथ्यात्व का नाश होता है। भगवान द्वारा कहे गये सच्चे ज्ञान से अज्ञान दूर होता है, इसके सिवाय क्रिया-काण्ड करे तो उसमें शुभराग हो तो पुण्य है किन्तु उससे अज्ञान दूर नहीं होता। लोग धर्म को कष्टदायक मानते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। ज्ञान स्वभाव में धर्म है और धर्म में कष्ट नहीं है।

लोग कहते हैं कि - त्याग करके देखो तब पता चलेगा, किन्तु भाई ! सभी पर वस्तुओं का तेरे में अनादि से त्याग ही है किन्तु मैं ज्ञानस्वभावी हूँ - ऐसा न मानकर मैं पर का ग्रहण-त्याग कर सकता हूँ - ऐसा जो अज्ञान भाव करता है उससे वह स्वयं ही नाश को प्राप्त होता है।

अनेकान्तमय ज्ञान सदा ही जयवंत वर्तता है - बाकी सभी में हार है.

अनेकान्तमय ज्ञान जगत के स्वरूप को प्रकाशित करता है। विकार में स्वभाव नहीं, स्वभाव में विकार नहीं, अधूरीदशा में पूर्णदशा नहीं, पूर्णदशा में अधूरीदशा नहीं, निमित्त, निमित्त में है उपादान में नहीं - ऐसा अनेकान्तमय ज्ञान ही सदा जयवंत वर्तता है - साधक भाव जयवंत वर्तता है और अनेकान्त जयवंत वर्तता है, इससे विपरीत अन्य सभी की हार होती है। सम्यग्ज्ञान का तेज वर्तता है किन्तु एकान्तरूप ज्ञान का तेज नहीं वर्तता। द्रव्य वह द्रव्य है, द्रव्य वह गुण नहीं। यदि द्रव्य एक-एक गुणमय हो तो एक ही द्रव्य हो जाय; इसलिए गुण अनेक हैं और द्रव्य एक है। इसप्रकार मैं अनेकान्तमय ज्ञान को देखता हूँ। राग-द्वेष मेरे स्वभाव में नहीं है। राग-द्वेष पर्याय में होने पर भी स्वभाव में नहीं है। अधूरीदशा होने पर भी मैं पूर्ण हूँ - ऐसा अनेकान्तमय तेज सदा जयवंत वर्तता है।

* * *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

श्लोक ३

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम् ।
क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम् ॥३॥

(अब श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोक द्वारा अनेकान्तमय जिनवचन के सारभूत इस 'प्रवचनसार' शास्त्र की टीका करने की प्रतिज्ञा करते हैं -)

अर्थ :- परमानन्दरूपी सुधारस के पिपासु भव्य जीवों के हितार्थ, तत्त्व को (वस्तु स्वरूप को) प्रगट करनेवाली प्रवचनसार की यह टीका रची जा रही है।

* * *

श्लोक ३ पर प्रवचन

अब श्लोक द्वारा श्री अमृतचंद्राचार्यदेव अनेकान्तमय जिनप्रवचन के सारभूत इस प्रवचनसार शास्त्र की टीका करने की प्रतिज्ञा करते हैं। आत्मा स्वरूप है पररूप नहीं, आत्मा ज्ञान स्वरूप है विकार स्वरूप नहीं - यह अनेकान्त है। अब आचार्य टीका लिखने के प्रयोजन को बताते हैं -

चौरासी के अवतार से थके हुए और अपने हित की इच्छा रखनेवाले जीवों के लिए यह शास्त्र है.

साधक जीव कैसे होते हैं ? यह बताते हैं। योग्य प्राणी अथवा धर्म के लोभी किसे कहना ? जो आत्मा के परम आनन्द के पिपासु हैं उनके लिए यह कथन है किन्तु जो निमित्त और पुण्य-पाप के पिपासु है उनके लिए यह कथन नहीं हैं। अनन्त काल में अनन्त स्वर्ग के अवतार (भव) किये हैं, सेठ भी बना किन्तु आनन्द की गन्ध भी नहीं मिली। जो चौरासी लाख अवतार से भयभीत हुए हैं और आनन्द के पिपासु हैं उनके लिए यह बात है किन्तु जिन्हें पैसा चाहिए और भव चाहिए उनके लिए यह बात नहीं है। आत्मा त्रिकाल रहनेवाला है और ज्ञान-आनन्द उसका स्वभाव है, वह अमूर्त रस है। अंतरंग में शान्तरस विद्यमान है, उसकी इच्छा रखनेवाले जीवों के लिए प्रवचनसार हैं। इसमें निश्चय-व्यवहार, निमित्त आदि कथन आयेंगे किन्तु आनन्द ध्येय है।

मेरी आत्मा को सुख कहाँ से मिलेगा। मेरी आत्मा में आनन्द भरा है - ऐसा निर्णय करनेवाले आनन्द के इच्छुक हैं। अमृत का रस विद्यमान है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। गर्मी में ११८ डिग्री तापमान हो प्यास लगी हो और उस समय सवा सेर मौसंबी का रस मिले तो उसमें अज्ञानी सुख मानता है। चौरासी के अवतार से थका

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुआ है - ऐसे जीव के लिए यह बात है। उन्हें यह बात मिलती है। आत्मा आनन्द का पूर्ण भंडार है, उसकी प्यासवाले भव्य जीवों के हित के लिए यह प्रवचनसार है।

बाह्य पदार्थों की इच्छावाले अथवा पुण्य की इच्छावालों के लिए यह शास्त्र नहीं है.

प्रश्न :- हमें तो लीलामात्र से आनन्द चाहिए ?

समाधान :- वह तो भगवान के रास्ते से चलने पर आएगा। मेरा आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, पुण्य-पाप विकार में दु:ख है, संयोग में सुख नहीं - ऐसी जिज्ञासावाले के लिए प्रवचनसार है किन्तु पैसे की इच्छावाले के लिए अथवा बाहर की इच्छावाले के लिए यह शास्त्र नहीं है। जो व्यवहार से धर्म मानता हो, संयोग से धर्म मानता हो - वह आनन्द की पिपासावाला नहीं है। निमित्त और राग की रुचिवाले के लिए प्रवचनसार नहीं है। अभव्य-आत्मा की आनन्ददशा के लिए पात्र नहीं है किन्तु भव्य जीव जो परमानन्द की पिपासावाले हैं उनके लिये यह बात है। अपूर्णदशा में व्यवहार आता है, पाप से बचने के लिए भक्ति, दया, दानादि के भाव आते हैं किन्तु वे तो जलानेवाले भाव हैं, उसमें आनन्द नहीं। ज्ञान और आनन्द मेरे स्वभाव में है। लक्ष्मी में आनन्द नहीं मेरे में आनन्द है ऐसा माने उसके लिए यह शास्त्र है।

यह तत्त्वप्रदीपिका टीका - तत्त्व को प्रगट करती है.

तथा यह टीका कैसी है ? यह टीका आत्मा का तथा विकार आदि का स्वरूप बताती है। 'तत्त्वप्रदीपिका' नाम की टीका है। आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द है, संयोग पर है, विकार क्षणिक है - ऐसे तत्त्व को बतानेवाली तत्त्व प्रदीपिका नाम की टीका है - ऐसी यह प्रवचनसार की टीका लिखने में आयी है। इस तरह मंगलाचरण और टीका करने की प्रतिज्ञा करके भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव विरचित प्रवचनसार की प्रथम पाँच गाथाओं के प्रारम्भ में श्री अमृतचन्द्राचार्य देव उन गाथाओं की उत्थानिका करते हैं।

(इसप्रकार मंगलाचरण और टीका रचने की प्रतिज्ञा करके, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित प्रवचनसार की पाँच गाथाओं के प्रारंभ में श्री अमृतचंद्राचार्यदेव उन गाथाओं की उत्थानिका करते हैं।)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा १ से ५

अथ सूत्रावतारः -

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं ।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥१॥
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे ।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे ॥२॥
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं ।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते ॥३॥
किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं ।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं ॥४॥
तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज ।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥५॥(पणगं)

अब, जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है, सातिशय (उत्तम) विवेक ज्योति प्रगट हो गई है (अर्थात् परम भेद विज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो गया है) तथा समस्त एकान्तवादरूप अविद्या का अभिनिवेश अस्त हो गया है ऐसे कोई (आसन्न भव्य महात्मा श्रीमदभगवत् कुन्दकुन्दाचार्य), पारमेश्वरी (परमेश्वर जिनेन्द्रदेव की) अनेकान्तवाद विद्या को प्राप्त करके, समस्त पक्ष का परिग्रह (शत्रुमित्रादि का समस्त पक्षपात) त्याग देने से अत्यन्त मध्यस्थ होकर सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से आत्मा के लिये अत्यंत हिततम भगवंत पंचपरमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होने योग्य परमार्थ सत्य (पारमार्थिक रीति से सत्य), अक्षय (अविनाशी) मोक्ष लक्ष्मी को उपादेयरूप से निश्चित करते हुये प्रवर्तमान तीर्थ के नायक (श्री महावीर स्वामी) पूर्वक भगवंत पंचपरमेष्ठी को प्रणमन और वन्दन से होनेवाले नमस्कार के द्वारा सन्मान करके सर्वारम्भ से (उद्यम से) मोक्ष मार्ग का आश्रय करते हुये प्रतिज्ञा करते हैं। 'अब, यहाँ (भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित) गाथा सूत्रों का अवतरण किया जाता है।'

अब यहाँ (भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित) गाथा सूत्रों का अवतरण किया जाता है :-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुर-असुर-नरपतिवंद्य घातीकर्म मल निर्मल करन ।
हैं तीर्थ कर्ता धर्म के वर्द्धमान जिन शत शत नमन ॥१॥
सब शेष तीर्थंकर विशुद्ध सुसत्त्वयुत सब सिद्ध को ।
दृग ज्ञान चारित्र वीर्य तप आचार संयुत साधु को ॥२॥
पूर्वोक्त सर्व समूह को प्रत्येक को प्रत्येक को ।
वन्दन करूँ मैं विहरते नर क्षेत्र के अरहन्त को ॥३॥
अरहन्त सिद्ध समूह को गणधर समूहों को नमन ।
सब ही उपाध्यायों तथा सब साधुओं को कर नमन ॥४॥
उनके प्रमुख सदृर्शज्ञान विशुद्ध आश्रम को ग्रहण ।
कर ग्रहण करता साम्य को जिससे मिले निर्वाण धन ॥५॥

गाथार्थ :- यह मैं जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों से वंदित हैं तथा जिन्होंने घाति कर्म मल को धो डाला है ऐसे तीर्थरूप और धर्म के कर्ता श्रीवर्धमानस्वामी को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

गाथार्थ :- और विशुद्ध सत्तावाले शेष तीर्थंकरों को सर्वसिद्धभगवंतों के साथ ही, और ज्ञानाचार्य, दर्शनाचार्य, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचारयुक्त श्रवणों को नमस्कार करता हूँ ॥२॥

गाथार्थ :- उन उन सबको तथा मनुष्य क्षेत्र में विद्यान अरहन्तों को साथ ही साथ - समुदाय-रूप से और प्रत्येक को - व्यक्तिगत वन्दना करता हूँ ॥३॥

गाथार्थ :- इसप्रकार अरहन्तों को सिद्धों को आचार्यों को उपाध्यायवर्ग को और सर्व साधुओं को नमस्कार करके उनके विशुद्धदर्शन ज्ञानप्रधान आश्रम को प्राप्त करके मैं साम्य को प्राप्त करता हूँ जिससे निर्वाण की प्राप्ति होती है ॥४-५॥

टीका :- यह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष दर्शनज्ञान सामान्य स्वरूप मैं, जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा वंदित होने से तीन लोक के एक (अनन्य सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं, जिनमें घाति-कर्म-मल के धो डालने से जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ अनन्त शक्तिरूप परमेश्वर का है, जो तीर्थता के कारण योगियों को तारने में समर्थ हैं, धर्म के कर्ता होने से जो शुद्ध स्वरूप परिणति के कर्ता हैं, उन परम भट्टारक, महादेवाधिदेव, परमेश्वर,परमपूज्य, जिनका नामग्रहण भी अच्छा है ऐसे श्री वर्धमान देव को प्रवर्तमान तीर्थ की नायकता के कारण प्रथम ही, प्रणाम करता हूँ ॥१॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तत्पश्चात जो विशुद्ध सत्तावान होने से ताप से उत्तीर्ण हुए (अंतिम ताव दिये हुए अग्नि में से बाहर निकले हुए) उत्तम सुवर्ण के समान शुद्ध दर्शनज्ञानस्वभाव को प्राप्त हुये हैं, ऐसे शेष अति तीर्थंकरों को और सर्वसिद्धों को ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचारयुक्त होने से जिन्होने परम शुद्ध उपयोग भूमिका को प्राप्त किया है, ऐसे श्रवणों को - जो कि आचार्यत्व, उपाध्यायत्व और साधतत्त्वरूप विशेषों से विशिष्ट (भेदयुक्त) हैं उन्हें - नमस्कार करता हूँ ॥२॥

तत्पश्चात इन्हीं पंचपरमेष्ठियों को, उस-उस व्यक्ति में (पर्याय में) व्याप्त होनेवाले सभी को, वर्तमान में इस क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभाव होने से और महाविदेहक्षेत्र में उनका सद्भाव होने से मनुष्य क्षेत्र में प्रवर्तमान तीर्थनायक युक्त वर्तमानकाल गोचर करके, (महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान श्री सीमंधरादि तीर्थंकरों की भांति मानो वर्तमान काल में ही विद्यमान हो, इसप्रकार अत्यन्त भक्ति के कारण भावना भाकर-चिंतवन करके उन्हें) युगपद्, युगपद् अर्थात समुदायरूप से और प्रत्येक - प्रत्येक को अर्थात व्यक्तिगतरूप से संभावना करता हूँ। इसप्रकार से संभावना करता हूँ ? मोक्ष लक्ष्मी को स्वयंवर समान जो परम निर्ग्रन्थता की दीक्षा का उत्सव (आनन्दमय प्रसंग) है उसके उचित मंगलाचरणभूत जो कृतिकर्मशास्त्रोपदिष्ट वन्दनोच्चार (कृतिकर्मशास्त्र में उपदेशे हुए स्तुति वचन) के द्वारा संभावना करता हूँ॥३॥

अब इसप्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्वसाधुओं को प्रणाम और वन्दनोच्चार से प्रवर्तमान द्वैत के द्वारा, भाव्य-भावक भाव से उत्पन्न अत्यन्त गाढ़ इतरेतर मिलन के कारण समस्त स्व-पर का विभाग विलिन हो जाने से जिसमें अद्वैत प्रवर्तमान है ऐसा नमस्कार करके, उन्हीं अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुओं के आश्रम के - जो कि (आश्रम) विशुद्धज्ञान दर्शनप्रधान होने से सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले आत्मतत्त्व का श्रद्धान और ज्ञान जिसका लक्षण है ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का सम्पादक है, उसे - प्राप्त करके, सम्यग्दर्शनज्ञान सम्पन्न होकर, जिसमें कषायकण विद्यमान होने से जीव को जो पुण्यबन्ध की प्राप्ति का कारण है ऐसे सरागचारित्र को वह (सरागचारित्र) क्रम से आ पड़ने पर भी (गुणस्थान-आरोहण के क्रम में बलात् चारित्र मोह के मंद उदय से आ पड़ने पर भी) - दूर उल्लंघन करके, जो समस्त कषायक्लेशरूपी कलंक से भिन्न होने से निर्वाण प्राप्ति का कारण है, ऐसे वीतरागचारित्र नामक साम्य को प्राप्त करता हूँ। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र की ऐक्यस्वरूप एकाग्रता को मैं प्राप्त करता हूँ, यह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(इस) प्रतिज्ञा का अर्थ है इसप्रकार तब इन्होंने (श्रीमद्कुन्दकुन्दाचार्य देव ने) साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार किया ।।४-५।।

* * *

गाथा १ से ५ पर प्रवचन

जिनके भव का अन्त निकट है - ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव का बहुमान करते हैं.

प्रथम देव तथा अनेकान्तमय ज्ञान तथा वाणी को नमस्कार किया था, अब श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव को स्मरण (नमस्कार) करते हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव इस प्रवचनसार ग्रन्थ को बनानेवाले - नग्न दिगम्बर मुनि हैं। जैन दर्शन में मुनि नग्न दिगम्बर ही होते हैं - अन्य मुनि नहीं कहलाते। भाव में राग की चिकास का वस्त्र नहीं था और बाहर में कपड़ा नहीं था - ऐसे भाव लिंगीमुनि श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव का (मंगलाचरण में) तीसरा स्थान आता है। भगवान महावीर और गौतम गणधर के पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य आते हैं।

कैसे हैं श्रीकुन्दकुन्दाचार्य ?

जिनके संसार समूह का किनारा निकट है, आत्मा के अनुभव सहित रमणता करनेवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव को संसार का अन्त निकट है। इसप्रकार श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि - कैसे हैं श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ? जिनकी नग्नदशा थी, चिदानन्द आत्मा में - अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त थे, जो अल्प काल में मोक्ष जानेवाले हैं - ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस प्रवचनसार को बनाया है।

अनादि का संसार था यह बात की, किन्तु अब ये अवतार बन्द होनेवाले हैं। सीमंधर भगवान महाविदेह क्षेत्र में विराजते हैं। उनके पास कुन्दकुन्दाचार्यदेव आठ दिन रहे थे उनकी वाणी सुनी थी, उसके बाद इन शास्त्रों को बनाया है। उन मुनिराज को संसार अर्थात् विकार का नाश होनेवाला है और निकट में ही मुक्ति है - ऐसे महात्मा कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रवचनसार बनाया है - ऐसा कहकर उनका बहुमान करते हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य भगवंत को उत्तम विवेक ज्योति प्रगट हुई है.

तथा वे कैसे हैं ? उनको अतिशय विवेक ज्योति प्रगट हुई है। चौथे गुणस्थान से ही निर्मल भेदज्ञान होता है किन्तु यहाँ तो मुनिदशा की बात है। विवेक ज्योति प्रगट हुई है जिसमें वे, पंचमहाव्रत के राग को ज़हर समझते हैं। इसप्रकार पुरुष की पहचान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कराकर, पुरुष प्रमाण से वचन प्रमाण कहते हैं। मेरा ज्ञान स्वरूप राग से भिन्न है - ऐसी भेदज्ञान ज्योति प्रगट हुई है - ऐसा भेदज्ञान हुआ है किन्तु केवलज्ञान नहीं हुआ और केवलज्ञान हुआ हो तो साधकदशा नहीं होती। 'मैं निमित्त और राग के स्वरूप से जुदा हूँ' - ऐसी विवेकरूपी छैनी पड़ी है अर्थात् भेदज्ञान उत्पन्न हुआ है।

'उन्होंने एकान्त विद्या का नाश किया है। आत्मा एकान्त नित्य ही है, एकान्त अनित्य ही है, एकान्त अशुद्ध है - ऐसा एकान्त अभिप्राय हृदय में से निकल गया है। अन्य सभी मत एकान्ती हैं। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में जैन सम्प्रदाय में भाग पड़ गये थे, इसीलिये उन्होंने कहा है कि केवलज्ञान कैसा होता है और शास्त्र कैसे होते हैं? ऐसा स्मरण आ गया है, इसलिए कहा कि उन्होंने विरुद्ध ज्ञान का नाश किया है।

केवलज्ञान पहले हो और केवल दर्शन बाद में हो - ऐसा क्रमिक उपयोग - खण्ड-खण्ड ज्ञान, केवलज्ञान में नहीं होता। प्रथम व्यवहार और बाद में निश्चय होगा - ऐसा आग्रह छूट गया है। अज्ञानियों ने सर्वज्ञ के नाम से कल्पित नये शास्त्रों की रचना की है। वे ज्ञानियों को मान्य नहीं है - यह बात इसमें आ जाती है। विभाव से और निमित्त से लाभ होता है - ऐसे एकान्तमत का उन्होंने नाश किया है।

कुन्दकुन्दाचार्य भगवान अनेकान्त विद्या प्रगट करके अत्यंत मध्यस्थ हुए हैं.

तथा पारमेश्वरी अनेकान्तवाद विद्या प्राप्त करके, समस्त पक्ष का परिग्रह छोड़ने से वे अत्यंत मध्यस्थ हैं। इस शास्त्र में भगवान सर्वज्ञ द्वारा कही गई दिव्य ध्वनि की बात है। अपना हित-अहित स्वयं से ही होता है और अन्य से तीन काल में नहीं होता, शुद्ध आत्मा के आधार से ही धर्म होता है और शुभराग अथवा व्यवहार से कभी भी धर्म नहीं होता - यह अनेकान्त है। शुद्ध चिदानन्द आत्मा के आश्रय से धर्म प्रगट होता है। जो राग शेष रह गया है - वह अधर्म है।

यदि, व्यवहार को धर्म कहोगे तो केवलज्ञान प्रगट होने में (फिर) क्या बाधा रही ? व्यवहार को उपचार से धर्म कहा है, वह कमी स्वभाव की एकाग्रता से दूर होती है। यदि निश्चय-व्यवहार दोनों ही धर्म हो तो फिर क्या कमी रही ? इसलिए व्यवहार तो मात्र कहने के लिए धर्म है। निश्चय स्वभाव से धर्म होता है - व्यवहार से धर्म नहीं होता - यह अनेकान्त विद्या है।

उन्होंने समस्त पक्ष का परिग्रह छोड़ा है। हमारा यह पक्ष है - ऐसी बात नहीं है। हमारी बात माननेवाले मित्र है और नहीं माननेवाले शत्रु हैं - ऐसे पक्ष को छोड़ा है। इसप्रकार अत्यन्त मध्यस्थ हैं। विवेक उपरान्त - चारित्र में अस्थिरता छूटी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्रदशा की बात करते हैं और वीतराग द्वारा कहा गया मार्ग जिन्हें प्रगट हुआ है - ऐसे उन श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव का बहुमान करते हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव अनेकान्त विद्या को प्राप्त हुये है और अत्यन्त मध्यस्थ हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव गाथा कहते हैं। वे कुन्दकुन्दाचार्य कैसे हैं ? यह श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए कैसी प्रतिज्ञा की है वह बताते हैं।

अब, जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है ऐसे श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव को अतिशय विवेक ज्योति प्रगट हुई है, उन्हें एकान्त पक्ष मानने का आग्रह छूट गया है। प्रत्येक वस्तु स्वरूप से है और पररूप नहीं - ऐसी अनेकान्त विद्या को प्राप्त किया है।

जो आत्मा द्रव्य से नित्य है, वही पर्याय से अनित्य है; किन्तु एकान्त नित्य ही है अथवा एकान्त अनित्य ही है - ऐसा आग्रह छूट गया है।

उन्होंने भगवान परमेश्वर की अनेकान्त विद्या को प्राप्त किया है। आत्मा स्वरूप से है - पररूप नहीं; द्रव्य, द्रव्यरूप से है - गुणरूप नहीं, एक समय की पर्याय स्वपने है पर पने नहीं - ऐसी अनेकान्त विद्या को प्राप्त हुए हैं। सत्य को जैसा है वैसा कहते हैं, असत्य का उत्थापन (निषेध) करते हैं, शत्रु मित्र का पक्ष छूट गया है; ये दिगम्बर मेरे मित्र हैं और अन्य मेरे शत्रु है - ऐसा पक्षपात छूट गया है। अतः अत्यंत मध्यस्थ हैं - ऐसे उन कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इन गाथाओं को बनाया है।

आत्मा को मोक्षदशा हिततम है, पुण्य, लक्ष्मी और भोग हितकर नहीं.

तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थ में मोक्ष आत्मा को हिततम है। किसी पुरुष का प्रयोजन धर्म (पुण्य) है, किसी का प्रयोजन अर्थ है, किसी का प्रयोजन काम है, किसी का प्रयोजन मोक्ष है। लक्ष्मी मिलना (अथवा) नहीं मिलना - यह पुण्य के आधीन है। मैं लक्ष्मी को मिलाऊँ, पुण्य करू और भोग मिलाऊँ - ये तीनों ही पुरुषार्थ विपरीत है और मोक्ष करूं - ऐसा स्व सन्मुखता का पुरुषार्थ सही है। धर्मी जीव का प्रयोजन मोक्ष का है। बीच में पुण्य आता है, लक्ष्मी का संयोग होता है और निचलीदशा में अल्प विषय-वासना होती है किन्तु धर्मी को उनका प्रयोजन नहीं होता। आत्मा की परम पवित्रदशा ही श्रेष्ठ है - तात्विक है यह अत्यन्त हिततम है, उत्कृष्ट हित स्वरूप है। कुन्दकुन्दाचार्य यथानुभूत मार्ग के प्रणेता है। हमें मुनिपने का अनुभव है, सर्वज्ञ देव द्वारा कहे गये छठवें गुणस्थान का मुनिपना कैसा होता है - उस मुनिपने के प्रणेता हम खड़े हैं। पैसेवाले अपनी लक्ष्मी का अनुभव कहते हैं किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उससे पैसा नहीं मिलता। अज्ञानी अभिमान करता है। जैसे बन्दरों की टोली में बड़े बन्दर को पगड़ी बांधी जाती है वह बन्दर का पटेल (मुखिया कहलाता) है। यदि पगड़ी नहीं बांधी जाये तो वह मण्डप को तोड़ डालता है, वैसे ही अज्ञानी पैसे का अभिमान करता है - मान की इच्छा करता है। यहाँ कहते हैं कि धर्मी को मोक्ष का प्रयोजन है, बीच में पुण्य आ जाये वह जुदी बात है। पुण्य में, लक्ष्मी में, काम-भोग में किञ्चित भी हित नहीं है- मोक्ष में ही हित है, वह परम पवित्रदशा ही हिततम है।

अपने आत्मा की प्रसन्नता जागी, तो भगवान प्रसन्न हुये ऐसा कहने में आता है.

भगवान पंच परमेष्ठी की प्रसन्नता से, अरहन्त और सिद्ध की प्रसन्नता से मोक्ष लक्ष्मी प्रगट होती है। आत्मा चिदानन्द है उसकी प्रसन्नता हुई - स्वयं प्रसन्न हुआ अर्थात् पंचपरमेष्ठि के ऊपर (प्रसन्नता का) आरोप आता है। केवली भगवान प्रसन्न हो अर्थात् की शुद्ध चिदानन्द हूँ, अमृतपिण्ड हूँ इसमें एकाग्र शान्ति द्वारा प्रसन्नता जगी है अर्थात् परमेष्ठी की कृपा है ऐसा मुनिराज निमित्त का कथन करते हैं। प्रवचनसार में ज्ञान प्रधान कथन हैं। इसलिए हित अपने में है - ऐसा समझकर अपने में ही स्थिरता करता हूँ अर्थात् पंच परमेष्ठी के ऊपर आरोप आता है।

मोक्ष प्रगट होने में पंच परमेष्ठी निमित्त होते हैं किन्तु कुदेवादि (निमित्त) नहीं होते .

दूसरी तरह से कहा जाये तो अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु मोक्षमार्ग में निमित्त है किन्तु कुदेव कुगुरु का निमित्त नहीं हो सकते - ऐसा भी बताना है। भगवान तो वीतराग है, उनको प्रसन्नता का राग नहीं होता, स्वयं में स्वयं के चैतन्य की कृपा वर्तती है इसलिए पंच परमेष्ठी की निमित्तरूप से कृपा कही जाती है। देखो! यहाँ पाँचों को भगवान परमेश्वर कहा है।

''णमो लोए सव्व साहूणं'' इस पद में अन्य मत के वैरागी तथा जैन के सभी साधु आ जाते हैं - ऐसा कहकर कोई वक्ता जैनों की उदारता को मनवाना चाहते हैं, इसे सुनकर अज्ञानी को अच्छा लगता है; किन्तु भाई ! जब श्वेताम्बर को भी जैन मुनिपद नहीं है तो फिर अन्य मत के साधु पंच परमेष्ठी में कहाँ से आयेंगे ? मुनि परमेश्वर कैसे होते हैं ? जिन्हें आत्मा के भानपूर्वक तीन कषाय नाश हुई है वे नग्न और निश्चय रत्नत्रय सहित होते हैं - ऐसे महान मुनि आचार्य कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आश्रय करके मैं यह प्रवचनसार कहूँगा। ऐसे साधु होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षदशा उपादेय है किन्तु निमित्त और व्यवहार उपादेय नहीं है.

तथा कैसी है मोक्ष लक्ष्मी ? हीरा माणिक की लक्ष्मी सच्ची नहीं - शरणभूत नहीं अपितु चैतन्य स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट हुई लक्ष्मी ही सच्ची है और अविनाशी है। मोक्ष लक्ष्मी एक ही ग्रहण करने योग्य है। देव - शास्त्र - गुरु का राग, अट्ठाईश मूलगुण पालन का राग आता है किन्तु परमार्थ से वह उपादेय नहीं है। आचार्य कहते हैं कि - खेद है कि व्यवहार आए बिना नहीं रहता। मुनि को अट्ठाईश मूलगुण के पालन का राग आता है किन्तु वह उपादेय नहीं है अपितु मोक्ष-लक्ष्मी उपादेय है। निमित्त और व्यवहार तो उपादेय नहीं है किन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय भी उपादेय नहीं है। पंच-परमेष्ठी को निमित्त सिद्ध किया किन्तु उपादेय तो पूर्ण शुद्ध परिणतिरूप मोक्षलक्ष्मी ही है।

वर्तमान तीर्थ के अर्थात् साधु, अर्जिका, श्रावक और श्राविका के नायक महावीर स्वामी है। यहाँ उनसे लेकर सभी तीर्थंकर भगवान को नमस्कार किया है। वर्तमान शासन में भगवान महावीर की निकटता है इसलिए उनको पहले याद किया। इसप्रकार पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया है। अनन्त तीर्थंकरों में महावीर तीर्थंकर देव को पहले स्मरण किया। तीर्थंकर, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि इन सभी में तीर्थंकर भगवान महावीर को पहले लिया है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य से पहले के जो आचार्य उपाध्याय साधु हुये हैं उनको वन्दन करते हैं - देह से नमस्कार करते हैं - वह प्रणमन है, वचन से स्तुति करते हैं वह वन्दन है। नमस्कार में दोनों आ जाते हैं। पूर्ववर्ती आचार्य, उपाध्याय तथा साधुओं को नमस्कार करते हुये कहते हैं कि मैं उन्हें देह से नमन् करता हूँ और वाणी से उनका स्तवन करता हूँ। इसतरह वे सर्वप्रकार से सन्मान करते हैं।

इसप्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव पंच परमेष्ठी को नमन् करके वन्दन करते हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं की निर्मल पर्याय में वर्त रहे हैं किन्तु व्यवहार और निमित्त का आश्रय नहीं है.

तथा उनको विकल्प के समय मोक्ष मार्ग वर्तता है। आनन्द कन्द भगवान आत्मा की प्रतीति, उसका ज्ञान और रमणता में वर्तते हुए श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रतिज्ञा करते हैं। सर्व प्रकार से मोक्षमार्ग का आश्रय करते हैं - इतना ज्ञान प्रधान कथन है।वास्तव में तो उन्हें स्व द्रव्य का आश्रय है। साथ में वर्तमान पर्याय में मोक्ष मार्ग वर्तता है। इसलिए उसका आश्रय करते हुये प्रवचनसार कहना चाहते हैं। समयसार में दृष्टि प्रधान कथन है और यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है इसलिये यहाँ द्रव्य और पर्याय दोनों की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात आयगी। यहाँ मोक्ष को उपादेयपने निश्चित करते हैं। मोक्षलक्ष्मी वर्तमान में प्रगट नहीं है इसलिए उसे उपादेय कहा और वर्तमान में मोक्षमार्ग वर्तता है इसलिए उसका आश्रय करते हुए - ऐसा कहा है। वास्तव में तो द्रव्य का आश्रय है किन्तु ज्ञान जानता है कि वर्तमान निर्मल पर्याय में स्वयं वर्त रहा है। निमित्त और व्यवहार का आश्रय नहीं है यह बताने के लिए मोक्षमार्ग का आश्रय कहने में आया है।

''चारित्र साक्षात् धर्म है, चारित्र मोक्ष का कारण है.''

इसतरह स्वयं अपने में वर्तते हुए प्रतिज्ञा करके श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव उपोद्घात करते हैं।

हेय तथा उपादेय तत्त्व का निर्णय करना चाहिये.

प्रश्न :- यह समझकर हमें क्या करना चाहिए ?

समाधान :- हेय स्वभाव क्या है उसका पहले से ही निर्णय करना। मुनि कैसे होते हैं और वे क्या कहते हैं उसकी प्रतीति करना। मोक्ष आदरणीय है, वह उपादेय है, अन्य कुछ भी आदरणीय नहीं अर्थात् वह सभी हेय है। मोक्षमार्ग का आश्रय है - अन्य का आश्रय नहीं है इसप्रकार बात कही है। श्री अमृतचंद्र आचार्य ने कुन्दकुन्दाचार्य की पहचान कराई है। वे प्रवचनसार के निमित्तकर्ता हैं, इसलिए पुरुष प्रमाण से वचन प्रमाण मानना। वाणी में आये हुए सम्यक्भावों को समझकर प्रतीति करना चाहिए किन्तु अन्य प्रतीति करना योग्य नहीं है।

मूल गाथा में प्रथम महावीर भगवान को स्मरण किया है। अंतिम तीर्थंकर होने से उनका निकट उपकार वर्तता है। यह ज्ञान प्रधान कथन है। सामान्यरूप से तथा प्रत्येक को पृथक-पृथकरूप से वन्दन करता हूँ ऐसा कहकर उनके उपकार का वर्णन करते हैं। वन्दन करनेवाले श्री कुन्दकुन्दाचार्य कैसे हैं ?

''मैं ज्ञान के वेदन से प्रत्यक्ष ज्ञानदर्शन सामान्य स्वरूप हूँ।''

इसप्रकार स्पष्ट प्रत्यक्ष स्वसंवेदन सहित मोक्ष मार्ग की प्रसिद्धि कर रहे हैं

टीका पर प्रवचन - वन्दन करनेवाले कौन हैं ? वन्दन करनेवाले तथा ग्रंथ करनेवाले कौन हैं ? यह स्वयं प्रसिद्ध करते हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं कि मैं कौन हूँ ? प्रवचन सार में निमित्तपने पहचान कराने के लिये जिन्हें कर्ता कहा जाता है। और कैसा हूँ मैं कि - स्वानुभूति से प्रत्यक्ष हूँ। मेरे दर्शन ज्ञान से ही प्रत्यक्ष हूँ। निमित्त और व्यवहार से प्रत्यक्ष हो - ऐसा (मैं) नहीं हूँ। स्वसन्मुख ज्ञान की एकाग्रतारूप निश्चय वन्दन से मैं प्रत्यक्ष हूँ तथा नित्य दर्शन ज्ञान सामान्य चैतन्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूप हूँ। मैं रागरूप, जड़स्वरूप नहीं, २८ मूलगुण स्वरूप भी नहीं, मैं ऐसा हूँ, ऐसे तुम भी हो, तथा ऐसे अपने अनुभव से प्रवचन सार को कहता हूँ। भगवान कहते हैं इसलिये कहना चाहिए ऐसा न कहकर अपने अनुभव प्रमाण से कहते हैं। इसप्रकार मैं शब्द में से टीका किया है कि मैं आत्मा हूँ। अन्तर ज्ञान-दर्शनशक्ति को वर्तमान पर्याय में व्यक्त करके प्रत्यक्ष होऊँ - ऐसा मैं दर्शनज्ञानस्वरूप हूँ। नवतत्त्व में यह जीव तत्त्व है- ऐसा आत्मा हूँ किन्तु इस समय शास्त्र सम्बंधी शुभराग उठा है। इसलिये भगवान को व्यवहार नमस्कार करते हैं।

महावीर भगवान तीन लोक के देवों से पूजित हैं,
इसलिये वे सर्वोत्कृष्ट गुरु हैं.

अब जिन्हें नमस्कार करते हैं, वे भगवान कैसे हैं ? सो कहते हैं -

देवों के इन्द्र नीचे भवनवासी देवों के इन्द्र और नरेन्द्रों से - वर्धमान भगवान वंदित हैं। तीन लोक के बड़े पुरुषों से वंदित हैं इसलिए भगवान महावीर तीन लोक के सर्वोत्कृष्ट गुरु हैं। अनन्य परम गुरु हैं। उनके जैसा जो महान हो, वे सभी इसमें आ जाते हैं, अन्य कोई भी परमगुरु नहीं है। ऐसे महान पुरुष वन्दन करने लायक होने से तीन लोक के परम गुरु हैं उनके सिवाय अन्य गुरु नहीं है।

भगवान अन्तरस्थिर हुए इसलिये भगवान ने रागद्वेष का नाश किया और
घातिकर्म का नाश किया है - ऐसा कहने में आता है.

तथा भगवान महावीर कैसे हैं ? जिन्होंने घातिकर्ममल को धो डाला है। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये यह कथन किया है। उन्होंने स्वभाव का - पूर्ण स्वरूप का भान और शुद्धोपयोगरूप स्थिरता द्वारा भावकर्म का नाश किया है जिससे स्वयमेव द्रव्य-कर्म का नाश हो गया है। यहाँ निमित्त नैमित्तिक सम्बंध बताते हैं। समयसारकी ३४ वीं गाथा में कहा है कि, आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है उसमें ठहरजाना वह प्रत्याख्यान है।

राग का क्या करें ?

राग का त्याग करना यह कहना वह नाममात्र है। वहाँ समयसार में दर्शन (श्रद्धा) प्रधान कथन है, इसलिये राग को दूर करते हैं, यह उपचार है - ऐसा कहा है। यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है, इसलिये यहाँ घातिकर्ममल को धो डाला है - ऐसा कहा। वास्तव में घातिकर्म तो जड़ है आत्मा उनका नाश नहीं कर सकता - वैसे ही आत्मा राग का भी नाश नहीं कर सकता किन्तु जहाँ ज्ञानस्वभाव में लीन होता है - वहाँ राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्पन्न नहीं होता - राग दूर हो जाता है और द्रव्य-कर्म स्वयं छूट जाते हैं। ज्ञान ने तो मात्र जाना कि राग के दूर होने पर द्रव्य-कर्म सहज ही दूर हो जाते हैं। इसप्रकार निमित्ति - नैमित्तिक सम्बंध बताते हैं, तथा कर्मों को धो डाला है अर्थात् उन्होंने एक भी कर्म को नहीं रहने दिया है। यहाँ, मात्र इतनी यह अपेक्षा समझना चाहिए। ज्ञान जो है उसे जाने अथवा जो होगा उसे जाने।

अपनी आत्मा की मेहरबानी हुई तो भगवान की मेहरबानी हुई ऐसा कहने में आता है.

इसप्रकार भगवान ने कर्मों का नाश किया है- ऐसा होने के कारण वे जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ हैं। आत्मा में अकारणकार्यत्वशक्ति है, जिससे वह किसी का कारण नहीं तथा आत्मा का कोई पर्यायरूप कार्य किसी अन्य से नहीं होता। इसप्रकार ज्ञान ने जाना है। यहाँ निमित्त-नैमैत्तिक सम्बंध गौण हो जाता है, क्योंकि वह आत्मा में है ही नहीं - ऐसा यहाँ कहते हैं, यहाँ भगवान अन्य के ऊपर मेहरबानी करते हैं अर्थात जो जीव स्वयं की योग्यता से समझता है तो भगवान की मेहरबानी हुई ऐसा आरोप से - विनय से कहने में आता है। इस तरह भगवान की अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता है।

दृष्टि के कथन में भेद को नहीं स्वीकारते। आत्मा का पर के साथ कारण-कार्य सम्बंध नहीं है दृष्टि अभेद को स्वीकारती है। यहाँ ज्ञान प्रधान कथन है। यहाँ ज्ञान स्व पर प्रकाशक है, निर्विकल्प है। उसका विषय अभेद है। ज्ञान अभेद को जाने, भेद को जाने, शुद्ध को जाने, अशुद्ध को जाने, और उपादान को जाने,निमित्त को जाने इसप्रकार वह दोनों को जानता है।

भगवान को विकल्परूपवात्सल्य नहीं होता। जो प्राणी स्वयं के स्वभाव को समझना चाहते हैं, स्वयं का निश्चय अनुग्रह करते हैं उन पर भगवान की मेहरबानी कृपा अथवा वात्सल्य है ऐसा कहने में आता है - निमित्त का अनुग्रह कहने में आता है। आत्मा की प्रभुता ही ऐसी है कि - दूसरे के पास से प्रभुता नहीं लेता और दूसरे को प्रभुता नहीं देता - स्वयं ही परमेश्वर है अपनी परमेश्वरता अपने में ही रखता है - ऐसा भान होने के पश्चात जो ज्ञान प्रगट होता है, वह ज्ञान जानता है कि यहाँ ऐसे ही परमेश्वर निमित्त हैं।

भगवान किसे निमित्त हैं ?

जो स्वयं की प्रभुता प्रगट करे उसे। मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ इसप्रकार स्वयं की प्रभुता जिसने प्राप्त की है तब उनपर तीर्थंकर की प्रसादी अथवा कृपा हुई है - ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निमित्त से कहने में आता है। एक समय में तीन काल तीन लोक को जाननेवाली पूर्ण पर्याय प्रगट हुई है, उनका निमित्त सदा ही हाजिर है। उपादान की योग्यता की कचास इतनी है।

परमेश्वरपद स्वयं अन्दरस्वरूप विद्यमान है। वे भगवान तो निमित्त मात्र हैं।

"करुणा हम पावत हैं तुमकी"

हे भगवान : तेरी करुणा को हम पाना चाहते हैं, तथा भगवान की करुणा सम्पूर्ण जगत के ऊपर समान है। जिसप्रकार गांव में सभी का निमंत्रण होता है, तब वहाँ सभी भोजन के लिये आते हैं, किन्तु कोई बीमार हो अथवा बहुत वृद्ध हो तो वह नहीं आ सकता। इसप्रकार सभी को भोजन कराते हैं, वैसे ही यहाँ कहते हैं कि भगवान में सम्पूर्ण जगत के जीवों को तारने की ताकत है। (यहाँ) निमित्त की बात करते हैं। यदि कोई परमेश्वर ही तार दे - ऐसा हो तो किसी को पुरुषार्थ करना नहीं रहता। जो स्वयं अपना आश्रय करके स्वयं तिरे, तो उस पर भगवान ने कृपा की- ऐसा कहा जाता है। स्वयं की कृपा हुई - वहाँ व्यवहार श्रृद्धा के विषय में ऐसे ही भगवान निमित्त थे अत: ऐसा व्यवहार से अनुग्रह बताया है।

भगवान सभी को तारने में निमित्त होते हैं - ऐसी शक्ति है। तू तिरे तो वे निमित्त कहलायेंगे। जैसे पानी तो तिरने में निमित्त है ही किन्तु तिरने की ताकतवाला पानी में गिरे तो तिरता है। पानी सभी को तिरने में निमित्त है। अर्थात् जिन्हें तैरना आता है, उसे पानी निमित्त है; वैसे ही भगवान सभी के तिरने में समर्थ निमित्त हैं किन्तु जो स्वयं के पुरुषार्थ से तिरे उसे भगवान निमित्त कहलायेंगे। इसतरह चार घातिकर्म का नाश किया है - ऐसे केवल ज्ञानी भगवान सभी को तिरने में निमित्त हैं।

भगवान का पुरुष (आत्मा) दूसरों को तिरने में निमित्त होता है
किन्तु संसार में डूबे हुये को निमित्त नहीं होता.

प्रश्न :- यह निमित्त धर्मास्तिकाय जैसा है ?

समाधान :- जिसतरह जो जीवादि गति करते हैं, उनको धर्म द्रव्य निमित्त है किन्तु जो गति न करे उनको वह निमित्त नहीं कहलाता। इसी तरह जो तिरते हैं उनको भगवान निमित्त कहलाते हैं। संसार से तिरने में चाहे जो कोई भी निमित्त हो जाये ऐसा नहीं होता यह बताते हैं। जो पुरुष तिर गये हैं उन्हीं का वचन निमित्त हैं। जो तिर गये हैं ऐसे पुरुष ही अन्य को निमित्त होते हैं किन्तु जो पुरुष स्वयं डूबे हुये हैं, वे पुरुष अन्य को तिरने में निमित्त नहीं होते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान योगियों को तिरने में निमित्त हैं.

तथा कैसे हैं भगवान ? जिन्होंने स्वरूप के आनन्द में जुड़ान किया है उन योगियों को तिरने में वे निमित्त हैं। वे चारतीर्थ के करनेवाले हैं इसलिये भगवान में तीर्थपना है इसलिए वे योगियों को तिरने में समर्थ हैं। यहाँ योगी अर्थात् आत्मा के ज्ञान सहित रमणता करनेवाले सन्तों को समझना इसमें चौथे, पाँचवे गुणस्थानवाले गौणरूप से आ जाते हैं। इसप्रकार जो तिरते हैं उनको भगवान निमित्त है इसलिये भगवान तारने में समर्थ हैं ऐसा कहा गया है।

भगवान को वन्दन करनेवाला कैसा होता है ?

प्रवचनसार के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य कौन हैं ? वे किसको नमस्कार करते हैं ? और किसे नमस्कार करना योग्य है ? यह बात यहाँ कहते हैं। मैं कौन हूँ ? मैं नित्य ज्ञायकरूप हूँ, मेरा स्वभाव मेरे ज्ञान से जानने में आवे ऐसा है। और जो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है।

वास्तविक नमस्कार करनेवाले का आत्मा कैसा हो ? उनकी बात करते हैं। सर्वज्ञ को समझे बिना मात्र नमस्कार करे तो - पुण्य है किन्तु उससे धर्म नहीं होता। ज्ञान मेरा स्वभाव है ज्ञान, ज्ञान से ही जानता है। निमित्त और राग से जानूं ऐसा मेरा स्वभाव नहीं है। देह-मन-वाणी की क्रिया मेरी नहीं - मेरे आधीन भी नहीं है। विकल्प से आत्मा प्रत्यक्ष होने योग्य नहीं है। मेरे ज्ञान से अनुभव में प्रत्यक्ष होऊं - ऐसा मैं हूँ। मैं दृष्टा-ज्ञाता सामान्य स्वरूप हूँ। मैं एक स्वसन्मुख ज्ञान वेदन से प्रत्यक्ष होने योग्य हूँ - ऐसा साधक जीव भगवान को नमस्कार करता है। ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

वन्दन करने योग्य भगवान कैसे हैं? तीन लोक से पूजित हैं.

अब नमस्कार करने योग्य महावीर भगवान कैसे हैं ? किसलिये नमस्कार करने योग्य हैं वह बताते हैं। स्वर्ग के इन्द्रों भवनवासी देवों के इन्द्रों तथा नरेन्द्रों इसप्रकार तीन लोक के इन्द्रों से वे वंदित हैं - पूज्य हैं इसलिये मैं उन्हें वन्दन करता हूँ।

इस प्रवचनसार में ज्ञानप्रधान कथन है। यहाँ वन्दन करनेवाला और वन्दन करने योग्य की व्याख्या चलती है। मैं (पर्याय में) पूर्ण नहीं हूँ इसलिये वन्दन करने योग्य कौन हैं ? और उनको वन्दन करने का विकल्प उठा है इसलिये वंदन करने लायक कौन है उनका विवेक बताते हैं। साधारण लोग पूजें इसलिये नहीं अपितु सम्यक् दृष्टि ऐसे इन्द्र हैं, उनसे भी वे तीर्थंकर पूजित हैं। इसप्रकार भगवान की महिमा जानकर मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और मैं कैसा हूँ ? मेरे ज्ञान से प्रत्यक्ष होने योग्य - ऐसे दर्शन-ज्ञान स्वरूप हूँ। संसार, शरीर, भोग, मन-वाणी मेरे में नहीं है - ऐसी दृष्टि पूर्वक दर्शन-ज्ञान स्वरूप हूँ। मेरे ज्ञान से प्रत्यक्ष हो - ऐसा मैं आत्मा हूँ। निश्चय से स्वयं, स्वयं को नमस्कार करने योग्य है और व्यवहार से भगवान नमस्कार करने योग्य हैं।

कैसे हैं भगवान ? तीन लोक में पूज्य हैं इसलिये मैं उनका वन्दन-आदर करता हूँ। शुभराग से जानने में आऊं - ऐसा मैं नहीं हूँ अपितु ज्ञान से जानने से में आऊं - ऐसा मैं हूँ। फिर भी वंद्य - वंदक का व्यवहार सर्वथा छूटा नहीं है। सर्वज्ञ भगवान वंद्य है - मैं वन्दन करनेवाला हूँ - ऐसा विकल्प आया है इसलिये तीन लोक के पूज्य भगवान को नमस्कार करता हूँ।

भगवान ने घातिकर्म का नाश किया - यह निमित्त का कथन है.

तथा कैसे हैं भगवान ? घातिकर्म मल को नष्ट कर दिया होने से जिन्हें जगत पर अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरता है। शुद्ध उपादान से मैं परमेश्वर हूँ। भगवान निमित्तरूप से परमेश्वर हैं। उन्होंने द्रव्य कर्मों का नाश किया है यह निमित्त का कथन है। राग का व्यय करना यह तो पर्याय-बुद्धि है। निज शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा में एकाग्र होने पर राग की उत्पत्ति ही नहीं हुई, अत: उन्होंने राग का नाश किया - ऐसा उपचार से कहने में आता है। उन्होंने कर्मों का नाश किया ऐसा भी कहने में आता है।

आत्मा के स्वभाव सन्मुख होने पर भावकर्म नाश हो जाते हैं। इसप्रकार निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध जानकर भगवान ने कर्म का नाश किया - ऐसा कहने में आता है। इस कारण वे जगत पर अनुग्रह करने में निमित्त हैं। शुभराग आया है कि ऐसे भगवान हैं - ऐसे सर्वज्ञ हैं इसलिये वे नमस्कार करने लायक हैं - ऐसा विवेक वर्तता है। भगवान जगत पर अनुग्रह करते हैं परन्तु किन पर ? जो अपनी आत्मा पर अनुग्रह प्रगट करें - उन पर भगवान अनुग्रह करते हैं।

श्री समयसार गाथा ३४ में कहा है कि -'आत्मा ने राग का त्याग किया यह नाममात्र है।' यहाँ भगवान ने घातिकर्म का नाश किया ऐसा जो कहते हैं वह मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध का ज्ञान कराने के लिये है। भगवान सारी दुनिया के ऊपर कृपा करने में समर्थ हैं अर्थात् सर्वज्ञ भगवान को परमेश्वरता प्रगट हुई है; जो जीव अपनी परमेश्वरता का अवलंबन ले उन्हें भगवान निमित्त कहलाते हैं।

अन्य भी कहते हैं कि - परमेश्वर कृपा करते हैं, वैसे ही सर्वज्ञदेव भी कृपा करते होंगे ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं। अपितु स्वयं तेरे में ही प्रभुता गुण है। परमेश्वर पद की प्रतीतिवन्त को शुभराग आया है इसलिये परमेश्वर निमित्त कहलाते हैं। जो अपनी परमेश्वरता प्रगट करे उन्हें ही वे अनुग्रह करनेवाले कहलाते हैं।

मैं परमेश्वर स्वरूप हूँ। शुभराग का विषय और निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध का भेद अथवा राग का विषय गौण करके कि जो उस विषय में नहीं है। जो विषय दृष्टि में गौण है उस विषय को ज्ञान में ज्ञेय तरीके रखते हैं। आत्मा में अकारणकार्यत्व शक्ति है जिसका अर्थ यह है कि आत्मा किसी का कारण नहीं है और वह किसी का कार्य भी नहीं है। किसी भी पदार्थ को वह कारणरूप नहीं होता और किसी भी पदार्थ का कारण मिलाकर कार्यरूप नहीं होता। ऐसे गुण के अवलंबन से यह गुण, द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त होता है। इसप्रकार द्रव्यदृष्टि में अकारण कार्य है, - ऐसा ख्याल है किन्तु अल्प राग बाकी है जिससे अरहन्त आदि परमेश्वर के ऊपर लक्ष्य जाता है। जो जीव अपनी परमेश्वरता प्रगट करते हैं उनको भगवान निमित्त कहलाते हैं। यदि भगवान वास्तव में कृपा करते हो तो फिर उन्हें सभी को तार देना चाहिए। अतः जो स्वाश्रय से स्वसंवेदन प्रगट करे उन्हें ही वे निमित्त कहलाते हैं।

क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय करनेवाले के क्रम में सर्वज्ञ निमित्त होते हैं किन्तु उसमें कुदेवादि कभी भी निमित्त नहीं होते.

प्रश्न :- यदि ऐसा है तो फिर क्रमबद्ध कहाँ रहा ?

समाधान :- क्रमबद्ध को जाननेवाला राग का कर्ता नहीं होता। वह तो मात्र ज्ञाता-दृष्टा ही है। उसके क्रम में जो राग आया है उससे भगवान को वन्दन करते हैं। उन्हें भगवान तारते हैं - ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। जिसे जिसकी रुची होती है वह उसमें वीर्य (पुरुषार्थ) की स्फुरना करता है।

यहाँ सम्पूर्ण जगत में अभव्य को अलग नहीं किया है। भगवानपने में परमेश्वरता की निमित्तता सदा ही है किन्तु जो अपने उपादान के आधार से स्वयं धर्म प्रगट करे उसे वे निमित्त कहने में आते हैं। इसप्रकार वन्दन करनेवाला तथा वन्दन करने लायक कैसे होते हैं ? उनके विवेक सहित की बात चलती है। यदि धर्म में निमित्त होंगे तो ऐसे ही निमित्त होते हैं। क्रमबद्ध का निर्णय ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव सन्मुख होकर किया है। इसप्रकार समझे तो उनके क्रमबद्ध में सर्वज्ञ का निमित्त होता है। पर-परमेश्वर व्यवहार-उपचार है। मैं यथार्थ दर्शन-ज्ञान सम्पन्न हूँ। क्रमबद्ध का निर्णय होने पर जो ज्ञाता-दृष्टा हुआ है उसे शेष रहे हुये राग के क्रम में - ऐसा राग आता है और ऐसे निमित्त क्रम में होते हैं यह बताते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो जीव तिरे उन्हें भगवान तारनेवाले-निमित्त कहलाते हैं.

तथा कैसे हैं महावीर भगवान ? तीर्थपने के कारण - योगियों को तारने में समर्थ हैं। महावीर भगवान तीर्थ हैं अर्थात् तिरनेवाले जीवों को निमित्त हैं। जिन्होंने ज्ञायक स्वरूप आत्मा में जुड़ान किया है; व्यवहार, पुण्य-पाप में जिनका एकान्त जुड़ान छूट गया है, अल्प राग बाकी है - ऐसे साधक उन्हें नमस्कार करते हैं। वे उन्हें तीर्थपने के कारण नमस्कार करते हैं। भगवान महावीर तीर्थपने को प्राप्त हुये हैं। इसलिये वे तीर्थ हैं। वे तारनेवाले हैं परन्तु किन्हें ? जो स्वयं तिरे उन्हें। निश्चय तीर्थ स्वयं का आत्मा हैं ऐसा जो निर्णय करे उन्हें भगवान व्यवहार तीर्थ हैं।

त्रिलोकीनाथ परमात्मा तिर गये हैं, इसलियें वे तीर्थ हैं। मैं देहादि का कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ, पर से पृथक हूँ, पुण्य-पाप मेरे में नहीं है, इसप्रकार अपने ज्ञानानन्द स्वरूप में विशेष जुड़ान करते हैं - ऐसे योगियों को तारने में भगवान समर्थ हैं। यदि भगवान वास्तव में तार देते हों तो एक भगवान होते ही उन्हें सभी को तार देना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं है। जिनमें अन्तर मार्ग प्रदर्शन हुआ है, उन्हें वे मात्र प्रदर्शन करनेवाले कहलाते हैं। मैं ज्ञानस्वभाव से जानने में आऊँ - ऐसा हूँ। मैं भगवान को नमस्कार करता हूँ क्योंकि वे तीनलोक के पूज्य हैं इसलिये उन्हें नमन करता हूँ। उन्होंने घातिकर्म का नाश किया है इसलिये वे जगत पर अनुग्रह करनेवाले हैं। अतः तिरनेवाले आत्मा को वे ही निमित्त हो सकते हैं। इसप्रकार वे योगियों को तारने में समर्थ हैं।

भगवान शुद्ध परिणति के कर्ता हैं और पात्र जीव कों, निमित्तरूप से धर्म के करता हैं.

तथा कैसे हैं भगवान ? धर्म के कर्ता होने से जो शुद्ध स्वरूप परिणति के करनेवाले हैं। महावीर भगवान के कर्तागुण ने क्या किया ?

उनके कर्ता गुण ने अपने शुद्ध स्वभाव का कर्ता होकर केवलज्ञान प्रगट किया है इसलिये भगवान शुद्ध स्वरूप परिणति के करनेवाले हैं किन्तु वे दिव्यध्वनि-उपदेश के कर्ता नहीं हैं। परिणमित हो वह कर्ता और परिणाम-परिणमन वह कर्म-कार्य है। भगवान अपनी निर्मलता के कर्ता हैं। इसप्रकार वे अपनी शुद्ध परिणति के करनेवाले हैं। अशुद्ध उपयोग और वाणी के कंपन के भी वे कर्ता नहीं है - शुद्ध धर्म के कर्ता हैं। अन्य जो जीव शुद्ध स्वरूप परिणति करते हैं उनको निमित्तरूप से शुद्ध स्वरूप के करनेवाले कहने में आते हैं। इसप्रकार स्व-पर प्रकाशक ज्ञान है वह निमित्त को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ख्याल में रखता है। जो उपादान निमित्त दोनों का ज्ञान करता है। इसलिये भगवान साधक जीव को शुभराग के समय नमस्कार करने योग्य हैं - ऐसा कहते हैं।

जिन्हें अपनी आत्मा का भाव-भासन हुआ है, उन्हें भगवान का नाम अच्छा लगता है.

तीन लोक के गुरु, अनन्तशक्तिरूप परमेश्वरतावाले, तारनेवाले और धर्म के कर्ता ये चार विशेषण भगवान को लागू पड़ते हैं। भगवान परम पूज्य हैं, महादेवाधिदेव हैं, परमेश्वर हैं, परम-पूज्य हैं जिनका नाम ग्रहण (लेना) भी अच्छा है किन्तु यह सम्यक् दृष्टि की बात है। ज्ञान से जाना जा सकता है। मैं दर्शन-ज्ञान सामान्य स्वरूप हूँ - ऐसा निर्णय करनेवाले को भगवान का उत्तम मंगलमय नाम भी भला है। नाम निक्षेप वन्दनीय तब कहलाता है कि जब अन्तर सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ हो; उन्हें चारों निक्षेप अभेद गिनकर निश्चय वन्दन करने से भगवान का नाम भी वन्दनीय है ऐसा कहा है।

नाम को जाननेवाला ज्ञान स्व को और पर को जानता है; इसतरह ज्ञानी को ही सच्चा नय और निक्षेप होता है। नय विषयी है और निक्षेप विषय है। नय ज्ञान ग्रहण किया हो उसे भगवान का नाम निक्षेप लागू पड़ता है। नाम ग्रहण भला है पर किसे ? जिसे भाव का भासन हुआ हो उसे। 'मैं परमेश्वर समान हूँ' - ऐसे भाव भासनवाले को स्वभाव का मांगलिक होता है। ऐसे साधक को ही 'णमो वर्धमानायः' यह नाम भी मांगलिक है।

वर्तमान शासन के नायक श्री वर्धमान देव को नमस्कार.

ऐसे श्री वर्धमानदेव को प्रवर्तमान तीर्थ के नायक होने के कारण उन्हें सर्वप्रथम प्रणाम करता हूँ। किसलिये नमस्कार करता हूँ ? क्योंकि वर्तमान शासन में महावीर निमित्त हैं। चलते (प्रवर्तमान) तीर्थ के नायकपने के कारण मैं भगवान महावीर को नमस्कार करता हूँ। श्री ऋषभदेव पहले तीर्थंकर थे किन्तु वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का शासन है, इसलिये सम्यक् दर्शन-ज्ञान पूर्वक उनको नमस्कार किया है। अज्ञानी साक्षात् तीर्थंकर को नमस्कार करे तो उसमें शुभभाव हो तो पुण्य में तीर्थंकर निमित्त होते हैं। किन्तु यहाँ धर्म की बात है। पुण्य से अथवा व्यवहार से निश्चय होगा इसप्रकार राग में अटकी बुद्धिवाले को भगवान तीर्थरूप निमित्त नहीं होते क्योंकि, पराश्रय की दृष्टिवाले को मैं स्वयं तीर्थ हूँ - तिरनेवाला हूँ - ऐसा निर्णय नहीं है इसलिये उसके लिये भगवान निमित्त नहीं कहलाते। श्री अमृतचन्द्राचार्य की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

टीका अदभुत है, इसमें चौदह पूर्व का रहस्य है।

भगवान महावीर तीर्थ के नाथ हैं - नायक हैं। आत्मा का अन्य कोई नायक नहीं होता। स्वयं प्रभुता से भरा हुआ है किन्तु वह अन्य को प्रभुता देवे - ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। दृष्टि में कोई अन्य नायक नहीं है, किन्तु यहाँ पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध का ज्ञान कराते हैं। साधु, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इसप्रकार चार संघ स्वयं तिरते हैं - जो स्वयं तिरते हैं उनको भगवान निमित्त होते हैं। जिन्हें तिरना आता है उसे तिरने में पानी निमित्त होता है। इसप्रकार भावलिंगी साधु, आर्यिका, श्रावक और श्राविका को निमित्तरूप से वे तारनेवाले तारक हैं। इसलिये मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। निश्चय क्या है ? व्यवहार क्या है ? निमित्त क्या है ? महवीर भगवान कैसे हैं ? और उन्हें क्यों नमस्कार किया है ? यहाँ यह सब कथन किया गया है। प्रवर्तमान तीर्थपने के कारण महावीर भगवान को प्रथम नमस्कार किया है।

इसके पश्चात् अन्य को नमस्कार करते हैं। तीर्थंकरों तथा सिद्धों की सत्ता विशुद्ध हो गई है - मलिनता नहीं रही। जैसे सोने को अग्नि से तपाते हैं - आंच देते हैं और शुद्ध सोने को बाहर निकालते हैं; वैसे ही उत्तम स्वर्ण समान शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाव को उन्होंने प्राप्त किया है। ध्यान अग्नि से, पूर्ण शुद्धदशा प्रगट करके बाहर निकाला है - ऐसे महावीर के सिवाय भूतकाल के तीर्थंकरों को तथा अनन्तकाल में जो-जो सिद्ध हुये हैं उन सभी को नमस्कार करते हैं। देखो ! यह प्रवचनसार दिव्य ध्वनि का सार है। सभी भगवान मेरी नजर में है, इसप्रकार उन्हें उपस्थित करते हैं। वे सभी शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वरूप को प्राप्त हुये हैं इसलिये उन्हें नमस्कार करते हैं।

पाँच आचार सहित शुद्धोपयोग भूमिका प्राप्त किये हुए श्रमणों को नमस्कार.

तथा आचार्य कि जिन्होंने परम शुद्ध भूमिका प्राप्त की है, उन्हें नमस्कार।

अपने ज्ञानस्वभाव में रहते हैं वह - **ज्ञानाचार**।

निःशंक हुए हैं वह - **दर्शनाचार**।

स्वरूप की रमणता का आचार वह - **चारित्राचार**।

इच्छा का निरोध होकर ध्यान में रमते हैं वह - **तपाचार**।

स्वसामर्थ्यरूप से वीर्य - स्वभाव में ही रोका है वह - **वीर्याचार**।

ऐसे पाँच आचार सहित हैं - ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करते हैं। पाँच आचार सहित उन सभी ने परम शुद्ध उपयोग भूमिका को प्राप्त किया है। अन्य मत के साधु, साधु की श्रेणी में नहीं आते।

सर्वज्ञ द्वारा कहे गये, साधु कैसे होते हैं ?

परम शुद्ध उपयोग की भूमिका को प्राप्त किया है। देह की क्रिया तो जड़ की है उसे आत्मा प्राप्त नहीं कर सकता और महाव्रतादि के परिणाम पुण्य है। शुभाशुभ उपयोग छोड़कर स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-लीनता से जिन्होंने शुद्धोपयोगदशा को प्राप्त किया है, उन्हें जैन दर्शन में आचार्य, उपाध्याय और साधु कहा गया है। पुण्य और मन का सम्बंध छूटकर चिदानन्द भगवान आत्मा का सम्बंध हुआ है जिससे आत्मा का शुद्ध व्यापार प्रगट किया है - ऐसे साधुओं को ही यहाँ नमस्कार किया है।

श्रमण शुद्धोपयोग को साधते हैं, किन्तु
महाव्रतादि के राग को नहीं साधते.

श्री अर्हन्त को परमेश्वरता प्रगट हुई है। सिद्ध पूर्ण शुद्ध सत्तावाले हैं। सन्तों को पूर्ण शुद्ध सत्ता प्रगट नहीं हुई है, किन्तु उन्होंने शुद्ध उपयोग भूमिका प्रगट की है। उन्हें अट्ठाईस मूलगूण प्राप्त करना नहीं रहता अपितु अट्ठाईस मूलगूण के पालन का भाव सहज आ जाता है। निश्चय से वे राग का पालन नहीं करते। शुभराग तो बलपूर्वक आ जाता है। पूर्व में कहा है कि - सरागचारित्र क्रम में आ गया है। राग को लायें वह तो मिथ्यादृष्टिपना है। यहाँ तो लोगों को मुनिपने की खबर भी नहीं है। पाँच महाव्रत को मुनि नहीं लाते किन्तु छटवें गुणस्थान के क्रम में ऐसा राग आ जाता है। मैं इसप्रकार की दया का राग लाऊं - ऐसा मानना वह तो मिथ्यादृष्टिपना है। अज्ञानी उनमें फेर-फार करना मानता है किन्तु इसलिए वस्तुस्वरूप नहीं बदलता।

तीर्थंकर परमात्मा को माननेवाले साधक कैसे होते हैं ?

वे शुद्ध उपयोग को साधते हैं किन्तु अट्ठाईस मूलगुण पालन को नहीं साधते। शुभराग आ जाता है किन्तु उसे पुण्य और ज़हर मानते हैं। मूढ़ जीव शुभराग को धर्म मानते हैं इसलिए वे संसार में रखड़ते हैं। यह प्रवचनसार दो हजार बर्ष पहले लिखा गया था और इसकी टीका एक हजार वर्ष पहले हुई है। देखो ! यहाँ मुनि की बात की है। शुद्धोपयोग चौथे-पाँचवे गुणस्थान में आता है किन्तु परम शुद्धोपयोग मुनि को आता है। ऐसी भूमिका सामान्यरूप से प्राप्त की है और विशेषरूप से आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के विशेष्यों से भेदवाले हैं - उनको प्रणाम करता हूँ। इसप्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु कैसे होते हैं ? उनका भान करके-नमस्कार करते हैं। मेरी पहचान से उनकी पहचान है। जो शुभराग आया है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह व्यवहार से नमस्कार कहलाता है।

सभी पंच परमेष्ठी भगवंतों को वर्तमान कालगम्य निकट करके नमस्कार.

इसके पश्चात् इन्हीं पंच परमेष्ठियों को उन-उन व्यक्ति में व्याप्त होनेवाले अर्थात् अरिहंत की पर्याय में व्याप्त होनेवाले अरिहंत को, सिद्ध की पर्याय में व्याप्त होनेवाले सिद्ध को, आचार्य की पर्याय में व्याप्त होनेवाले आचार्य को, उपाध्याय की पर्याय में व्याप्त होनेवाले उपाध्याय को, साधु की पर्याय में व्याप्त होनेवाले साधु को - इसप्रकार सभी को नमस्कार करते हैं।

वर्तमान में इस क्षेत्र में तीर्थंकरों का आभाव है और महाविदेह क्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर विराजमान हैं। इसलिए मनुष्य क्षेत्र में प्रवर्तते तीर्थ नायको सहित वर्तमान कालगम्य करता हूँ। भूतकाल में अनन्तों हुये उन सभी को कालगम्य-वर्तमान करते हैं वर्तमान कालगोचर करते हैं। इसप्रकार सम्यक् प्रकार सहित, भान पूर्वक भक्ति का विकल्प आता है।

महाविदेह क्षेत्र में वर्तते श्री सीमन्धर आदि तीर्थंकर, मानो कि वे सभी पंच परमेष्ठी भगवान वर्तमान काल में ही मेरे सामने वर्तते हों, इसप्रकार अत्यंत भावना पूर्वक युगपद् चिंतवन करके युगपद् अर्थात् समुदायरूप से सभी को एक साथ नमस्कार करता हूँ और प्रत्येक सिद्ध व अरहन्त को व्यक्तिगत अर्थात् विशेषरूप से सम्मान करता हूँ - आराधन करता हूँ। जैसे विवाह में समस्त लड़के-लड़कियों व रिश्तेदारों को बुलाते हैं; वैसे ही यहाँ अपनी इष्ट सम्यक् आराधना के बहुमान के लिए स्वयं सभी पंच परमेष्ठियों को बुलाते हैं उनका स्मरण करते हैं। इसप्रकार यहाँ सभी को सामान्यरूप से और व्यक्तिगत - विशेषरूप से नमस्कार किया है।

मोक्षरूपी लक्ष्मी - चारित्रवन्त मुनि के कंठ में हार डालती है.

कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं मुनि हैं और चारित्र ग्रहण करता हूँ - ऐसा वर्णन करते हैं। बाह्य से नग्नदशा है। जिस चारित्र को प्रगट करना चाहते हैं वह त्रिकाली, अंतर में सत्तारूप से विद्यमान है उसका आश्रय करके चारित्र प्रगट करना चाहते हैं, इस विधि से कथन करते हैं। परम-पवित्र पूर्ण आनन्ददशारूप मोक्ष का कारण चारित्र है। आत्मा आनन्दकंद है उसका भान करके जो स्थिरता हुई वह चारित्र है। आचार्य भगवान सभी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुओं को नमस्कार करते हैं। आत्मा आनन्दकंद निर्मलानन्द स्वरूप है - ऐसा भाव जिन्होंने पर्याय में प्रगट किया है उन सभी को ज्ञान में हाजिर रखा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आचार्य कहते हैं कि - मैं पूर्ण पद को प्राप्त करने के लिये तैयार हुआ हूँ। मेरा स्वभाव विकार के कारण नहीं है। "मैं त्रिकाली शुद्ध चिदानन्द हूँ"- ऐसा अवलम्बन लेकर निर्मल रमणता प्रगट की है। मोक्षलक्ष्मी चारित्र धारण करनेवाले को वरण करती है। मोक्षलक्ष्मी का स्वयंवर मण्डप लगाया है, जिसमें सभी भगवान को एकत्रित किया है। देह से मेरा आत्मा पृथक है, मैं परमानन्द साधने को तैयार हुआ हूँ। मोक्षरूपी लक्ष्मी चारित्रवन्त को वरण करती है। स्वरूप में रमण करना वह चारित्र है। मोक्षरूपी लक्ष्मी चारित्र के कंठ में हार डालती है। अन्दर अकषाय स्थिरता है और बाह्य दिगम्बर नग्नदशा है। अभ्यंतर पूर्ण शान्ति प्रगट करना चाहते हैं। जो अंतर में है वह बाहर आता है।

जैसे लेंड़ीपीपर के प्रत्येक दाने में चौंसठ पुटि तिखास है। चौंसठ पुटि अर्थात् चौंसठ पैसा अर्थात् सोलह आने अर्थात् पूर्ण। लेंड़ीपीपर के दाने-दाने में पूर्ण तिखास और हरापन जो शक्तिरूप से है वह प्रगट होता है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। स्वभाव की सामर्थ्य सत्ता में से आती है; वैसे ही प्रत्येक आत्मा पूर्ण लक्ष्मी, ज्ञान-दर्शन, आनन्द से पूर्ण है। वर्तमान में ही अल्पज्ञता और विकार रहित ध्रुव स्वभाव है - ऐसी अन्तर सन्मुखता का भान हुआ है, उपरांत उसमें लीन होना वह - चारित्र है।

हे पंचपरमेष्ठी भगवंतों ! हमें हमारा भरोसा है तथा आपको साथ में रखा है इसलिए मैं मोक्षलक्ष्मी को निश्चित ही वरूंगा.

इस महोत्सव में कुन्दकुन्दाचार्य ने सभी भगवंतों को बुलाया है। जैसे विवाह में बड़े लोगों को साथ में लाते हैं। यदि कन्या का पिता रुपये मांगे और इन्कार करे तो बड़े लोग बीच में पड़कर समय पर लग्न करा देते हैं। हमें भी प्रतिष्ठित अर्थात् इज्जतवालों को साथ में लाना चाहिये नहीं तो कन्या नहीं जाएगी; वैसे ही प्रभु ! हमने भी स्वयंवर मंडप लगाया है। आत्मा में पूर्ण शुद्धता, शक्ति विद्यमान है। उसकी व्यक्तता पूर्ण हुई वह मोक्ष है। मोक्षलक्ष्मी का साधन-चारित्र है। जो चारित्र ग्रहण करता है उसे मोक्षलक्ष्मी वरण किये बिना नहीं रहती।

हे भगवान ! मोक्षलक्ष्मी मुझे वरण करनेवाली है। हमें हमारा भरोसा है कि - मैं पूर्णदशा को पाऊँगा और मोक्ष प्राप्त करूंगा। हमने पंच परमेष्ठी को साथ में रखा है, इसलिये मोक्षलक्ष्मी जरूर वरण करेगी। इसप्रकार जिन्होंने मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त किया है और प्राप्त करनेवाले हैं उन सभी को हाज़िर रखा है। मोक्षलक्ष्मी मेरा वरण करनेवाली है - जो निश्चित ही वरण करेगी। अंतर को निकाल दिया है। यदि मैं बाद में गिर जाउंगा तो ? कर्म का उदय आ जाएगा तो ? ये बातें बिलकुल नहीं होगी। मैं तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षलक्ष्मी को वरण करनेवाला हूँ। मेरे चारित्र के तेज की शोभा द्वारा मोक्षलक्ष्मी पीछे हटनेवाली नहीं है। ऐसे अप्रतिहत भाव का यहाँ वर्णन करते हैं। ऐसे निमित्तों को साक्षी रखा है। अनन्त सिद्ध और अर्हन्त आदि हाज़िर हो और मोक्षलक्ष्मी नहीं मिले - ऐसा नहीं हो सकता। मैं तो शक्तिवान हूँ उसके प्रयोग से मोक्षलक्ष्मी जरूर वरेगी।

प्रश्न :- तब फिर कर्म कहाँ गये ?

समाधान :- कर्म, कर्म के घर गए। स्वयं अपने से है किन्तु अनन्त पर से नहीं - ऐसा निर्णय किये बिना अस्ति सिद्ध नहीं होती। अनन्त पर-पदार्थों की अस्ति स्वयं उनसे है किन्तु मेरे से नहीं। मैं मेरे से अस्तिरूप हूँ और पर से नास्तिरूप हूँ - इसप्रकार निर्णय कर। जिस शान्ति-आनन्द को प्रगट करना चाहता है वह अन्तर में विद्यमान है - बाहर में नहीं।

हे तीर्थंकर आदि परमेष्ठी भगवान - मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर मण्डप में पधारो ! पधारो !

यहाँ कुन्दाकुन्दाचार्य पंचपरमेष्ठियों का सम्मान करते हैं। किस तरह संभावना करता हूँ ? मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर समान जो परम निग्रन्थता की दीक्षा का उत्सव (आनन्दमय प्रसंग) है उसे उचित मंगलाचरणभूत जो कृतिकर्म शास्त्रोपदिष्ट वन्दनोच्चार द्वारा संभावना करता हूँ। मेरी चारित्रदशा का आनन्दमय प्रसंग है। जैसे संसार में अंतिम अथवा पहला विवाह हो तो बहुत आनन्द मानता है; वैसे ही यहाँ भी अनन्दमय प्रसंग है। आचार्य कहते हैं कि मेरी चारित्रदशा अन्तर में है। २८ मूलगुण पालना वह चारित्र नहीं है। मेरा सत्व मेरे अन्तर में है उससे मिलने के लिये मैने मोक्ष के मण्डप की रचना की है। मोक्षरूपी लक्ष्मी यही मेरा मांगलिक है - ऐसे मंगल और उचित स्तुति द्वारा सन्मान करता हूँ, जिसमें नित्यनैमित्त क्रिया का वर्णन है ऐसे कृतिकर्मशास्त्र द्वारा उपदेश दिये हुए स्तुति वचन से सत्कार करता हूँ तथा वचन उच्चारण द्वारा आराधना करता हूँ।

जैसे मेहमानों को लेने जाते हैं और पधारो ! पधारो ! कहते हैं; उनमें भी यदि चक्रवर्ती आए तो उसे राजा लेने जाते हैं और पधारो ! पधारो ! कहकर सन्मान करते हैं। ऐसे ही भगवती जिनदीक्षारूप चारित्र आराधना के स्वयंवर मण्डप में हे तीर्थंकर भगवान पंचपरमेष्ठी पधारो ! पधारो ! जितने अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु जो वर्तमान में वर्तते हैं और पूर्व में हो गए हैं उन सभी को कालगोचर करते हैं। जैसे विवाह में कोई सगा सम्बन्धी नहीं आ सके तो उनका नाम लेकर याद करते हैं किन्तु उनकी कमी नहीं आने देते; वैसे ही बीस विरहमान तीर्थंकर भगवान यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपस्थित नहीं है फिर भी उनका तथा अन्य का नाम लेकर याद करके सभी को उपस्थित करते हैं। देखो ! मोक्षलक्ष्मी के भणकार कीदशा बताते हैं। जैसे विवाह में प्रीतिभोज करता है; वैसे ही यहाँ चारित्र के आनन्द के भोजन का स्वाद वर्तता है। अतीन्द्रिय आनन्द का धारावाही अनुभव होना उसे चारित्र कहते हैं। हमें प्रीतिभोज वर्तता है ऐसा आचार्य भगवान कहते है।

'देखो ! आचार्य भगवान राग का मैल निकालकर परमानन्ददशा को वरण करने के लिये निकले हैं।' अज्ञानी चारित्र को लोहे के चने चबाने जैसा दु:ख देनेवाला मानता है, किन्तु दु:ख को देनेवाला सुख नहीं दे सकता इसलिये अज्ञानी का माना हुआ चारित्र वह संसार का कारण है। ज्ञानी का चारित्र ही सुखदाता है। आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, उसकी एकाग्रता चारित्र है। जैसे गुड़ की बड़ी भेली में से थोड़ा गुड़ निकालते हैं; वैसे ही आत्मा में आनन्द भरा हुआ है उसमें एकाग्रता होने पर जो आनन्द निकलता है वह चारित्र है। मुनियों को नग्न रहना पड़ता है, नंगे पैर चलना पड़ता है इसप्रकार कष्टरूप मुनिपना माने यह तो महा भूल हुई। यह तो परम आनन्दमय मंगलदशा है जिसमें आत्मा का सहजानन्द स्वभाव जाग्रत हुआ है।

जैसे विवाह करने जाय तो सब श्रृंगार सजकर जाता है; वैसे ही आचार्य राग का मैंल निकालकर पूर्णानन्द को वरण करने निकले है। अप्रतिहत भाव से परमानददशा को वरण करने के लिये निकलै हैं। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता। सहजानन्द आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है किन्तु पुण्य का राग लानेवाला नहीं। देहादि की क्रिया देह के कारण होती है किन्तु मेरे कारण नहीं - ऐसे ज्ञाता मात्र स्वभाव के भान में उग्रता करके स्थिर हुए हैं वे चारित्रवंत हैं।

अपने स्वरूप में झुकना वह अद्वैत नमस्कार है
उसमें पंचपरमेष्ठी की तीव्र भक्ति निमित्त है.

अब इसप्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओं को प्रणाम तथा वन्दनोच्चार द्वारा प्रवर्तते द्वेत द्वारा मैं वन्दन करनेवाला हूँ और पंचपरमेष्ठी वन्दन करने योग्य है। इसप्रकार प्रणाम और वचन द्वारा द्वेत (दो पना) वर्तता है। पंचपरमेष्ठी व्यवहार से ध्येय है और ध्यान करनेवाला स्वयं है। स्व की ओर झुकने पर ऐसा भेद मिट जाता है। मैं वन्दन करनेवाला हूँ और पंचपरमेष्ठी वंद्य है ऐसा भेद मिट गया है। यहाँ पंचपरमेष्ठी में सच्चे साधु आ गये। इसमें आनन्दकंद में झूलनेवाले पंचपरमेष्ठी में शामिल और पंचपरमेष्ठी पद को लेनेवाले साधु सभी आ जाते हैं। पर की तरफ उग्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव हुआ इसलिये स्वभाव भाव हुआ और स्वभाव तरफ अद्वैत हुआ - यह निमित्त का कथन है। अपने स्वरूप में झुकना-ढलना यह अद्वैत नमस्कार है। स्वभाव में आल्हाद आने पर द्वेत टूटकर अद्वेत अनुभव होता है।

पंचपरमेष्ठी के प्रति अत्यंत आराध्य भाव के कारण आराध्य ऐसे पंचपरमेष्ठी भगवंतो को और आराधक ऐसे स्वयं के भेद व्यापार विलय को प्राप्त होते हैं। इसप्रकार नमस्कार में स्वसन्मुख लीनतारूप अद्वैत प्रवर्तता है। जो कि नमस्कार में (१) प्रणाम (२) वन्दनोच्चार दोनो समाहित होने से उसमें द्वेत कहा है, फिर भी तीव्र भक्ति भाव से, स्व-पर का भेद विलीन हो जाने की अपेक्षा से तो उसमें अद्वैत प्रवर्तता है। भगवान के प्रति विकल्प वर्तता है इसलिये अद्वेत वर्तता है ऐसा नहीं है। पर को नमस्कार करते हैं वह व्यवहार है ऐसा स्वयं को भाव हुआ है। चिदानन्द स्वभाव में एकरूप ढल जाना वह अभेद-अद्वैत नमस्कार है। सभी मिलकर एक आत्मा है - ऐसा इसका अर्थ नहीं समझना अपितु स्वभाव की एकता हुई वह अद्वैत नमस्कार है।

पंचपरमेष्ठी से किसकी भेंट होती है.

पंचपरमेष्ठी किस आश्रम में रहते हैं ? यह आत्मा शुद्ध आनन्द कंद है इसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता में पंचपरमेष्ठी से भेंट होती है। यह बात न्याय से सुनना चाहिये। पर के लक्ष्य से किसप्रकार विपरीतता होती है और स्वलक्ष्य से किसप्रकार विपरीतता दूर होती है यह जानना चाहिये। पंचपरमेष्ठी कहाँ मिलते हैं ? आत्मा के विशुद्ध ज्ञान दर्शन में ही वे मिलते हैं ऐसे अंतर के भान बिना पंचपरमेष्ठी से भेंट नहीं होती। जो पूर्ण ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट करना चाहता है वह पद अंतर में भरा है - ऐसा श्रद्धान और ज्ञान जिनका लक्षण है ऐसे पंचपरमेष्ठी की मोक्षार्थी को भेंट होती है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पाये हुए जीव चारित्रदशा प्राप्त करते हैं.

बाह्य से चार आश्रम कहे जाते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम,वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम। इनमें सन्यास अर्थात् चारित्र आश्रम वह कहाँ मिलता है ? स्वभाविक दर्शनज्ञान लक्षणवाले आश्रम में चारित्र मिलता है। आत्म तत्त्व में पुण्य-पाप नहीं है। जो दया-दानादि का शुभराग उठता है वह पुण्य-तत्त्व है आत्मतत्त्व नहीं। हिंसा, झूठ, चोरी आदि के अशुभभाव हैं वे भी जीव तत्त्व नहीं। शुभाशुभराग निकल जाता है इसलिए वह मूल तत्त्व नहीं है। जैसे शक्कर मिठास और सफेदी का पिण्ड है; वैसे ही आत्मा ज्ञाता-दृष्टा, पूर्ण स्वभाव का पिण्ड है। शुद्धात्म द्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन ज्ञान प्राप्त करे वह आश्रम शरणरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्रदशा, सम्यग्दर्शन ज्ञान बिना नहीं होती। मात्र नग्न दिगम्बर होने से चारित्र नहीं होता।

'बुद्धि बिना ना बाबा थया भव सागर मा डूबी जुआ।'

बाह्य वेश में चारित्र नहीं है। पंचपरमेष्ठी कब प्राप्त होते हैं ? आत्मा एक समय में पूर्ण ज्ञाता-दृष्टा है उसकी प्रतीति और ज्ञान लक्षणवाला सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान जिन्होंने प्राप्त किया है उन्हें चारित्र होता है, अन्य को चारित्र का कोई प्रकार नहीं होता।

धर्म वस्तु का स्वभाव है। आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसे आत्मा का सम्यग्दर्शन और ज्ञान आश्रम का लक्षण है। ऐसे आश्रम में एकाग्रतारूप गमन करे तो चारित्रदशा प्रगट होती है। २८ मूलगुणों का पालन करे, नग्न मुनि का वेश धारण करे तो भी इतने मात्र से चारित्र नहीं होता। जैसे भूमि के बिना झाड़ नहीं ऊगता; वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता।

चारित्र अर्थात् चरना; कहाँ, देह की क्रिया में ? पुण्य-पाप में ?

नहीं। जैसे जहाँ घांस होती है वहाँ पशुओं को चरने ले जाते हैं किन्तु रेती के ढ़ेर में नहीं। वैसे ही आत्मा पूर्ण ज्ञाता दृष्टा है उसमें श्रद्धा-ज्ञान व एकाग्रतारूप आचरण से वह पुष्ट होता है। शरीर की क्रिया और शुभराग से आत्मा कीदशा पुष्ट नहीं होती किन्तु सूख जाती है। पुण्य-पाप इसका स्वरूप नहीं। ऐसे ज्ञानानन्दमय स्वभाव की प्रतीति करे और अंतर में झुके तो अतीन्द्रिय सुख शान्ति का माल प्राप्त होता है और ऐसी अंतर में रमणता होने से ही चारित्र होता है।

पूर्ण वीतरागदशा न हो तबतक मुनि को महाव्रत के परिणाम आते हैं किन्तु वे कषायकण है.

अब यहाँ चारित्र की बात करते हैं। स्वभाविक दर्शनज्ञान की प्रतीति हुई है किन्तु बीच में राग आ जाता है। मैं देखकर चलूं, विचार करके बोलूं, २८ मूलगुण पालन करूं - ऐसा कषाय-कण जो मुनिदशा में छठवें गुणस्थान में आता है वह भी कषाय है - रोग है किन्तु धर्म नहीं है। यहाँ छठवें गुणस्थान की बात चलती है। कषाय कण धर्म नहीं है। व्यवहार धर्म अर्थात् वास्तव में जो धर्म नहीं है। छठवें गुणस्थान में ऐसा ही राग निमित्त है इसलिए उसमें व्यवहार धर्म का आरोप आता है।

"व्यवहारनय कहता है - वैसा वस्तु स्वरूप नहीं है किन्तु निमित्त आदि का ज्ञान कराने की अपेक्षा से यह उपचार किया है।" मुख्यरूप से तो आत्मा में स्वभाव सन्मुखदशा वर्तती है किन्तु जो अल्प राग आता है उसे आश्रय करने योग्य नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानते। निर्दोष आहार लूं - ऐसा जो राग आता है वह भी शुभराग है - कषाय है।

अकेला नग्न हो जाय उनकी यहाँ बात नहीं है। आत्मा और शरीर दो कहे और एक दूसरे की, एक दूसरे में नास्ति नहीं माने, तो उसने दो तत्त्व पृथक-स्वतंत्र नहीं माने। स्वभाव में विभाव नहीं है और विभाव, त्रिकाली स्वभाव में नहीं है, इसप्रकार अनेकान्त माने बिना विभाव और स्वभाव की पृथकता सिद्ध नहीं होती। दर्शन और ज्ञानस्वरूप आत्मा है। पाँच महाव्रत का रागरूपी कण उठता है वह भी आत्मा नहीं है। जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव-बन्ध, संवर-निर्जरा, मोक्ष ये नौ-तत्त्व हैं। महाव्रत का विकल्प पुण्य अथवा आश्रव तत्त्व है। पुण्य-पाप आत्मा नहीं है - ऐसी प्रतीति है। अहिंसा, सत्य, ब्रम्हचर्य और अचौर्य और निष्परिग्रहरूप महाव्रत है वह भी राग है - वृत्तियों का तूफान है। ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में विभाव का अभाव है।

जबतक वीतराग नहीं हुआ तबतक तक ऐसा मंद कषायरूप राग आता है; जिसे कषायकण कहते हैं। मुनिदशा में अनन्तानुबंधी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान नाम की तीन कषाय चौकड़ी का अभाव हुआ है, अल्प संज्वलन कषाय कण बाकी है जो पुण्य का कारण है। २८ मूलगुण और शुक्ललेश्या पुण्य का कारण है उसका भी अभाव करके मुनि, मोक्षदशा प्राप्त करते हैं; इसलिये उसका अभाव करनेवाले को, शुभराग परम्परा से मोक्ष का उपचार मात्र कारण कहा है, किन्तु "मिथ्यादृष्टि का शुभराग तो परम्परा से सर्व अनर्थ का कारण है।" इसप्रकार पंचास्तिकाय शास्त्र में श्री जयसेनाचार्य ने टीका में कहा है।

जहाँ तक मुनि को पूर्ण अभेद का अवलम्बन नहीं है वहाँ तक प्रत्याख्यान, सामायिक, वन्दन आदि का राग आता है किन्तु वह आत्मा का स्वभाव नहीं हैक्योंकि वह कषायकण है - पुण्य बन्ध का कारण है। स्वभाव की प्राप्ति का किंचित भी कारण नहीं। तब भी ऐसा शुभराग बीच में आ जाता है अत: उसका ज्ञान कराया है।

मुनि को चारित्र गुण के क्रम में शुभराग आ जाता है किन्तु वे शुभराग को नहीं लाते.

ऐसा सराग चारित्र क्रम में आ गया है। मैं अरागी, निर्मोही, ज्ञाता-दृष्टा स्वभावरूप हूँ - ऐसी दृष्टि है। वर्तमान में तीन जाति की कषाय का अभाव हुआ है किन्तु अल्प कषाय शेष है। जैसे लेंड़ीपीपर में पचास पुटि तिखास व्यक्त होने पर थोड़ी कचास और थोड़ी तिखास का भाग शेष रहता है; वैसे ही आत्मा स्वयं स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन, आनन्दवाला है, उसमें आंशिक निर्मलता प्रगट की है और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्ण व्यक्त करने का अभिलाषी हूँ , किन्तु जबतक पूर्णता न हो तबतक भूमिका अनुसार ऐसा राग उठता (आता) है। विचारकर बोलूं आदि पाँच समिति पालूं, यह जीव न मरे इत्यादि प्रकार के शुभराग आते हैं जो पुण्य बन्ध का कारण है। उनके होने पर भी वे स्वभाव की प्राप्ति के किंचित भी कारण नहीं है। मुझे क्रम में सराग चारित्र आ गया है। छटवें गुणस्थान के क्रम में इसप्रकार का राग आ गया है वह उनके काल क्रम में आ गया है, इसमें महासिद्धांत है।

जिस समय, जो पर्याय आनेवाली है वही आती है - ऐसा जिसने स्वद्रव्य सन्मुख होकर ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव सन्मुख रहकर निर्णय किया है उसे ऐसा राग, क्रम में ऐसा आता है जिसे निमित्त कहा जाता है, किन्तु जो पाँच महाव्रत के राग को लाना चाहता है वह मिथ्यादृष्टि होने से उसका शुभराग चारित्र भूमिका का निमित्त नहीं कहलाता।

आत्मा तो सदा ही जगत के पदार्थों को जानने देखनेवाला है। जो भी राग होता है उसे रागपने जाननेवाला है। भूमिका के योग्य राग आता है। मुनिदशा में अट्ठाईस मूलगुण पालन के राग के आने का काल है फिर भी जो खींचतान करके राग लाना चाहता है उसकी राग के साथ में एकता बुद्धि हुई अत: वह पर्याय बुद्धि - मिथ्यादृष्टि है। गुरु को भी भूमिका के क्रम में राग आ जाता है किन्तु शिष्य के कारण से राग नहीं आया है।

(श्रोता-) हमें तो शुभराग करना पड़ेगा न ?

ऐसा माननेवाले की दृष्टि राग के ऊपर है। जिससे वह सहज ज्ञान-दर्शनवाले आत्मा की प्रतीति से वह च्युत होता है। ज्ञानानन्द स्वभाव की एकाग्रता ही मुनिधर्म है किन्तु पंच महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुण वह मुनिधर्म नहीं अपितु कषाय की कणिका है। जगत दृश्य है-ज्ञेय है और मैं दृष्टा-ज्ञाता हूँ किन्तु राग को लानेवाला मैं नहीं हूँ- ऐसे भान बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है उन्हें राग को लाने की बुद्धि नहीं होती फिर भी भूमिका अनुसार राग, क्रम में आ जाता है।

त्रिलोकीनाथ द्वारा कहा गया मार्ग बाह्य दृष्टिवाला सुनता ही नहीं। सुनने पर भी सत्य सुनने में नहीं आया। जो कषाय को लाना चाहते हैं वे तो मिथ्यादृष्टि है। धर्मात्मा को क्रम में जो राग आ जाता है वह तो चारित्र का दोष है किन्तु श्रद्धा का दोष नहीं। 'राग को लाना और राग का आ जाना' इसमें अंतर है। जहाँ छटवें गुणस्थान के चारित्र का स्वकाल है वहाँ इतना (अमुक)दोष है, उसे वे दोषरूप जानते हैं। पंच महाव्रत को लाऊँ-पालूँ - ऐसी उसमें उपादेय बुद्धि नहीं होती। पहले से ही स्वभाव सन्मुख दृष्टिवंत को भूमिकायोग्य क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय है किन्तु उनके क्रम को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बदलने का नहीं फिर भी वहाँ ऐसा ही शुभराग निमित्तरूप है इसलिए वे पंच महाव्रत का पालन करते हैं - ऐसा व्यवहारनय का कथन है।

व्यवहार अर्थात् 'ऐसा नहीं है' (अेम नथी)।

निश्चय कहता है कि मुनि राग को नहीं पालते किन्तु भूमिका में राग आ जाता है। सहचर जानकर उसे महाव्रत का पालन कहते हैं - ऐसा कहने में आता है। मुनि तो उसे निमित्तरूप-ज्ञेयरूप जानते हैं।

आत्मा के सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना चारित्र नहीं होता.

श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रतिज्ञा करते हैं कि - मैं चारित्र अंगीकार करता हूँ। ऐसे चारित्र की यहाँ बात चलती है। आत्मा की सम्यक् प्रकार से पहचान के बिना - राग की मंदता करे तो पुण्य बंधेगा किन्तु उससे संसार का अन्त नहीं होता। मुनि कहते हैं कि आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है - ऐसा भान और रमणता होने पर भी पूर्ण वीतराग न हो तबतक अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, व्रत का राग आता है वह पुण्य बन्ध का कारण है किन्तु धर्म नहीं। वास्तव में, अन्तरंग निर्मल स्वभाव का आश्रय, निर्विकल्प प्रतीति, ज्ञान और रमणता ही धर्म है और वही मोक्षमार्ग है किन्तु देह की क्रिया और पुण्य का विकल्प धर्म नहीं है। आत्मज्ञान बिना कभी भी धर्म नहीं होता।

लोग देखा-देखी बरसी तप करते हैं उसमें राग की मंदता हो तो पुण्य होता है किन्तु पुण्य से धर्म मानना वह तो मिथ्यात्व है। आहार-पानी नहीं लेना अकामनिर्जरा का कारण नहीं है किन्तु राग की मंदता हो तो पुण्य बन्ध होता है। वहाँ मंद कषाय हो तो अकामनिर्जरा है किन्तु धर्म तो है ही नहीं। उसमें भी लोभ आसक्ति की तीव्रता न हो तो ही पुण्य है। एक सैकेण्ड के असंख्यातवें भाग में पूर्ण ज्ञाता-दृष्टा हूँ - ऐसी प्रतीति, ज्ञान और लीनता ही धर्म है। अभी तो यहाँ बहुत गड़बड़ हो गई है; दुनिया तो बाहर में धर्म मानती है।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि - 'मैं अनादि-अनन्त ध्रुव स्वभावी हूँ, मेरे में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। उसकी अन्तर्मुखता हुई - दृष्टि सम्यक् हुई, उसके साथ सम्यक् ज्ञान हुआ पश्चात् अन्तर में लीनता का होना वह चारित्र है। सत्य-असत्य के दो पड़खों के भेद को जाने बिना अथवा भेदज्ञान बिना अज्ञानी, खिचड़ी (मिलावट) करता है। देह की क्रिया भिन्न है, पुण्य भिन्न है और ज्ञानानन्द स्वभाव भिन्न है - ऐसे भेदज्ञान बिना सच्ची प्ररूपणा नहीं हो सकती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन बिना कभी भी चारित्र नहीं होता; इसलिये अज्ञानी को चारित्र नहीं होता। अज्ञानी के व्रत-तप सभी बालव्रत-बालतप हैं - जंगल में रुदण (रोन के) समान है। आत्मा अनादि ध्रुव है, जड़ से पृथक है; जड़ की क्रिया आत्मा से नहीं होती। पुण्य-पाप विकार है जो शाँति के लिये बेकार है।

छटवें गुणस्थान में शुभराग आ जाता है उसे आत्मस्थिरता द्वारा छोड़ते हैं.

यहाँ आचार्य भगवान कहते हैं कि - मेरा आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है उसका आश्रय करके, मैं चारित्र को प्राप्त करता हूँ किन्तु वर्तमान में राग का कण (भाव) उत्पन्न होता है। अट्ठाईस मूलगुण पालन का भाव वह शुभराग है। मुनि को नग्न दिगम्बरदशा होती है किन्तु वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना कभी भी नहीं होता। मेरा स्वभाव सच्चिदानन्द स्वरूप है - ऐसी दृष्टि तथा ज्ञान तो उन्हें हुआ है किन्तु लीनता थोड़ी हुई है और थोड़ा कषायांस बाकी है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की वृत्ति पुण्यबंध का कारण है किन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं है। ऐसा सराग चारित्र क्रम में आ गया है। मेरी भूमिका मे क्रमबद्ध अट्ठाईस मूलगुण पालन का राग आ गया है। गुणस्थान आरोहण के क्रम में जबर्दस्ती से अर्थात् चारित्र मोह के मंद उदय से आ गया है, किन्तु वह धर्म नहीं है अपितु धर्म की अधूरी भूमिका में ऐसा निमित्त होता है वह बताया है; फिर भी महाव्रत स्वयं धर्म नहीं है।

स्वभाव के भान सहित राग की उत्पत्ति नहीं हुई और अंतरस्थिरता हुई है वही अहिंसा और ध्यान है.

कैसा है चारित्र ? हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का पाप परिणाम तीव्रकषाय क्लेष है और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निष्परिग्रह का पुण्य परिणाम मंद कषायरूप क्लेष है। इसतरह दोनों ही कषाय-क्लेषरूपी कलंक है। दुनिया जिसे धर्म मानती है ऐसा पाँच महाव्रत का परिणाम भी कलंक है और जो। आत्मस्वभाव के भान पूर्वक स्थिरता होने पर राग की उत्पत्ति नहीं हुई वही वास्तव में अहिंसा है। उसमें पर को नहीं मारना - ऐसे राग की भी उत्पत्ति नहीं हुई। स्वभाव में रहना वही वास्तव में अहिंसा है। पर की दया पालना वह व्यवहार से दया है परन्तु निश्चय से तो वह हिंसा ही है।

गाय का बाड़ा जलता हो तो उन्हें बचाने का भाव अथवा क्षुधा-तृषावंत प्राणीयों को भोजन-पानी देने का भाव वह पुण्य है - पाप नहीं। कोई मतवाला जीव उसे पाप कहता है; पुण्य को पाप माने वह मिथ्यादृष्टि है इसीतरह जो पुण्य को धर्म माने वह भी खोटा है। दान करने पर राग घटे तो वह - पण्य है। दया धर्म का मूल है अर्थात् स्व

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सन्मुखता के प्रमाण में राग की उत्पत्ति नहीं हुई वही दया - धर्म का मूल है। पर की दया का विकल्प वह शुभराग-पुण्य है, वह व्यवहार दया है किन्तु वहवास्तविक दया नहीं है। अहिंसा स्वभाव के साथ दया का विकल्प निमित्त देखकर उसे व्यवहार से दया कहा है किन्तु वहवास्तव में दया नहीं है।

महाव्रतादि के कषायक्लेश से भिन्न, समता स्वरूप वीतराग चारित्र है मुक्ति का कारण है.

यहाँ आचार्य कहते हैं कि - जो व्रत परिणाम आते हैं उन्हें मैं कलंक समझता हूँ क्योंकि कषाय भाव तो बन्ध का ही कारण है। निष्कलंक-निर्मलानन्द का कारण तो वीतराग भाव ही है। स्वभाव सन्मुख लीनता का होना ही मुक्ति का कारण है। साधकदशा में जो भी राग आता है वह मुक्ति का कारण नहीं किन्तु पुण्यबंध का कारण है। मुनि पर्याय में महाव्रत का विकल्प, अदन्त धोवन, खड़े-खड़े आहार लेना - ऐसा जो विकल्प आता है वह राग भी कलंक है। मेरा वीतराग चारित्र उससे भिन्न है। ऐसा वीतराग चारित्र ही निर्वाण की प्राप्ति का कारण है किन्तु बीच में जो राग आता है वह समता नहीं है। वीतरागदशा ही मोक्ष का कारण है और वही साम्य भाव है। महाव्रत पुण्यबंध का कारण कहा है और वीतराग चारित्र निर्वाण का कारण है।

अच्छा कुटुम्ब मिले, पैसा मिले, अच्छा शरीर मिले तो वहाँ अज्ञानी अभिमान करता है। ऐसी अनुकुलता-प्रतिकूलता के संयोग जीव को अनन्तबार मिले हैं किन्तु संयोग से पार (रहित) और जिस कारण से संयोग मिले - ऐसे शुभाशुभभाव से भिन्न आत्मा की पहचान नहीं की। आचार्य कहते हैं नग्नपना चारित्र नहीं, अट्ठाईस मूल गुण का पालन करना वह भी चारित्र नहीं है अपितु स्वभाव में स्थिर होना ही चारित्र है।

मैं उस साम्यभाव को प्राप्त करता हूँ। कर्म मंद हो अथवा गुरु की कृपा हो तो साम्यभाव को प्राप्त करता हूँ - ऐसा यहाँ नहीं कहा किन्तु स्वभाव के पुरुषार्थ से साम्यभाव प्राप्त करता हूँ यह कहा है।

आचार्य सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र की एकाग्रतारूप रहने की प्रतिज्ञा करते हैं.

अब प्रतिज्ञा की बात करते हैं। मैं सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र इन तीन की एक स्वरूप एकाग्रता करके - ऐसे मोक्षमार्ग का आश्रय करता हूँ। देखो! यह मोक्ष मार्ग है। स्वयं का आत्मा देह-मन-वाणी से भिन्न होकर, पुण्य-पाप को छोड़कर, ज्ञान में लीन हो उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। जो महाव्रत के परिणाम आते हैं उसमें एकाग्रता नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; क्योंकि उसमें तो उपयोग खण्ड-खण्ड होता है। मैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की एकस्वरूप एकाग्रता का अवलम्बन लेता हूँ।

मैं कर्ता हूँ। स्वतंत्रपने करे वह कर्ता होता है और जो कर्ता का इष्ट है वह कार्य है। मैं कर्ता द्वारा होनेवाला जो स्वभाव सन्मुख समतारूप कार्य है वह मेरा कर्म है, किन्तु जो पुण्य का परिणाम है वह मेरा कार्य नहीं है, और मैं देह का कार्य भी नहीं करता। जगत का कार्य जो जगत से होता है। कमजोरी से होनेवाले पुण्य के परिणाम भी स्वभाव दृष्टि में - ज्ञाता का ज्ञेय है। मैं पुण्य को छोड़कर स्वभाव में एकाग्र होता हूँ - मैं निज परमार्थ का अवलम्बन लेता हूँ - यह प्रतिज्ञा का अर्थ है।

यहाँ शास्त्र लिखने की प्रतिज्ञा नहीं कही अपितु स्वभाव में वीतरागता हुई वह प्रतीज्ञा है। इसप्रकार श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य ने साक्षात् मोक्षमार्ग का अंगीकार किया है। सम्यक् दर्शन-ज्ञान हो वहाँ तक साक्षात् मोक्षमार्ग नहीं है अपितु सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र इसप्रकार तीन की एकता ही मोक्षमार्ग है। अज्ञानी जीव, पुण्य-पाप के परिणाम करके अर्थात् बन्ध का उपाय करके उसे छूटने का उपाय मानते हैं। मैं कौन हूँ? पृथक पदार्थ क्या है? और विकार क्या है? उनके यथार्थ ज्ञान के बिना छूटने का उपाय नहीं होता।

अहो ! देव-गुरु- धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किस प्रकार होगा ? इसलिये बहुत कहने से क्या ! सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिक का त्याग न करने से मिथ्यात्वभाव बहुत पुष्ट होता है और वर्तमान में यहाँ इनकी प्रवृत्ति विशेष पायी जाती है; इसलिये इनका निषेधरूप निरूपण किया है। उसे जानकर मिथ्यात्वभाव छोड़कर अपना कल्याण करो !

- श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ६

अथायमेव वीतरागसरागचारित्रयोरिष्टानिष्टफलत्वेनोपादेयहेयत्वं विवेचयति -

संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविह वेहिं ।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो ॥६॥

अब वे ही (कुन्दकुन्दाचार्य देव) वीतराग चारित्र इष्ट फलवाला है इसलिये उसकी उपादेयता और सराग चारित्र अनिष्टफलवाला है इसलिये उसकी हेयता का विवेचन करते हैं : -

वह दर्श ज्ञान प्रधान चारित्र हो यदि चैतन्य को ।
सुर-असुर और नरेन्द्र वैभव हो तथा निर्वाण हो ॥६॥

गाथार्थ :- जीव को दर्शन ज्ञान प्रधान चारित्र से देवेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्र के वैभवों के साथ निर्वाण प्राप्त होता है। (जीव को सराग चारत्रि से देवेन्द्र इत्यादि के वैभवों की और वीतराग चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है।)

टीका :- दर्शनज्ञानप्रधान चारित्र से यदि वह (चारित्र) वीतराग हो तो मोक्ष प्राप्त होता है; और उससे ही, यदि वह सराग हो तो देवेंद्र-असुरेन्द्र-नरेन्द्र के वैभवक्लेशरूप बन्ध की प्राप्ति होती है। इसलिये मुमुक्षुओं को इष्ट फलवाला होने से वीतराग चारित्र ग्रहण करने योग्य (उपादेय) है, और अनिष्ठ फलवाला होने से सराग चारित्र त्यागने योग्य (हेय) है ॥६॥

* * *

गाथा ६ पर प्रवचन

वीतरागता के फल में मोक्ष है और शुभराग के फल में स्वर्गादि की प्राप्ति है.

जिसमें सम्यक् दर्शन-ज्ञान प्रधान है उसे चारित्र कहते हैं - ऐसी तीनों ही काल चारित्र की एक ही रीति है। जैसे घी, आटा, शक्कर का हलवा बनता है, लाखों वर्ष पहले भी इन तीन चीज का हलवा बनता था, अभी भी इन तीन चीज का ही बनता है और भविष्य में भी इन तीन चीजों का ही हलवा बनेगा। वैसे ही सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान- सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता यह एक ही प्रकार का मोक्षमार्ग है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसने आत्मा के स्वभाव को ग्रहण कर लिया तथा स्वभाव को ज्ञान में ज्ञेय कर लिया है उसे ही चारित्र होता है। यदि वह चारित्र - राग के अभावरूप हो तो मोक्ष की प्राप्ति होती है और यदि उस चारित्र के अंश में शुभराग हो तो पुण्य से स्वर्ग में देवेन्द्र होता है। स्वभाव की लीनता से संवर - निर्जरा होती है।

सम्यग्दृष्टि असुरेन्द्र में नहीं जाते किन्तु कोई विराधक हो जाये तो वहाँ भी चला जाता है तथा शुभराग के फल में नरेंद्र होता है, इसप्रकार उसे ऊर्ध्व-अधो और मनुष्य का वैभव मिलता है। उसके फल में स्त्री, कुटुम्ब, शरीरादि मिलते हैं किन्तु उससे आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। पूर्व के पुण्य के फल में संयोग मिलते हैं - वैभव के लक्ष्य से अशुभराग होता है और उससे पाप बन्ध होता है। सच्चा भान होने पर भी जितना राग रहता है उससे - वैभव से क्लेशरूप बन्ध प्राप्त होता है किन्तु स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती।

अज्ञानी संयोग में सुख मानकर उनकी भावना करता है किन्तु उसमें सुख नहीं है.

श्रोता :- हमें तो वैभव क्लेश चाहिए।

समाधान :- जिन्हें ऐसी इच्छा है उन्हें ऊँचा पुण्य भी नहीं बंधता क्योंकि उन्हें पाप की इच्छा है। जैसे जहाँ १०० खंडी अनाज होता है वहाँ घांस भी ऊगती है किन्तु मनुष्य अनाज खाता है और पशु घांस खाते हैं। स्वभाव की एकाग्रता अनाज के समान है। ज्ञानी को अल्प राग आ जाता है। जो पवित्रता प्रगट करना चाहते हैं उस पवित्रता का भंडार आत्मा है, यदि उसे सम्यग्ज्ञान की कुंजी से खोले तो शाँति मिलती है और जितना राग शेष है उसके फल में पैसा मिलता है।

भू-स्वामी, लक्ष्मीपति, जड़-धूल का पति कहा जाता है किन्तु पर पदार्थ का पति (स्वामी) आत्मा नहीं हो सकता किन्तु अज्ञान से मानता है।वास्तव में तो आत्मा ज्ञानस्वभाव का पति है। 'मैं शुद्ध चैतन्य स्वभाव हूँ' - ऐसा भान और लीनता मोक्ष का कारण है, किन्तु वीतरागदशा न हो तबतक अल्प राग आता है उससे बन्ध होता है व पैसा आदि मिलता है।

व्यवहार से जिसे सुख कहा जाता है वह वास्तव में सुख नहीं है। जैसे बालक लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहता है किन्तु वह घोड़ा बैठने के काम में नहीं आता; वैसे ही अज्ञानी राग को सुख माने किन्तु वह लकड़ी के घोड़े के समान ही है वह वस्तविक सुख नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इष्ट फलवाला वीतराग चारित्र उपादेय है और अनिष्ट फलवाला महाव्रतादि का परिणाम हेय है.

भगवान आत्मा पवित्र है, पुण्य-पाप अपवित्र है, मेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द है - ऐसे इच्छुक जीवों के लिये जिसका इष्टफल है - ऐसा वीतराग चारित्र ग्रहण करने योग्य है, सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र उपादेय है और व्यवहार चारित्र अनिष्टफलवाला होने से छोड़ने योग्य है - ऐसी सच्ची श्रद्धा करे तो ही शुद्धता में से शुद्धता आती है। पवित्रता का भंडार ध्रुव स्वभाव में लीनता ही एकमात्र मोक्ष का कारण है और व्यवहार धर्म छोड़ने लायक है। साधक दशा में आने पर भी वह आश्रय करने योग्य नहीं है अपितु एक निश्चय धर्म ही अंगीकार करने योग्य है। द्रव्य-गुण-पर्याय, विकार व संयोग के ज्ञान बिना धर्म नहीं होगा।

उपदेश तो जड़ की क्रिया है। आत्मा में से उपदेश नहीं निकलता। उपदेश का विकल्प उठता है वह पुण्य है - धर्म नहीं। निचलीदशा में शुभराग आ जाता है जो अनिष्टफलवाला है। पाँच महाव्रतादि के परिणाम जो मुनिराज को आते हैं वे भी अनिष्ट फलवाले हैं। परिग्रह में अनासक्ति के विकल्प का उठना शुभराग है जो अनिष्ट फलवाला है।

संयोग पृथक है इसलिये ज्ञेय है, विभाव विपरीत है इसलिये हेय है और स्वभाव सामर्थ्यवान है इसलिये उपादेय है.

कोई कहता है कि हमें तो अनासक्ति से पर का कार्य करना चाहिये ?

समाधान :- पर का कार्य तू किसी भी प्रकार से नहीं कर सकता। पर का काम कर सकता हूँ - ऐसी मान्यता ही मिथ्यादर्शन की तीव्र आसक्ति है।

ज्ञान किसे कहना ?

यथार्थ वस्तु समझे वह ज्ञान है। जैसे शक्कर को शक्कर जाने वह सच्चा ज्ञान है किन्तु उसे विष्ठा जाने तो वह खोटा ज्ञान है। वैसे ही संयोग को पृथक जानना, विभाव को विपरीत जानना, स्वभाव को सामर्थ्यवान जानना वही सम्यग्ज्ञान है - ऐसे सम्यग्ज्ञान पूर्वक, सत्य का स्थापन करने की कथन शैली आ जाए वह सत्य कथन है।

दिगम्बर मुनिराज जंगल में रहते हैं। महाविदेह क्षेत्र में त्रिलोकीनाथ विराजमान है वहाँ भी मुनिदशा एक ही प्रकार की होती है। आचार्य कहते हैं कि - आत्मा में रहना वह मोक्ष का कारण है और जितना भी राग आता है, वह सभी छोड़ने योग्य हैं।

कोई कहता है कि - आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करना वह तो ठीक है और राग भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ठीक है - यदि कोई ऐसा माने तो उसने दोनों को ठीक माना - दोनों में समान अस्ति मानी अत: यह तो एकान्त हुआ। जबकि वीतराग भाव एक ही ठीक है और किसी भी प्रकार का राग जरा (थोड़ा) भी ठीक नहीं है - ऐसा अनेकान्त है जो वह नहीं समझता। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मलदशा वह अरागी परिणाम है और महाव्रत के परिणाम वह राग परिणाम है; ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं इसलिये दोनों को ठीक नहीं माना जा सकता। उनमें अरागी परिणाम उपादेय है और राग परिणाम सर्व प्रकार से हेय है - ऐसा माने तो यथार्थ है किन्तु दोनों को उपादेय माने - समान माने तो वह यथार्थ नहीं है। महाव्रत का परिणाम निमित्त है व सहचर है उसे मात्र जानने योग्यरूप व्यवहार से उपादेय कहा है, किन्तु निश्चय से वह उपादेय नहीं है।

राग हेय है, शरीर-मन-वाणी की क्रिया ज्ञेय है, स्वभाव सन्मुखदशा होकर जो अरागी परिणाम होता है वह उपादेय है, इसप्रकार जिसे हेय-ज्ञेय-उपादेय इन तीन की खबर नहीं वह - मूढ़ है। आहार पानी को मैं ग्रहण कर सकता हूँ अथवा त्याग कर सकता हूँ - ऐसा मेरा स्वरूप ही नहीं है वे तो ज्ञेय हैं तथा उनके लक्ष्य से राग की मंदता होती है वह हेय है और जो स्वभाव सन्मुखदशा होती है वह - उपादेय है। इसप्रकार तीनों को जानना चाहिए।

धर्म करनेवाले जीव को ज्ञेय-हेय और उपादेय तत्त्व का निर्णय करना चाहिए.

कहा भी जाता है कि दाने-दाने पर खानेवाले का नाम है। जिस परमाणु का संयोग जिस समय, जिसे, जैसा आने का हो, उसे वैसा आता ही है। वह रजिस्टर की छाप है। कोई नया कुछ भी नहीं कर सकता अर्थात् कोई किसी में भी फेरफार करने में समर्थ नहीं है। चाय-पानी, आईस्क्रीम, अनाज आदि जिनके पास आना हो वह आनेवाला ही है - ऐसा निर्णय होना चाहिए। संयोग ज्ञेय हैं और पुण्य-पाप के जो परिणाम होते हैं वे हेय है। पुण्य-पाप विभाव हैं जो क्षणिक होने से बदल जाते हैं किन्तु आत्मा नाश को प्राप्त नहीं होता इसलिए त्रिकाल ज्ञायक स्वभाव ही उपादेय है।

निमित्त ज्ञेय, विभाव हेय और त्रिकाल स्वभाव उपादेय है - ऐसे निर्णय बिना धर्म नहीं होता। संसार में सब निर्णय करता है। आम लेने जाने पर सभी खबर रखता है, दसरुपये के बदलें बारहरुपये का ले आवे तो - पिताजी पूछेंगे, कैसे ठगाया ? इसलिए परीक्षा करता है। व्यापार के लिए सभी पूछताछ करता है किन्तु धर्म में विपरीतता होने पर क्या अपार नुकसान हो जायेगा, उसका समाज में कोई पुछनेवाला नहीं है। तेरा आत्मा अनादि अनन्त है। तू कहाँ जाएगा ! तेरी कोई खबर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लेता है ? इन बातों पर विचार तो कर।

मुनि को आत्मा के भान सहित वीतराग भाव वर्तता है वही धर्म का कारण है; इसलिए वह अंगीकार करने योग्य है। सराग भाव हेय है - अनिष्ट फलवाला है; इसलिए वह छोड़ने योग्य है।

वीतरागता का फल मोक्ष है इसलिये उपादेय है और सराग चारित्र का फल अनिष्ठ है इसलिये वह छोड़ने योग्य है.

चारित्र के दो प्रकार है - एक सराग चारित्र और एक वीतराग चारित्र। मुमुक्षुओं को इष्ट फलवाला होने से वीतराग चारित्र ग्रहण करने योग्य अर्थात उपादेय है। आत्मा निर्मलानन्द स्वरूप है उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके विकल्प रहितपने - स्वभाव में लीन होना वह चरित्र है; यह चारित्र ग्रहण करने योग्य है। ऐसे चारित्र का फल मोक्ष है। मुनिदशा में पाँच महाव्रत का परिणाम आता है।

मुनि-सन्त नग्न दिगम्बर होते हैं; उन्हें अन्तर में तो परिपूर्ण सत्यार्थ भान हुआ है और दूसरे प्राणियों को नहीं मारना ऐसा राग उठा है जिसका फल पुण्य है जो अनिष्ठ है। पुण्य से स्वर्ग में वैभव मिलता है किन्तु उससे आत्मा को लाभ नहीं मिलता। आत्मार्थी को एक वीतराग चारित्र ही उपादेय है, क्योंकि उसका फल मुक्ति है और सराग चारित्र का फल पुण्य है-ज़हर है इसलिये वह शाँति को लूटता है। आत्मा के आनन्द स्वभाव की दृष्टि करके आनन्द में लीन हो वह वीतराग चारित्र है। राग आत्मा की विपरीत अवस्था है-ज़हर है-हेय है किन्तु उपादेय नहीं।

दोनों नयों के विषय में विरोध है। उनमें एक निश्चयनय शुद्ध चिदानन्द स्वरूप को अंगीकार करता है और दूसरा व्यवहारनय दया-दान, सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि के राग को जानता है। इसप्रकार दो नय का विषय विरोध है। एक अमृत है-एक ज़हर है, निश्चय वह धर्म है-व्यवहार वह अधर्म है, निश्चय उपादेय है और व्यवहार हेय है।

''सिद्ध समान सदा पद मेरो'' - ऐसी दृष्टिपूर्वक ज्ञान में लीनता का जो आनन्द आता है वह चारित्र है और जितनी अस्थिरता होती है, पाँच महाव्रत का परिणाम आता है उसका फल ज़हर है किन्तु उस भूमिका के राग को निमित्तपने सहचर जानकर उसके ऊपर सराग चारित्र का आरोप आता है किन्तु वह चारित्र नहीं है अपितु शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव में लीनता ही चारित्र है। स्वभाव के आश्रय से चारित्र होता है, जिसका फल मुक्ति है और स्वभाव से विपरीत भाववाले महाव्रत के परिणाम के फल में बाह्य सामग्री मिलती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा परमानन्द स्वरूप है - ऐसी दृष्टि भी है और राग को हेय मानकर ज्ञायक मात्र स्वरूप में जो लीनता हुई उस चारित्र का फल मुक्ति है; और उस अवस्था में जितना राग शेष है उसका फल संसार है इसलिये वह हेय है।

(१) पूर्ण अशुद्धतावाले मिथ्यादृष्टि (२) पूर्ण शुद्धतावाले केवली भगवान और (३) आंशिक शुद्धतावाले साधक; इसप्रकार जीव के तीन प्रकार हुये।

एक समय में दो भाग हैं। शुद्ध चिदानन्द आत्मा की दृष्टिपूर्वक लीनता वह निश्चय है, उसका फल मोक्ष है और जो महाव्रत का परिणाम आता है वह व्यवहार है, उसका फल संसार है। इसप्रकार (साधकदशा में) एक समय में दो भाग वर्तते हैं।

(१) एक स्वरूप शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि न हो उसे शुद्धता बिल्कुल नहीं है, उसे तो सर्वथा अशुद्धता पर्याय में है; इसे साधक और बाधक ऐसे दो भाग नहीं है। एकान्त बाधकतारूप एक भाग रखड़ने का रहा।

जिस शान्ति की इच्छा करता है वह बाहर में से नहीं आती। अंतर प्राप्त की प्राप्ति है उसकी प्रतीति नहीं किन्तु पुण्य से लाभ मानता है वह पूर्ण मिथ्यादृष्टि है अनादि से की व्यक्त पर्याय में पूर्ण अशुद्धता है।

(२) एक स्वरूप शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि पूर्वक लीनता हुई - पूर्ण शुद्धता हुई उसे अशुद्धता नहीं रही वे केवली भगवान हैं, उन्हें परिभ्रमण नहीं रहा। पूर्ण शुद्धता जो शक्ति में है उसे पूर्ण प्रगट की है वे आत्मा केवलज्ञानी परमात्मा हो गए - पूर्ण हो गए।

(३) एक स्वरूप शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि पूर्वक जितनी लीनता हुई है उतनी साधकदशा है तथा कुछ अंशों में राग शेष है इतना बाधक पना है, इसप्रकार यहाँ दो भाग पड़ते हैं।

मेरी पर्याय में राग आता है वह हेय है। पर की अवस्था और शरीर की अवस्था पर स्वयं से होती है वह ज्ञेय है जो अपराध होता है वह हेय है और स्वभाव की दृष्टि पूर्वक लीनता हुई वह उपादेय है। इसप्रकार दो अंश साधक को वर्तते हैं। साधक में बाधक पना है इसलिए उसे साधकपना कहते हैं। यदि बाधकपना बिल्कुल ही न हो तो वह केवलज्ञानी हो जाय और यदि सर्वथा बाधकपना हो तो मिथ्यादृष्टि हो जाय, इसलिये साधक को आंशिक बाधक और आंशिक साधक है।

जैसे लेंड़ीपीपर में जो तिखास व्यक्त हुई है वह प्राप्त की प्राप्ति है। चौंसठ पुटी तिखास अर्थात् पूर्ण। चौंसठ पैसे अर्थात् रुपया। लेंड़ीपीपर जबतक कच्ची है तबतक पूर्ण अशुद्ध है और पकीदशारूप चौंसठ पुटी पूर्ण प्रगट हुई वह पूर्ण शुद्ध है। यदि पचास पुटी तिखास प्रगट हुई है तो उतनी शुद्ध और १४ पुटी अधूरी अर्थात् अशुद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है; इसप्रकार इसमें दो भाग पड़ते हैं; वैसे ही आत्मा ज्ञान और आनन्द से भरा हुआ है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। प्रत्येक आत्मा स्वभावपने से पूर्ण है। स्वभाव में शान्ति, ज्ञान, वीर्य पूर्ण विद्यमान है।

अब, जिन्हें पूर्ण शक्ति की प्रतीति नहीं, निमित्त और पुण्य की रुचि है वे पूर्ण अशुद्ध है। शुभाशुभराग, दया, दानादि से लाभ माननेवाला मिथ्यादृष्टि है और जिन्होंने स्वभाव का भान करके पूर्ण शुद्धता प्रगट की वे अरहन्त परमात्मा है। अब साधक की बात करते हैं ! ध्रुव स्वभाव आनन्दकंद है उसकी श्रद्धा की है, पुण्य-पाप की रुचि छोड़ी है, स्वभाव की श्रद्धा करके जितनी आंशिक लीनता की है उतना आंशिक चारित्र है और जितनी स्व में लीनता नहीं है और राग भाव शेष है उतनी अशुद्धता है। इसप्रकार का द्वैत साधक भाव में वर्तता है। पूर्ण शक्ति की प्रतीति करके लीन होऊं यह लाभ है - ऐसे प्रयोगों की जिन्हें खबर नहीं है वे भले जैन हों, लाखों दान में देवें अथवा वे साधु भी हो जावे किन्तु फिर भी यदि वे निमित्त और पुण्य से लाभ मानते हैं तो उन्हें शक्ति की प्रतीति नहीं है वे मिथ्यादृष्टि ही है।

साधक को भी शुभराग आता है किन्तु वे उसे आदरणीय नहीं मानते.

यहाँ साधक की बात चलती है धर्मी जीव को स्वरूप की दृष्टि और लीनता अंगीकार करने योग्य है, क्योंकि उसका फल मोक्ष है। स्वयं की लीनता की कमी से, पाँच महाव्रत की वृत्ति उठती है, जिसका फल अनिष्ट है। राग निमित्त है इसलिए उसे उपचार से सराग चारित्र कहा है। जबतक पूर्ण वीतराग न हो तबतक राग आता है किन्तु राग आदरणीय नहीं है। चारित्र तो वीतराग भावरूप एक ही प्रकार का है। सरागता वह चारित्र नहीं है। यदि राग को आदरणीय माने तो उसने स्वभाव को आदरणीय नहीं माना अतः वह मिथ्यादृष्टि है।

धर्मात्मा को भी जबतक स्वभाव में पूर्ण एकाग्रता न हो तबतक भक्ति का राग आ जाता है किन्तु वे उसे छोड़ने लायक मानते हैं। यदि राग को आदरणीय माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। आत्मा पूर्ण शक्तिवान है। जैसे लेंड़ीपीपर में तिखास और हरा रंग अप्रगट है; वैसे ही आत्मा ध्रुव स्वभाव, ज्ञायक सदृश स्वभाव अप्रगटरूप से है, अनन्त गुणों से भरा हुआ है उसकी प्रतीति बिना निमित्त और पुण्य सन्मुख रुचि करे। वह मूढ़-मिथ्यादृष्टि है। स्वभाव सन्मुख होने पर विभाव सन्मुख-दृष्टि छूट जाती है। विभाव आता है किन्तु वह आदरणीय नहीं है। पूर्ण वीतराग न हो तबतक भूमिका के योग्य राग आता है किन्तु वह आदरणीय नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभराग व्यवहार का विषय है किन्तु शुभराग चारित्र नहीं है.

''व्यवहारनय है - उसका विषय भी है फिर भी व्यवहारनय का विषय असत्यार्थ होने से वह आश्रय करने योग्य नहीं है।''

पंच महाव्रत का परिणाम राग है वह चारित्र नहीं है फिर भी व्यवहारनय उसे उपचार से चारित्र कहता है; इसलिये महाव्रत को शुभराग जानकर उसे चारित्र मानने की श्रद्धा को पहले से ही छोड़ो। स्वभाव में लीनता करना ही चारित्र है।

''व्यवहारनय असत्यार्थ दर्शित है.''

यदि ऐसा है तो सरागपने को चारित्र क्यों कहा ?

निर्मल आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-लीनता में भूमिका अनुसार शुभराग आता है। इसलिए उसे सहचर जानकर सराग चारित्र कहते हैं। व्यवहारनय का विषय है यह बात सही है - राग की अस्ति है यह बात भी सही है किन्तु राग वह चारित्र नहीं है। अनन्त काल से सत्य-असत्य का निर्णय नहीं हुआ। धर्मी को शुभाशुभराग आता है किन्तु उन्हें निरन्तर राग रहित स्वभाव की दृष्टि पड़ी है - भेदज्ञान वर्तता है। अशुद्ध-शुद्ध दो भाग हैं उनका विवेक है। यदि पूर्ण शुद्धता हो तो वीतराग हो जाए और पूर्ण अशुद्ध हो तो मिथ्यादृष्टि हो। अतः साधक को आंशिक शुद्धता और आंशिक अशुद्धता रहती है, फिर भी स्व-सन्मुखता की मुख्यता और हेय उपादेय का ज्ञान उन्हें सदैव वर्तता है। पर पदार्थ भिन्न है, विभाव कृत्रिम है, वह स्वयं के दोष से होनेवाली विपरीत अवस्था है; उससे रहित शुद्ध चैतन्य स्वभाव की श्रद्धा व ज्ञान करके उसमें लीनता करना ही चारित्र है।

जिसप्रकार सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है उसीप्रकार चारित्र भी एक ही प्रकार का है.

शुद्ध चिदानन्द आत्मा की दृष्टि करना वह सच्चा सम्यक्त्व है किन्तु देव-गुरु-शास्त्र का राग वह सम्यक्त्व नहीं है। सम्यक्त्व एक ही प्रकार का है। बीच में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का शुभराग आता है वह सम्यक्त्व नहीं किन्तु बीच में कैसा राग आता है उसे सहचरपने बताने के लिये उसे व्यवहार सम्यक्त्व कहा है। व्यवहारनय का विषय है यह बात सही है किन्तु असत्यार्थ है उसी तरह चारित्र भी एक ही प्रकार का है किन्तु अधूरीदशा में शुभराग सहचर वर्तता है, इसलिये उसे व्यवहार अथवा सराग चारित्र कहा है। व्यवहारनय का विषय है यह बात सही है किन्तु वह असत्यार्थ है वह वास्तविक चारित्र नहीं है; इसलिये वह आश्रय करने योग्य नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ७

अथ चारित्रस्वरूपं विभावयति-

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥७॥

अब चारित्र का स्वरूप व्यक्त करते हैं :-

चारित्र निश्चय धर्म है, जो धर्म वह 'शम' है कहा ।
है मोह क्षोभ विहीन 'शम' परिणाम निश्चय स्वयं का ॥७॥

गाथार्थ :- चारित्रवास्तव में धर्म है। जो धर्म है वह साम्य है ऐसा (शास्त्रों में) कहा है। साम्य मोह-क्षोभ रहित ऐसा आत्मा का परिणाम (भाव) है।

टीका :- स्वरूप में चरण करना (रमना) सो चारित्र है। स्वसमय में प्रवृत्ति करना (अपने स्वभाव में प्रवृत्ति करना) ऐसा इसका अर्थ है। यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना यह इसका अर्थ है। वही यथावस्थित आत्मगुण होने से (विषमता रहित) सुस्थित आत्मा का गुण होने से) साम्य है। और साम्य, दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह और क्षोभ के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है।

भावार्थ :- शुद्ध आत्मा के श्रद्धारूप सम्यक्त्व से विरुद्ध भाव (मिथ्यात्व) वह मोह है और निर्विकार निश्चल चैतन्य परिणतिरूप चारित्र से विरुद्ध भाव (अस्थिरता) वह क्षोभ है। मोह और क्षोभ रहित परिणाम, साम्य, धर्म और चारित्र यह सब पर्यायवाची है ॥७॥

* * *

गाथा ७ पर प्रवचन

ज्ञान और आनन्द मेरा स्वरूप है और पुण्य-पाप का विभाव पररूप है.

स्वरूप में चरण करना-रमण करना वह चारित्र है। स्वरूप कैसा है ? वह दृष्टि में आ गया है। मेरा स्वरूप शुद्ध चिदानन्द निराकुल स्वरूप है - वैसा ही दृष्टि में आया है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन हुआ है। शरीर, कर्म, मन, वाणी मेरे में नहीं है; मैं उनका कर्ता-भोक्ता नहीं है, पुण्य-पाप मेरे स्वभाव में नहीं है - मैं ज्ञान स्वरूप हूँ; इसप्रकार स्वभाव सन्मुख प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है। इसप्रकार जिसे यथार्थ स्वरूप ख्याल में आया है वह साधक जीव है। जैसे किसी को अमुक घर का ख्याल आए तो वह उस

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ओर कदम बढ़ाता है; वैसे ही हमें स्वरूप का ख्याल आया है। "मैं शुद्ध चिदानन्द हूँ" मेरा यही स्वरूप उपादेय है - ऐसे ज्ञानानन्द स्वरूप में चरण करना वह चारित्र है। पर को नहीं मारना अथवा दया पालने का भाव, पुण्य है - चारित्र नहीं।

स्व अर्थात् अपनारूप - निजरूप कैसा है ?

ज्ञान और आनन्द आदि स्वभाव आत्मा में नित्य तादात्म्यरूप है। विकार बदल जाता है; संयोग पर है, वे मेरे स्वरूप में नहीं है; इसप्रकार विभाव और निमित्त की रुचि छोड़कर, स्वभाव की रुचि अर्थात् अभेद निर्विकल्प रुचि करना वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना मुनिपना ले, व्रत-तप भी ले किन्तु वह सभी बाल-तप ही है।

स्वरूप जो आदि-अन्त से रहित है और त्रिकाली आनन्द व शान्ति से भरा हुआ है, उसकी उपादेय बुद्धि हुई है। पुण्य-पाप हेय है, विपरीत है - ऐसी बुद्धि हुई है। निमित्त से मुझे किंचित भी लाभ-नुकसान नहीं हो सकता इसप्रकार उनकी पृथकता की बुद्धि हुई है। स्वरूप के पूर्ण सामर्थ्य की यथार्थ प्रतीति अनुभूति हुई है उससे सहित स्वरूप में स्थिरपने चरण करना वह चारित्र है; वह आत्मा की निर्मलदशा है।

जगत में कोई दो रोटी और पाव शेर दूध लेता हुआ दिखाई दे तो उसे लोग चारित्रवंत कहते हैं; उन्हें वस्तु स्वरूप की ख़बर ही नहीं है। क्या धर्म बाहर के पदार्थों में है ? नहीं।

अमृतचन्द्र आचार्य जंगल में रहते थे। शास्त्र लिखने का विकल्प उठा है किन्तु विकल्प के कारण शास्त्र की रचना नहीं हुई है, अपितु पुद्गल परमाणुओं ने स्वयं शास्त्र की रचना की है लेकिन आत्मा ने उनकी रचना नहीं की। जो विकल्प उठा है उसका ज्ञाता हूँ - स्वामी नहीं - ऐसा धर्मात्मा मानते हैं।

स्वरूप क्या है ? स्वयं का और पर का स्वरूप क्या है ? सर्वप्रथम उसे यर्थाथरूप से जानना चाहिए। मेरा स्वरूप मेरे में है और पर का स्वरूप पर में है, पुण्य-पाप विभाव है, वह मेरा स्वरूप नहीं, इसलिये वह मुझे मददगार नहीं है। 'मैं शुद्ध चिदानन्द हूँ' इसमें रमण करना ही चारित्र है।

चारित्र का अथवा धर्म का प्रभाव बाह्य संयोगों के ऊपर नहीं पड़ता अपितु चारित्र का फल अन्तर में होता है.

स्वरूप में चरण करना वह चारित्र है। इस गाथा में चारित्र का अर्थ करते हैं। स्व समय अर्थात् अपना आत्मपदार्थ - शुद्ध चिदानन्द में एकाग्र होनेरूप प्रवृत्ति करना वह चारित्र का अर्थ है। पर की प्रवृत्ति आत्मा नहीं कर सकता। तथा पुण्य-पापरूप प्रवृत्ति भी आत्मा की प्रवृत्ति नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

''स्वयं ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान है'' - ऐसा समझकर स्वयं में स्थिर होना वह चारित्र है। नग्न होकर जंगल में रहने से साधुपना नहीं आता। यदि जंगल में रहने के कारण साधुपना आता हो तो पशु तो सदा ही जंगल में रहते हैं तो उनको भी साधुपना आना चाहिए ?

कोई कहता है कि एक धर्मी जीव परदेश में गया था अब उसके धर्मीपने की परीक्षा करने के लिये किसी ने कहा कि तुम्हारा पुत्र मर गया है, तो उसे धर्मी जीव जवाब देता है कि - 'मैं धर्मी हूँ, इसलिये मेरा पुत्र नहीं मर सकता।' यह दृष्टांत देकर अज्ञानी कहता है कि धर्म के फल में पुत्र नहीं मरता। जबकि ये सभी बातें असत्य है। पुत्र तो पुण्य के संयोगरूप है, धर्म के कारण संयोग का वियोग न हो ऐसा नहीं होता। मुनि तो उत्कृष्ट धर्मी है फिर भी उन्हें सिंह फाड़कर खा जाता है।

तथा कोई कहता है कि अहिंसा के प्रभाव के कारण पास में आया हुआ हिंसक जीव भी शाँत हो जाता है, बैर का त्याग देता है तो यह बात भी असत्य है क्योंकि अहिंसा का प्रभाव दूसरों के ऊपर नहीं होता। स्वभाव में लीनता होने पर अपने में बैर का नाश होता है। मुनि को सर्प काट लेता है, बाघ फाड़कर खा जाता है फिर भी अन्तर में परिपूर्ण अहिंसा है। सिंह मुनि के शरीर को खा जाय तो उससे मुनि का अहिंसामय चारित्र चला जाता हो - ऐसा नहीं है। सिंह तो शरीर को खाता है किन्तु वह मुनि की आत्मा को किंचित भी नहीं मार सकता। कोई कहता है कि मुनि के पास सर्प आया और मुनि के प्रभाव से डसे बिना चला गया किन्तु चारित्र का फल पर मे नहीं होता। पवित्र मुनि को भी यदि असाता का उदय हो तो उस समय सर्प डस जाता है और मुनि की मृत्यु हो जाती है; तो क्या उससे मुनि की अहिंसा चली जाती है ? नहीं, अत: वस्तु का जैसा स्वतंत्र स्वभाव है वैसा निर्णय करना चाहिए।

चारित्र का प्रभाव पर-द्रव्य के ऊपर नहीं पड़ता। यदि पर-द्रव्य के ऊपर प्रभाव पड़ता हो तो मुनि के बाईस परिसह असत्य हुए, जबकि मुनि को मच्छर आदि काट लेते हैं। श्रीमद् जी ने भी कहा है -

'एकाकी विचरतो वली स्मशानमां,
वली पर्वतमां बाघ, सिंह संयोग जो;
अडोल आसन्न ने मनमां नहीं छोभता,
परम मित्रनो जाने पाम्या योगजो,
अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे;'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनि के शरीर को सिंह मारने आवे तब मुनि विचार करते हैं कि - मुझे शरीर नहीं चाहिए और तुझे चाहिए है; इसलिये तू तो मेरा मित्र है। मैं तो मेरे अखण्ड-आनन्द में ही वर्तता हूँ। हमें तो छण-छण में आनन्द में लीनता हुआ करती है। शरीर के छूटने का समय हो और तुझे चाहिए हो तो ले ले, इसप्रकार वे सिंह को मित्र जानते हैं।

मुनिराज तीनों ही काल नग्न दिगम्बर ही होते हैं। सिंह छलांग लगाकर, फाड़कर खाने आता है, (तब मुनि कहते हैं) हमें शरीर नहीं चाहिए तुझे शरीर चाहिए हो तो तू भले ले जा। अरे ! मुझे सिंह मारेगा ऐसा माननेवाले को तो चारित्र ही नहीं होता। अत: वस्तु जैसी है, वैसी प्रतीति करो।

स्व में प्रवृत्ति करना वह चारित्र है किन्तु
शुभ की प्रवृत्ति करना वह चारित्र नहीं.

स्व में रमण करना अर्थात् स्व में प्रवृत्ति करना - ऐसा चारित्र का अर्थ है। किन्तु दूसरा कोई आकर मुनि को न मारे - ऐसा चारित्र का अर्थ नहीं है। सम्यक् प्रकार से ज्ञान का परिणमन वह स्व समय है। शरीर में रोग न आवे यह चारित्र का फल नहीं है। मुनि का वचन निकले, दृष्टि पड़े और किसी को निरोगता हो जाय ऐसी लब्धि हो अथवा न हो; उसके साथ चारित्र का कोई सम्बंध नहीं है। वेश्या के घर में मुनि नहीं रहते। ब्रह्मचर्य महाव्रत के धारी मुनिराज को ऐसा विकल्प भी नहीं आता। वे स्वयं के लिये बनाया हुआ आहार भी नहीं लेते।

स्वयं ज्ञानमूर्ति है ऐसा अनुभव वह चारित्र है किन्तु पुण्य में प्रवृत्ति वह चारित्र नहीं है। अट्ठाइस मूलगुण पालन की प्रवृत्ति, शुद्ध आहार पानी लेने की वृत्ति राग है - चारित्र नहीं। धर्मी को कोई आकर मार जावे तो स्व-समय प्रवृत्ति अटक जाती हो - ऐसा नहीं होता। भूमिका अनुसार बाहर के निमित्त होते हैं किन्तु उससे विरुद्ध नहीं होते। तथापि बाह्य निमित्त के साथ स्व समय की प्रवृत्ति का सम्बंध नहीं है। मुनिराज को मुनिपद के योग्य शुभराग तो होता है किन्तु मुनिदशा में वस्त्र-पात्र रखने का विकल्प आए ऐसा तीव्रराग मुनिराज को कभी नहीं होता।

'नग्न भाव मुंड भाव सहअस्नानता,
अदन्त धोवन आदि परम प्रसिद्ध जो;'

अदन्त-धोवन अट्ठाइस मूलगुण पालन में आता है। जो वस्तु जैसी है वैसा समझकर जाग्रत हुआ है। जो चारित्रवंत हुआ है उसे हठ- रहित अट्ठाईस मूलगुण का पालन होता है। स्वरूप में रमण करना वह चास्त्रि है; स्व समय में प्रवृत्ति करना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका अर्थ है। जीव, शरीर की नग्नदशा की प्रवृत्ति नहीं कर सकता वह तो उसके क्रम में हो जाती है। जो आँख की पलक फिरती है वह परमाणु के कारण है - आत्मा के कारण नहीं। मुनिराज अंतर में प्रवृत्ति करते हैं, किन्तु बाहर की किसी भी प्रवृत्ति के वे कर्ता नहीं होते मात्र ज्ञाता हैं।

बहुत उपदेश देवे, अनेक मंदिर बनावे, बहुत पाठशालायें चलावे वे मुनि - ऐसा मुनि का अर्थ नहीं है। पर पदार्थ तो उनके कारण बनते हैं। यदि कदाचित् बाहर में ऐसा योग न बने तो उससे मुनिपना चला नहीं जाता। चारित्र का अर्थ ज्ञायक स्वरूप में स्व समय की प्रवृत्ति है। व्रतादि का शुभभाव आ जाता है - किन्तु वे उसे नहीं लाते। मैं ऐसे राग को लाऊं और इस निमित्त को बनाऊँ- ऐसा माननेवाला मूढ़ है- पर्यायबुद्धि है।

इसप्रकार चारित्र शब्द में से आचार्य ने इतनी टीका की है। जिसप्रकार भैंस के थन में दूध भ़रा है तो निकालते हैं; दूध दोहनेवाला ग्वाला उसे निकालता है; उसीप्रकार शब्द में जो भाव भरे हैं उनकी टीका श्री अमृतचंद्राचार्य करते हैं।

कोई कहता है कि - 'बहुत उपदेश देना, शास्त्र लिखना, दूसरों का उद्धार करना यह मुनि का काम है' - तो उसका यह कथन असत्य है; क्योंकि आत्मा पर का नहीं कर सक़ता। विकल्प कमजोरी के काल में आता है किन्तु वह मुनि का चारित्र नहीं है अपितु स्वभाव में चरण करना वह चारित्र है। अल्प में से विस्तार करे वह टीका है।

(१) निर्मल स्वभाव की प्रतीति करके अंदर चरण करना वह चारित्र है.

यह चारित्र का अधिकार है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध-पवित्रदशा मोक्ष है; उसका साक्षात् कारण चारित्र है। ''चारित्र बिना मोक्ष नहीं होता''। चारित्र का कारण स्वरूप की प्रतीति है। स्वरूप में चरण करना वह चारित्र है। इसलिये स्वरूप क्या है उसका सर्वप्रथम निर्णय होना चाहिए। स्वयं ज्ञान और आनन्द स्वरूप है - ऐसा निर्णय होना चाहिए। देह की क्रिया वेश अथवा व्यवहार - चारित्र नहीं है। खड़े-खड़े आहार लेना इत्यादि वृत्ति शुभराग है वह चारित्र नहीं है अपितु पूर्ण शुद्ध निर्मल स्वभाव की प्रतीति करके स्थिर होना वह - चारित्र है।

यह मुनि के चारित्र की बात है; पेटे में (गर्भितरूप से) श्रावक का चारित्र आ जाता है। स्वरूप में चरण करना वह चारित्र है। सर्वप्रथम सत्समागम में निर्णय करना चाहिए। सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा गया आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्द स्वरूप है; उसमें रमण करना वह चारित्र है। यहाँ चारित्र के चार बोल कहे हैं - (१) चारित्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२) धर्म (३) साम्यभाव (४) निर्विकारी परिणाम।

व्यवहार चारित्रादि के परिणाम अधूरीदशा में आते हैं किन्तु जो उसे निश्चय चारित्र मानता है वह मिथ्यादृष्टि है.

पूर्ण शुद्ध, आनन्द स्वरूप आत्मा में प्रवृत्ति करना वह चारित्र है। किसी का कल्याण करना, उद्धार करने की वृत्ति वह चारित्र नहीं है। अशुभ से निवृत्ति लेकर शुभ की प्रवृत्ति करना यह तो व्यवहार का स्थूल चारित्र है। ज्ञानानन्द स्वरूप की प्रवृत्ति करनेवाले को शुभराग आता है लेकिन उसे हेयरूप-अहितकर माने तो वह शुभभाव व्यवहार से चारित्र कहा जाता है।

प्रश्नः- यदि वह असत्यार्थ चारित्र है तो फिर उसे चारित्र क्यों कहा ?

समाधानः- आत्मा का भान होने पर इसीप्रकार का राग शेष रह जाता है; इसलिये उसे सहचर जानकर सराग चारित्र कहा है किन्तु यह उपचार का कथन है। वास्तव में, चारित्र एक ही है - राग चारित्र नहीं है। इसीतरह समिति गुप्ति आदि भी एक ही है - शुभराग वह समिति अथवा गुप्ति नहीं है। इसप्रकार जहाँ उन्हें व्यवहार से समिति आदि कहा हो वहाँ उसे असत्यार्थ समझना; मात्र निमित्त आदि की अपेक्षा से उन्हें व्यवहार नाम दिया है।

जो व्यवहार सम्यक्त्व को ही सच्चा सम्यक्त्व माने वह मिथ्यादृष्टि है। इसीतरह कोई व्यवहार गुप्ति को ही सच्ची गुप्ति माने तो वह मिथ्यादृष्टि है और व्यवहार शास्त्र ज्ञान को सम्यक् ज्ञान माने वह भी मिथ्यादृष्टि है। साधक को अशुभ से बचने के लिये शुभराग आता है, किन्तु वे शुभराग को नहीं लाते। उस राग को निमित्त-सहचर-उपचार जानकर व्यवहार चारित्र कहा है, किन्तु जो उसे ही सच्चा चारित्र मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

तथा वह व्यवहार भी किसे है ?

मैं ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ। पुण्य-पाप विभाव है उससे रहित मैं ज्ञानानन्द हूँ - ऐसा भान करके जो स्व- समय प्रवृत्ति करे उसे ही व्यवहार होता है।

पर में सुख-दुःख नहीं है किन्तु ज्ञानस्वभाव को भूलकर पर में ठीक-अठीक बुद्धि वह दुःख है.

लोग कहते हैं कि दुनिया में से थोड़ा लेवे और बहुत देवे वे चारित्रवंत हैं; परन्तु भाई ! अनाज, दाल-भात को कोई किसी को लेता-देता ही नहीं है। आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप है। यहाँ दुःख का विकृतपना बताते हैं। शरीर और मन में दुःख नहीं है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दरिद्रता वह दुःख नहीं-दोष नहीं है और अनुकूल चीज का होना वह गुण नहीं है। अनुकूल चीज लाभदायक नहीं है और प्रतिकूल चीज दुःखदायक नहीं है। अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर मिथ्यामान्यता द्वारा पर में सुख-दुःख माने वही दुःख है। क्षुधा-तृषा, रोग, दुःख नहीं दुःख तो स्वयं के अपराधरूप हुई स्वतंत्र क्षणिकदशा है, इसलिये वह दूर हो सकती है। त्रिकाली आनन्द गुण की वह विपरीतदशा है। विपरीत है अर्थात् वह ज्ञानानन्द स्वभाव से उल्टीदशा है।

प्रतिकूल संयोग दुःख है और अनुकूल संयोग सुख है - ऐसा मूढ़जीव मानता है और अपने को भूलकर पर में ठीक-अठीक, सुख-दुःख मानकर दुःख भावरूप परिणमित होता है। आत्मा तो त्रिकाल आनन्द स्वरूप है और दुःख तो क्षणिक है। जीव सुख स्वभावी आत्मा के आश्रय से अपने दुःख का नाश स्वयं करता है। किसी के दुःख का नाश कोई दूसरा नहीं कर सकता क्योंकि जो दुःखरूप परिणमित होता है उसके दुःख को किसी दूसरे ने उत्पन्न नहीं किया है; स्वयं के आनन्द को भूलकर जीव स्वयं दुःख उत्पन्न करता है और मात्र स्वभाव के आश्रय से ही दुःख दूर होता है; अन्य कोई दुःख दूर करने में समर्थ नहीं है।

पर जीव के कारण करुणा नहीं होती और करुणा से पर के दुःख नहीं मिटते.

अज्ञानी जीव मानता है कि अनुकूल संयोग आए तो दुःख दूर हो, किन्तु उसकी यह बात असत्य है क्योंकि दुःख वह तो तेरे सुख गुण की उल्टी अवस्था है, जिसे स्वयं दूर करे तो वह दूर होती है। अनुकूल संयोग के कारण सही (सुखरूप) अवस्था नहीं होती किन्तु स्वभाव के आश्रय से ही सही अवस्था होती है। जैसे वमन (उल्टी) निकाल देने लायक है; वैसे ही दुःख और उसका कारण जो विपरीत मान्यता है वह निकाल देने लायक है; वह तो ज़हर है। स्वयं निकाले तो वमन निकलता है। जीव को शुभराग आता है किन्तु वह रखने लायक नहीं है और न ही वह चैतन्य की पुष्टि का कारण है।

(१) दूसरा जीव दुःखी है इसलिये करुणा आती है - ऐसा माने तो भूल है। यदि दूसरे के कारण करुणा आती हो तो सभी को एक समान-उस काल में करुणा होनी चाहिए ?

(२) अपने को करुणा आए तो पर का दुःख मिटे - ऐसा मानना भी भ्रम है क्योंकि दुःख का कारण स्वयं उनका अज्ञान है; यदि सच्ची समझ द्वारा भेदज्ञान करके अज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को दूर करे तो उनका दुःख मिटे। दूसरा उनके दुःख को मिटा दे ऐसी कोई पराधीनता नहीं है। वे उनके दुःख को अपने सुख स्वभाव के अवलंबन द्वारा स्थिर होकर दूर करे तो वह दूर हो; किन्तु कोई दूसरा उनके दुःख को दूर करने में समर्थ नहीं है। तीनों ही काल ऐसा ही वस्तु स्वरूप है।

उपदेश देना अथवा दूसरे को सुधारने का भाव करना वह चारित्र नहीं है; अपितु स्वरूप में प्रवृत्ति करना वह चारित्र है.

चारित्र अर्थात् अपने में प्रवर्तन करना - (आत्मा का) चारित्र पर में नहीं होता यह बात सत्य है। सम्पूर्ण जगत इसमें (अज्ञान में) जल रहा है। यह बात तर्क सिद्ध है। यहाँ तो न्याय और प्रमाण से बात निश्चित कराते हैं। स्वयं निर्णय करे तो वह काम आता है। अन्य का चारित्र सुधार दूँ - ऐसा चारित्र का अर्थ नहीं है। पुण्य परिणाम अथवा उपदेश देना भी चारित्र का अर्थ नहीं है। दूसरे पर उपकार करना वह चारित्र की सामर्थ्य ही नहीं है।

त्रिकोलीनाथ परमात्मा कथित् चारित्र का स्वरूप क्या है ?

निज शुद्ध चिदानन्द आत्मा में प्रवृत्ति करना ही चारित्र है किन्तु उपदेश देना वह चारित्र नहीं है। यदि, दूसरे प्राणी का योग न हो तो क्या चारित्र अटक जाता है ? नहीं। दूसरा स्वयं की योग्यता से समझे तो वहाँ वाणी निमित्त होती है इसलिये उसपर परोपकार का आरोप आता है, किन्तु वास्तव में कोई किसी पर उपकार नहीं कर सकता। अपने स्वभाव सन्मुख होकर समझे तो दूसरे के ऊपर उपकार का आरोप आता है। बहुत से मनुष्यों की सेवा करे, खूब काम करे वह चारित्रवंत है - ऐसा अज्ञानी मानते हैं। यदि ऐसा चारित्र गुण का कार्य माने तो वह गधे के सींग मानने जैसी भूल है। जैसे गधे के सींग नहीं होते; वैसे ही अज्ञानी मानता है वैसा वस्तु स्वरूप नहीं होता।

(२) राग को जानना असत्य नहीं किन्तु राग को धर्म मानना असत्य है। स्वभाव में रमण करना वही धर्म है.

तथा चारित्र ही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। पुण्य परिणाम धर्म नहीं, महाव्रत धर्म नहीं, दूसरों की सेवा करे वह वास्तविक सेवा नहीं है अपितु स्वयं का जो निश्चय स्वरूप है निश्चय है उसकी सेवा करे वही वास्तव में सेवा है। चारित्र वह वस्तु का स्वभाव है। स्वपदार्थ में परमानन्द मूर्ति में रमण करना यही आत्मवस्तु का स्वभाव है। जड़ की क्रिया अथवा पर की क्रिया करना अथवा राग आए वह वस्तु का स्वभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है। वस्तु त्रिकाल स्वभावी है उसके आश्रय से निर्मल पर्याय प्रगट हो वह वस्तु का स्वभाव है, ऐसा एक ही धर्म का स्वरूप है।

व्यवहार वह तो उपचार का कथन है। अधूरीदशा में राग को सहचर जानकर उसे व्यवहार धर्म कहा है किन्तु जो व्यवहार से धर्म मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार का ज्ञान करे तो सच्चा है। व्यवहारनय का ज्ञेय है यह बात सही है किन्तु व्यवहार, राग को धर्म कहता है वह असत्य है। राग को जानना असत्य नहीं किन्तु राग से धर्म मानना असत्य है। परमानन्द स्वभावी आत्मा में से निकली हुई शाँति धर्म है। व्यवहारनय का विषय है यह बात सही है किन्तु व्यवहार जो कहता है वह असत्यार्थ है।

व्यवहारनय देव-गुरु-शास्त्र के राग को सम्यक्त्व कहता है, शास्त्र के ज्ञान को ज्ञान कहता है, महाव्रत के राग को चारित्र कहता है जबकि वह सभी असत्यार्थ है - आदरणीय नहीं है। राग निमित्त है, हेय है - ऐसी श्रद्धा करने लायक है किन्तु राग धर्म है - ऐसी श्रद्धा करने योग्य नहीं है। परमानन्द अकषाय स्वभाव के आश्रय से अकषाय पर्याय प्रगट हो वह वस्तु का स्वभाव है।

शुद्ध स्वभाव के आश्रय से निर्मल पर्याय का अनुभव करना वह धर्म का अर्थ है.

तथा कैसा है वस्तु का स्वभाव ?

ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का प्रकाश निर्मलपने पर्याय में आना ऐसा उसका अर्थ है। पर को जानना वह मुख्यरूप से नहीं है। शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि करके अन्तर्लीनता होती है यह उसका अर्थ है। शुद्ध चैतन्य का प्रकाश होना इसका अर्थ है। जैसे लेंड़ीपीपर में चालीस पुटी तिखास बाहर आए यह तिखास का अर्थ है; वैसे ही आत्मा के ज्ञानानन्द में से आंशिक निर्मल पर्याय प्रगट होना - पूर्ण शुद्ध चैतन्य का आश्रय करके निर्मल पर्याय का अनुभव करना यह उसका अर्थ है - यही धर्म का अर्थ है। दुनिया अनेक प्रकार से चारित्र का अर्थ करती है जो सही नहीं है।

अपना आत्मा निर्मल पर्याय प्रगट करे यह धर्म का अर्थ है। किन्तु धर्मी श्रावक के घर लड़का-लड़की नहीं मरे ऐसा धर्म का अर्थ नहीं होता। शुद्ध चैतन्य स्वभाव की दृष्टि करके उसका आंशिक प्रकाशित होना वह श्रावक का धर्म है किन्तु उसे राग न आवे अथवा सगा-सम्बंधी न मरे ऐसा धर्म का अर्थ नहीं है। स्वभाव की दृष्टि पूर्वक आंशिक स्थिरता हो वह देश चारित्र है - वह धर्म है। शुद्ध चैतन्य स्वभाव का प्रकाशित होना वह धर्म है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छह आवश्यक का राग करे यह गृहस्थ धर्म का अर्थ नहीं है। बहुत दान देवे अथवा पूजा करे वह चारित्र का अर्थ नहीं है। अनन्तकाल से रखड़ते हुए जीव को यदि वस्तुस्वरूप की खबर हो तो - वह रखड़े क्यों ? रखड़नेवाले को रखड़ानेवाले ऐसे राग में धर्म कहनेवाले मिल गए। पुण्य से धर्म होता है - ऐसा तो पहले से ही मानता था और वैसा ही कहनेवाले मिल गए। पहले कषाय मंदता करो तो धीरे-धीरे सामायिक होगी, करुणा करते-करते मिथ्या सामायिक में से सच्ची सामायिक होगी; ऐसा अज्ञानी भले ही माने किन्तु ऐसा कभी नहीं होता।

धर्म का अर्थ अपनी आत्मा में प्रवृत्ति करना है। शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना ऐसा उसका अर्थ है। आत्मा तो शुद्ध चैतन्य स्वभावी ज्ञाता है - ऐसा भान करके, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय प्रगट हो यही धर्म का अर्थ है; क्योंकि यह वस्तु का स्वभाव है।

जहाँ उपादान प्रगट होता है वहाँ निमित्त होता है - ऐसा वस्तु का स्वभाव है। इसका अर्थ यह है कि भगवान की भक्ति करे, वहाँ व्यवहार से - विनय भक्ति से ऐसी विनती करता है कि - हे प्रभु ! शुभराग में आप निमित्त हैं, आपके निमित्त से निर्मलता हुई है, निर्मलता में आप निमित्त हो; इसप्रकार भगवान की स्तुति करने में आती है। स्वयं अपने से धर्मदशा प्रगट करता है तो भगवान को निमित्त कहा जाता है; किन्तु निमित्त के कारण निर्मलता का कार्य नहीं होता।

आत्मा की यथास्थित निर्मलता समताभाव है।

बाह्य प्रतिकूलता सहन करे वह - समता भाव नहीं है।

अब साम्य की तीसरी व्याख्या की करते हैं। स्वरूप में रमन करना उसे चारित्र कहा; वही वस्तु का स्नभाव होने से धर्म है। शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना ऐसा उसका अर्थ है और जैसा आत्मा का स्वभाव है वैसा यथास्थित भाव होने से वह - साम्य है। आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वभाव में स्थित हुआ वह आत्मगुण है। यहाँ गुण का अर्थ निर्मल पर्याय समझना। यह विषमता रहित सुस्थित आत्मा का गुण है वह - साम्य है। जो निर्विकारी परिणाम कहने में आया है वही समता भाव है। कोई लकड़ी से मारे और समता रखे वह वास्तविक समता नहीं है अपितु पुण्य-पाप दोनों को एक जानकर चिदानन्द स्वरूप में स्थिरता हुई है वहीवास्तव में समता है।

हमें लाठी सहन करना चाहिए और मेरे खून की एक बूंद में से हजारों पैदा होंगे। हमें देश व धर्म के लिये शहीद होना चाहिए, इसमें अज्ञानी समता भाव मानता है। यह देह पड़ी रह जाएगी और उसमें से जितनी खून की बूंद गिरेगी उतने नये वीर पैदा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होंगे ऐसा अज्ञानी कहते हैं; जबकि ऐसा नहीं है। सर्वप्रथम सच्ची दृष्टि प्रगट करके, पुण्य-पाप से हटकर, संयोग में जो होता है उसका मैं कर्ता नहीं, निमित्त का ज्ञाता हूँ - ऐसा जानकर स्वभाव सन्मुख रहता है वहीवास्तव में समता है; शेष सभी विषमता है। वस्तु का स्वभाव यह है कि स्वभाव की प्रवृत्ति करके समता प्रगट हो वही चारित्र है और वही मुक्ति का कारण है।

जो तारे वह तिरे - यह बात असत्य है.

एक जगह लिखा था कि - 'जो तिरे उसे तारे' इसे पढ़कर दूसरे व्यक्ति ने कहा कि - 'जिसे तारे वह तिरे' इसप्रकार विपरीत कहा। यदि 'जिसे तारे वह तिरे' यदि ऐसा हो तो दूसरा तारनेवाला न मिले तबतक उसे रखड़ना ही रहे; इसलिये उसे तारनेवाले को ढूंढना पड़ेगा - तुम तारो नहीं तो मेरा मोक्ष नहीं होगा। इसलिए तारे वह तिरे यह बात असत्य है। वैसे ही तुम तिरवाने लायक हो तो मैं तिरूंगा यह बात भी असत्य है। तथा 'जो तिरे उसे तारे' यह भी निमित्त का कथन है। दूसरा तिरे तो निमित्त कहा जाता है। दूसरा तिरे अथवा नहीं तिरे, बहुत से जीव शास्त्र सुनने आवे अथवा नहीं आवे उसके साथ अपने धर्म का कोई सम्बंध नहीं है क्योंकि जीव स्वयं अपने से तिरता है।

प्रश्न :- सामायिक कब आएगी ?

समाधान :- यही सामायिक है। चटाई बिछाकर बैठने से अथवा पाठ बोल लेने में सामायिक नहीं है। धर्म को अधर्म माने, कुदेव को देव माने वह तो मिथ्यात्व है। इसप्रकार पाठ बोल जाता है जैसे टेपरिकार्ड हृदय बिना बोल जाता है; वैसे ही अज्ञानी भी भावभासन बिना ही पाठ बोल जाता है।

(४) व्यवहार, ज्ञान कराने के लिये है किन्तु व्यवहार को उपादेय अथवा हितरूप कहे - ऐसा तो वस्तु स्वरूप ही नहीं है.

अब साम्य का चौथा अर्थ करते हैं। पुण्य-पाप में अपना अस्तित्त्व मानना अथवा राग में सावधानपना वही मिथ्यात्व है। निमित्त का सुधार करना - ऐसी सावधानी रखना वह सब मिथ्यात्व है; क्योंकि यह तो विकार की सावधानी है जबकि विकार रहित आत्मा की सावधानी वह सम्यक्त्व है अर्थात् स्वभाव की सावधानी अथवा रुचि को सम्यक्त्व कहते हैं।

'एक होय त्रणकालमा, परमार्थनो पंथ।
प्रेरे ते परमार्थ ने, ते व्यवहार समंत ॥'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

''जो योग्य व्यवहार होता है वह (ज्ञानियों को) ज्ञेयपने मान्य है किन्तु व्यवहार से निश्चय होता है - वह मान्य नहीं।''

''अच्छे निमित्त से अथवा पुण्य परिणाम से, परमार्थ की दृष्टि नहीं मिलती।''

धर्मी जीव को सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान आए बिना नहीं रहता किन्तु बहुमान का राग आया है इसीलिए परमार्थ है - ऐसा भी नहीं है। अज्ञानी शास्त्र का विपरीत अर्थ करता है, उसे अर्थ की खबर नहीं। 'आचार्य कहते हैं कि - सत्यार्थ वस्तु वह यथार्थ है और व्यवहार अभूतार्थ है। व्यवहार जितना भी कहता है वे सभी अर्थ असत्य (खोटे) है।'

व्यवहार, राग को सम्यक्त्व कहता है वह - असत्यार्थ है अर्थात् ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं है। स्वभाव सन्मुख रहना वह सम्यक्त्व और समिति है। श्रीसमयसार परमागम की ग्यारहवीं गाथा में कहा है कि - स्वभाव के आश्रय से जो निर्मलदशा होती है वह भूतार्थ है। बीच में निमित्त बताने के लिये राग को व्यवहार धर्म कहा है।

प्रश्न :- यदि व्यवहार अभूतार्थ है तो उसे क्यों कहा ?

समाधान :- भूमिका से विरुद्ध व्यवहार नहीं होता ऐसा सहचर जानकर कहा है। देखकर चलना उसे व्यवहार समिति कहा है किन्तु वहवास्तव में समिति नहीं है। अशुभ से बचना उसे गुप्ति कहा, किन्तु वह गुप्ति नहीं है।

''जैसा व्यवहार कहता है, वैसा वस्तु स्वरूप नहीं है।''

राग है यह बात सही है किन्तु राग धर्म नहीं है फिर भी निमित्त बताने के लिए राग को धर्म कहना वह - व्यवहार है।

मोह-राग-द्वेष रहित निर्विकारी परिणाम को - साम्य भाव कहते हैं.

दर्शन मोहनीय के निमित्त में जुड़ने से होनेवाला मोह और चारित्र मोहनीय में जुड़ने से होनेवाला मोह है; और राग-द्वेष के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकारी - ऐसा जो जीव का परिणाम वह साम्यभाव है। सम्यक्दृष्टि को आत्मा की सावधानी हुई है; फिर भी अभी कमजोरी से क्षोभ के परिणाम होते हैं; उस परिणाम का अभाव करके अत्यन्त निर्विकार ऐसा जो जीव का परिणाम है उसे साम्यभाव कहने में आया है।

महाव्रतादि का परिणाम आंशिक स्व से हटकर, चारित्र मोह में जुड़ने से होता है। मुनि को प्रमाद के काल में जो व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प आता है उससे रहित, जितने अंश में जीव का निर्विकारी परिणाम है अथवा स्व पदार्थ में रमणता होने पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो परिणाम होता है उसे धर्म अथवा चारित्र कहा है। देह की क्रिया व पुण्य की क्रिया वह तो पर में जाती है उसे धर्म नहीं कहते।

'केवली पण्णतो धम्मो शरणं'- ऐसे निर्विकार धर्म की यहाँ बात चलती है। अज्ञानी को अर्थ की खबर नहीं। 'तूंबी में कंकर जैसा है'। नारियल को हिलाने पर आवाज़ होती है; वहाँ भाषा वर्गणा में से शब्द बाहर आते हैं। पानी पृथक है, टोकर पृथक है, भाषा, आवाज़ पृथक वस्तु है; वैसे ही पुण्य के परिणाम आत्मा से अत्यन्त ज़ुदा है - ऐसे आत्मा के आश्रय से होनेवाला निर्विकारी परिणाम वह केवली भगवान द्वारा कहा गया धर्म है। जैसे चिरायते की थैली के ऊपर शक्कर नाम लिखे उससे चिरायता मीठा नहीं हो जाता, वैसे ही वस्तु स्वरूप को श्रद्धा- ज्ञान और स्थिरता में लिये बिना किंचित मात्र भी धर्म नहीं होता।

❁ ❁ ❁

अब मिथ्याचारित्र का स्वरूप कहते हैं - चारित्रमोह के उदय से जो कषायभाव होता है उसका नाम मिथ्याचारित्र है। यहाँ अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नहीं है, झूठी पर स्वभावरूप प्रवृत्ति करना चाहता है सो बनती नहीं है; इसलिये इसका नाम मिथ्याचारित्र है। वही बतलाते हैं - अपना स्वभाव तो दृष्टा-ज्ञाता है, सो स्वयं केवल देखने वाला जानने वाला तो रहता नहीं है, जिन पदार्थों को देखता-जानता है उनमें इष्ट-अनिष्टपना मानता है, इसलिये रागी-द्वेषी होकर किसी का सद्भाव चाहता है, किसी का अभाव चाहता है। परन्तु उनका सद्भाव या अभाव इसका किया हुआ होता नहीं; क्योंकि कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता है नहीं, सर्वद्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित होते हैं; यह वृथा ही कषाय भाव से आकुलित होता है।

- श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा - ८

अथात्मनश्चारित्रत्वं निश्चिनोति-

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं ति पण्णत्तं ।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो ॥८॥

अब आत्मा की चारित्रता (अर्थात् आत्मा ही चारित्र है ऐसा) निश्चय करते हैं :-

जिस भाव परिणत द्रव्य तन्मय तत्समय उस भाव से ।
कहते अतः हो धर्म परिणत धर्म ही मानो उसे ॥८॥

गाथार्थ :- द्रव्य जिस समय जिस भावरूप से परिणमन करता है उस समय उस मय है ऐसा (जिनेन्द्र देव ने) कहा है, इसलिये धर्म परिणत आत्मा को धर्म समझना चाहिए।

टीका :-वास्तव में जो द्रव्य जिस समय जिस भावरूप से परिणमन करता है वह द्रव्य उस समय उष्णतारूप से परिणमित लोहे के गोले की भाँति उस मय है, इसलिये यह आत्मा धर्मरूप परिणमित होने से धर्म ही है। इसप्रकार आत्मा की चारित्रता सिद्ध हुई।

भावार्थ :- सातवीं गाथा में कहा गया है कि चारित्र आत्मा का ही भाव है। और इस गाथा में अभेदनय से यह कहा है जैसे उष्णतारूप परिणमित लोहे का गोला स्वयं ही उष्णता है - लोहे का गोला और ऊष्णता पृथक् नहीं है, इसीप्रकार चारित्र भाव से परिणमित आत्मा स्वयं ही चारित्र है ॥८॥

* * *

गाथा ८ पर प्रवचन

इसमें ज्ञान तत्त्व का कथन है। ज्ञान प्रधान चारित्र की बात है। चारित्र है वह धर्म है - धर्म चारित्र है। चारित्र क्या है, वह कहाँ रहता है और किसे होता है ? उसका वर्णन करते हैं। आत्मा का चारित्रपना अर्थात् आत्मा ही चारित्र है ऐसा यहाँ निश्चित करते हैं -

प्रत्येक पदार्थ प्रति समय स्वतंत्र परिणमित होता है और
वह पदार्थ उस समय उस परिणाममय है.

देखो, चारित्रधर्म किसे कहते हैं ? यह बताते हैं।वास्तव में जो द्रव्य जिस काल में, जिस भावरूप से परिणमित होता है; वह द्रव्य उस काल में - उष्णतारूप से

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमित हुए लोहखण्ड के गोले के समान उसमय है - द्रव्य का ऐसा स्वभाव है। भगवान ने छः द्रव्य देखे हैं। अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा, धर्म, अधर्म, आकाश और असंख्य काल हैं। जिस वस्तु के जिस क्रम में आया हुआ परिणाम वह क्रमबद्ध आता है। यहाँ छः द्रव्य की बात की है; इसके पश्चात् चारित्र की बात करेंगे।

जिस द्रव्य की, जिस काल में, जो पर्याय होनेवाली है उस काल में उस भावरूप से परिणमित होता है। जैसे लोहे का गोला उष्णतारूप से परिणमित हुआ है; वैसे ही जो कोई द्रव्य है, उसका परिणाम द्रव्य से पृथक नहीं है। लोहे की उष्णता अग्नि से नहीं हुई है, लोहे का गोला उस समय में उष्णतारूप से हुआ है; वह उष्णता लोहे के गोले से पृथक नहीं है। लोहे के गोले का उस पर्यायरूप से होने का काल है, उसमें अग्नि निमित्त है। अनन्त द्रव्य के परिणाम का काल एक है, फिर भी प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपने काल से परिणमित हो रहे हैं।

यह लकड़ी इस पर्यायरूप से परिणमित हुई है, इस काल में उस पर्याय से लकड़ी तन्मय है - वह अंश पृथक नहीं है। वैसे ही लकड़ी का यह परिणमन पर के कारण नहीं हुआ है। स्वयं से है - पर से नहीं ऐसा अनेकान्त है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक पदार्थ जिस काल में, जिस पर्यायरूप से परिणमित होनेवाला है; उस समय वह उसरूप परिणमित हो गया है। तीन काल - तीन लोक में यह एक ही सिद्धान्त कहा है। उस पर्यायरूप हुआ वह द्रव्य, उस समय तन्मय है।

ऊष्णतारूप से परिणमित हुए लोहे के गोले ने ऊष्णता की पर्याय धारण की है, उस समय ही धारण की है, दूसरे समय वह दूसरी अवस्था धारण करता है। उस समय वह पदार्थ उसमें एकाकार है। इसीप्रकार दूसरे समय वह दूसरी अवस्था से तन्मय है, तीसरे समय में तीसरी अवस्था से तन्मय है, चौथे समय चौथी अवस्था से तन्मय है इत्यादि; उससे वस्तु पृथक नहीं रहती। अग्नि के निमित्त से वह ऊष्ण अवस्था नहीं हुई है; यदि ऐसा हो तो वहाँ का आकाश भी ऊष्ण होना चाहिए इसलिये जिसमें जो शक्ति है वह उसरूप होती है।

शरीर की क्रिया से, वाणी से अथवा राग से आत्मा धर्मरूप परिणमित नहीं हुआ है.

यहाँ जो अग्निरूप से परिणमित हुए गोले का दृष्टाँत कहा उससे चारित्र को समझाते हैं।

धर्म कहाँ परिणमित होता है ? धर्म कहाँ होता है ? धर्म का रूप कौन धारण करता है ? वह यहाँ कहते हैं -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा धर्मरूप से परिणमित हुआ है। आत्मा चैतन्य ज्योत शुद्ध है उसकी शक्ति में से अरागी परिणामरूप से परिणमित होता हुआ चारित्र है। ऐशना स्थल में धर्म नहीं है। शरीर इसप्रकार बैठा इसलिये आत्मा का धर्म है - ऐसा नहीं है। माला फेरने का, भगवान का नाम लेने का विकल्प उठा इसलिये आत्मा धर्मरूप हुआ है - ऐसा नहीं है। यह आत्मा स्वयं धर्म का करनेवाला है। दया-दानादि के विकल्प शुभराग हैं वह आत्मा नहीं है। यह आत्मा धर्मरूप से परिणमित होता हुआ ही धर्म है। प्रत्येक पदार्थ अपनी अवस्था के साथ में तन्मय है। यहाँ आत्मा की बात करते हैं।

प्रश्न :- क्या शरीर इसप्रकार बैठा इसलिये सामायिक हुई है अथवा नमोकार मन्त्र पढ़ा इसलिये धर्मरूप परिणमित हुआ है ?

समाधान :- नहीं। जिनका आत्मा निश्चय धर्मरूप से परिणमित हुआ है उन्हें ही सामायिक धर्म होता है। आत्मा पूर्ण चैतन्य वस्तु है, यह आत्मा अरागी परिणाम को स्वयं धारण करता है। पर्याय से आत्मा पृथक नहीं है इसलिये आत्मा धर्म ही है। एक सैकेण्ड के असंख्यातवें भाग में सम्पूर्ण आत्मा है। वह शरीर के परिणाम में कभी भी तन्मय नहीं होता। जंगल में शरीर रहे तो क्या जंगल को आत्मा कहना चाहिये ? नहीं। तो क्या वाणी को, पुण्य-पाप को आत्मा कहना ? नहीं, क्योंकि आत्मा तो शुद्ध चैतन्य आनन्दकंद स्वभावी है; वह एकमात्र पर से पृथकता की श्रद्धा द्वारा स्वसन्मुख रहकर अरागी धर्मरूप - अरागी परिणाम में तन्मय होता है वह - धर्म है।

मोह और क्षोभ रहित निर्मल परिणाम आत्मा स्वयं ही करता है.

प्रश्न :- समाधि लगाने से तो धर्म होता है ना ?

समाधान :- समाधि किसे कहना ? कितने ही बाबा गढ्ढे में बैठे रहते हैं वह समाधि नहीं है। आत्मा शुद्ध आनन्दकंद है उसकी यथार्थ रुचि करके आत्मा में एकाग्र होकर, पुण्य-पाप के परिणाम रहित अरागी परिणामरूप होता है वह - धर्म है। आत्मा धर्मरूप परिणमित हुआ है। जो शुद्ध चिदानन्द - सिध्द समान स्वभाव है उसकी दृष्टि करके और निमित्त व पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर स्वभाव में लीनतारूप जो परिणाम होता है उसे मोह-क्षोभ रहित निर्विकारी परिणाम कहते हैं।

लोग बाहर में धर्म मानते हैं। जिस समय अपने स्वरूपरूप तन्मय पने रहता है, शरीर की क्रिया भले ही उस समय हो किन्तु उसके कारण आत्मा धर्मरूप नहीं हुआ है। लोग तो परजीव की दया पालने को धर्म कहते हैं, उनके माने हुए व्रत-तप को धर्म कहते हैं किन्तु वह धर्म नहीं है क्योंकि आत्मा की समझ बिना कभी भी धर्म नहीं होता। किसी जीव के लिये पुण्य का परिणाम धर्म का रूप धारण करता हो अथवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शरीर की क्रिया धर्म का रूप धारण करती हो - ऐसा कभी नहीं होता। भेद ज्ञानी आत्मा ही धर्मरूप धारण करता है।

प्रश्न :- यदि ऐसा माना जाए तो अकेला निश्चय हो जाता है ?

समाधान :- निश्चय अर्थात् यथार्थ - वह तो वास्तविक स्वरूप है। शरीर की अनेक अवस्था शरीर के कारण हुआ करती है। शरीर की क्रिया को आत्मा परिणमित नहीं कराता और उसे धारण भी नहीं करता। शरीर के परिणाम पुद्गल के परमाणु में तन्मय है किन्तु शरीर के परिणाम आत्मा में आए नहीं है; वैसे ही आत्मा में चारित्र हुआ इसलिये शरीर की अवस्था को ऐसा होना पड़ा हो - ऐसा भी नहीं है।

कोई दया-दान में पाप मनवाते हैं किन्तु वह पाप नहीं - पुण्य है। कोई कहता है पर को बचाने का भाव अधर्म है इसलिये पाप है - तो यह बात असत्य है। परजीव को बचाने का भाव पाप नहीं किन्तु पुण्य है - पुण्य वह आश्रव है और आश्रव को धर्म मानना वह मिथ्यात्व का पाप है; इसलिए कुछ दया-दान का भाव पाप नहीं है। तथा अन्य सम्प्रदायवाले कहते हैं कि - दूसरे जीव को बचाने का भाव धर्म है अथवा कोई कहता है कि यह शुभराग धर्म का कारण है तो उनकी बातें असत्य हैं।

अरागी परिणामरूप से परिणमित हुआ आत्मा स्वयं धर्म है.

बाह्य में नग्नदशा हुई इसीलिए धर्मपना हुआ है - ऐसा नहीं है। अट्ठाईस मूलगुण पालने का शुभराग आया इसलिये चारित्ररूप परिणमित हुआ है - ऐसा भी नहीं है; किन्तु आत्मा ही स्वयं धर्मरूप से परिणमित हुआ है।

सात तत्त्वों में अजीव इसप्रकार परिणमित हुआ है इसलिये धर्म हुआ है ?

नहीं।

पुण्य परिणाम हुआ है तो क्या इसलिये धर्म हुआ है ?

नहीं। स्वयं ज्ञायक शक्ति है, शक्ति में से व्यक्तदशा होती है। व्यवहार के परिणाम रहित होकर जो स्वभाव सहित परिणाम होता है उस अरागी परिणाम को धर्म कहते हैं। धर्म बाहर में नहीं होता। जिस समय जो परिणाम होता है उससे आत्मा पृथक नहीं है। आत्मा का स्वभाव ज्ञायक है; उस स्वभाव के अवलम्बन द्वारा अरागी परिणामरूप से परिणमित हुआ आत्मा स्वयं धर्म है।

यहाँ आत्मा को धर्म कहा है। लोहे का गोला उस समय गर्म है। यहाँ, जिस समय आत्मा ने अपने स्वरूप की दृष्टि की - शक्ति की व्यक्तता की उस पर्याय को धर्म न कहकर उस समय के आत्मा को धर्म कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुस्तक (शास्त्र) से धर्म नहीं होता। देह-मन- वाणी से अथवा मंदिर से धर्म नहीं होता; इसीतरह पुण्य-पाप के परिणाम से भी धर्म नहीं होता। पूर्व के आग्रह को छोड़कर समझे तो समझ में आए - ऐसा है। पूर्व मान्यता को पकड़कर रखे तो अपूर्व सत्य सिद्धान्त समझ में नहीं आता। मध्यस्थ होकर समझना चाहे तो समझ में आए - ऐसा है।

पुण्य परिणाम जानने लायक है किन्तु आदरणीय नहीं है.

पुण्य अर्थात् व्यवहार भी धर्म है और निश्चय भी धर्म है इसतरह दोनों ही धर्म के अंग है - ऐसा अज्ञानी जीव कहते हैं। आत्मा स्वयं धर्मरूप से परिणमित होता हुआ धर्म है; उस समय शुभराग सहचर होता है; इसलिये निमित्त देखकर उसे व्यवहार धर्म कहते हैं किन्तु उसे धर्म मानना वह तो मिथ्यात्व है। दया-दानादि के परिणाम वस्तु है यह बात सही है किन्तु वह धर्म का रूप नहीं है।

''निश्चय सत्यार्थ है और व्यवहार असत्यार्थ है।''

व्यवहार का विषय है यह बात सही है किन्तु व्यवहार पुण्य को धर्म कहता है वह - असत्यार्थ है फिर भी पुण्य को धर्म माने वह मिथ्यात्व है। आत्मा धर्मरूप से परिणमित हुआ है, उस जीव को पुण्य परिणाम सहचर वर्तता है इसलिये उसे व्यवहार धर्म कहा है। वह पुण्य परिणाम पुण्य के रूप में सत्यार्थ है किन्तु वह धर्म के रूप में असत्यार्थ है। पुण्य परिणाम जानने लायक है किन्तु आदरणीय नहीं है। शरीर की क्रिया में धर्म नहीं है।

इसतरह आत्मा का चारित्रपना सिद्ध हुआ। धर्म चारित्र है उसका कारण सम्यक्त्व है। आत्मा को ज्ञायक मूर्ति जानना, निमित्त को निमित्त जानना, पुण्य को पुण्य जानना इसतरह सातों तत्त्वों को पृथक-पृथक जानना वह सम्यक्त्व है। सम्यक् दर्शन चारित्र का मूल है। उस सम्यग्दर्शन का मूल निजकारण परमात्मद्रव्य है। एक समय में परिपूर्ण कारण परमात्मा सम्यक् दर्शन का मूल है, सम्यग्दर्शन चारित्र का मूल है और चारित्र केवलज्ञान का साक्षात् कारण है। सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान, केवलज्ञान का साक्षात् कारण नहीं है।

भावार्थ पर प्रवचन :- आत्मा की निर्विकल्प समतादशा चारित्र है। वह आत्मा का ही स्वभाव है। स्व में प्रवृत्ति वह - चारित्र है। चारित्र वह धर्म है। शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना उसका अर्थ है। आत्मा, स्व समय में रमण करे वह चारित्र है; वह वस्तु का धर्म (स्वभाव) होने से धर्म है; वही यथास्थित आत्मगुण होने से साम्य है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और साम्य वह मोह और क्षोभ हरहित परिणाम है, इसप्रकार चारित्र हुआ। मोह, क्षोभ रहित परिणाम को साम्य भाव कहा था इसप्रकार चारों एक ही हैं। इस गाथा में आचार्य देव ने ऐसा कहा है कि - जैसे ऊष्णता भाव से परिणमित हुआ लोहे का गोला वह स्वयं ही उष्णता है। लोहे का गोला और ऊष्णता पृथक नहीं है; वैसे ही चारित्रभाव से परिणमित हुआ आत्मा स्वयं चारित्र है।

पुण्य-पाप की दृष्टि छोड़कर आनन्दकन्द आत्मा की दृष्टि और लीनता करे तो आनन्द प्रगट हो.

रूढ़िवादी जीव सम्प्रदाय की रूढ़ी में पड़े हुए हैं। शरीर की ताकतवाला शरीर की क्रिया में धर्म मानकर उपवास आदि में लग गया और उपवास तथा प्रोषध में धर्म मानने लगा। बुद्धि की अधिकता वाला आत्मा की बातें करने लग गया - एकान्त शुद्ध मानने लगा किन्तु यदि आत्मा को किसी भी प्रकार से अशुद्धता न हो तो यह दुःख किसका ? तथा कोई कहता है कि आत्मा में आनन्द नहीं है, ईश्वर के सिवाय सभी दुःखी हैं; पैसेवाला पैसे में धर्म मानने लगा - ऐसी मान्यतावाले सभी भूल में है। जिसप्रकार चने में मिठास है; वैसे ही आत्मा में आनन्द विद्यमान है। जैसे चने में मिठास शक्तिरूप है और बाहर में तुरास है। कचास को लेकर भी इसके स्वाद की व्यक्तदशा होने पर तुरास व कचास का नाश होता है और मिठास जो अन्दर पड़ी है वह बाहर आती है जो मिठास है उसकी प्राप्ति है; वैसे ही प्रत्येक आत्मा त्रिकाल ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप विद्यमान है; उसकी दृष्टि करना वह - धर्म है। हिंसा, झूठ, चोरी, पाप - विकार हैं। दया-दानादि पुण्य भी विकार है। इन दोनों की दृष्टि छोड़कर शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा की दृष्टि करे तो धर्म होता है। अधर्म आत्मा की उल्टीदशा है और धर्म आत्मा की सीधीदशा है।

आत्मा का स्वभाव अनादि-अनन्त है। पुण्य-पाप को देखकर तथा निमित्त को देखकर अज्ञानी पर में अपना अस्तित्त्व मानता है; जिससे उसे धर्म नहीं होता। कोई कहता है कि - मुझे धर्म करना है, वह यहाँ बताते हैं। वर्तमान प्रगट पर्याय में धर्म नहीं है किन्तु अधर्म है। हिंसा, झूठ, चोरी पाप है और दया-दानादि पुण्य है किन्तु वे दोनों ही अधर्म है; उन दोनों से रहित मेरा स्वरूप अनन्त ज्ञान शान्तिमय है - ऐसी दृष्टि करना वह धर्म है। शुद्ध चैतन्य की दृष्टि-ज्ञान-रमणता करना इसका अर्थ है। इसतरह अरागी परिणामरूप से परिणमित हुआ वह आत्मा है। अपने स्वभाव से अरागरूप - निर्मलरूप हुआ वह धर्म है। उसरूप आत्मा है अर्थात् धर्मरूप अवस्था और आत्मा पृथक् नहीं है। ऐसे परिणामवाला आत्मा धर्म है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पैसे से धर्म नहीं होता, पैसा तो जड़ है। पैसे का परिणमन उस पदार्थ के काल में हुआ है। प्रत्येक वस्तु उनके काल में वर्तमान वर्तती अपनी अवस्थारूप होती है। दूसरी वस्तु उसकी अवस्था को कभी नहीं करती। शरीर की वृद्धावस्था को तथा सफेद बाल को बदलने की आत्मा में ताकत नहीं है। आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वभावी है उसकी रुचि करके पुण्य-पाप व निमित्त का विश्वास छोड़कर, स्वभाव का विश्वास करके स्वभाव में लीन हो वह - धर्म है। आत्मा स्वरूप में जमे-ठहरे वह धर्म है। आत्मा का स्वरूप निर्मल है उसमें रमण करना वह - चारित्र है। कहाँ रमण करना है ? जिसे इसकी खबर भी नहीं, उसे धर्म नहीं होता। शब्द बोले जाते हैं उसमें धर्म नहीं है।

प्रश्नः- इसके अतिरिक्त अन्य कोई सरल व्याख्या करो ?

समाधान :- जैसे लड्डू तो घी, आटा और शक्कर तीन चीजों से बनता है किन्तु दूसरी चीजों से नहीं बनता; वैसे ही आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप है - वस्तु दुःखरूप नहीं होती। पर के लक्ष्य से दुःख होता है किन्तु मेरा तो दुःख रहित अतीन्द्रिय स्वभाव है। दुःख क्या है ? सुख और दुःख का कारण क्या है ? त्रिकाली स्वभाव क्या है ? इसकी यथार्थ समझ बिना किसी भी प्रकार से, कभी भी धर्म नहीं होता। सच्चे सुख का उपाय, अनन्त काल से जीव ने जैसा माना है उससे पृथक है।

शरीर की शक्तिवाला शरीर की क्रिया में धर्म मानता है, पैसे की ताकतवाला पैसे में धर्म मानता है, बुद्धिमान बात करने में धर्म मानता है; जबकि ऐसा नहीं है। अज्ञानी, संयोग से लाभ-नुकसान मानता है, संयोग को मेरा मानता है वे मेरे आधीन है - ऐसी कर्ता बुद्धि करता है, निमित्त और पुण्य में शान्ति मानता है उससे पलटकर मेरे एकमात्र ज्ञाता स्वभाव में ही शान्ति है ऐसा माने तो विकार रहित शुद्ध अवस्था धारण करे वही धर्म है। आत्मा स्वयं धर्मरूप होता है।

यह संसार परिभ्रमण पहले नहीं था, पहले शुद्ध था और अब अशुद्ध हुआ हो - ऐसा नहीं है। स्वभाव से शुद्ध है किन्तु पर्याय में अनादि से अशुद्धता है उस अशुद्धता का लक्ष्य छोड़कर शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा करके उसमें एकाग्र होकर पूर्ण शुद्धता व्यक्त करे वह - मोक्ष है। पूर्ण अशुद्धता को संसार कहते हैं और जो आंशिक अशुद्धता और आंशिक शुद्धता प्रगट करे वह साधक है, इसप्रकार आत्मा के आधार से होनेवाला अरूपी अतीन्द्रिय चारित्र वह धर्म है और वही समता है। राग मंद हो वह समता नहीं है। पुण्य-पाप के परिणाम को अधर्म कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शरीर आदि पृथक है, विभाव विपरीत है और स्वभाव सामर्थ्यवान है.

दो रोटी और पाव शेर दूध पीए तो चारित्र मानता है। परमाणु कम आए क्या इसीलिए चारित्र हुआ है ? नहीं। कहावत भी है कि - 'दाने-दाने पर खानेवाले का नाम लिखा है।' अर्थात् जो दाना जिसके पास आनेवाला होगा उसी के पास आता है। वस्तु कम आई इसीलिए धर्म हुआ है - ऐसा नहीं है। आत्मा आनन्दकन्द वस्तु है उसका अवलम्बन लेना वही धर्म है। शरीरादि पृथक है, शुभ-अशुभभाव विपरीत ही हैं - ऐसा जानकर मेरा स्वभाव सदा ही अनन्त सामर्थ्यवान है ऐसे स्वीकार द्वारा उसके आश्रय से धर्म होता है। इसके बिना अन्य सभी कुछ निरर्थक है - मरुस्थल में विलाप करने के समान है।

मैं पर की, समाज की व्यवस्था कर सकता हूँ, दूसरे को मार्ग दिखा दूं, काम सही कर दूँ - ऐसा अज्ञानी मानता है। स्वभाव से हट गया वह संसार है। सभी प्रकार के संसार भाव को असार-मलिन-दुःख जानकर उन्हें श्रृद्धा में से त्याग करके, स्व तरफ-आत्मा को-शुद्ध चैतन्य को जानकर उसकी प्रवृत्ति करना वह - चारित्र है। पुण्य के आधार से चारित्र नहीं होता। पुण्य-पाप चारित्र नहीं है। जिसप्रकार बारदाना वह वस्तु नहीं होता, बारदाना वस्तु के साथ ढाई सेर वजन कराता है किन्तु वस्तु समाप्त हो जाने पर बारदाना खाने में नहीं आता; वैसे ही पुण्य-पाप बारदाना है। वह आत्मा के आनन्द में कभी भी काम नहीं आता।

सर्वज्ञ भगवान को इच्छा नहीं है, इच्छा रहित वाणी निकलती है; उनके प्रवचनों का यह सार है। आत्मा के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र होता है - ऐसा यहाँ कहा है।

❁ ❁ ❁

भगवान ने कहा है कि पर्यायदृष्टि का फल संसार है और द्रव्यदृष्टि का फल वीतरागता-मोक्ष है.

- गुरुदेवश्री के वचनामृत, १५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ९

अथ जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वं निश्चिनोति -

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो ॥९॥

अब यहाँ जीव का शुभ, अशुभ और शुद्धत्व (अर्थात् यह जीव ही शुभ, अशुभ, और शुद्ध है ऐसा) निश्चित करते हैं :-

परिणमन करता जीव जब शुभ अशुभ शुद्ध स्वभाव से।
तब शुभ अशुभ या शुद्धमय हो परिणमन स्व भाव से ॥९॥

गाथार्थ :- जीव परिणाम स्वभावी होने से जब शुभ या अशुभभावरूप परिणमन करता है तब शुभ या अशुभ (स्वयं ही) होता है, और जब शुद्ध भावरूप परिणमित होता है तब शुद्ध होता है।

टीका :- जब यह आत्मा शुभ या अशुभरागभावरूप से परिणमित होता है तब जवा कुसुम या तमाल पुष्प के (लाल या काले) रंगरूप परिणति स्फटिक की भाँति, परिणाम स्वभाव होने से शुभ या अशुभ होता है (उस समय आत्मा स्वयं ही शुभ या अशुभ है); और जब वह शुद्ध अराग भाव से परिणमित होता है तब शुद्ध अराग परिणत (रंग रहित) स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव होने से शुद्ध होता है। उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध है। इसप्रकार जीव का शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध हुआ।

भावार्थ :- आत्मा सर्वथा कूटस्थ नहीं है किन्तु स्थिर रहकर परिणमन करना उसका स्वभाव है, इसलिये जैसे-जैसे भावों से परिणमित होता है वैसा-वैसा ही वह स्वयं हो जाता है। जैसे स्फटिक मणी स्वभाव से निर्मल है तथापि जब लाल या काले फूल के संयोग-निमित्त से परिणमित होता है तब लाल या काला स्वयं ही हो जाता है। इसीप्रकार आत्मा स्वभाव से शुद्ध-बुद्ध, एक स्वरूपी होने पर भी व्यवहार से जब गृहस्थदशा में सम्यक्त्व पूर्वक दान पूजादि शुभ अनुष्ठानरूप शुभोपयोग में परिणमित होता है तब स्वयं ही शुभ होता है, और जब मिथ्यात्वादि पाँच प्रत्ययरूप अशुभोपयोग में परिणमित होता है तब स्वयं ही अशुभ होता है और जैसे स्फटिकमणि अपने स्वाभाविक निर्मल रंग में परिणमित होता है तब स्वयं ही शुद्ध होता है; उसीप्रकार आत्मा भी जब निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धोपयोग में परिणमित

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है तब स्वयं ही शुद्ध होता है।

सिद्धान्त ग्रंथ में जीव के असंख्य परिणामों को मध्यम वर्णन से चौदह गुण-स्थानरूप कहा गया है। उन गुण-स्थानों को संक्षेप से 'उपयोग'रूप वर्णन करते हुए प्रथम तीन गुण स्थानों में तारतम्य पूर्वक (घटता हुआ) अशुभोपयोग, चौथे से छट्ठे गुण-स्थान तक तारतम्य पूर्वक (बढ़ता हुआ) शुभोपयोग, सातवें से बारहवें गुण-स्थान तक तारतम्य पूर्वक शुद्धोपयोग और अंतिम दो गुण-स्थानों में शुद्धोपयोग का फल कहा गया है - ऐसा वर्णन कथंचित् हो सकता है ॥ ९॥

* * *

गाथा ९ पर प्रवचन

शुभ-अशुभभाव के समय आत्मा उस पर्याय में, उस परिणाममय है.

जब यह आत्मा दया, दान, भक्ति, अनुकम्पा का शुभराग-कषाय मंदता के पुण्य परिणामरूप होता है, उस समय पुण्य के परिणाम में वह तन्मय है, क्योंकि वह अशुद्ध अवस्था आत्मा की वर्तमान अवस्था का रूप है। यदि अशुद्धता बिल्कुल न हो तो आनन्द प्रगट होना चाहिए।

दूसरा जीव बच गया है तो क्या इसलिये शुभरागरूप हुआ है ?

नहीं। क्योंकि जड़ शरीर से तथा दूसरे आत्माओं से तेरे पुण्य परिणाम पृथक हैं, किन्तु अपनी अवस्था से पृथक नहीं है। आत्मा स्वभाव से शुद्ध है इसलिये वर्तमान प्रगट पर्याय में भी शुद्ध है - ऐसा नहीं है। यदि पर्याय में शुद्धता हो तो परम आनन्द की दशा होनी चाहिए; इसलिये वर्तमान में अशुद्धता है और उसरूप से स्वयं तन्मय होता है। पैसे आदि के दान में यदि राग मंदता हो तो पुण्य है। दया-दानादि के शुभभावरूप से हुआ आत्मा स्वयं उसरूप परिणमित होता है। हिंसा, झूठ, चोरी आदि अशुभ अवस्थारूप से स्वयं परिणमित होता है।

स्फटिक निर्मल है किन्तु उसकी वर्तमान योग्यता जिस-जिस रंगरूप से होने योग्य हो उस काल में वह लाल, काले इत्यादि रंग से स्वयं परिणमित होता है। जैसे स्वयं के कारण को पाकर, स्वयं की वर्तमान योग्यतारूप से स्फटिक हुआ है; वैसे ही आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वभावी है, किन्तु उसकी वर्तमान पर्याय में स्वयं अपनी योग्यतारूप कारण को पाकर स्वयं पुण्य व पापमय अवस्थारूप से होता है। वह परिणाम आत्मा की अवस्था से पृथक नहीं है; इसलिये उसके परिणाम को कोई दूसरा करानेवाला नहीं है; किन्तु स्वयं ही अपने स्वरूप से विमुख होकर पुण्य-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पापरूप आत्मा ही होता है। जड़ कर्म जो कुछ जानता नहीं है इसलिये वह पुण्य-पापरूप नहीं होता। जड़ के कारण पुण्य-पाप के परिणाम नहीं होते। ऐसा स्वतंत्र वस्तु-स्वरूप समझे तो एकमात्र ज्ञाता स्वभाव सन्मुख देखने का अवसर हो और वर्तमान में प्रत्यक्ष शान्ति का अनुभव हो।

भगवान तीर्थंकर को तीन काल - तीन लोक का ज्ञान हुआ और वाणी में जो आया, उसे प्रवचन कहते हैं। उस प्रवचन का सार क्या है ? वह इस प्रवचन सार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं कि - आत्मा स्वयं शुभ अथवा अशुभरूप परिणमित होता है और वे दोनों ही रोग हैं। विकारी क्षयरोग मिटाने के लिए ज्ञानी के पास फोटो (एक्सरे) खिचवाओ।

यहाँ चारित्र क्या है यह बात चलती है। चारित्र वह आत्मा का मोह-क्षोभ रहित परिणाम है। शुभ अथवा अशुभरागभाव से जब आत्मा परिणमित होता है तब वह स्वयं शुभ अथवा अशुभ होता है। आत्मा स्वयं परिणाम स्वभाववाला होने से उस समय वह शुभ अथवा अशुभरूप होता है किन्तु पर के कारण वह शुभ अथवा अशुभरूप नहीं होता। जब हिंसादि पाप भावरूप से परिणमित होता है, तब वह स्वयं अपने परिणाम स्वभाव के कारण अशुभरूप परिणमित होता है और जब वह दया आदि शुभभावरूप से परिणमित होता है तब स्वयं अपने परिणाम स्वभाव से ही शुभरूप होता है किन्तु बाहर की क्रिया के कारण तो वह शुभ-अशुभरूप परिणमित नहीं होता; और जो शुभ परिणामरूप से आत्मा परिणमित हुआ है वह भी धर्म नहीं है। धर्म परिणाम तो मोहादि रहित शुद्ध है।

जैसे १०१ डिग्री अथवा ९९.५ डिग्री बुखार हो वे दोनों ही रोग है। ९८.५ डिग्री बुखार भी कायम रह जाए तो क्षयरोग (टीबी) हो जाय; वैसे ही, शुभ अथवा अशुभ वे दोनों ही रोग है। शुभ की भी रुचि करे तो उसे क्षयरोग हुआ है, इसलिये उसे ज्ञानी के पास फोटो (एक्स-रे) खिचवाना चाहिए। जैसे यहाँ जीथरी के अस्पताल में क्षयरोगवाले फोटो खिंचवाते हैं; वैसे ही ज्ञानी के पास फोटो खिचवाना समझना चाहिए।

रोग क्या है ?

भाई,तेरे आत्मा में शुभ अथवा अशुभ ये दोनों ही रोग है इसलिये उनकी रुचि छोड़ तो तेरा क्षयरोग मिटे।

जैसे सिद्ध परमात्मा शुद्ध है वैसा ही इस आत्मा का परमात्म स्वभाव है। सिद्ध कहाँ से हुए हैं ? कहा कि - आत्मा में शक्ति थी उसमें से प्रगट करके सिद्ध हुए हैं -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'सिद्ध समान सदा पद मेरो'

ऐसी पहले प्रतीति करो। भाई! शुभ और अशुभ ये तो दोनों ही रोग है, उस रोग की रुचि से तेरी श्रद्धा में दाग लगा है - क्षयरोग लगा है। ज्ञानी, ज्ञान द्वारा फोटो खींचकर कहते हैं कि - भाई! तेरे आत्मा में यह तो ऊपर का जरा सा रोग है किन्तु अन्दर तो शक्ति सम्पूर्ण चोखी (शुद्ध) है। 'सिद्ध समान स्वरूप है,' उसे प्रतीति में ले तो तेरा यह रोग मिटे और संसार भ्रमण टले।

पहली बड़ी भूल :- अज्ञानी की पहली बड़ी भूल यह है कि - वह जड़ के कारण अथवा शरीर की क्रिया के कारण, पर जीव मरे अथवा बचे उसके कारण अथवा पैसे के कारण मुझे पुण्य-पाप का भाव होता है - ऐसा मानता है किन्तु यह बात असत्य है। आचार्य भगवान कहते हैं कि - भाई! तेरा आत्मा ही परिणाम स्वभाववाला है इसलिये वह स्वयं शुभ अथवा अशुभ परिणामरूप परिणमित होता है। जड़ के परिणाम जड़ में है और तेरे परिणाम तेरे में है। अजीव की क्रिया से मुझे पुण्य-पाप हुए हैं - ऐसा माननेवाला अजीव का स्वामी होता है अर्थात् वह मिथ्यादृष्टि है। अजीव का स्वामी तो अजीव होता है उसके बदले जो जीव को, अजीव का स्वामी मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

अज्ञानी की दूसरी बड़ी भूल :- अब अपने परिणाम से जो शुभभाव होता है - मंद कषाय होती है वह भी राग है-रोग है किन्तु वह उस रोग के द्वारा धर्म का होना मानता है यह अज्ञानी की दूसरी बड़ी भूल है। पैसा आया इसीलिये पुण्य हुआ - ऐसा माननेवाले ने जड़ से पुण्य का होना माना - यह बड़ी भूल हुई; और उस पुण्य से धर्म माना वह भी बड़ी भूल है। यहाँ आचार्य ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन द्वारा फोटो खींचकर कहते हैं कि - शुद्ध ज्ञान तत्त्व में पुण्य-पाप की लगार भी नहीं है। पुण्य-पाप की लगार तो रोग है। पैसा तो दे पर अभिमान करे तो, पुण्य भी नहीं होता किन्तु पाप होता है। लेकिन यदि इस जीव के दया के परिणाम होने पर भी दूसरा जीव मर जावे तो इसे पाप नहीं होता।

चक्रवर्ती जैसा छह खण्ड का राज्य हो, राग भी हो फिर भी उस समय यदि उसे अन्तर में पुण्य-पाप रहित चिदानन्द तत्त्व का भान है तो वह धर्म है; वह भी जीव का परिणाम है।

जीव परिणाम स्वभाववाला त्रिकाली है - उसके परिणाम तीन प्रकार के हैं.

जीव तो त्रिकाली तत्त्व है। तीनों काल वह परिणाम स्वभावी है स्वयं ही बदलने के स्वभाववाला है। निमित्त के कारण परिणाम बदलते हैं - ऐसा नहीं है; किन्तु स्वयं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही ध्रुव रहकर बदलने के स्वभाववाला होने से स्वयं के परिणामरूप बदलता है। शुभ, अशुभ और शुद्ध ये तीन प्रकार के परिणाम हैं। उसमें शुभ अथवा अशुभ दोनों ही परिणाम धर्म नहीं किन्तु रोग है। धर्म तो शुभाशुभ, मोह-क्षोभ रहित शुद्ध परिणाम है।

जैसे स्वर्ण स्वयं बदलकर चैन, कंगन, हार इत्यादि परिणामरूप होता है; लेकिन कोई सोनी उसरूप नहीं होता; वैसे ही आत्मा स्वयं अपने परिणामरूप पलटता है। देखो ! धर्मी को भी शुभाशुभ परिणाम होते हैं, किन्तु उस समय भी राग रहित ज्ञानानन्द तत्त्व की दृष्टि रहती है उसे वे चूकते नहीं - वही धर्म है। ज्ञानी को भी जो शुभ है वह भी धर्म नहीं है, किन्तु उस समय वर्तती अन्तर की दृष्टि ही धर्म है।

जैसे स्फटिक स्वभाव से तो उज्जवल ही है, किन्तु जब वह लाल अथवा काले फूल के संयोग निमित्त से स्वयं परिणमित होता है, उस समय वह स्वयं काले अथवा लाल रंगरूप से परिणमित हुआ है; वैसे ही आत्मा राग रहित ज्ञानानन्द स्वभावी होने पर भी, स्वयं शुभ अथवा अशुभरूप से परिणमित होता है, तब वह स्वयं शुभ अथवा अशुभरूप होता है, क्योंकि स्वयं परिणाम स्वभाववाला है।

अब शुभाशुभ परिणाम होने का ही कुछ स्वभाव नहीं है किन्तु शुभाशुभ रहित ऐसे शुद्ध परिणामरूप भी वह होता है - यह कथन करते हैं। जैसे वही स्फटिक जब शुद्ध अरंग स्वभाव से परिणमित होता है, तब वह स्वयं शुद्ध है; वैसे ही आत्मा भी जब अपने ज्ञानानन्द स्वभाव में एकाग्र होकर राग रहित शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है, तब वह स्वयं शुद्ध ही होता है; उस शुद्ध परिणामरूप से भी जीव, अपने परिणाम स्वभाव से ही (परिणमित) होता है, किन्तु किसी पर के कारण नहीं। किसी क्षेत्र-काल अथवा कर्म के कारण जीव परिणमित नहीं होता।

'जिस समय परिणाम है उस समय' - ऐसा कहकर उस-उस पर्याय का स्वकाल बताया है। आठवीं गाथा में भी यही कहा है कि - 'जिस भाव में प्रणवे दरव, ते काल तन्मय ते कह्यूं।' ज्ञानी को पुण्य परिणाम होता है, किन्तु उनका वह कामी (इच्छुक) नहीं। अपने परिणाम में उतना विकार है, किन्तु उनके वे कामी नहीं - उनमें तन्मयता नहीं। अन्तर में ज्ञानानन्द स्वभाव की दृष्टि छूटती नहीं। यहाँ मुख्यरूप से मुनिदशा की बात है। मुनिदशा में जो राग रहित शुद्धोपयोग है वह - चारित्र है; किन्तु जो राग है वह चारित्र नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा शुभाशुभरागरूप नहीं होता और अन्तर स्वरूप में लीन होकर राग रहित शुद्धोपयोगरूप होता है उसका नाम चारित्र है.

प्रश्न :- ऐसा चारित्र हो और वस्त्रादि भी हो, तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर :- ऐसा कभी नहीं होता। भाई ! आत्मा की ऐसी शुद्धोपयोगी चारित्रदशा प्रगट हुई हो वहाँ इतनी वीतरागता हो जाती है कि देह के ऊपर वस्त्रादि ढांकने की वृत्ति ही नहीं होती - ऐसी ही सहजदशा होती है। इसके सिवाय जो वस्त्र सहित मुनिपना माने अथवा मनवाए वे सभी बिगड़े हुए दूध जैसे हैं - मोक्ष मार्ग से भ्रष्ट हैं। जैसे अच्छा मही (छांछ) तो रोटी के साथ खाई भी जाती है, किन्तु बिगड़ा (फटा) हुआ दूध काम नहीं आता। यदि कोई बिगड़ा हुआ दूध खाय तो उल्टी हो जायगी; वैसे ही सम्यक्दृष्टि गृहवास में रहते हुए भी यदि उनकी श्रद्धा-ज्ञान शुद्ध है तो वह अच्छी छांछ जैसा है अर्थात् वह तो मोक्ष मार्ग का आराधक है और जो मिथ्यादृष्टि, मुनि नाम धराते हैं तो भी वे श्रद्धा से भ्रष्ट हैं - बिगड़े हुए दूध के समान है, वे सभी मोक्षमार्ग का विरोध करनेवाले हैं। जो वस्त्र सहित मुनिदशा मानते हैं वे भी मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हैं - विरोधक हैं।

देखो ! यह वीतराग का प्रवचन है। जिसमें वस्त्र सहित मुनिदशा मनवायी हो वह वीतराग के प्रवचन ही नहीं है। वर्तमान में महाविदेह में सीमंधर परमात्मा साक्षात् विराजमान है, उनकी दिव्य ध्वनि में ऐसा प्रवचन आया था। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ साक्षात् गये थे और उन्होंने भगवान की दिव्य ध्वनि आठ दिन सुनी थी, उसके पश्चात् इन शास्त्रों की रचना की थी। इसमें भगवान के प्रवचन का सार है।

जैसे स्फटिक रंग के निमित्त के सम्बंध रहित अकेले शुद्धरूप परिणमित होता है; वैसे ही आत्मा निर्मल स्वभाव का भान करके, निमित्त के अवलम्बन रहित, पुण्य-व्यवहार के परिणाम के अवलम्बन रहित - अकेले निश्चय एक ज्ञातापने में परिणमित होता है। आत्मा शुद्ध परिणाम को धारण करता है - इसलिये शुद्ध है। स्वभाव में शुद्ध ही है - अशुद्ध नहीं। अशुद्ध तो, क्षणिक पर्याय में, स्वयं चूककर पर के अवलम्बन से नया अशुद्ध परिणमन करता है। कहा भी है -

'अपने को आप भूलकर - हैरान हो गया।'

जीव स्वयं अपने को भूलकर पुण्य-पापरूप - अशुद्धरूप होता है और अपने निर्विकाररूप को देखकर शुद्ध होता है और जब वह स्व-द्रव्य में एकाग्र होता है तब शुद्ध होता है और उसी में विशेष स्थिरता करे तो मुक्ति होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा सर्वथा कुटस्थ नहीं है। जैसे पानी ध्रुव रहकर उसकी तरंग (लहर) बदलती है; वैसे ही आत्मा स्वभावरूप रहकर नई-नई अवस्थारूप बदलता है। आत्मा स्वयं परिणामी होने से, स्वयं ही पर्याय में विभावरूप अथवा स्वभावरूप परिणमित होता है। विभाव अर्थात् पुण्य-पाप का भाव भी आत्मा का पर्यायरूप विभाव स्वभाव है किन्तु मिथ्यात्व कर्म के कारण मिथ्यात्वरूप परिणमित होता हो - ऐसा पर्याय स्वभाव नहीं है, अपितु स्वयं उस काल की योग्यता से - विभावरूप परिणमित होता है। द्रव्य-कर्म तथा शरीर की अवस्था वह जड़ की क्रिया है; उनसे जीव के परिणाम का अस्तित्त्व नहीं है।

'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।
बीजू कहिअे केटलूं, कर विचार तो पाम॥'

आत्मा स्वभाव से शुद्ध, बुद्ध, एक चैतन्यघन है - ऐसे निज स्वरूप का भान होने पर भी गृहस्थदशा में सम्यक्दृष्टि को स्वसन्मुखता पूर्वक दान-पूजादि शुभाचरणरूप शुभोपयोग होता है, वह आ जाता है, किन्तु वे उसे पुण्य मानते हैं धर्म नहीं। मुनि धर्मात्मा के प्रति भक्ति-विनय का राग होता है। अन्य के प्रति दानादि में करूणा भाव होता है, किन्तु किसी भी राग को वे भला नहीं मानते। मुनि को अट्ठाईस मूलगुण के शुभ विकल्प उठते हैं, उत्तरगुण क्षमादि अनेक प्रकार की शुद्धि के जो विकल्प होते हैं वे शुभभाव हैं, उनके आने पर भी उन्हें वे धर्म नहीं मानते। शुभभाव करते-करते धीरे-धीरे धर्म हो जाएगा - ऐसा वे नहीं मानते। जो शुभ से परम्परा से धर्म होना मानकर उसकी रुचि का पक्ष करते हैं, वे तत्त्व का विरोध करते हैं। **"इसलिये मिथ्यादृष्टि का शुभभाव तो परम्परा से, सर्व अनर्थ का कारण है।"**

धर्म के नाम से पुण्य करके अनन्तबार नौवे ग्रैवेयक गया फिर वहाँ से नीचे गिरकर, पाप करके परम्परा से नर्क-निगोद में चला जाता है। शुभ परिणाम की रुचि वह पुण्य-पाप की रुचि है; क्योंकि उसकी शुभ-राग के संयोग के ऊपर दृष्टि पड़ी है, इसलिये उसकी ज्ञाता मात्र स्वभाव के ऊपर अरुचि वर्तती है; इसलिए वस्तु स्वभाव के विरोध का फल नर्क-निगोद है। संयोग तो बाद में संयोग के काल में मिलेंगे, किन्तु उनके वेदन में उसी समय मिथ्यात्व की सेवा का फल वेदकर, उसका वर्तमान परिणाम नर्क-निगोद के वेदनरूप ही है।

इसलिये भगवान आत्मा को निश्चय दृष्टि द्वारा पहिचान कर, पुण्य-पाप की रुचि व पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर, स्वाश्रय-स्वभाव में एकता बुद्धि द्वारा निर्मलानन्द की रुचि-ज्ञान-एकाग्रतारूप से परिणमित होना वही सच्ची सेवारूप धर्म है। पुण्य की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचि वही मिथ्यात्वरूपी बड़ा अशुभ (पाप) है। अनन्त गुण का पिंड भगवान आत्मा है; जिसमें से अविरल अनन्त आनन्द निकल सकता है; जो उसका आदर-आश्रय-रुचि तो नहीं करता तथा उससे धर्म का होना नहीं मानता - उसका शुभ, शुभ नहीं कहलाता इसीलिए -

१. मिथ्यादृष्टि को मुख्यरूप से अशुभ परिणामी कहा है। मिथ्यादृष्टि को शुभराग होता है किन्तु उसे गौण करके अशुभ उपयोगी कहा है, क्योंकि अज्ञानी शुभ में अधिक समय नहीं रहता, उसे तो तत्त्व का विरोध है इसलिए वह शुभ को छोड़कर पाप करके निगोद में - तीव्र अशुभ में अनन्त काल रहता है और,

२. चौथे से छटवें गुणस्थान तक तारतम्य पूर्वक बढ़ता-बढ़ता शुभोपयोग, सातवें से बारहवें गुण-स्थान तक बढ़ता-बढ़ता शुद्धोपयोग और अंतिम दो गुणस्थानों में तो शुद्धोपयोग का फल है - ऐसा वर्णन कथंचित् हो सकता है।

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। यथार्थपने वस्तु स्वरूप को जाने उसका नाम धर्म है। आत्मा का स्फटिक मणी के समान शुद्ध स्वरूप है। ज्ञानी को यथार्थ भान सहित जागृति वर्तती है फिर भी जबतक पर्याय में पूर्ण वीतरागता नहीं होती, तबतक भूमिका अनुसार आंशिक राग-द्वेष होता है। धर्म और अधर्म आत्मा की वर्तमान पर्याय में होता है।

एक समय में परिपूर्ण ज्ञायक स्वरूप हूँ, और इसके अवलम्बन से ही धर्म-शान्ति, सुख और सुख का उपाय होता है। पुण्य-पाप की वृत्ति दया-दान, व्रत, भक्ति, प्रभावना का शुभभाव धर्मी को आ जाता है, किन्तु उसे वे पुण्य बन्ध का कारण मानते हैं किन्तु किसी भी प्रकार के राग को भला नहीं मानते; क्योंकि पुण्य और पाप दोनों ही बंधन की बेड़ी है। सोने की बेड़ी भी बंधन है - निन्द्यपना बताती है किन्तु पूज्यत्व नहीं बताती। निर्मलानन्द स्वभाव की दृष्टि करके उसमें एकाग्रता द्वारा अनुभव करे वह निर्मल वीतराग भाव है और वही पूज्यत्व बताता है। अन्य मत में कि जहाँ सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, नौ तत्त्व, छह द्रव्य का स्वरूप ही यथार्थ नहीं है - उसे तो अंश मात्र भी वीतराग भावरूप धर्म नहीं होता।

यहाँ धर्मी जीव को साधकदशा में क्या होता है वह बताया है और उसके उपयोग के तीन भेद बताए हैं। अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग के भेद से आचरण में कहाँ किसप्रकार की मुख्यता है वह जानना चाहिए। यहाँ चारित्र गुण के तीन प्रकार की परिणति को आचरणरूप उपयोग कहते हैं।

(१) मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व के कारण से उसके स्थूल पुण्य को न गिनकर उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुख्यरूप से अशुभ उपयोगी कहा है। चौथे गुणस्थान से धर्म की शुरुवात होती है। प्रथम तीन गुणस्थानों में घटता-घटता अशुभोपयोग है।

(२) चौथे गुण-स्थान से शुद्ध उपयोग की शुरुवात होती है। गृहस्थदशा में किसी समय निर्मलानन्द निर्विकल्प एकाग्र लीनतारूप स्वसन्मुख उपयोग जम जाता है उस समय शुद्ध उपयोग है किन्तु उसकी मुख्यता न गिनकर मुख्यरूप से सम्यक्दृष्टि-चौथे गुणस्थानवाले को, श्रावक पंचम गुणस्थानवाले को और छटवें गुणस्थानवाले को शुभ उपयोगी कहा है। छटवें गुणस्थान में निर्विकल्पदशा में नहीं होता इसलिए चौथे से छटवें गुणस्थान को शुभोपयोग आचरण की अपेक्षा से मुख्यरूप से शुभोपयोगी कहा गया है।

(३) मुनि को बारम्बार सातवें गुण-स्थान में, निर्विकल्प शुद्धोपयोग वर्तता है। स्वरूप में लीनता द्वारा सिद्ध परमात्मा जैसा अतीन्द्रिय आनन्द वर्तता है। उस शुद्ध उपयोग का बढ़ना सातवें से बारहवें गुण-स्थान तक कहा है तथा तेरहवें और चौदहवें गुण-स्थान में शुद्धोपयोग का फल है।

मिथ्यादृष्टि मंदकषाय करके दया-दान, व्रतादिरूप में शुभराग करे तो वह पुण्य बांधकर नवमीं ग्रैवेयक तक जाता है, फिर भी उसके शुभ को शुभ न गिनकर मिथ्यारुचि के कारण से उसे अशुभ उपयोग कहा है। उसकी दृष्टि शुभाशुभभाव के स्वामित्व में है। दया-दान, पूजा-भक्ति, व्रतादि के भाव जो पुण्य है उसे जो धर्म मानता है, उसे मिथ्यात्व की अशुभता के आगे उसके वर्तमान शुभ (पुण्य) परिणाम की गिनती नहीं करते हुए उसे अशुभ कहा है, क्योंकि अभिप्राय में तीनों काल के लिये तत्त्व का विरोधरूप अशुभभाव निरंतर वर्तता है। इसलिए वह निमित्त से लाभ-नुकसान मानकर, अशुभराग को धर्म मानकर वह ज्ञाता स्वभाव से विपरीतता की ही पुष्टि करता है।

पुण्य-पाप दोनों ही विभावरूपी चंडालनी के पुत्र हैं। मिथ्यादृष्टि कभी वर्तमान शुभ से बीस कोड़ा-कोड़ी सागर की स्थिति का पुण्य बांधेगा, किन्तु उसकी दृष्टि में विभाव की रुचि होने से वह लंबे समय तक शुभ में नहीं रहेगा और शुभ को तोड़कर अशुभ में-निगोद में जायगा। तीसरे गुण-स्थान तक अशुभ की तारतम्यता है।

चौथे-पाँचवें गुण-स्थान में बुद्धिपूर्वक विकल्प से छूटकर अभेद निर्विकल्प ज्ञानानन्द में लीन होकर, सिद्ध परमात्मा समान अतीन्द्रिय आनन्द को, अंर्तमुख उपयोग के समय अनुभव करता है; और उस समय सर्प काट जाय अथवा शरीर में अग्नि लग जाए तो भी उसका वेदन नहीं होता - उसकी ख़बर भी नहीं पड़ती - ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान में आनन्द की लीनता का होना वह शुद्धोपयोग है। ज्ञानी जानते हैं कि - स्वसन्मुख एकाग्रता में जमने पर जो लीनता का अतीन्द्रिय आनन्द आता है वह धर्म है; किन्तु शुभराग आता है वह - धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं है। शुभाशुभ भाव और शुद्ध-परिणाम में निरंतर उपयोग नीचे नहीं होता किन्तु धर्मी जीव को स्वभाव के आलम्बन में, जितनी जागृति है उतना धर्म निरन्तर वर्तता है।

छटवें गुण-स्थान में तीन कषाय के अभाव पूर्वक आनन्द-शान्ति-निर्मलदशा निरंतर होती है, किन्तु सातवें गुण-स्थान बिना निर्विकल्प शुद्धोपयोग नहीं होता। मुनि को अन्तर मुहुर्त पें बारम्बार निर्विकल्प शुद्धोपयोगरूप सातवां गुण-स्थान आया करता है। यदि अन्तर मुहुर्त से अधिक समय, छटवें गुण-स्थान में रहे तो मिथ्यादृष्टि हो (गुणस्थान बदल) जाता है।

स्वरूपाचरण चारित्र में सभी भाव लिंगी मुनि समान हैं; किन्तु स्वसन्मुख ज्ञानोपयोग किसी भी मुनि को निरन्तर नहीं होता; क्योंकि यह उपयोग भावश्रुत ज्ञान होने से लब्ध और उपयोग हुआ करता है। जब मति ज्ञान उपयोगरूप होता है, तब श्रुतज्ञान उपयोगरूप नहीं होता, किन्तु उसका लब्धरूप परिणमन होता है और उस समय किसी को अवधि, मनःपर्यय ज्ञान, उघाड़ (प्रगट)रूप हो तो भी वह लब्धरूप होता है। एक समय में एक ज्ञान उपयोगरूप होता है।

मुनि को भी निर्विकल्प शुद्धोपयोग निरन्तर नहीं होता; किन्तु तीन कषाय के अभावरूप स्वरूपाचरण चारित्र तो समान और निरन्तर होता है; तथा छद्मस्थदशा में किसी को ज्ञान कम हो, किसी को ज्ञान बहुत हो फिर भी भूमिका अनुसार स्वरूपाचरण चारित्र तो समान होता है। उसमें लब्ध और उपयोग नहीं है; किन्तु जानने देखनेरूप उपयोग, छद्मस्थदशा में लब्ध और उपयोगरूप भेद होता है। यहाँ पहले से बारहवें गुणस्थान तक में अल्पज्ञता होती है; उसे अशुभ, शुभ और शुद्ध आचरणरूप उपयोग में जुड़ने की अपेक्षा से, जहाँ जो घटित होता है वैसा भेद करके वर्णन किया है।

स्वरूप में आचरण-स्थिरता उसे यहाँ आचरण कहते हैं; किन्तु देह की क्रिया व शुभ विकल्प वह आत्मा का आचरण नहीं है। निर्विकल्प शुद्धोपयोग की लीनता बढ़कर पूर्ण हो यह शुद्धोपयोग का फल है।

निश्चय से, प्रत्येक समय की स्वसन्मुखता की शुद्धता वही कारण और वही कार्य है। कारण का फल बाद में नहीं होता अपितु किन्तु प्रत्येक समय में है।

अशुभ, शुभ अथवा शुद्ध वह परिणाम, परिणामी से होता है। किसी पर द्रव्य-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षेत्र-काल और पर-द्रव्य के भाव से किसी दूसरे का परिणाम नहीं होता। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर देव की धर्म सभा में भी श्रवण करने गये फिर भी - 'केवली आगल रही गयो कोरो'- निमित्त से कुछ नहीं हुआ, इसलिये स्वयं ही परिणाम स्वभाववाला होने से तीन प्रकाररूप परिणमित होता है। ध्रुव रहकर बदलना, स्वयं का स्वभाव है। प्रत्येक आत्मा स्वयं ही बदलने के स्वभाववाला होने से मिथ्यात्व, रागादिरूप से, स्वयं अपने से परिणमित होता है। मिथ्यात्व के अशुभ परिणाम भी स्वयं करता है, कोई दूसरा उसे करानेवाला नहीं है।

जैसे पहले अशुभभाव होता है, उसके कारण शुभभाव होता हो - ऐसा नहीं है, वैसे ही पहले शुभभाव होता है उसके कारण शुद्ध भाव होता है ऐसा भी नहीं है; किन्तु समय-समय अपनी योग्यतानुसार बदलने के स्वभाव के कारण तीन प्रकार के परिणाम द्वारा स्वयं बदलता है। इसप्रकार सर्वज्ञ भगवान की वाणी में वस्तु का स्वतंत्र स्वभाव कहा गया है।

यदि,अग्नि से लोहा गरम होता हो तो आकाश भी गरम होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता। जिसमें जो शक्ति है वह बदलकर उसरूप होती है। जैसे लोहे का गोला अग्निरूप से हुआ वह उसके सामर्थ्य से, उस समय वह उस भाव में तन्मय है; वैसे ही आत्मा उपयोग स्वरूप परिणामी होने से जिस समय में, जिस परिणामरूप से परिणमित होता है, उस समय में वह उस भाव से तन्मय है; उसे कोई भी आगे-पीछे करने में समर्थ नहीं है। परिणाम बदलनेवाला आत्मा स्वयं से है, इसलिये वह किसी निमित्त के कारण नहीं बदलता।

अशुभ, शुभ और शुद्ध परिणाम में, अनन्त आत्माएं, उसप्रकार के स्वाभाव के कारण बदलनेवाले हैं - ऐसा प्रसिद्ध होता है। जीव का यह परिणमन किसी अन्य के कारण से हुआ है - ऐसा नहीं है।

आत्मा नित्य, अनन्त गुणों का पिंड, पूर्ण निर्मल स्वभाव से परिणमन के स्वभाववाला है; किन्तु उसे भूलकर राग और संयोग में एकताबुद्धि द्वारा मिथ्यात्व आदि विभावरूप से स्वयं परिणमित होता है किन्तु कोई कुदेवादि मिले हैं इसलिए मिथ्यात्वादिरूप परिणमित हो रहा है - ऐसा नहीं है।

विभाव को भी यहाँ स्वभाव कहा है। लोग कहते हैं कि - विभाव तो निमित्त से होता है; यदि वह निमित्त बिना हो तो वह स्वभाव हो जाये ? किन्तु ऐसा भी नहीं है; क्योंकि जीव जब स्वयं विभावरूप परिणमित होता है तो - अन्य को निमित्त कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

असंज्ञीपने तक तो जीव, कर्म के जोर के कारण, मिथ्यात्वादिरूप से परिणमित होता हो - ऐसा नहीं है; किन्तु प्रत्येक समय में, प्रत्येक अवस्था में जीव, स्वतंत्र परिणाम स्वभावी होने से, विभाव स्वभावरूप से भी, स्वयं ही अपने परिणाम में परिणमित हो रहा है। इसप्रकार सर्वप्रथम स्वतंत्रता को स्वीकार करे तो उसे यथार्थ जाननेवाले का - कहनेवाले का ज्ञान हो तथा स्वतंत्र वस्तु स्वभाव की दृष्टि हो और स्वसन्मुख श्रद्धा-ज्ञान सहित आंशिक स्वरूपाचरणरूप धर्म की शुरुवात हो। परिणामी स्वतंत्ररूप से अपने परिणामों को ही धारण करनेवाला होने से, प्रत्येक आत्मा स्व-द्रव्य के आश्रय से ही धर्म अर्थात् सुख प्रगट कर सकता है। ऐसा यथार्थपने स्वीकार करे-समझे तो उसे इसी समय वर्तमान में सच्ची शान्ति का अनुभव होता है।

यह मनुष्य अवतार धारण करके यदि भव के अन्त की भनक अन्तर में जागृत नहीं की तो जीवन किस काम का ? जिसने जीवन में भव से छूटने का उपाय नहीं किया उसके और कीड़ो-कौओं के जीवन में क्या फर्क है ? सत्समाग से अन्तर के उल्लासपूर्वक चिदानन्द स्वभाव का श्रवण करके, उसकी प्रतीति करते ही तेरे आत्मा में भवान्त की भनक आने लगेगी. इसलिये भाई ! सत्समागम से भव-भ्रमण के अन्त का यह उपाय शीघ्र कर.

- गुरुदेवश्री के वचनामृत, १४७

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १०

अथ परिणामं वस्तुस्वभावत्वेन निश्चिनोति -

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो ॥१०॥

अब, परिणाम वस्तु का स्वभाव है यह निश्चय करते हैं :-

ना अर्थ है परिणाम बिन ना अर्थ बिन परिणाम है।
स्वद्रव्य गुण पर्याय स्थित सत्त्व रचित पदार्थ है ॥१०॥

गाथार्थ :- इस लोक में परिणाम के बिना पदार्थ नहीं है, पदार्थ के बिना परिणाम नहीं है; पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय में रहनेवाला और (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय) अस्तित्त्व से बना हुआ है।

टीका :- परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्त्व धारण नहीं करती, क्योंकि वस्तु द्रव्यादि के द्वारा (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से) परिणाम से भिन्न अनुभव में (देखने में) नहीं आती, क्योंकि (१) परिणाम रहित वस्तु गधे के सींग के समान है, (२) तथा उसका, दिखाई देनेवाले गोरस इत्यादि (दूध, दही वगैरह) के परिणामों के साथ विरोध आता है। (जैसे - परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्त्व धारण नहीं करती उसीप्रकार) वस्तु के बिना परिणाम भी अस्तित्त्व को धारण नहीं करता, क्योंकि स्वाश्रयभूत वस्तु के अभाव में (अपने आश्रयरूप जो वस्तु है वह न हो तो) निराश्रय परिणाम को शून्यता का प्रसंग आता है।

और वस्तु तो ऊर्ध्वता सामान्य स्वरूप द्रव्य में, सहभावी विशेषस्वरूप (साथ ही साथ रहनेवाले विशेष-भेद जिनका स्वरूप है ऐसे) गुणों में तथा क्रमभावी विशेषस्वरूप पर्यायों में रही हुई और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्त्व से बनी हुई है, इसलिए वस्तु परिणाम-स्वभाववाली ही है।

भावार्थ :- जहाँ-जहाँ वस्तु दिखाई देती है वहाँ-वहाँ परिणाम दिखाई देता है। जैसे - गोरस अपने दूध, दही, घी, छाछ इत्यादि परिणामों से युक्त ही दिखाई देता है। जहाँ परिणाम नहीं होता वहाँ वस्तु भी नहीं होती। जैसे कालापन, स्निग्धता इत्यादि परिणाम नहीं हैं तो गधे के सींगरूप वस्तु भी नहीं है। इसलिए सिद्ध हुआ कि वस्तु परिणाम रहित कदापि नहीं होती। जैसे वस्तु परिणाम के बिना नहीं होती

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसीप्रकार परिणाम भी वस्तु के बिना नहीं होते, क्योंकि वस्तुरूप आश्रय के बिना परिणाम किसके आश्रय से रहेंगे ? गोरसरूप आश्रय के बिना दूध, दही इत्यादि परिणाम किस के आधार से होंगे ?

और फिर वस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्यायमय है । उसमें त्रैकालिक ऊर्ध्व प्रवाह-सामान्य द्रव्य है, और साथ ही साथ रहनेवाले भेद वे गुण हैं, तथा क्रमशः होनेवाले भेद वे पर्यायें हैं । ऐसे द्रव्य, गुण पर्याय की एकता से रहित कोई वस्तु नहीं होती । दूसरी रीति से कहा जाये तो, वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है अर्थात् वह उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और स्थिर रहती है । इसप्रकार वह द्रव्य-गुण-पर्यायमय और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय होने से उसमें क्रिया (परिणमन) होती ही रहती है । इसलिए परिणाम वस्तु का स्वभाव ही है ॥१०॥

* * *

गाथा १० पर प्रवचन

टीका पर प्रवचन :- भगवान की वाणी में यह आया कि - परिणाम के बिना वस्तु अस्तित्त्व को धारण नहीं करती । प्रत्येक समय में वस्तु ध्रुव रहकर बदलती है जगत के जितने भी पदार्थ हैं, यदि वे नित्य होने पर भी अवस्थांतरपने नहीं बदलें तो अंश के बिना अंशी वस्तु ही न हो । अंश-पर्याय, अंशी-परिणामी के बिना नहीं होती और परिणामी अर्थात् अंशी-द्रव्य बिना, परिणाम नहीं होते इसलिए निश्चित होता है कि - परवस्तुओं की अवस्था को करने में कोई समर्थ नहीं है, क्योंकि सभी पदार्थ स्वयं अपने परिणाम (स्वभाव) वाले हैं । वस्तु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से परिणाम से पृथक देखने में नहीं आती ।

परिणाम के बिना वस्तु गधे के सींग के समान है । भगवान ने अपनी स्वसन्मुख दृष्टि-ज्ञान-स्थिरतारूप परिणमन द्वारा अतीन्द्रिय, अविनाशी मोक्ष-सुखदशा को प्रगट किया है और वैसे ही उसीप्रकार के मार्ग का उपदेश दिया है । प्रत्येक वस्तु सत् है वह ध्रुव रहकर अपनी नई-नई पर्याय प्रगट करती है ।

जो होता है वह नहीं जाता और जो नहीं होता वह नया नहीं होता । 'है' वह अपने अनन्त गुण स्वभावरूप ध्रुव रहकर, अपनी योग्यता अनुसार भावान्तररूप परिणमित होता है । यदि, पदार्थ सत् है और उसका परिणमन नहीं मानना अथवा कोई पर द्रव्य-क्षेत्र-काल और पर-भाव से वह पलटता है इसप्रकार पर से उनके परिणाम का अस्तित्त्व मानना ये सभी मिथ्या-मान्यताएं है । सोना सामान्य है, वह ध्रुव रहकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसके अनेक गहनेरूप परिणाम होते हैं।

कोई कहता है कि विभाव मेरे में बिल्कुल (अर्थात् पर्याय में भी) नहीं है; यदि ऐसा हो तो मोक्षदशा - पूर्ण निर्मलदशा होना चाहिये ? कहाँ तो पूर्ण निर्मल और कहाँ सर्वथा मलिन। कहाँ तो साधकदशा में आंशिक समल-निर्मल होता है, किन्तु अवस्था (परिणाम के) बिना पदार्थ नहीं होता। अनादि से समय-समय परिणाम तो होता ही है, किन्तु अज्ञान से विकारी परिणाम किया वह संसार है। स्वतंत्रता का भान करके निर्विकार स्वभाव सन्मुख हो तो पूर्ण शुद्धदशारूप मोक्ष होता है। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर की वाणी निकली और पात्र जीवों ने अपूर्व सत्य समझा, उन्होंने वस्तु स्वरूप की स्वतंत्रता जानी। अहो, प्रत्येक वस्तु समय-समय में स्वयं से परिणमन करती है; उसे कोई अन्य बिगाड़ने अथवा सुधारनेवाला नहीं है, कर्म के कारण उसके परिणाम नहीं होते।

परिणाम वस्तु के बिना नहीं होते। इसप्रकार स्वभाववान पदार्थ ऐसा ही होता है ऐसी श्रद्धा करता है। पुण्य-पाप अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि परिणाम के बिना, वस्तु नहीं होती। निर्मल पर्याय का आधार द्रव्य है और मलिन परिणाम वह भी वस्तु की परिणति है। परिणाम द्रव्य से पृथक नहीं है। द्रव्य के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से द्रव्य के परिणाम जुदा नहीं है। किसी के पास ज्ञान गुण है, किन्तु उसके परिणाम उससे कभी जुदा हो जाए तो कहते हैं ऐसा नहीं हो सकता।

जिसप्रकार पेट में आहार-पानी पड़ा, उसके कारण मुझे सुख हुआ ऐसा माने तो क्या सुख का परिणाम संयोग से होता है ? नहीं, यदि संयोग के कारण से जीव के सुख गुण की अथवा ज्ञान, चारित्र, वीर्य आदि गुण की पर्याय होती हो तो - संयोग हो तो जीव के परिणाम हो और संयोग हटने पर जीव परिणाम रहित शून्य हो जाय, किन्तु ऐसा कभी नहीं होता।

गुण, गुणी के बिना नहीं होते और परिणाम, परिणामी के बिना नहीं होते अर्थात् वे पृथक नहीं होते; किन्तु वस्तु स्वयं ही ज्ञान-अज्ञान, राग-अराग, सुख अथवा दुःखरूप परिणमित होती है। किसी के परिणाम, किसी दूसरे के कारण से नहीं होते। भगवान के कारण, तेरे परिणाम नहीं हुए हैं। इसीप्रकार किसी की कृपा अथवा आशीर्वाद से किसी के परिणाम नहीं होते। वस्तु त्रिकाली है, किन्तु उसके परिणाम, एक समय में एक होते हैं। एक ही परिणाम सदा कायम नहीं रहता, किन्तु परिणाम बिना कभी वस्तु नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई कहता है कि - 'योगी की कृपा से, संसार में स्वर्ग उतारना है' इसे सुनकर लोग प्रसन्न हो जाते हैं और सोचते हैं कि यदि, ऐसा हो जाय तो अपने को मेहनत करना नहीं रहे। अनादिकाल से पराधीनता की वृत्तिवाला जो पर से लाभ-नुकसान मानता है, वह वस्तु को परिणाम रहित मानता है और पर संयोग आए तो परिणाम हो - ऐसा मानता है। इसलिए वह तो पर चीज के अस्तित्त्व से, दूसरे पदार्थ के परिणाम का होना मानता है। जबकि, ज्ञानी कहते हैं कि किसी भी समय परिणाम से पृथक कोई वस्तु दिखाई नहीं देती।

प्रत्येक ही आत्मा, प्रत्येक पुद्गल परमाणु स्वयं अपने परिणामों से अभेद और पर से पृथकपने परिणमन करता है। प्रत्येक के वर्तमान परिणाम उन्हीं के त्रिकाली परिणामी द्रव्य के आधार से होते हैं, उसके बिना नहीं होते - ऐसा जानकर, स्व-द्रव्य अनन्त शक्ति का पिंड है उसके सामने देखे तो निर्मल पर्याय का आधार, स्वयं का आत्मा है और वह स्वयं ही है; अतः अब, पर की ओर देखने की जरूरत नहीं रही।

गधे के सींग की अवस्था नहीं है तो सींग भी नहीं है। गोरस हो और दूध, दही आदि कोई भी परिणाम न हो - ऐसा कभी नहीं होता। इसप्रकार पदार्थ के बिना परिणाम अस्तित्त्व को धारण नहीं करता। इसलिये जो वस्तु है वह परिणाम सहित होने से, स्वाश्रित परिणाम रहित वस्तु नहीं होती। मिथ्यात्व-भ्राँति के परिणाम उनके आत्मा के बिना नहीं होते। आत्मा न हो तो भ्राँति का परिणाम, आधार जो आत्मा है उसके बिना भ्राँति कौन करे ? जड़ कर्म तो निमित्त मात्र है। निमित्त है इसलिये जीव में भ्राँति हुई है - ऐसा यहाँ नहीं कहा, किन्तु जीव है इसलिये उसकी विभाव की योग्यता से विभाव हुआ है यह कहा है।

स्तुति-भक्ति में बोला जाता है कि - श्री गुरु ने मुझे आत्मा दिया है किन्तु यह मात्र निमित्त का कथन है निश्चय से तो शुभ, अशुभ अथवा शुद्ध परिणाम उनकी वस्तु के आश्रित है।

"निश्चय जो कहता है वह - सत्यार्थ है ऐसा श्रद्धान करना और व्यवहार से जो कथन होता है उसका अर्थ यह समझना कि - 'ऐसा नहीं है' किन्तु निमित्तादि बताने के लिये यह उपचार किया है। ऐसा जानकर व्यवहार की श्रद्धा छोड़ना - ऐसा दोनों नयो का अर्थ है।"

भूल करना अथवा उसे दूर करना वह स्वयं के कारण है। यदि यह, पर के कारण हो तो स्वयं को सत्य समझने का अथवा भूल को दूर करने का अवसर नहीं रहता ; इसलिये स्वयं के आश्रय से अपने परिणाम हैं - ऐसा समझना चाहिये। अवस्था के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बिना, वस्तु नहीं होती, और वस्तु के बिना परिणाम नहीं होते। इन दोनों बातों को इस तरह बराबर समझे तो - उसने तीर्थंकर भगवान की वाणी का सार समझ लिया है। सर्वत्र-सदा इन दोनों बातों का निश्चय रखकर वस्तु को देखे तो - सच्चा समाधान और स्वसन्मुख ज्ञाता रहनेरूप धर्म हो।

आत्मा परमाणु इत्यादि छहद्रव्यरूप वस्तु, परिणाम स्वभावी है, अनादि-अनन्त है तथा वस्तु तो ऊर्ध्वता सामान्य-स्वरूप द्रव्य में, सहभावी विशेषस्वरूप गुणों में और क्रमभावी विशेषरूप पर्यायों में रहती हुई, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्त्व से अनादि सिद्ध है; इसलिये वस्तु परिणाम स्वभाववाली अनादि-अनन्त है, इसलिये उसे कोई बनानेवाला-रचना करनेवाला नहीं है।

उर्ध्वता अर्थात् काल की अपेक्षा से ऊंचाई। त्रिकाली प्रवाहरूप परिणाम, उसका सामान्यपना वह - द्रव्य है, उसमें साथ में रहनेवाले अनन्त गुण है जो एक समय में है; और उन समस्त गुणों की क्रमभावी पर्यायें एक समय में एक होती है। परिणाम अर्थात् पर्यायें। गुण में से नयी-नयी पर्यायें क्रमसर-क्रमबद्ध हुआ करती है। इसप्रकार ऊर्ध्वता-सामान्यरूप द्रव्य में, नित्य तादात्म्यरूप सहभावी गुणों में और उनकी क्रमभावी अनित्य तादात्म्यरूप पर्यायों में वस्तु रहती है।

देखो, वस्तु स्वयं के द्रव्य-गुण पर्यायों में बसती है-रहती है। वस्तु पर के कारण से रहती है - ऐसा यहाँ नहीं कहा। इस तरह छहों द्रव्यों को - वस्तु कहा जाता है। एक-एक परमाणु भी वस्तु है, वे भी उनके द्रव्य-गुण-पर्याय में रहते हैं। पर- वस्तु के कारण किसी द्रव्य की पर्याय होती हो - ऐसा नहीं है। द्रव्य-गुण एकरूप-एकसाथ त्रिकाल रहते हैं और उत्पाद-व्ययरूप पर्याय एक गुण की एक पर्यायपने रहती है, और वह क्रमबद्ध बदलती है।

प्रश्न :- इसमें धर्म कहाँ आया ?

उत्तर :- वस्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में अनादि-अनन्त रहती है। पर से पृथकत्व को बनाये रखती है - ऐसा भेदज्ञान करके सबका मैं ज्ञाता हूँ, ज्ञान-स्वरूप हूँ, मैं रागादि, देहादि पररूप नहीं हूँ - ऐसा जानकर स्वसन्मुख होना वह - धर्म है। भेदज्ञान द्वारा वस्तु को त्रिकाल स्वतंत्र माने बिना स्वसन्मुखतारूप धर्म नहीं हो सकता। अनन्त पर-द्रव्य और उनके अनन्त गुण-पर्यायों से यह आत्मा त्रिकाल भिन्न है; इसप्रकार पर से पृथकता का भान होने पर, वर्तमान शुभाशुभ विभावरूप दोष अपना अपराध है - ऐसा जानकर उनसे भी भेदज्ञान करके ध्रुव ज्ञानानन्द का आश्रय करे तो परिणामी वस्तु स्वभाव के अवलम्बन से क्रमबद्ध निर्मल पर्याय होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो ऐसा जाने उसे-शरीर की अवस्था के क्रम को मैंने किया,रुपये लाकर घर-व्यापार को मैंने व्यवस्थित रखा, पर के क्रम को मैंने बदला - ऐसा अज्ञान नहीं रहता। एक समय में पूर्ण स्वरूप ऐसा है - ऐसा त्रिकाल है यह जाने तो भेदज्ञान के बल से, स्वसन्मुख ज्ञाता रह सकता है, उसका नाम हितरूप-सुखरूप परिणाम वह धर्म है।

वस्तुसामान्य द्रव्य-गुणरूप से त्रिकाल है। वर्तमान परिणाम नया उत्पन्न होता है, बदलता है इसतरह वस्तु स्वयं अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्त्व से सिद्ध है, उसकी सत्ता उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समा जाती है; जो बाहर में किसी अन्य के साथ सम्बंध नहीं रखती; इसलिये वस्तु परिणाम स्वभाववाली ही है।

वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है। वह अपने अस्तित्त्व से बनी हुई है; इसका अर्थ यह है कि - कोई नई वस्तु नहीं बनी है वह तो अनादि से है। द्रव्य तो सत् है, किन्तु उसकी अनादि अनन्त पर्याय है, उनकी प्रत्येक समय की पर्यायें भी सत् हैं, जिसे कोई अन्य द्रव्यादि रचना करनेवाला नहीं है।

स्त्री के कारण रोटी की अवस्था नहीं हुई है। इसी तरह अग्नि के कारण रोटी पकने की अवस्था नहीं हुई। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को किंचित भी स्पर्श नहीं करता, क्योंकि प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषरूप परिणाम स्वभाववाली होने से, किसी दूसरे से उसके परिणाम के होने का निषेध है; अर्थात् किसी भी द्रव्य में कोई ऐसी शक्ति नहीं है कि जिससे वह 'पर को करे अथवा पर से हो।' जो पृथक है वह पृथक का क्या करे?

मंदिर, मकान, पुस्तक आदि किसी भी जीव के परिणाम द्वारा नहीं होते। मकान, पुस्तक इत्यादि उनके परमाणुरूप सामान्य सत् के आश्रय से, उनके क्रमभावी पर्याय सत् द्वारा परिणाम स्वभावी होने से, स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय अस्तित्त्व से रचे जाते हैं किन्तु वे पर से होते हैं ऐसा कहना वह तो उपचार मात्र है।

इसप्रकार प्रत्येक वस्तु, अपने परिणाम स्वभावी होने से अपने द्रव्य-काल-भाव में रहकर, अपने परिणाम को करती है; किन्तु वह, स्वयं से भिन्न पर-द्रव्य के परिणाम को करने में समर्थ नहीं है - ऐसा भेदज्ञान वह वीतरागी-विज्ञान है।

आत्मा के भान सहित और राग रहित, शुद्ध परिणाम का होना वह धर्म है; और यही आत्मा का चारित्र है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना स्वरूप में स्थिरता-शान्तिरूप परिणाम नहीं होता और उसरूप आत्मा ही परिणमित होता है। परिणाम, परिणामी वस्तु बिना नहीं होते। अहो, यह सिद्धान्त समझे तो यथार्थ स्वतंत्र वस्तु स्वरूप का निर्णय हो और वही आत्मा, सुखरूप-धर्मरूप परिणमित होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणाम अर्थात् वस्तु का जो कार्य है उससे, वस्तु पृथक नहीं है। वस्तु त्रिकाली तो हो और उसकी वर्तमान अवस्था न हो - ऐसा कभी नहीं होता। वर्तमान परिणाम कार्य है उसका कारण वह तो द्रव्य है , किन्तु कोई पर वस्तु उसका कारण नहीं है। पर द्रव्य को कारण कहना यह व्यवहार का कथन है।

लोग स्फटिक का दृष्टांत देकर कहते हैं कि - 'देखो,जैसा निमित्त मिलता है वैसा परिणाम होता है' - ऐसा कहकर वे पदार्थ के परिणाम परजीव के कारण होते हैं ऐसा मनवाते हैं किन्तु ऐसा ही नहीं है। क्योंकि,जहाँ-जहाँ वस्तु है वहाँ-वहाँ उसकी वर्तमान अवस्थारूप परिणाम होते ही हैं। जैसे गोरस उसके दूध, दही आदि परिणाम सहित ही होता है; और जहाँ परिणाम नहीं होते वहाँ वस्तु भी नहीं होती। यहाँ पर वस्तु न हो अथवा जड़ कर्म न हो तो आत्म वस्तु न हो - ऐसा नहीं कहा।

इसप्रकार परिणाम, वस्तु के बिना नहीं होते। मिथ्यात्व, राग, दया-दानरूप परिणाम अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणाम आत्मा के बिना नहीं होते। परिणामी बिना परिणाम नहीं और परिणाम (परिणमन) बिना, परिणामी वस्तु नहीं होती। इस तरह शुद्ध अथवा अशुद्ध परिणाम, वह वस्तु का परिणाम है। आत्मा बिना परिणमन नहीं होता। इसलिए निश्चित होता है कि - पर वस्तु बिना परिणाम होता है किन्तु स्ववस्तु के बिना परिणाम नहीं होता।

लिखने की अवस्था होती है तब परमाणु द्रव्य होता है। परमाणु के बिना लिखनेरूप अवस्था हो जाए - ऐसा नहीं होता; अन्य तो निमित्त मात्र है। निश्चय से जीव ही निर्मल अथवा मलिन भावरूप से परिणमन करता है।

''निश्चयनय कहता है वह यथार्थ - भूतार्थ है; और व्यवहारनय जो निमित्त से परिणाम का होना कहता है उसका अर्थ यह समझना चाहिये कि - 'ऐसा नहीं है' किन्तु निमित्त का ज्ञान कराने के लिये यह उपचार कथन है।''

जैसे घी का घड़ा यहव्यवहारनय का कथन है; निश्चयनय कहता है कि - 'ऐसा नहीं है, घड़ा तो मिट्टी का ही है'। मिट्टी के परिणाम द्वारा मिट्टीरूप घड़ा हुआ है किन्तु घी का नहीं। वस्तु सत् है उसके आधार से उसके परिणाम होते हैं। परिणामी वस्तु के आधार बिना परिणमन, नहीं होता। पानी में तरंग होती है, पानी के बिना तरंग नहीं होती; पवन से तरंग नहीं उठती - यह सत्य है। पवन से तरंग उठती है ऐसा कहना वह असत्य कथन है। वह तो निमित्त बताने के लिये व्यवहार से किया गया कथन है।

उपादान कार्य करे उस समय निमित्त है, इतनी बात सही है, किन्तु निमित्त से कार्य हुआ है यह बात असत्य है। निमित्त से कार्य नहीं हुआ किन्तु निज शक्तिरूप उपादान से ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रत्येक द्रव्य का कार्य होता है - ऐसा कहना यह निश्चयनय का निरूपण - सत्य है।

ज्ञानप्रधान कथन में द्रव्य का सामान्य-विशेष और निमित्त का वर्णन आता है। जैसे कि - विकारी परिणाम आत्मा के बिना नहीं होते यह भूतार्थ है और विकारी परिणाम कर्म के बिना नहीं होते अथवा कर्म से होते हैं यह अभूतार्थ कथन है; किन्तु जहाँ अभेद दृष्टि का विषय चलता हो वहाँ - 'व्यवहारो अभूयत्थो' वहाँ सारा ही व्यवहार अभूतार्थ है - ऐसा समझना। वहाँ तो कहेंगे कि - अपनी अशुद्ध पर्याय भी अभूतार्थ है - रागादि विभाव का स्वामी जड़ कर्म है। प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्यरूप से व्याप्य-व्यापकपने रागादि का जड़कर्म के साथ एकमेकता सम्बंध है और निर्मल ज्ञायक स्वभाव में रागादि का अभाव है। इसप्रकार त्रिकाली स्वभाव को मुख्य करके राग को गौण करके वह (राग) है ही नहीं ऐसा कह दिया है। इस तरह सम्यग्दर्शन के विषय में विभाव से भेदज्ञान करके उसे पुद्गलकृत कहने में आया है।

यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है जिससे राग-द्वेष, मोह-रूप परिणाम जीव की अवस्था जीव में होती है, अशुद्धता में भी षट्कारकरूप से आत्मा अपनी सामर्थ्य से वर्तता है, वह परिणाम आत्मवस्तु के बिना नहीं होते ऐसा समझाते हैं। इसमें पर से भेद करके भिन्न-भिन्न प्रत्येक वस्तु के परिणाम उनके अपने ही आधार से होते हैं - ऐसा बताकर द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वतंत्रपना सिद्ध किया है। रागादि स्वयं से-अपने दोष से ही होते हैं - ऐसा सर्वप्रथम स्वीकार करने के पश्चात् त्रिकाली स्वभावदृष्टि में - रागादि जीव के नहीं है - ऐसा भेदज्ञान कराते हैं।

वस्तु तो द्रव्य-गुण-पर्यायमय है, वहाँ त्रिकाली ऊर्ध्व प्रवाह सामान्य वह द्रव्य है, द्रव्य के सम्पूर्ण भाग में व्यापक नित्यतादाम्य पने साथ रहनेवाली शक्तियां वह गुण है और क्रम-क्रम से होनेवाले भेद वे पर्यायें हैं। ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय की एकता के बिना वस्तु नहीं होती। इसप्रकार वस्तु द्रव्य-गुण-पर्यायमय होने से वही उत्पन्न होती है, उसी का विनाश होता है और वही ध्रौव रहती है; इसीसे उसमें क्रिया (परिणाम) हुआ ही करता है। इसलिए शुभ, अशुभ और शुद्ध परिणाम आत्म-वस्तु का स्वभाव ही है।

पुण्य-पाप कषाय और घोर हिंसारूप पाप के परिणाम, वे आत्मा के परिणाम होने से वस्तु का स्वभाव है, उसे जड़कर्म परिणमन करानेवाला नहीं है। जीव ही तीन प्रकार के परिणाम करता है; अन्य तो निमित्त मात्र है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ११

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कसम्भववतोः शुद्धशुभपरिणामयोरुपादानहानाय फलमालोचयति-

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं ॥११॥

अब जिनका चारित्र परिणाम के साथ सम्पर्क (सम्बन्ध) है ऐसे जो शुद्ध और शुभ (दो प्रकार के) परिणाम है उनके ग्रहण तथा त्याग के लिए (शुद्ध परिणाम के ग्रहण और शुभ परिणाम के त्याग के लिये) उनका फल विचारते हैं :-

हो धर्म परिणत आत्मा शुद्धोपयोगी मोक्ष सुख।
यदि हो तथा उपयोग शुभमय प्राप्त करते स्वर्ग सुख ॥११॥

गाथार्थ :- धर्म से परिणमित स्वरूपवाला आत्मा यदि शुद्ध उपयोग में युक्त हो तो मोक्ष सुख को प्राप्त करता है और यदि शुभोपयोगवाला हो तो (स्वर्ग-सुख) स्वर्ग के सुख को (बन्धको) प्राप्त करता है।

टीका :- जब यह आत्मा धर्म परिणत स्वभाववाला होता हुआ शुद्धोपयोग परिणति को धारण करता है तब, जो विरोधी शक्ति से रहित होने के कारण अपना कार्य करने के लिये समर्थ है ऐसा चारित्रवान होने से (वह) साक्षात् मोक्ष को प्राप्त करता है, और जब वह धर्म परिणत स्वभाववाला होने पर भी शुभोपयोग परिणति के साथ युक्त होता है तब जो विरोधी शक्ति सहित होने से स्वकार्य करने में असमर्थ है और कथंचित विरुद्ध कार्य करनेवाला है ऐसे चारित्र से युक्त होने से, जैसे अग्नि से गर्म किया हुआ घी किसी मनुष्य पर डाल दिया जावे तो वह उसकी जलन से दुःखी होता है, उसीप्रकार वह स्वर्ग सुख के बन्ध को प्राप्त होता है, इसलिये शुद्धोपयोग उपादेय है और शुभोपयोग हेय है।

भावार्थ :- जैसे घी स्वभावतः शीतलता उत्पन्न करनेवाला है तथापि गर्म घी से जल जाते हैं, इसीप्रकार चारित्र स्वभाव से मोक्ष दाता है तथापि सराग चारित्र से बन्ध होता है। जैसे ठंडा घी शीतलता उत्पन्न करता है इसीप्रकार वीतराग चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है ॥११॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ११ पर प्रवचन

जब यह आत्मा संयोग और विभाव की दृष्टि-रुचि छोड़कर, स्वद्रव्य के आलम्बनरूप शुद्ध परिणामवाला हुआ है; तब वह आत्मा, वस्तु के स्वभावरूप निश्चय रत्नत्रयरूप से परिणत हुआ है। 'मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूँ' उसके आश्रय से निर्मल वीतरागी परिणामरूप - आंशिक धर्मरूप से वर्तता है। इस तरह स्वयं अपने आलम्बन से वीतरागी शुद्धोपयोग परिणति को वहन करता है - बनाए रखता है, अन्दर एकाग्र-स्थिर होता है। जो शुद्धोपयोग अबंध स्वभावी होने से, विरोधी (शुभाशुभराग) शक्ति रहित होने के कारण, अपने निर्विकाररूप मोक्ष का साक्षात् कारण होने से, अपना कार्य करने में समर्थ है - ऐसे चारित्रवाला होने से वह साक्षात् मोक्ष को प्राप्त करता ही है।

मुनि शुद्धोपयोग ही वहन करते हैं, और आंशिक राग हो तो शुभपरिणाम जो मुनिदशा में भी बाधक है - बन्ध का कारण है तो भी उसमें धर्म नहीं मानकर जुड़ते हैं - यह बात सही है। दया-दान, व्रत-तप, पूजा-भक्ति आदि के शुभराग आते हैं, किन्तु उनको वहन करना नहीं चाहते; क्योंकि वे शुभाशुभ व्यवहार, चारित्र धर्म से - चारित्र से विरोधी जहररूप शक्तिवाले होने से, स्वकार्य करने के लिए अर्थात् निर्मलानन्दरूप स्थिरता करने के लिए (वह शुभराग) असमर्थ है।

जो शुभराग ज्ञानी मुनि को भी बाधक है - बन्ध का कारण है, उसे वर्तमान के विद्वान धर्म कहते हैं - हितकर कहते हैं, किन्तु आचार्यदेव तो मुनिदशा के शुभ उपयोग को - व्यवहार रत्नत्रय के शुभभाव को भी चारित्र धर्म से विरुद्ध शक्तिवाला, धर्मकार्य कराने के लिये असमर्थ और कथंचित् विरुद्ध कार्य करनेवाला कहते हैं। कथंचित अविरुद्ध तो आंशिक वीतराग चारित्र है ही, उसके साथ जो आंशिक रागभाव है वह तो सम्पूर्ण ही विरुद्ध कार्य है।

साधकदशा में आंशिक निश्चय रत्नत्रयरूप अभेद रत्नत्रयवान मुनि को, आंशिक सराग और आंशिक वीतरागरूप चारित्र होने से ऐसे चारित्रवाले मुनिराज शुभभाव में ऐसा अनुभव करते हैं जैसे अग्नि से गरम किया हुआ घी किसी के ऊपर डाला जावे तो वह पुरुष दाह्य दुःख को ही प्राप्त होता है। मुनि को शुभरागरूप-अर्थात् व्यवहार चारित्ररूप जितना शुभोपयोग है उसके फल में वे स्वर्ग के आकुलतामय सुख के बन्ध को ही प्राप्त होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देखो, आचार्य स्वयं भावलिंगी मुनि हैं, उन्हें शुभराग भी है, जिसके फल में स्वर्ग है - ऐसा वे जानते हैं, फिर भी - ''भव और भव के कारण का वर्तमान से ही निषेध करते हैं।'' पाँच महाव्रत, छह आवश्यक आदि अट्ठाईस मूलगुण के शुभभाव मुनिदशा में होते हैं, किन्तु उससे विरुद्ध जाति का राग मुनिदशा में नहीं होता; फिर भी वह शुभराग उबलते हुए गर्म घी के छींटे जैसा दुःखरूप बंधन का कारण है; और बंधन ही उसका फल है। इसलिये एक शुद्धोपयोग ही उपादेय है और शुभोपयोग हेय है - ऐसा प्रसिद्ध करते हैं।

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवौ जिनवानी ।
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यौं उदधि समानी ।।

ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा ? निगोद से निकलकर त्रसपना प्राप्त करना वह चिन्तामणि तुल्य दुर्लभ है, तो फिर मनुष्यपना प्राप्त करना, जैनधर्म का मिलना तो महादुर्लभ है। धन-सम्पत्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होना वह दुर्लभ नहीं है। ऐसा जो उत्तम योग मिला है वह अधिक काल तक नहीं रहेगा, इसलिये बिजली की चमक में मोती पिरो लेने जैसा है। ऐसा सुयोग फिर कब मिलेगा ? इसलिये तू दुनिया के मान-सन्मान एवं धन-सम्पत्ति की महिमा छोड़कर, दुनिया क्या कहेगी उसका लक्ष छोड़कर, एक बार मिथ्यात्व को छोड़ने का जी तोड़ प्रयत्न कर।

- गुरुदेवश्री के वचनामृत, १५१

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १२

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभपरिणामस्य फल-मालोचयति-

असुहोदएण आदा कुणरो तिरियोभवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिद्दुदो भमदिअच्चंतं ॥१२॥

अब चारित्र परिणाम के साथ सम्पर्क रहित होने से जो अत्यन्त हेय है ऐसे अशुभ परिणाम का फल विचारते हैं:-

अशुभोदयी यह आत्मा तिर्यक कुनर बन नारकी ।
नित सहस दु:ख से दु:खी हो भवभ्रमण करता है वही ॥१२॥

गाथार्थ :- अशुभ उदय से आत्मा कुमनुष्य तिर्यंच और नारकी होकर हजारों दु:खों से सदा पीड़ित होता हुआ (संसार में) अत्यन्त भ्रमण करता है।

टीका:- जब यह आत्मा किंचित् मात्र भी धर्म परिणति को प्राप्त न करता हुआ अशुभोपयोग परिणति का अवलंबन करता है, तब वह कुमनुष्य, तिर्यंच और नारकी केरूप में परिभ्रमण करता हुआ (तद्रूप) हजारों दु:खों के बन्धन का अनुभव करता है; इसलिये चारित्र के लेशमात्र का भी अभाव होने से यह अशुभोपयोग अत्यन्त हेय ही है ॥१२॥

* * *

गाथा १२ पर प्रवचन

जब यह आत्मा किंचित मात्र भी धर्म परिणति को प्राप्त नहीं करता हुआ, कुदेवादी को मानता है, संसार के तीव्र अभिमान में लीन है, मैं पर का काम कर सकता हूँ, पुण्य-पाप करने योग्य हैं, पुण्य से धर्म का लाभ होता है ऐसे मिथ्यात्वरूप अशुभ उपयोगरूप परिणति का जो अवलम्बन लेता है; किन्तु मिथ्यादृष्टि छोड़कर, स्वयं शुद्ध चैतन्य अतीन्द्रिय आनन्दकन्द है उसका अवलम्बन नहीं लेता; इसलिए उसे विपरीत अभिप्राय मिथ्यात्व का जोर होने से, उसके फल में वह जीव कुमनुष्य, तिर्यंच, निगोद, एकेन्द्रिय आदि में उत्पन्न होता है और नरक में भी उत्पन्न होता है।

स्वयं अविनाशी अनन्त गुणों की समाजवाला, महिमावंत प्रभु है; उसकी अरुचिवाले ने अनन्त गुणों की शुद्धता का तीव्र विरोध किया है,जिससे वह उसके

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फल में, अनन्त प्रतिकूलता के वेदन के स्थान में जाता है। जहाँ उसे निरंतर अरति कषाय के कारण मिलते हैं और स्वयं भी तीव्र आकुलता वेदन करने की योग्यता किया करता है। इस तरह वह अज्ञान द्वारा श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द की विपरीतदशा के फल में, संसार परिभ्रमणरूप हजारों दुःख के बन्ध को अनुभवता है; शान्तिरूप चारित्र के लेशमात्र का भी उसे अभाव होने से यह अशुभ उपयोग अत्यन्त हेय है।

प्रश्न :- निगोद व एकेन्द्रिय के दुःख तो दिखाई नहीं देते, इसलिये ऐसा लगता है कि नारकी को बहुत दुःख होगा ?

समाधान :- नहीं। नारकी को भी संयोग का दुःख नहीं है, किन्तु उसे जितनी संयोग में एकताबुद्धि, राग-द्वेष है उतना दुःख है। एकेन्द्रिय व निगोद के जीव की अपेक्षा नारकी जीव का दुःख बहुत कम है, क्योंकि उसे तो ज्ञान का उघाड़ (प्रगटपना) तथा वीर्य बहुत है। नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय होने से वह सम्यग्दर्शन को भी प्राप्त कर सकता है, किन्तु असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, नारकी जीवों की अपेक्षा अत्यधिक मोह के कारण से बहुत दुःखी है। इस तरह, क्रम-क्रम से एकेन्द्रिय बहुत दुःखी हैं; क्योंकि वहाँ ज्ञान-दर्शन, आनन्द, वीर्य आदि गुणों की तीव्र रसरूप परीपूर्ण विपरीतदशा है - शरीर में ममता की पराकाष्टा है वही - दुःख है।

आलू आदि कन्दमूल के एक-एक कण में, अनन्त निगोद के एकेन्द्रिय जीव हैं। तीव्र अज्ञानी यह नहीं मान सकता। इस तरह निगोद के जीव महादुःखी है - ऐसा जो निर्णय करें उसे सुख क्या है ? उसकी खबर हो जाती है। अतीन्द्रिय अनुपम सुख से विरुद्धदशा वह - दुःख है और स्वभाव सम्पूर्ण सुखरूप है, उससे विपरीतता वह - दुःख है।

जिनको परिपूर्ण अनन्त गुणों का विकास हुआ है वे सिद्ध परमात्मा हैं; और जिन्हें कम से कम (हीनतम) जघन्य विकास पर्याय में आंशिक प्रगट रहा है उन जीवों को निगोद, एकेन्द्रिय कहते हैं। पूर्ण विकास पाए हुए सिद्धों की संख्या अनन्त है उनका काल सादि अनन्त है। मध्यम की संख्या असंख्य है, और अति जघन्य विकासवाले जीवों की संख्या अनन्त है और काल भी अनन्त हैं। बीच के विकास का काल मर्यादित है, क्योंकि त्रस की स्थिति का काल थोड़ा है। साधक जीव जो शुद्धात्म तत्त्व के आराधक हैं उनकी साधकदशा का काल थोड़ा है; तथा जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं, उन्हें त्रस की स्थिति अल्प है, वे तत्त्व का घोर विरोध करके निगोद में जाते हैं, क्योंकि उनकी संयोग और विकार में एकता बुद्धि है - उसका जोर (पुरुषार्थ) बाहर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रखड़ने में जाता है। और जो साधक-सम्यक्दृष्टि है उन्हें, स्वसन्मुखपने ज्ञानानन्द में एकता की दृष्टि है, उनके अंतरंग में समता का जोर भव भ्रमण को तोड़ता हुआ अंतर में-अतीन्द्रिय आनन्द में जाता है।

सर्वज्ञ भगवान ऐसा कहते हैं - शास्त्र ऐसा कहते हैं, किन्तु स्वयं को भी न्याय से, अनुभव में वस्तु स्वरूप स्वीकार होना चाहिए न ? अन्य मत में कुछ और कहते हैं, उसमें तत्त्व से विरुद्धता क्या है वह भी जानना चाहिए नहीं तो सत्य का निर्णय नहीं होता।

कोई कहता है कि आत्मा एक ही है - सर्वत्र एक ही आत्मा सर्वव्यापक है; यदि ऐसा हो तो सर्व क्षेत्र के सामने देखना पड़े, किन्तु ज्ञान में निर्णय करने के लिये एकाग्रता तो यहाँ, शरीर प्रणाम ज्ञाता स्वरूप में करनी पड़ती है, बाहरी वस्तु की ओर देखता रहे तो, अन्तर एकाग्रता की शान्ति नहीं होती। इसलिये सिद्ध होता है कि प्रत्येक आत्मा शरीर प्रमाण में - इतने में ही है।

जो वर्तमान में पृथक है वह तीनों ही काल पर से पृथक है। सर्व को जाननेवाला है, किन्तु बाहर में सर्वव्यापक नहीं है अपितु इस शरीर प्रमाण, अपने अनन्त गुणों में स्वयं त्रिकाल व्यापक है। स्वयं अपने गुण-पर्याय से पृथक नहीं है-अद्वैत है। स्वयं में ही अपने गुण-पर्याय से भेद-अभेद, एक-अनेक, नित्य-अनित्य है। पर्याय में अपने कारण से शुद्ध-अशुद्धपना है, किन्तु किसी पर से अपना कोई स्वरूप नहीं है। इसप्रकार युक्ति से निर्णय करे तो वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है - ऐसा निर्णय हो और उससे विरुद्ध माननेवाले एकान्ती हैं-खोटे हैं - ऐसा निर्धारण होता है।

यहाँ मिथ्यात्वी को मुख्यरूप से अशुभोपयोगी कहा है। शुभ और अशुभ परिणाम दोनों ही, विरुद्ध शक्तिवाले होने से वे शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और स्थिरता द्वारा छोड़ने योग्य है। इस तरह समस्त शुभाशुभ उपयोग की वृत्ति को हेय जानकर छोड़ दिया और निज शुद्धात्मा का अनुसरण करना अर्थात् शुद्धोपयोग परिणति को आत्मसात - अपनेरूप करता हुआ शुद्धोपयोग अधिकार प्रारम्भ करते हैं।

अज्ञानी कहते हैं कि - व्यवहार पहले होना चाहिए; जबकि यहाँ आचार्य देव गाथा १३ में, प्रथम से ही निश्चय द्वारा शुद्धोपयोग और उसके फल की आत्मा के प्रोत्साहन के लिये - प्रशंसा करते हैं।

''अज्ञानी की पराश्रय में व संयोग में रुचि होने से, जब व्यवहार की बात आती है तो वह उसे गले लगाता है, और संसार की रुचि जो अनादि से है उसे पुष्ट करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानी तो निश्चय-व्यवहार को उनकी मर्यादा में जानकर, एक निश्चय को ही उपादेय मानते हैं और पराश्रयरूप व्यवहार को हेय मानते हैं।'' प्रथम से ही शुभ-अशुभ को ज़हर समान जानकर उनका तिरस्कार करते हैं, उनसे दूर रहकर निर्मल स्वभाव सन्मुख निश्चय दृष्टि और चारित्र द्वारा निर्विकार निश्चय रत्नत्रय की पुष्टि करते हैं; और उसके फल में वे अतीन्द्रिय आनन्द को ही प्राप्त करते हैं।

नवनिधि चौदहरत्न, घोड़े, मत्त उन्मत्त हाथी, चतुरंगिणी सेना आदि सामग्रियाँ भी चक्रवर्ती को शरणरूप नहीं हैं। उसका अपार वैभव उसे मृत्यु से नहीं बचा सकता।

जन्म, जरा, मरण, रोग और भय से अपना आत्मा ही अपनी रक्षा करता है। कर्म का बंध, उदय और सत्ता से भिन्न अपना आत्मा ही इस संसार में शरणरूप है। कर्मों का क्षय करके जन्म-जरा-मरणादि के दुःखों से अपना आत्मा ही अपने को बचाता है।

- श्री कुन्दकुन्दाचार्य, बारह भावना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १३

एवमयमपास्तसमस्तशुभाशुभोपयोगवृत्तिःशुद्धोपयोगवृत्तिमात्मसात्कुर्वाणः शुद्धोपयोगाधिकारमारभते । तत्र शुद्धोपयोग फलमात्मनः प्रोत्साहनार्थ मभिष्टौति-

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धवओगप्पसिद्धाणं ॥१३॥

इसप्रकार यह (भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव) समस्त शुभाशुभोपयोगवृत्ति को (शुभ उपयोगरूप और अशुभ उपयोगरूप परिणति को) अपास्त कर (हेय मानकर, तिरस्कार करके, दूर करके) शुद्धोपयोग वृत्ति को आत्मसात् (आत्मरूप, अपनेरूप) करते हुए शुद्धोपयोग अधिकार प्रारम्भ करते हैं। उसमें (पहले) शुद्धोपयोग के फल की, आत्मा के प्रोत्साहन के लिये प्रशंसा करते हैं।

अतिशय स्वतः उत्पन्न अनुपम विषय रहित अनन्त है ।
शुद्धोपयोग प्रसिद्ध जीवों के अखंडित सुक्ख है ॥१३॥

गाथार्थ :- शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए आत्माओं का (केवली और सिद्धों का) सुख अतिशय आत्मोत्पन्न विषयातीत (अतीन्द्रिय) अनुपम अनन्त (अविनाशी) और अविच्छिन्न (अटूट) है।

टीका :- (१) अनादि संसार से जो पहले कभी अनुभव में नहीं आया ऐसे अपूर्व, परम अद्भुतरूप आल्हादरूप होने से 'अतिशय', (२) आत्मा का ही आश्रय लेकर (स्वाश्रित) प्रवर्तमान होने से 'आत्मोत्पन्न', (३) पराश्रय से निरपेक्ष होने से (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द के तथा संकल्प-विकल्प के आश्रय की अपेक्षा से रहित होने से) 'विषयातीत', (४) अत्यन्त विलक्षण होने से (अन्य सुखों से सर्वथा भिन्न लक्षणवाला होने से) 'अनुपम', (५) समस्त आगामी काल में कभी भी नाशको प्राप्त न होने से 'अनन्त' और (६) बिना ही अंतर के प्रवर्तमान होने से 'अविच्छिन्न' सुख शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए आत्माओं के होता है, इसलिये वह (सुख) सर्वथा प्रार्थनीय (वांछनीय) है ॥१३॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा १३ पर प्रवचन :-

(१) अनादिकाल से स्वयं प्रभु आत्मा सच्चिदानन्द है, उसके प्रगट भान द्वारा होनेवाला अतीन्द्रिय आनन्द (आल्हाद), उस आनन्द का अज्ञान के कारण, जीव ने पूर्व में कभी अनुभव नहीं किया। ऐसा अपूर्व आनन्द द्रव्यलिंगी साधु हुआ तो भी अनुभव नहीं किया। इस आनन्द-स्वरूप आत्मा का अपूर्व आनन्द कैसा है कि - जो शुद्धोपयोग के फलरूप होने से तथा परम् अद्भुत आल्हादरूप होने से मोक्ष का आनन्द 'अतिशय' है।

(२) वह आनन्द आत्मा से ही उत्पन्न हुआ है तथा वह सुख निमित्त के आश्रय से उत्पन्न नहीं हुआ है। शुभरागरूप व्यवहार के आश्रय से आत्मा का सुख प्रगट नहीं होता, किन्तु भगवान आत्मा शुद्धअमृतानन्द है उसके आश्रय से प्रगट होने से - आत्मा का ही आश्रय करके प्रवर्तित होने से वह सुख आत्मा से ही उत्पन्न हुआ है।

अज्ञानी जीव तो निरोग शरीर, पैसा, मकान, स्त्री, प्रतिष्ठा आदि से आनन्द मानते हैं, वे तो दुःख को ही - भ्रम से सुख मानते हैं। अनादि से संयोग से ही सुख मानते हैं; किन्तु असंयोगी ज्ञातामात्र स्वभाव ही मैं हूँ और उसी के आश्रय से ही सुख होता है ऐसा वे कभी नहीं मानते।

आत्मा के आश्रय से ही शुद्धोपयोग होता है और उसका फल परमानन्दमय अतीन्द्रिय सुख है; इसीलिए वही सुखरूप और सुख का कारण होने से उपादेय है और उससे जो विरुद्ध हैं वे सभी धर्मी जीव को पहले से ही उपादेय नहीं है।

आत्मा का स्वभाव अंतर शुद्ध आनन्द है। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा चिदानन्दरूप देखा है वैसे आत्मा की प्रतीति कब हो कि - जब एक समय में अनन्तगुणों का पिण्ड, त्रिकालवर्ती अनन्त पर्याय का पिण्ड परमानन्दमय मोक्ष स्वरूप है तथा जो एक समय का विभाव, हिंसादि का विकल्प अथवा दया-दान, व्रत-तपादि के शुभ विकल्प हैं उनसे रहित स्वरूप को लक्ष्य में लेकर, मिथ्या अभिप्राय छोड़कर, स्वसन्मुख निर्विकल्प प्रतीति और अनुभव द्वारा अतीन्द्रिय आनन्द सहित यह आत्मा समझ में आवे। आत्मा,शक्ति में से पूर्णानन्दरूप व्यक्त-मोक्षदशा को प्राप्त करता है।

शुद्धोपयोग के फलरूप अपूर्व सुख कैसा है ?

(१) अनादि संसार से जो आल्हाद पहले कभी अनुभव नहीं किया था - ऐसा अपूर्व परम अद्भुत आल्हाद होने से वह 'अतिशय' है।

(२) संयोग और शुभाशुभराग के अवलंबन रहित आत्मा का ही आश्रय करके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवर्तित होने से वह सुख आत्मा से उत्पन्न है।

(३) वह पराश्रय से निरपेक्ष होने से तथा व्यवहार निमित्तरूप पाँच इंद्रियों के विषयों की अपेक्षा रहित - सुख है। परमात्मा ऐसे होते हैं। ऐसा श्री अरहन्त और सिद्ध भगवान का स्मरण करे। वे पर-भगवान - मन का विषय है। पर के लक्ष्य से जो राग होता है इसलिये वह भी आकुलता है - आत्मजनित सुख नहीं। इसलिये पराश्रय की अपेक्षा रहित होने से वह सुख 'विषयातीत' है।

(४) अत्यन्त विलक्षण होने से दूसरे कल्पित लौकिक सुखों से, तद्दन भिन्न लक्षणवाला होने से वह 'अनुपम' है।

लोग कहते हैं कि पाँच लाखरुपये मिले हों तब तो सुखी होना चाहिए ?

वह सुख नहीं है, किन्तु मुनिदशा में निरतिचार-शुद्धमहाव्रत पाले वह शुभ विकल्प भी आकुलतारूप क्लेश है - आत्मा से उत्पन्न सुख नहीं है। चक्रवर्ती भी जितने पाँच इन्द्रियों के विषयों के आलम्बन में है उतना दुःखी है। सम्यक्दृष्टि हो तो जितनी वीतरागदृष्टि पूर्वक आंशिक स्वाश्रय-स्थिरतारूप वीतरागता है उतना सुख है।

(५) अन्तर रहित नित्य स्वभाव के आश्रय से प्रवर्तित होने से 'अविच्छिन्न' ऐसे शुद्धोपयोग से प्राप्त शुद्ध स्वभाव के अवलम्बन द्वारा उत्पन्न हुआ शुद्धोपयोगरूप कारण से - कार्यरूप हुआ ऐसा वह मुक्ति-सुख है।

व्यवहार का फल सुख नहीं, किन्तु एक शुद्ध चिदानन्द स्वभावी आत्मा के अवलम्बनरूप कारण से ही आत्मा का सुख प्रगट होता है। ऐसे सिध्द परमात्माओं का सुख अनुपम है; इसलिये वह सुख सर्व प्रकार से प्रार्थनीय है - आदरणीय है। यहाँ पुण्य-व्यवहार में उत्साह छुड़ाकर, ऐसे सुख स्वरूप में उत्साह कराने के लिये उत्कृष्ट सुख की बात की।

॥ सहजात्म स्वरूप, सर्वज्ञ देव, परमगुरु ॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १४

अथ शुद्धोपयोगपरिणतात्मस्वरूपं निरूपयति -

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति ॥१४॥

अब शुद्धोपयोग परिणत आत्मा का स्वरूप कहते हैं :-

सुविदित पदार्थ सुसूत्र संयम तप सहित रागादि बिन।
सुखदुःख समभावी मुनि शुद्धोपयोगी कहे जिन ॥१४॥

गाथार्थ :- जिन्होंने (निज शुद्धात्मादि) पदार्थों को और सूत्रों को भलीभाँति जान लिया है, जो संयम और तपयुक्त हैं, जो वीतराग अर्थात् राग रहित हैं और जिन्हें सुख-दुःख समान हैं, ऐसे श्रमण को (मुनिवर को) शुद्धोपयोगी कहा गया है।

टीका :- सूत्रों के अर्थ के ज्ञानबल से स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में श्रद्धान में और विधान में (आचरण में) समर्थ होने से (स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता का ज्ञान, श्रद्धान और आचरण होने से) जो श्रमण पदार्थों को और (उनके प्रतिपादक) सूत्रों को जिन्होंने भलीभाँति जान लिया है ऐसे हैं, समस्त छह जीवनिकाय के हनन के विकल्प और पंचेन्द्रिय सम्बंधी अभिलाषा के विकल्प से आत्मा को व्यावृत्त करके आत्मा का शुद्ध स्वरूप में संयमन करने से, और स्वरूप विश्रान्त निस्तरंग चैतन्य प्रतपन होने से जो संयंम और तपयुक्त हैं सकल मोहनीय के विपाक से भेद की भावना की उत्कृष्टता से (समस्त मोहनीय कर्म के उदय से भिन्नत्व की उत्कृष्ट भावना से) निर्विकार आत्मस्वरूप को प्रगट किया होने से जो वीतराग है और परम कला के अवलोकन के कारण सातावेदनीय तथा असातावेदनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाले जो सुख-दुःख उन सुख-दुःख जनित परिणामों की विषमता का अनुभव नहीं होने से (परम सुख रस में लीन निर्विकार स्वसंवेदनरूप परम कला के इष्टानिष्ठ संयोगों में हर्ष-शोकादि विषय परिणामों का अनुभव न होने से) जो सम सुख-दुःख हैं, ऐसे श्रमण शुद्धोपयोगी कहलाते हैं ॥१४॥

* * *

गाथा १४ पर प्रवचन

देखो यह गाथा बहुत ऊंची और सरस है। सूत्रों के अर्थ के ज्ञान द्वारा अर्थात् सर्वज्ञ-वीतरागी कि जिन्होंने तीन काल-तीन लोक का स्वरूप स्पष्ट जाना है; उनसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशित सत् शास्त्र उसे पहचानकर, सूत्र आगम ज्ञान के बल द्वारा स्वद्रव्य और परद्रव्य के विभाग के परिज्ञान में, श्रद्धान में और आचरण में समर्थ होने से।

देखो ! इसमें विकल्प अथवा व्यवहार के बल से आत्मा का ज्ञान होता है - ऐसा नहीं कहा। तथा सर्वज्ञ के नाम से जो कल्पित आगम लिखे गए हैं उनके बल द्वारा भी स्वरूप का यथार्थपना जानने में नहीं आता; किन्तु सर्वज्ञ वीतरागी कि जो अठारह दोष रहित आप्त कहे जाते हैं वे तथा उनके द्वारा कहे हुए आगम और उसमें प्रसिद्ध किये गये-निरुपित किये गये पदार्थ हैं; वैसे ही आप्त-आगम और पदार्थ के स्वरूप को सर्वप्रथम जानना चाहिए। इनमें पूर्वापर विरोध रहित स्व-पर का भेद ज्ञान कराया जाता है। जीव तत्त्व और अजीव तत्त्व में सात तत्त्व का ज्ञान आ जाता है।

स्वद्रव्य में पराश्रय से हटकर स्वद्रव्य में का आलंबन करे वहाँ मिथ्यात्वादि दोष दूर होकर स्वसन्मुख आंशिक शुद्धता होती है; उसमें पराश्रयरूप विभाव में आश्रव, बन्ध और उसके निमित्तरूप अजीव तत्त्व और स्वसन्मुख शुद्धता में - आंशिक शुद्धता वह संवर-निर्जरा है और सम्पूर्ण शुद्धता वह मोक्ष है। उसमें संवर-निर्जरारूप शुद्धोपयोग है, उसका फल मोक्ष है, वह स्वद्रव्य में आता है और पुण्य-पापरूप आश्रव बन्ध और अजीव वह परद्रव्य में आ जाते हैं।

मुक्ति अर्थात् विभाव से, पराश्रयरूप बाह्य झुकाव से छूटना-दूर रहना और शुद्ध चिदानन्द स्वभाव में अवस्थित रहना। मुक्ति होने के पहले मोक्ष और मोक्ष का कारण तथा बन्ध और बन्ध के कारण का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

सर्वप्रथम ज्ञानी के पास आगम का रहस्य, अध्यात्म तत्त्व का उपदेश - अपूर्व प्रीति से सुने और यर्थाथपने सात-तत्त्व तथा देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप जानना चाहिए। इसमें स्वद्रव्य-परद्रव्य के विभाग के श्रद्धान में-ज्ञान में-चारित्र में भावभासनरूप भेदज्ञान द्वारा स्वभाव और विभाव को पहिचान करने की शक्ति होती है। एकबार जिसे स्वद्रव्य सन्मुख होकर, अभेद की श्रद्धा हुई, उसे अतीन्द्रिय आनन्द सहित स्वानुभव से शुद्धोपयोग की प्रसिद्धि होती है; वहाँ उसे स्वप्रकाशक हुए सम्यग्ज्ञान में पर वस्तु के भिन्नत्व का ज्ञान यथार्थ होता ही है।

यहाँ भाव लिंगी मुनि की बात है कि जिनने स्व-पर का भिन्नत्व जाना, श्रद्धा की और अमल में लाने से स्वरूप की ओर लीनता हुई है। स्वसन्मुख हुआ ज्ञान, व्यवहार से भिन्नतारूप श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित होने से उन साधुओं को वीतरागभाव द्वारा चारित्ररूप शुद्धोपयोग होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनि कैसे होते हैं ? जीवादि पदार्थों को और उनके प्रतिपादक सर्वज्ञ कथित सूत्रों को उन्होंने अच्छी तरह जाना है - ऐसे हैं। समस्त छहकायिक जीवों के समुदाय को हनन करने के विकल्प से और पाँच इन्द्रिय सम्बंधी अभिलाषा के विकल्प से, आत्मा को पीछे (रहित) किया है। पृथ्वी, जल, अग्नि,वायु, वनस्पतिकाय के जीव और उनकी उत्पत्ति के स्थानों को जानते हैं। पानी की एक बूंद में असंख्य एकेन्द्रिय जीव हैं और उसमें त्रस जीव भी होते हैं। साधारण वनस्पतिकाय निगोद में एक सूक्ष्म कण में भी अनन्त जीव होते हैं; यह सब अच्छी तरह आगम-ज्ञान के बल से जानते हैं।

यहाँ अकेले पर सन्मुख विकल्प की बात नहीं है अपितु निर्विकार स्वभाव सन्मुख दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता होने से उन्हें इन्द्रिय संयम और छहकाय की हिंसा से विरतिरूप प्राणी संयम हठ रहित सहज होता है। इस तरह मुनियों ने आत्मा के शुद्धस्वरूप में ही सावधानी द्वारा स्वरूप में संयमन किया होने से और स्वरूप विश्रान्त निस्तरंग चैतन्य प्रतपन होने से जो संयम और तप सहित है।

प्रश्न :- इसमें चमत्कार क्या आया ?

समाधान :- चैतन्य मोह निद्रा से हटकर जागृत हुआ, स्व-सन्मुख हुआ यही अनन्तकाल में नहीं हुआ ऐसा दिव्य चमत्कार है। अभी तक तो पर में, पुण्य-पाप में और क्रियाकाण्डरूप व्यवहार में ही सब कुछ मान बैठा था। जहाँ पर द्रव्य से तथा व्यवहार से भिन्न स्वभाव का भान करके, एकाग्र चैतन्य में सावधानीरूप संयमन किया वह संयमरूप चमत्कार है; और मैंने उपवास किया - ऐसे विकल्प से छूटकर निर्विकार सुन्दर आनन्द स्वरूप में विश्रान्तिरूप, चंचलता रहित शांत निश्चलदशा द्वारा चैतन्य का प्रतापवन्त होना, दैदिप्यमान होना वह शुभाशुभ इच्छा रहित तप है। यह चैतन्य की जागृति की प्रकाशमान शोभारूप चमत्कार है। अन्तर में चैतन्य भेदज्ञान द्वारा जागा, विषयों से विमुख होकर स्वसन्मुख स्थिरता हुई वह संयंम-तप सहित वीतरागता है।

तथा वह किस तरह वीतराग है ?

''सकल मोहकर्म के पाक से मैं पृथक ही हूँ'' इसप्रकार स्वयं ज्ञाता चिदानन्द सत्ता सन्मुख इतना उज्ज्वल, बलवानपने जागृत हुआ है; ऐसे भेद की भावना के उत्कृष्टपने द्वारा जिसने निर्विकार आत्मस्वरूप को प्रगट किया होने से जो 'वीतराग' है। 'आत्मा में आनन्द की कल्लोलें उठे - ऐसे तप सहित मुनि होते हैं।'

यहाँ शुद्धोपयोगरूप परिणमित हुए आत्मा का स्वरूप कहते हैं। शुद्धोपयोग अर्थात् पुण्य-पाप से हटकर, स्वभाव सन्मुख सावधानी को शुद्ध उपयोग कहते हैं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका फल मोक्ष है।

मुनि कैसे होते हैं ? वे शास्त्र को तथा शास्त्र में कहे हुए द्रव्यों को जानते हैं। छहकाय की हिंसा के परिणाम से रहित हुए हैं और स्वरूप विश्रान्तपने चैतन्य का प्रतपन कर रहे हैं। सम्यक्त्व रहित व्रत-तप, शीलादि व्यवहार नाम को प्राप्त नहीं होते। ऐसे बालव्रत से जीव को लाभ नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना व्रत-तप सच्चे नहीं होते। यदि शुभरागरूप व्रत के परिणाम हो तो भी पुण्य होता है, किन्तु धर्म नहीं होता। स्वरूप विश्रान्त निस्तरंग प्रतपनरूप तप होता है - ऐसे तप की यहाँ व्याख्या की है।

रोटी न खाय वह जड़ की क्रिया है, राग की मंदता पुण्य है और स्वरूप में स्थिरता वह तप है। आत्मा पर को लानेवाला नहीं है, किन्तु देखनेवाला है। स्वभाव के भानसहित इच्छा की वृत्ति न उठे और आनन्द की कल्लोलें उठे वह तप है। ऐसे तप सहित मुनि होते हैं। सकल मोहनीय के विपाक से, भेद की भावना के उत्कृष्टपने द्वारा, निर्विकार आत्म स्वरूप को प्रगट किया होने से, मुनि वीतराग हैं।

'इष्ट-अनिष्ट संयोगों के समय मुनि को विषमता नहीं होती।'

तथा कैसे हैं मुनि ? आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है, यही उनका सर्वस्व है; उसके अंतरबल के अवलोकन के कारण, सातावेदनीय तथा असातावेदनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाला जो सुख-दुःख है, उस सुख-दुःख जनित परिणाम की विषमता को वे अनुभव नहीं करते। साता-असाता के निमित्तरूप सामग्री कर्म के निमित्त से मिलती है; यह मूलबात कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

कोई कहता है कि - वर्तमान समाज की व्यवस्था बराबर नहीं है, इसलिए पैसेवाले के पास पैसे का राज़ है और गरीब के पास पैसा नहीं है; वैसे ही पौष्टिक आहार नहीं मिला इसलिए शरीर में रोग आया है - ऐसा माने तो यह बात असत्य है। पूर्व के साता के निमित्त से सुख के संयोग दिखाई देते हैं और असाता के निमित्त से दुःख के संयोग दिखाई देते हैं; किन्तु उन निमित्तों के समय, सुख-दुःख की कल्पना मुनिराज को नहीं होती। सुख-दुःख अर्थात् संयोगों में इष्ट-अनिष्टपने की कल्पनारूप जो हर्ष-शोक, अज्ञानदशा में पहले होता था वह अब मुनिराज को नहीं होता।

मुनि को बिच्छु-सर्प काटे, सिंह मारने आए, चक्रवर्ती वन्दना करे, आहार-पानी अच्छे से मिले अथवा नहीं मिले - ये सभी कर्म जनित संयोग है। अज्ञानी जीव मानता है कि ध्यान नहीं रखे तो बिच्छू काट जायगा - तो यह बात असत्य है। आत्मा की इच्छा के कारण पर में फेरफार नहीं होता किन्तु संयोग का मिलना वह पूर्व के कर्मानुसार है। आचार्य देव कहते हैं कि कर्म के विपाक से सुख-दुःख के संयोग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिलते हैं। सुख-दुःख के परिणाम अर्थात् हर्ष-शोक हो वह उन्हें नहीं है। सुख-दुःख की कल्पना वह तो विषमता हुई, वह मुनि को नहीं होती। यहाँ सुख-दुःख अर्थात् बाह्य संयोग की बात है।

वीरसेन स्वामी धवल में कहते हैं कि - संयोगों के मिलने में वेदनीय कर्म निमित्त हैं, अन्य कर्म नहीं। वहाँ उन्होंने तर्क उठाया है कि - वेदनीयकर्म तो जीव विपाकी है और यदि उसे संयोग के मिलने में निमित्त मानोगे तो वेदनीय कर्म पुद्गल विपाकी हो जावेगा ? - ऐसा वहाँ प्रश्न उठाया है।

समाधान :- वेदनीयकर्म पुद्गल विपाकी भी है वह हमें मान्य है, इसप्रकार धवल में वीरसेन स्वामी लिखते हैं। संयोग के काल में संयोग और रोग, रोग के काल में है, उसमें पूर्व में बंधा हुआ वर्तमान उदयरूप कर्म - निमित्त है। लोग जिसे इष्ट मानते हैं उसीको अनिष्ट मानते हैं। उन सर्वसंयोगों के प्रति मुनिराज को समता भाव है, किसी भी प्रसंग में उन्हें विषमता नहीं होती।

मुनि को विषमता क्यों नहीं होती ?

क्योंकि मुनिराज परम् सुख रस में लीन - निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमकला के अनुभव के कारण वे इष्ट-अनिष्ट संयोगों में, हर्ष-शोकादि विषमता का अनुभव नहीं करते; इसलिये उन्हें इष्ट-अनिष्ट संयोग समान है - ऐसे श्रमण शुद्धोपयोगी कहे जाते हैं। शुद्धोपयोग का फल मोक्ष है। शुद्धोपयोग कारण है और मोक्ष कार्य है।

इस १४ वीं गाथा तक प्रवचनसार की पीठिका है। अब उसका विस्तार आता है। अब शुद्ध उपयोग की प्राप्ति के बाद तुरन्त ही-अन्तर पड़े बिना होनेवाली शुद्धात्म स्वभाव की - केवलज्ञान की प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं। शुद्ध उपयोग के फलरूप से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी अविनाशी हूँ आत्मस्वरूप।
देह मरे पर मैं नहीं मरता अज़र अमर मैं आत्मस्वरूप॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १५

अथ शुद्धोपयोगलाभानन्तरभाविशुद्धात्मस्वभावलाभमभिनन्दति -

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ ।
भूदो सयमेवादा जादि परं णेयभूदाणं ॥१५॥

अब, शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बाद तत्काल (अन्तर पड़े बिना) ही होनेवाली शुद्ध आत्म स्वभाव (केवलज्ञान) प्राप्ति की प्रशंसा करते हैं :-

शुद्धोपयोगी जीव जो आवरण मोहान्तराय से ।
स्वयमेव होकर रहित पाते पार ज्ञेय पदार्थ के ॥१५॥

गाथार्थ :- जो उपयोग विशुद्ध (शुद्धोपयोगी) है वह आत्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहरूप रज से रहित स्वयमेव होता हुआ ज्ञेयभूत पदार्थों के पार को प्राप्त होता है।

टीका :- जो (आत्मा) चैतन्य परिणाम स्वरूप उपयोग के द्वारा यथाशक्ति विशुद्ध होकर वर्तता है, वह (आत्मा) जिसे पद-पद पर (प्रत्येक पर्याय में) विशिष्ट विशुद्ध शक्ति प्रगट होती जाती है, ऐसा होने से, अनादि संसार से बंधी हुई दृढ़तर मोहग्रंथी छूट जाने से अत्यंत निर्विकार चैतन्यवाला और समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय के नष्ट हो जाने से निर्विघ्न विकसित आत्म शक्तिवान स्वयमेव होता हुआ ज्ञेयता को प्राप्त (पदार्थों) के अन्त को पा लेता है।

यहाँ (यह कहा है कि) आत्मा, ज्ञानस्वभाव है और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है; इसलिये समस्त ज्ञेयों के भीतर प्रवेश को प्राप्त (ज्ञाता) ज्ञान जिसका स्वभाव है ऐसे आत्मा को आत्मा शुद्धोपयोग के ही प्रसाद से प्राप्त करता है।

भावार्थः- शुद्धोपयोगी जीव प्रतिक्षण अत्यन्त शुद्धि को प्राप्त करता रहता है; और इसप्रकार मोह का क्षय करके निर्विकार चेतनावान होकर बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का युगपद् क्षय करके समस्त ज्ञेयों को जाननेवाले केवलज्ञान को प्राप्त करता है। इसप्रकार शुद्धोपयोग से ही शुद्धात्म-स्वभाव का लाभ होता है ॥ १५ ॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा १५ पर प्रवचन

'चेतन द्रव्य के अवलंबन से शुद्धि बढ़ती जाती है।'

''चेतन द्रव्य है, चैतन्य गुण है और उपयोग उसका परिणाम है'' - ऐसे चैतन्य परिणाम स्वरूप द्वारा शुद्धि बढ़ती है किन्तु किसी निमित्त के कारण अथवा व्यवहार के कारण शुद्धि बढ़े - ऐसा है ही नहीं। आत्मा शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा है, इस स्वभाव सन्मुख होकर शुद्धोपयोग होता है। जितनी शुद्धता होती है उतनी वीतरागतारूप होकर आत्मा परिणमित होता है। व्यवहार से, निमित्त से अथवा राग की मंदता से विशुद्ध वर्तन नहीं होता।

आत्मा चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा है, उसके जानने देखने के परिणाम में, पर्याय-पर्याय में अरागी निर्मल परिणाम की वृद्धि होती जाती है। भूमिका अनुसार राग और उसके निमित्त भले हों किन्तु वे आदरणीय नहीं है। चेतन द्रव्य का अवलम्बन लेकर विशुद्धि बढ़ती जाती है - दूसरा कोई उपाय नहीं है। स्वभाव सन्मुख दृष्टि और स्थिरता हुई है इसीसे निर्मलता बढ़ती है।

विशुद्धि बढ़ने पर स्वयमेव केवलदशा को प्राप्त होते हैं.

ऐसा होने से चारित्र मोह ग्रंथी छूट जाती है, दर्शनमोह तो पहले ही छूट गया है, तत्पश्चात् अनादि संसार से बंधा हुआ चारित्रमोह भी छूट जाता है। राग-द्वेष अनादि के हैं वे छूट जाते हैं और आत्मा अत्यन्त निर्विकार-चैतन्यमय होता है - ऐसा बारहवां गुणस्थान प्रगट किया, इसके बाद समस्त ज्ञानावरण - दर्शनावरण तथा अन्तराय नष्ट होने से निर्विघ्न खिली हुई आत्म शक्तिवाला स्वयमेंव होता है।

इसप्रकार आत्मा केवलज्ञानादिरूप से प्रगट होता है। स्वभाव के अवलम्बन से जिस शुद्धता का अंश प्रगट हुआ है, उसी से केवलज्ञान प्रगट होता है। जैसे संकुचित कली खिलती है; वैसे ही परम् स्वभाव जो शक्तिरूप से था और जिसकी वर्तमान पर्याय संकुचित थी वह अब पूर्ण स्वभाव के बल से खिल जाती है। श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञानरूप अपूर्ण विकास खिला हुआ था, किन्तु यह तो पूर्णदशा प्रगट हो गई है अर्थात् उसे कर्म निमित्तरूप नहीं होते। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय ये तीन कर्म नष्ट हो गए हैं। स्वयं आत्मशक्तिवाला स्वयमेव होता है।

सर्वप्रथम, ज्ञानस्वभाव की दृष्टि-ज्ञान पूर्वक स्थिरता से चारित्रदशा को प्राप्त करते हैं, उसमें विशेष स्थिरता से शुक्ल ध्यान प्रगट होता है। सम्पूर्ण स्व-आश्रय से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं। परमात्मा की कला अर्थात् केवलज्ञान कौन प्राप्त कर सकेगा ? वह यहाँ बताते हैं।

आत्मा की श्रद्धा करके स्थिरता के अंश बढ़ते जाते हैं और पूर्ण वीतरागदशा प्राप्त करके आत्मा स्वयमेव केवलज्ञान को प्राप्त होता है। यहाँ, 'स्वयमेव' शब्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु वज्रकाय की बात नहीं की।

जितने ज्ञेय हैं उन सभी को केवलज्ञान जानता है। ज्ञात होने योग्य सभी पदार्थों को केवलज्ञान जानता है। अधूरीदशा में विकल्प आता है, किन्तु विकल्प के कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अथवा शुक्ल ध्यान प्रगट नहीं होता। आत्मसन्मुखदशा - एक ही कारण हैं। विभाव और निमित्त से भेद ज्ञान किया है, स्वभाव सन्मुखदशा हुई है। स्वभाव सन्मुख होते ही वे केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं।

स्वयमेव अर्थात् ज्ञान, ज्ञान की अपेक्षा रखता है; किन्तु किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं रखता। जो शक्ति संकोचरूप थी वह मिट कर, पूर्ण विकासपना प्रगट होता है। भविष्य में किस द्रव्य की कौन सी पर्याय होगी - वह केवल ज्ञान ने जान लिया है। इस जीव को ऐसा राग व सम्यक्त्व होनेवाला है वह केवलज्ञान जानता है। अपने (अर्हंत के) अघाति कर्म कब छूटेंगे वह सब केवल ज्ञान जानता है। इसप्रकार केवलज्ञान सर्व प्रकार से सर्व को जानता है - ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि स्वभाव सन्मुख रहती है।

केवलज्ञान की सत्ता स्वीकार करनेवाले की -
स्वभाव सन्मुख दृष्टि होती है.

प्रश्न :- कोई कहे कि - केवलज्ञान पदार्थों के अन्त को प्राप्त होता है (सब जानता है) तो फिर हमें करना क्या शेष रहा ?

समाधान :- केवलज्ञान को तूने माना है ? क्या तुझे सर्वज्ञ की प्रतीति आई है ? ज्ञानस्वभावी आत्मा त्रिकाल रहा है। निमित्त और पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करे तो सम्यग्दर्शन होकर केवलज्ञान प्रगट होता है; किन्तु जैसा होना होगा - वैसा ही होगा - ऐसा मात्र बोलकर स्वछन्दता सेवन करनेवाले को न तो पदार्थ की न केवलज्ञान की और न ही वाणी की इसतरह उसे तीनों की ही खबर नहीं है।

जिस द्रव्य की, जिसप्रकार की, जहाँ जैसी अवस्था होनेवाली है वह होगी - ऐसा केवलज्ञान की सत्ता कबूल (स्वीकार) करनेवाला समझता है कि - "मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, मुझे पर को बदलना नहीं है। जो पर को अथवा राग को बदलना चाहते हैं वे केवलज्ञान को बदलना चाहते हैं तथा द्रव्य के स्वभाव को बदलना चाहते हैं - वे कुछ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी नहीं जानते।''

भगवान सभी के अन्त को प्राप्त हो गए हैं - यह निर्णय स्वभाव सन्मुख होने पर होता है। सर्वज्ञ की प्रतीति करनेवाले को सर्वज्ञ कैसे होते हैं ? यह खबर हो गई है। उसकी ऊपर कही - वह विधि है। यह सम्यक्-नियत है; यदि, अनियत मानोगे तो सर्वज्ञ नहीं रहेंगे तथा तेरे स्वभाव का निर्णय भी नहीं रहेगा और मिथ्यादृष्टि हो जाएगा।

निमित्त, विकार और अल्पज्ञता की रुचि छोड़कर आत्मा की रुचि करनेवाला केवलज्ञान को प्राप्त होता है.

सर्वज्ञ को मानने की कौनसी रीति है ?

तेरे ज्ञानस्वभाव की रुचिकर, वही सम्यग्दर्शन है और यदि उसी में एकाग्र होकर परिणमित हो तो केवलज्ञान प्रगट हो - ऐसा है। जितने पदार्थ हैं, उसमें कुछ भी आगे-पीछे नहीं होता - ऐसा केवलज्ञानी जानते हैं। कोई कहता है कि - अपेक्षित धर्मों को केवलज्ञान नहीं जानता - तो यह बात असत्य है। केवलज्ञान सभी धर्मो को जानता है। केवलज्ञान वह एक समय की पूर्ण पर्याय है।

वह (केवलज्ञान) कहाँ से आया ?

आत्मा में सर्वज्ञ शक्ति है, उसकी प्रतीति हुई है तथा निमित्त, शुभराग, व्यवहार, अल्पज्ञता की रुचि छूट गई है; इसप्रकार पूर्ण स्वरूप की प्रतीति साथ में आती है। इसके विपरीत सभी पर्यायें क्रमबद्ध है, उसमें फेरफार होता है - ऐसा माननेवाला केवलज्ञानी को नहीं मानता तथा वह आत्मा के स्वभाव को भी नहीं मानता। जितने भी पदार्थ ज्ञात होने योग्य हैं, वे सर्व ही केवलज्ञान में ज्ञात हो गए हैं; तीनकाल-तीनलोक के समस्त ही पदार्थ, द्रव्य-गुण-पर्याय सहित ज्ञात हो गए हैं।

तीन काल के समस्त ज्ञेयों को केवलज्ञान जानता है.

यहाँ ऐसा कहा कि आत्मा ज्ञानस्वभावी है और ज्ञान, ज्ञेय प्रमाण है। राग को करना, व्यवहार को करना और व्यवहार को छोड़ना उसका स्वभाव नहीं है, इसी तरह निमित्त को लाना और छोड़ना भी उसका स्वभाव नहीं है। केवलज्ञानी की एक समय में अनन्त शक्ति है, अनन्त लोका-लोक को जान लेने की शक्ति है, किन्तु ज्ञान, ज्ञेय प्रमाण है ऐसा कहने का अर्थ यह है कि ज्ञान सभी ज्ञेयों को जान लेता है, कोई बाकी नहीं रहता। प्रत्येक समय में तीनोंकाल का, छहों द्रव्यों का स्वरूप पूरी तरह से केवलज्ञान जानता है। जिस पर्याय को वर्तमानरूप जानता है, उसे एक समय के बाद भूतरूप से जानेगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जब, स्थूल बुद्धिवाले ज्योतिष-ज्ञानी भी भविष्य की अमुक बातों को निश्चितपने जानते हैं तो सर्वप्रकार से निर्मल केवलज्ञानी भविष्य को निश्चितरूप से क्यों नहीं जानेंगे ? अत: जितने भी ज्ञेय हैं उन सभी को वे जानते हैं।

शुद्ध उपयोग की प्रसादी से केवलज्ञान प्राप्त होता है.

समस्त ज्ञेयों को जाननेवाले ज्ञान जैसा जिसका स्वभाव है - ऐसे आत्मा को आत्मा, शुद्ध उपयोग के प्रसाद से ही प्राप्त करता है। ज्ञान ज्ञेयों में प्रविष्ट नहीं होता, किन्तु लोकालोक को जान लेता है। ऐसे ज्ञान-स्वभाववाले आत्मा को आत्मा, शुद्ध उपयोग के प्रसाद से ही प्राप्त करता है यह सम्यक् एकान्त है। शुभ-राग अथवा व्यवहार से किसी को केवलज्ञान हो जाए और किसी को स्व-द्रव्य के आलम्बनरूप निश्चय से भी केवलज्ञान हो जाए - ऐसा अनेकान्त का स्वरूप नहीं है, किन्तु यह नियम है कि - शुद्धोपयोग के प्रसाद से ही सम्यक्त्व, चारित्र और केवलज्ञान प्राप्त होता है।

आत्मा केवल ज्ञानमय शुद्ध चैतन्य मूर्ति है, उसकी दृष्टि-ज्ञान और रमणता से ही जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है; किन्तु किसी निमित्त अथवा व्यवहार से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यहाँ 'ही' शब्द का प्रयोग किया गया है; यह उसका अनेकान्त नियमपना बताने के लिये है कि - इसी उपाय से ही केवलज्ञान प्राप्त होता है और किसी दूसरे से केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ पर प्रवचन - शुद्ध उपयोगी जीव क्षण-क्षण में अत्यन्त शुद्धि प्राप्त करता जाता है। क्षण-क्षण में निर्मलता प्राप्त करता है। इसप्रकार विकार रहित होकर बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तराय को युगपद् क्षय करता है। इसप्रकार वह सर्व ज्ञेयों को जानने की केवलज्ञानदशा प्राप्त करता है।

इस तरह शुद्धोपयोग से ही स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव का ज्ञान, स्वभाव का आचरण और शुद्धात्म स्वभाव का लाभ होता है; अत: यह लाभ सवाया (उत्कृष्ट) है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १६

अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्य कारकान्तरनिरपेक्ष-तयाऽत्यन्तमात्मायत्तत्वं द्योतयति -

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो ।
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो ॥१६॥

अब, शुद्धोपयोग से होनेवाली शुद्धात्म स्वभाव की प्राप्ति अन्य कारकों से निरपेक्ष (स्वंतत्र) होने से अत्यन्त आत्माधीन है (लेशमात्र पराधीन नहीं है) यह प्रगट करते हैं:-

स्वात्मोपलब्धि सहित हैं स्वयमेव सबसे पूज्य हैं ।
सर्वज्ञ हैं श्री जिन अतः कहते स्वयंभू हैं उन्हें ॥१६॥

गाथार्थ :- इसप्रकार वह आत्मा स्वभाव को प्राप्त सर्वज्ञ और सर्व (तीन) लोक के अधिपतियों से पूजित स्वयमेव हुआ होने से 'स्वयंभू' है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

टीका:- शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से समस्त घाति कर्मों के नष्ट होने से जिसने शुद्ध अनन्त शक्तिवान चैतन्य स्वभाव को प्राप्त किया है, ऐसा यह (पूर्वोक्त) आत्मा, (१) शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वतंत्र होने से जिसने कर्तृत्त्व के अधिकार को ग्रहण किया है ऐसा, (२) शुद्ध अनन्त शक्ति युक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के कारण स्वयं ही प्राप्य होने से (स्वयं ही प्राप्त होता होने से) कर्मत्व का अनुभव करता हुआ, (३) शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव से स्वयं से स्वयं ही साधकतम (उत्कृष्ट साधन) होने से करणता को धारण करता हुआ, (४) शुद्ध अनन्त शक्ति युक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित होने से (अर्थात् कर्म स्वयं को ही देने में आता होने से) सम्प्रदानता को धारण करता हुआ, (५) शुद्ध अनन्त शक्तिमय ज्ञानरूप से परिणमित होने के समय पूर्व में प्रवर्तमान विकल ज्ञानस्वभाव का नाश होने पर भी सहज ज्ञानस्वभाव से स्वयं ही ध्रुवता का अवलम्बन करने से अपादानता को धारण करता हुआ, और (६) शुद्ध अनन्त शक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ - इसप्रकार स्वयमेव छह कारकरूप होने से, अथवा उत्पत्ति-अपेक्षा से द्रव्य-भावभेद से भिन्न

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

घातिकर्मों को दूर करके स्वयमेव आविर्भूत होने से, 'स्वयंभू' कहलाता है।

यहाँ यह कहा गया है कि - निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का सम्बंध नहीं है कि जिससे शुद्धात्म स्वभाव की प्राप्ति के लिये सामग्री (बाह्य साधन) ढूँढने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतंत्र होते हैं।

भावार्थः- कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण नामक छह कारक हैं। जो स्वतंत्रतया-स्वाधीनता से करता है वह - कर्ता है; कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह कर्म है; साधकतम अर्थात उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं; कर्म जिसे दिया जाता है अथवा जिसके लिये किया जाता है, वह सम्प्रदान है जिसमें से कर्म किया जाता है, वह ध्रुव वस्तु अपादान है, और जिसमें अर्थात् जिसके आधार से कर्म किया जाता है वह अधिकरण है। यह छह कारक व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार के हैं। जहाँ पर के निमित्त से कार्य की सिद्धि कहलाती है, वहाँ व्यवहार कारक है और जहाँ अपने ही उपादान कारण से कार्य की सिद्धी कही जाती है वहाँ निश्चय कारक है।

व्यवहार कारकों का दृष्टांत इसप्रकार है - कुम्हार कर्ता है; घड़ा कर्म है; दण्ड, चक्र, चीवर इत्यादि करण हैं; कुम्हार जल भरनेवाले के लिए घड़ा बनाता है इसलिये जल भरनेवाला सम्प्रदान है; टोकरी में से मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है इसलिए टोकरी अपादान है और पृथ्वी के आधार पर घड़ा बनता है इसलिये पृथ्वी अधिकरण है। यहाँ सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं। अन्य कर्ता है; अन्य कर्म है; अन्य करण है; अन्य सम्प्रदान; अन्य अपादान और अन्य अधिकरण है। परमार्थतः कोई द्रव्य किसी का कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता, इसलिये यह छहों व्यवहार कारक असत्य हैं वे मात्र उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहे जाते हैं। निश्चय से किसी द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ कारणता का सम्बंध है ही नहीं।

निश्चय कारकों का दृष्टांत इसप्रकार हैः- मिट्टी स्वतंत्रतया घटरूप आकार को प्राप्त होती है इसलिये मिट्टी कर्ता है और घड़ा कर्म है। अथवा घड़ा मिट्टी से अभिन्न है इसलिये मिट्टी स्वयं ही कर्म है; अपने परिणमन स्वभाव से मिट्टी ने घड़ा बनाया इसलिये मिट्टी स्वयं ही करण है; मिट्टी ने घड़ारूप कर्म अपने को ही दिया इसलिये मिट्टी स्वयं सम्प्रदान है; मिट्टी ने अपने में से पिण्डरूप अवस्था नष्ट करके घटरूप कर्म किया और स्वयं ध्रुव बनी रही इसलिये वह स्वयं ही अपादान है, मिट्टी ने अपने ही आधार से घड़ा बनाया इसलिये स्वयं ही अधिकरण है। इसप्रकार निश्चय से छहों कारक एक ही द्रव्य में है। परमार्थतः एक द्रव्य दूसरे की सहायता नहीं कर सकता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और द्रव्य स्वयं ही, अपने को, अपने से, अपने लिए, अपने में से, अपने में करता है इसलिये निश्चय छह कारक ही परम् सत्य है।

उपरोक्त प्रकार से द्रव्य स्वयं ही अपनी अनन्त शक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण है इसलिये स्वयं ही छह कारकरूप होकर अपना कार्य करने के लिए समर्थ है, उसे बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती। इसलिये केवलज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आत्मा को बाह्य सामग्री की अपेक्षा रखकर परतंत्र होना - निरर्थक है। शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छह कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है। वह आत्मा स्वयं अनन्त शक्तिवान ज्ञायक स्वभाव से स्वतंत्र है इसलिये स्वयं ही कर्ता है, स्वयं अनन्त शक्तिवाले केवलज्ञान को प्राप्त करने से केवलज्ञान कर्म है अथवा केवलज्ञान से स्वयं अभिन्न होने से आत्मा स्वयं ही कर्म है; अपने अनन्त शक्तिवाले परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधन से केवलज्ञान को प्रगट करता है, इसलिये आत्मा स्वयं ही करण है; अपने को ही केवलज्ञान देता है, इसलिये आत्मा स्वयं ही सम्प्रदान है; अपने में से मति श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान प्रगट करता है इसलिये और स्वयं सहज ज्ञानस्वभाव के द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वयं ही अपादान है, अपने में ही अर्थात् अपने ही आधार से केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिये स्वयं ही अधिकरण है। इसप्रकार स्वयं छह कारकरूप होता है, इसलिये वह 'स्वयंभू' कहलाता है।

* * *

गाथा १६ पर प्रवचन

व्यवहार की अपेक्षा बिना केवलज्ञान की प्राप्ति - आत्माधीन होती है.

अब, जो स्वयमेव शब्द का प्रयोग किया गया था, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। स्वयं अपनी शक्ति अन्तर में पड़ी है उससे ही केवलज्ञान होता है। शुद्ध उपयोग से होनेवाली शुद्धात्म स्वभाव की प्राप्ति अन्य कारकों से निरपेक्ष ही है; अर्थात् उसे निमित्त कारकों की अपेक्षा नहीं होती। इसी तरह अशुद्धता में भी निमित्त कारकों की अपेक्षा नहीं है; अशुद्धता के कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छहों कारक निरपेक्ष हैं - ऐसा पंचास्तिकाय में कहा है। विकार के छहों कारक निरपेक्ष हैं। यहाँ शुद्धता के कारकों की बात हैं।

क्या सर्वज्ञ होने में व्यवहार की अपेक्षा है ?

नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिराज को जो अट्ठाईस मूलगुण का शुभराग उठता है उसकी तो अपेक्षा है ना ?

नहीं। क्योंकि केवलज्ञान की प्राप्ति, आत्म स्वभाव सन्मुख होने से ही होती है; इसलिये मोक्ष मार्ग भी अत्यन्त अर्थात् सम्पूर्णरूप से आत्माधीन है - लेशमात्र भी पराधीन नहीं है - ऐसा यहाँ प्रकाशित करते हैं।

अब, शुद्ध उपयोग से होनेवाली केवलज्ञान की प्राप्ति अन्य कारकों से स्वतंत्र होने से अत्यन्त आत्माधीन है, लेशमात्र भी पराधीन नहीं है - ऐसा प्रसिद्ध करते हैं। यह आत्मा शुद्ध चिदानन्द स्वरूपी है उसकी अंर्तमुख दृष्टि और स्थिरता द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, उसमें व्यवहार रत्नत्रय का शुभराग आता है, किन्तु उसकी अपेक्षा नहीं होती।

शुद्ध चिदानन्द के आश्रय से ही जीव सम्यग्दर्शन, चारित्र और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान अत्यन्त आत्माधीन है, लेशमात्र भी पराधीन नहीं है। बीच में व्यवहार आता है, किन्तु उसकी थोड़ी भी अपेक्षा नहीं है और केवलज्ञान के कारणरूप निश्चय मोक्ष मार्ग को, अकेले निज शुद्धात्मा का ही आश्रय होने से, यह मोक्ष मार्ग ही अत्यन्त आत्माधीन है - यह बात यहाँ कहते हैं।

स्वयं अपने से अपनी सर्वज्ञ पर्याय प्रगट करते हैं, इस तरह वे आत्मा केवलज्ञानदशा को प्राप्त हुए हैं। वे सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और चक्रवर्तियों से पूजित हैं। स्वयं से - अपने चैतन्य स्वभाव से केवलज्ञान व परमात्म पद को प्राप्त हुए हैं। व्यवहार होते हुए भी उन्हें व्यवहार रत्नत्रय की थोड़ी भी अपेक्षा नहीं है, इसलिये आत्मा ही स्वयंभू है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

ज्ञानस्वभाव में पूर्ण एकाग्रता होने पर चारघातिकर्म स्वयं नाश को प्राप्त होते हैं.

टीका पर प्रवचन - भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है - ऐसी निर्विकल्प प्रतीति करने के बाद, शुद्धोपयोग की भावना अथवा एकाग्रता करता है, ज्ञान स्वरूप - चिदानन्द है, विकार और विकार की रुचि छोड़कर आत्मा का अनुभव करे वह सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न :- इसके बाद क्या करना ? अट्ठाईस मूलगुण का पालन करे तभी तो मुनिपना अथवा सर्वज्ञपना आएगा ?

समाधान :- नहीं। उसमें व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। निश्चय की अपेक्षा बिना - व्यवहार के ऊपर आरोप नहीं आता। व्यवहार के प्रभाव से कर्म नष्ट हो जाते हैं -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा नहीं कहा अपितु शुद्ध उपयोग की भावना के प्रभाव से वे दूर हुए हैं - ऐसा कहा है। आत्मा जड़ कर्म का नाश नहीं करता, वे कर्म तो उनके कारण से नाश होते हैं; किन्तु शुद्ध उपयोग निमित्त है, इसलिए उसके प्रभाव से कर्म नाश हुए - ऐसा कहने में आता है। घातिकर्म - पर है। परको नाश किया कहना यह व्यवहारनय का कथन है। वे कर्म उनके कारण से नाश को प्राप्त होते हैं। आत्मा अपने में एकाग्रता करता है यह निश्चय है, उस समय कर्म स्वयं नाश को प्राप्त होते हैं। यदि, कर्म नाश होनेवाले नहीं थे और आत्मा उनका नाश करे तो आत्मा जड़ का कर्ता हो जाए; किन्तु ऐसा नहीं होता।

चिदानन्द स्वभाव मेरा स्वरूप है ऐसा सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् स्वरूप की लीनतारूप चारित्रभाव द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, और चारघाति कर्म स्वयं दूर हो जाते हैं अर्थात् उन्होंने चारघाति कर्म को नाश किया - ऐसा असद्भूत व्यवहारनय के कथन द्वारा - कहा जाता है।

शुद्ध उपयोग की भावना से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है.

कर्म का नाश किया उससे क्या प्राप्त हुआ ?

चेतन द्रव्य है, चैतन्य गुण है अथवा स्वभाव है, चेतनगुणी है। चैतन्य त्रिकाली गुण है। यहाँ शुद्ध अनन्त शक्तिवाला चैतन्य स्वभाव शक्तिरूप से था उसे पर्याय में प्राप्त किया है। चेतन का स्वभाव अनन्त शक्तिवान है, उस एक के ही आश्रय से अनन्त शक्तिवाले केवलज्ञानस्वभाव को प्राप्त किया है - ऐसे इस आत्मा की बात चलती है। आत्मा कहो अथवा चेतन कहो, गुण कहो अथवा स्वभाव कहो। चेतन के आश्रय से रमणता करने पर चैतन्य स्वभाव की प्राप्ति पर्याय में हुई हो उसे ही सर्वज्ञपद की प्राप्ति होती है।

केवलज्ञान की प्राप्ति में पाँच महाव्रतादि के राग की अपेक्षा नहीं होती.

अब उन्हें कारक किस तरह हैं ?

सो कहते हैं - पहले, शुद्धोपयोग की भावना - ऐसा कहकर साधारण बात की थी अब, विस्तार करते हैं।

वज्र जैसा संहनन था, काल अच्छा था इसलिये केवलज्ञान प्राप्त हुआ है ? नहीं। क्योंकि निचलीदशा में सम्यग्दर्शन के समय ही पर की अपेक्षा नहीं थी।

'मैं शुद्ध चिदानन्द हूँ'- ऐसी सन्मुखता को सम्यग्दर्शन कहते हैं। विशेष सन्मुखता को चारित्र अथवा शुद्ध उपयोग कहते हैं। पूर्णता होने पर केवलज्ञानदशा प्रगट होती है, यहाँ उसके छह कारक बताएंगे। व्यवहार रत्नत्रय के विकल्प भलें हों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु उनके आधार से केवलज्ञान नहीं होता। पंचमहाव्रत के राग के कारण चारित्र नहीं होता। जिस निर्मल स्वभाव की अपेक्षा से चारित्र होता है, उसी स्वभाव अपेक्षा से केवलज्ञान होता है। स्वयं, स्वयंभू-जागृत हुआ अर्थात् स्वयंभू हुआ है।

स्वयं ज्ञायक स्वभाव के कारण केवलज्ञान की प्राप्ति में मुख्य अधिष्ठाता है.

(१) अब, छह बोल (कारकों) में पहले कर्ता कारक कहते हैं। शुद्ध अनन्त शक्तिवाले ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वतंत्र होने से उसने कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया है। आत्मा का स्वभाव जानने का है। पर का करना अथवा राग का करना वह उसका स्वभाव नहीं है। स्वयं ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वतंत्र है। विकल्प है अथवा संहनन है इसलिये केवलज्ञान पर्याय का कर्ता होता है - ऐसा नहीं है। मेरा सर्वज्ञ स्वभाव विद्यमान है। उसके कारण स्वतंत्रपने केवलज्ञान प्रगट होता है। बीच में व्यवहार आता है, इसलिये शुद्ध उपयोग का आचरण होता है और केवलज्ञान होता है - ऐसा नहीं है। स्वयं ही परिणामरूप होकर स्वयं उसका करनेवाला है; अतः वह कर्ता है।

यहाँ शुद्ध की बात है, राग की मंदता हुई - इस कारण अथवा मनुष्य देह तथा अमुक काल के कारण केवलज्ञानी हुआ है - ऐसा यहाँ नहीं कहा। शुद्ध अपने ज्ञायक स्वभाव के कारण स्वयं ही, शुद्ध उपयोग का कर्तापने के कारण अधिकार ग्रहण किया है। शुद्ध उपयोगपने होने का अधिकार ग्रहण किया है, किन्तु राग और निमित्त को अपना अधिकार सौंपा नहीं है। मेरे कर्तापने में शुभाशुभ विकल्प अथवा संहनन नहीं है। व्यवहार अथवा निमित्तपने के कारण कर्तापने का अधिकार ग्रहण नहीं किया है।

निमित्त पाकर उपादान प्रभाव बतावे - ऐसा है ही नहीं। किस भूमिका में कौन से निमित्त और व्यवहार होते हैं वह बात ज्ञान कराने के लिये है, किन्तु आश्रय कराने के लिये नहीं। निश्चय के समय भले ही उस समय व्यवहार हो किन्तु उसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं होती। पूर्णदशा और अधूरीदशा में भी - ऐसा ही है। स्वयं शुद्ध अनन्त शक्तिवाला ज्ञायक होने के कारण सम्यग्दर्शन की पर्याय के, कर्तापने का अधिकार ग्रहण किया है।

स्वयं अपने गुण की अवस्था के कर्ता का अधिकार हाथ में लिया है। जैसे अमुक संस्था में मुख्य अधिष्ठाता कौन है ? वह कहते हैं। वैसे ही केवलज्ञान की प्राप्ति मेंवास्तविक अधिष्ठाता कौन है ? यह आत्मा ज्ञायकपने के कारण स्वतंत्र होने से, स्वयं ही कर्तापने का स्वामित्व ग्रहण किया है। राग को, व्यवहार को अथवा निमित्त को कर्तापना नहीं देता। शुद्ध उपयोगरूपी कार्य को स्वयं अनुभव करते हुये,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

(२) कर्म कारक :- शुद्ध अनन्त शक्तिवाला - ज्ञानरूप परिणमित होनेवाले स्वभाव के कारण स्वयं प्राप्त करता होने से कर्मपने को अनुभवता है। यह कर्म अर्थात् केवलज्ञानरूपी कार्य की बात है। यहाँ जड़ कर्म की अथवा पुण्य-पाप के कर्म की बात नहीं है अपितु केवलज्ञानरूपी कर्म की बात है। स्वयं ज्ञानस्वभावरूप बदलने (परिणमने) के स्वभाववाला है। सर्वज्ञ शक्ति विद्यमान है, इसके अवलम्बन से स्वयं परिणमित होता है। अपनी पर्याय, स्वयं प्राप्त करता है। 'कर्म' कारक में प्राप्य शब्द के ऊपर वजन है।

जीव ने क्या प्राप्त किया है ? और केवलज्ञान कर्म किस तरह का है ?

जीव अनन्त शक्तिवाले ज्ञानरूप परिणमन स्वभाव के कारण स्वयं ही केवलज्ञान को प्राप्त करता है। राग और व्यवहार का अभाव हुआ है, इसीलिए केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं है। अपनी केवलज्ञान आदि पर्याय अथवा अनन्त चतुष्टयरूप पर्याय को स्वयं प्राप्त करता है। ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करके, उसमें लीनता होते ही स्वयं अपने को प्राप्त करता है। स्वयं राग को अपने में नहीं मिलाता, निमित्त अथवा राग से नहीं मिलता और स्वयं निमित्त को नहीं मिलाता।

राग प्राप्त किया इसलिए केवलज्ञान प्राप्त हुआ है ?

नहीं। स्वयं ज्ञायक द्रव्य त्रिकाल है, इसलिए वर्तमान पर्याय को स्वयं प्राप्त होता है। आत्मा स्वयं, किसी भी समय राग को प्राप्त होता हो - ऐसा नहीं है। मुनष्य देह अथवा वज्र काय थी, इसीलिये केवलज्ञान प्राप्त हुआ है - ऐसा नहीं है। मनुष्य देह अथवा वज्र काय आदि भले हो किन्तु स्वयं के ज्ञान परिणमन के कारण, केवलज्ञानरूप कार्य को पहुँच जाता है। शुद्ध उपयोगी कार्य को तथा केवलज्ञान को जीव स्वयं अनुभवता है। कर्म, कार्य अथवा अवस्था ये तीनों एकार्थवाची हैं। यहाँ जड़कर्म अथवा भावकर्म की बात नहीं है, किन्तु शुद्धोपयोग अर्थात् धर्मरूपी कर्म की बात है। परिणमन के कारण स्वयं शुद्धोपयोगरूप कर्म को अनुभवता है किन्तु राग को नहीं अनुभवता; तथा निमित्त को तो स्पर्श भी नहीं करता।

अज्ञानी बाहर के साधनों को मददगार मानता है। उपवास करें अथवा तप करें तो केवलज्ञान होता है - यह बात असत्य है। 'इस आहार को छोड़ूँ' - इस विकल्प को आत्मा स्पर्श नहीं करता अपितु अपने स्वभाव को स्पर्श करता है। इसप्रकार आत्मा, शुद्धोपयोगरूपी कार्य को स्वयं अनुभव करता हुआ, केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३) करण कारक :- केवलज्ञान प्रगट करने में अपना शुद्धोपयोग साधन है। शुद्ध अनन्त शक्तिवाला ज्ञानरूप परिणमित होने के स्वभाव के कारण स्वयं ही साधकतम (उत्कृष्ट साधन) होने से करणपने को धारण करता है। केवलज्ञान के लिए साधन देखना - ढूंढना है ना ? सो कहते हैं कि - केवलज्ञान के लिए बाहर के साधनों की जरूरत नहीं होती। स्वयं अपनी पर्याय में ज्ञानरूप परिणमित होने के स्वभाव के कारण शुद्धोपयोग, स्वयं ही साधन है।

किस भूमिका में कैसे निमित्त होते हैं, उसका ज्ञान कराने के लिये, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य है - ऐसा पंचास्तिकाय शास्त्र में उल्लिखित है; किन्तु जब स्वयं ही अपना उत्कृष्ट साधन करे तो व्यवहार साधन कहा जाता है। छहढ़ाला में व्यवहार को निश्चय का हेतु (कारण) कहा है, (जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।) यहाँ निमित्त का ज्ञान कराया है, परन्तु यह व्यवहार का कथन है। जीव स्वयं अपने स्व-साधन से निश्चय रत्नत्रय प्रगट करता है तो शुभराग को व्यवहार साधन कहने में आता है।

प्रश्न :- जैसे जेवर बनाने के लिऐ हथौड़ी साधन कहने में आती है; वैसे ही केवलज्ञान के लिए साधन कौन है ?

समाधान :- आत्मा में स्व सन्मुखतारूप साधन द्वारा एकाग्र होना - यही साधन है। यहाँ शुद्ध पर्याय सहित आत्मा को साधन कहा है। स्वयं ज्ञानस्वभाव को ग्रहण किया है - यहवास्तविक साधन है। यह शुद्धोपयोग के कारकों का वर्णन है। स्वयं केवलज्ञानरूप परिणमित होता है। निचलीदशा में भी निश्चय कारक ही साधन है - ऐसा समझ लेना चाहिए। यहाँ कहा है कि शुद्धोपयोगरूप साधन को धारण करता है किन्तु व्यवहार अथवा निमित्त को धारण करता है - ऐसा नहीं कहा।

आत्मा अनादि अनन्त शक्ति का पिण्ड है। आत्मवस्तु तो सर्वज्ञ स्वभावी है, वह पर्याय में सर्वज्ञ कैसे होती है, उसकी बात चलती है। अर्थात् शक्ति में तो सर्वज्ञ है किन्तु पर्याय में सर्वज्ञदशा कैसे व्यक्त होगी, वह बात चलती है। स्वयं ही उत्कृष्ट साधन है। खूब (बहुत अधिक) व्यवहार करे, तो साधन हो - ऐसा नहीं है। आत्मा निमित्त और व्यवहार के साधनपने को धारण नहीं करता। अपने में स्वयं ही उत्कृष्ठ साधन - शुद्धोपयोग को आत्मा धारण करता है, किन्तु व्यवहार को धारण नहीं करता - ऐसा अनेकान्त है। निश्चय को भी धारण करे और व्यवहार को भी धारण करें - ऐसा अनेकान्त नहीं है; यह तो मिथ्या अनेकान्त है। शुद्धोपयोगरूप तथा केवलज्ञानरूपी कर्म होने में उत्कृष्ठ साधन, मैं ही हूँ - अन्य साधन नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(४) सम्प्रदान कारक :- स्वयं अपने लिए शुद्धोपयोग प्रगट करके स्वयं को दिया है; इससे केवलज्ञान प्रगट होता है। शुद्ध अनन्त शक्तिवाला ज्ञानरूप परिणमित होने के स्वभाव के कारण, स्वयं ही कर्म द्वारा समाश्रित हुआ होने से अर्थात् कर्म स्वयं को ही देने में आता हुआ होने से, सम्प्रदानपने को धारण करता है।

कर्त्तारूप स्वयं होता है, स्वयं नया कर्म उत्पन्न करता है। अब, सम्प्रदान की बात करते हैं। केवलज्ञान प्रगट करके किसे दिया है ? जीव का अपना ज्ञानस्वभाव परिणमन कर रहा है। स्वयं, अपने को शुद्धोपयोग देता है अर्थात् स्वभाव के ज्ञानरूप परिणमन के कारण स्वयं अपने को शुद्धोपयोग देता है और लेता है किन्तु राग से लेता नहीं और राग को देता भी नहीं है। मनुष्य देह से भी कुछ नहीं लेता और मनुष्य देह को कुछ नहीं देता। स्वयं ही कर्ता, कर्म, करणपने को वर्तमान अवस्था द्वारा-सम्प्रदानपने को धारण करता है। स्वयं अपने को दान देता है। यह स्वतंत्र स्वराज्य की बात है। स्वयं सम्प्रदान कारक है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी है, स्वयं अपना साधन करके अथवा शुद्धोपयोगरूप साधन करके, अपने को देता है।

क्या पैसे का दान दिया जा सकता है ?

पैसा तो पुद्गल है उसे आत्मा नहीं दे सकता। शुद्धोपयोग स्वयं करे और अपने को देवे यह तो हो सकता है किन्तु आत्मा पर पदार्थ का दान नहीं दे सकता। राग की मंदता करे यह भीवास्तव में दान नहीं है। चैतन्य स्वभाव के अवलम्बन से शुद्धोपयोग प्रगट किया और अपने को दान दिया है।

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति है, स्व-पर प्रकाशक स्वभावी है। स्वभाव के अवलम्बन से स्वयं केवलज्ञान प्रगट होता है। शुद्धोपयोग का परिणमन अपने में रखा इसीलिए केवलज्ञानरूप आत्मा स्वयं परिणमित होता है। आत्मा ज्ञायक स्वभावी है, राग रहित अपना स्वभाव है; उसके भान से समाधि-मरण होता है। देह छुटने के समय कौन सा दान-लाभ करे ? समाधि-मरण कैसे होता है ? वह बताते हैं। मरण के समय व्रतादि के विकल्प करे तो वह शुभभाव है किन्तु अपने को ग्रहण करके स्वभाव प्रगट हुआ, उसमें स्वयं अपने को सुखरूप रखा है वह समाधि का कारण है।

यहाँ शुद्धोपयोगरूपी कार्य की बात है, इस कार्य से केवलज्ञान होता है। शुद्धोपयोग के छह कारकों की बात ली है। स्वयं चैतन्य मूर्ति है इसके अवलम्बन से जो शुद्धोपयोग प्रगट किया उसे स्वयं धारण करता है, किन्तु आदि-मध्य-अन्त में कहीं भी राग को तथा निमित्त को धारण नहीं करता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(५) अपादान कारक :- पूर्व की ज्ञान की अवस्था नाश होने पर भी स्वयं ध्रुव रहता है इसीलिए, ध्रुव में से केवलज्ञान प्रगट होता है।

शुद्ध अनन्त शक्तिवाला ज्ञानरूप परिणमित होने के समय, पूर्व में प्रवर्तित विकल ज्ञानस्वभाव का नाश हुआ होने पर भी - सहज ज्ञानस्वभाव द्वारा स्वयं ही ध्रुवपने का अवलम्बन लेता होने से, अपादानपंने को धारण करता है।

भगवान आत्मा चैतन्य मूर्ति है, निमित्त और राग के अभाववाला है। अपने ज्ञान के परिणमन करने के स्वभाव के कारण - केवलज्ञान होने के पूर्व मति-श्रुत ये दो ज्ञान अथवा मति-श्रुत-अवधि ये तीन ज्ञान अथवा किसी को मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यय ये चार ज्ञान होते हैं। इन सभी ज्ञान का, केवलज्ञान होने पर नाश हो जाता है। शुद्ध चैतन्य का अवलम्बन लेने पर जो निश्चय रत्नत्रयरूप परिणमित हुआ है उस समय उक्त दो, तीन अथवा चार ज्ञान थे - उन चारों ही ज्ञान के नाश होने पर स्वयं सहज ज्ञानस्वभाव द्वारा, स्वयं ही ध्रुवपने को अवलम्बता है। 'पर्याय के जाने पर भी स्वयं ध्रुव रहा है।' ज्ञानस्वभाव से काम करना है।

पूर्व अवस्था के जाने पर भी, त्रिकाल ध्रुव स्वभाव का अवलम्बन लेने पर वर्तमान पर्याय में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। पूर्व अवस्था गई अर्थात् उसका अभाव हुआ - ऐसा नहीं है। किन्तु केवलज्ञान प्राप्त करते हैं - यह अर्थ है।

व्याकरण में छः विभक्तियां आती है। छः विभक्तियां - विभक्त अर्थात् पर से भिन्न और स्व से अभिन्न करते हैं। यहाँ सभी में 'ही' शब्द का प्रयोग किया गया है - यह सम्यक् एकान्त है। आत्मा नित्य सर्वज्ञ शक्ति का भंडार है। उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। लेंड़ीपीपर के प्रत्येक दाने में चौंसठ पुटी तिखास भरी है। जैसे चौंसठ अर्थात् पूर्णरूपया, वैसे ही प्रत्येक आत्मा में पूर्ण शक्ति है, वह स्वयं शुद्ध उपयोगरूप परिणमित होकर केवल ज्ञानरूप परिणमि होता है इसप्रकार अपादान कारक की बात हुई।

(६) अधिकरण कारक :- स्वयं अपने आधार से केवलज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु पर अथवा राग के आधार से केवलज्ञान प्राप्त नहीं करते। शुद्ध अनन्त शक्तिवाले ज्ञानरूप परिणमित होने के स्वभाव को अपना ही आधार होने से अधिकरणपने को आत्मसात करता है।

अब, आधार की बात करते हैं। यह अपने घर की बात है, इसीलिए सरल है - कठिन नहीं। यहाँ व्यवहार रत्नत्रय की बात नहीं ली है, क्योंकि उसके आधार से केवलज्ञान नहीं होता। आत्मा जिस पर्याय में परिणमित होता है उसका आधार स्वयं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही है, किन्तु व्यवहार अथवा निमित्त उसका आधार नहीं होता।

कोई विशेष प्रकार का व्यवहार अथवा कोई विशेष निमित्त हो तो शान्ति होती है - ऐसा अज्ञानी मानता है। स्वयं अपना निश्चय आधार है - ऐसा प्रथम निर्णय करे तो व्यवहार का आरोप आता है। 'स्वयं ही आधार होने से आत्मा, अधिकरणपने को आत्मसात करता है।' अर्थात् आत्मा के साथ एकरूप करता है किन्तु राग को एकरूप नहीं करता। इस तरह आत्मा स्वयमेव ही अपना कर्ता, कर्म, साधन, स्वयं अपने को लेना और देना है। अपने में से केवलज्ञान प्रगट होता है, अपने आधार से प्रगट होता है - ऐसे छः कारक अपने में है। ज्ञायक स्वभाव दृष्टि में लिया अर्थात् स्वसन्मुखतारूप अभेद छः कारकोंरूप स्वयं परिणमित होता है। पर-सन्मुखता में भी स्वयं अशुद्धतारूप भेद, कारणरूप है।

अपने में सम्पूर्ण एकाग्रता करते ही राग-द्वेषादि नाश को प्राप्त हो जाते हैं और द्रव्य-कर्म भी स्वयं दूर हो जाते हैं। उत्पत्ति अपेक्षा द्रव्य-भाव भेद भिन्न घातिकर्मों को दूर करके, स्वयमेव आविर्भूत हुआ होने से आत्मा 'स्वयंभू' कहलाता है।

यहाँ जो निमित्तपना बताया है उसका स्पष्टीकरण करते हैं। जड़ घातिकर्म निमित्त है और भाव घातिकर्म - जीव की पर्याय में हैं। ज्ञानावरणी आदि कर्म घात करते हैं यह निमित्त का कथन है। स्वयं ज्ञान-दर्शन-वीर्य में हीनता करता है और चारित्र में विपरीतता करता है यह अपना भाव करता है। स्वयं विपरीत हुआ वह भाव घात, स्वयं अपने में करता है, यह भाव घातिकर्म है; यह अरूपी अथवा निश्चय घाति कर्म है। स्वयं भाव घातिकर्म करे तो द्रव्य घातिकर्म को निमित्त कहा जाता है।

पुनश्च, भावघातिकर्म का व्यय करना कहना - यह उपचार है। अपनी पूर्ण लीनता होते ही भाव घातिकर्म नाश को प्राप्त हो जाते हैं और कर्म स्वयं दूर हो जाते हैं। इसप्रकार आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव की सामर्थ्य के कारण सम्यक् दर्शनरूप, चारित्ररूप, शुद्धोपयोगरूप और केवलज्ञानरूप परिणमित होता है। इसप्रकार शुद्धोपयोग के छः कारकोंरूप स्वयं आत्मा परिणमित होता है। इसके फल में केवलज्ञानरूप परिणमित होता है।

प्रवचनसार में साररूप यह गाथा बहुत उत्कृष्ट है। आत्मा अपनी मोक्ष पर्याय प्रगट करता है वह अपने कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ऐसे छः कारकोरूप होकर करता है। स्वयं शुद्ध चिदानन्द निर्मल है। आत्मा स्वयं, पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर शुद्ध चैतन्य स्वभाव की लीनता करके, स्वयं कर्ता होकर, धर्म पर्याय प्रगट करता है और स्वयं कर्ता होकर मोक्षरूपी फल प्रगट करता है। व्यवहार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होते हुये भी उसे हेय और ज्ञेयमात्र जानकर - व्यवहार रत्नत्रय के अवलम्बन लिए बिना ही - एकमात्र स्वभाव का अवलम्बन लेकर आत्मा स्वयं कर्ता होकर, अपना कार्य करता है। इस तरह आत्मा अपने साधन द्वारा, स्वयं अपने को देकर अपने में से कार्य किया है और, अपने ही आधार से काम करता है।

स्वयमेव छः कारक - अपने ही रूप होते हैं। अपने स्वरूप के आश्रय से शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि करने से - स्वभाव के अवलम्बन से धर्म होता है, किन्तु पुण्य-पाप के अवलम्बन से किसी को धर्म नहीं होता।

शुभराग स्वभाव का घात करता है किन्तु स्वभाव का अवलम्बन होने पर भावघाति और द्रव्यघाति कर्म नाश को प्राप्त हो जाते हैं। आत्मा शुद्ध आनन्दकंद स्वभावी शक्तिरूप है उससे शुद्ध पर्याय प्रगट होती है और पूर्णता होती है।

आत्मा विकार और कर्म को दूर करता है - ऐसा कहना व्यवहार है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द कारणपरमात्मा है। वह स्वयं ही कर्ता, कर्म, साधन है, अपने में स्वभाव लेता है और अपने को ही देता है। अपने में से अपने आधार से ही धर्म प्रगट करता है। जड़कर्म को दूर किया यह तो निमित्त-कथन है। स्वभाव में लीन होते ही जड़ कर्म स्वयमेव दूर हो जाते हैं। अपने में अशुभरूप-पाप परिणाम हो अथवा व्यवहार रत्नत्रय के पुण्य परिणाम हो वे दोनों ही भाव घाति हैं - अपने स्वभाव का घात करते हैं। घाति रहित - शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा की दृष्टि करके अपने स्वभाव का कर्ता होकर, अपने स्वभाव का कार्य करके, अपने स्वभाव को साधन बनाकर, अपने में से स्वभाव प्रगट होता हुआ, अपने आधार से काम करता है - यह मोक्षमार्ग है। ऐसे छः कारकोंरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

यहाँ कहते हैं कि घातिकर्म को दूर करते हैं ऐसा कहना तो असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। राग-द्वेष, दया-दानादि के शुभभाव - चैतन्य जागृति से विरुद्ध होने से वे भाव घातिकर्म है। शुद्ध-चैतन्य स्वभाव के आश्रय से ही धर्म होता है, किन्तु व्यवहार के कारण धर्म नहीं होता।

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य दृढ़ता पूर्वक कहते हैं कि चैतन्य ज्ञाता स्वभाव की दृष्टि पूर्वक छः कारकोंरूप होकर, जड़ कर्मों का नाश किया है अर्थात् स्वभाव में स्थिर होने पर राग-द्वेष छूट गए तब भावघाति का नाश किया - ऐसा कहने में आता है। सम्यक्दृष्टि को भी जो शुभाशुभराग आ जाता है वह स्वभाव का घात करता है। भगवान की भक्ति करने का राग भाव चैतन्य की शान्ति का घात करता है। नित्यानन्द स्वभाव के आश्रय से निर्मल पर्याय प्रगट होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :- आत्मा छः कारकोंरूप होकर किस तरह स्वयंभू हुआ ?

उत्तर :- द्रव्य-कर्म, भाव-कर्म और शरीर का लक्ष्य छोड़कर ज्ञाता मात्र स्वभाव में स्थिर होने पर विभाव छूट जाते हैं, इसलिए उन्होंने विभाव को दूर किया यह कहने में आता है।

जैसे जड़कर्म, विभाव रागादि में नहीं है; वैसे ही
विभाव, स्वभाव में नहीं है.

ऐसे स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करके निश्चय रत्नत्रयरूप धर्मपने होनेवाली पूर्णदशा को प्राप्त करेंगे। व्यवहार रत्नत्रय तो निश्चय धर्म से विरुद्ध ही होने से वह - अधर्म है। व्यवहार जिसे धर्म कहता है वह तो असत्यार्थ है। व्यवहार है तो निश्चय है - ऐसा भी नहीं है। व्यवहार का अभाव करने पर आत्मा ही स्वयं धर्मरूप होता है; जिसमें आत्मा किसी निमित्त अथवा व्यवहार की अपेक्षा रखता ही नहीं। इसप्रकार आत्मा स्वयंभू कहलाता है। अपने ही आधार से परमात्मा होता है, किन्तु किसी निमित्त और विभाव के अवलम्बन से आत्मा कभी भी परमात्मा नहीं होता।

पर पदार्थों तथा राग के साथ, आत्मा का वास्तव में कारकपने का सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए यह कहा है कि शुद्ध चैतन्य स्वभावी आत्मा की दृष्टि करके स्वभाव का साधन करता है; इसलिए निमित्त और व्यवहार के साथ आत्मा का कारकपने का सम्बन्ध नहीं है। सर्वप्रथम, श्रद्धा कैसी करना चाहिए - वह बात चलती है।

अज्ञानी जीव कहता है कि पहले व्यवहार करना चाहिए, किन्तु आत्म भान बिना व्यवहार कैसे हो सकता है ? पूजा, भक्ति, व्रतादि के शुभ परिणाम तथा मुनि को जो नग्नदशा हुई अथवा अट्ठाईस मूलगुण पालने के भाव आते हैं; उसके साथ आत्मा का कारकपने का सम्बन्ध नहीं है। राग आया इसीलिए धर्म प्रगट हुआ है - ऐसा है ही नहीं। राग से भिन्न रहकर आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रगट करना ही सत् क्रिया है।

"अज्ञानी को अज्ञान से हटना अच्छा नहीं लगता; उसे तो अनादि से निमित्त और व्यवहार की रुचि है, जिससे वह निमित्त और व्यवहार की बात को आगे करता है।"

व्यवहार रत्नत्रय कर्ता है और धर्म कर्म है - ऐसा कहने में आता है किन्तु, वास्तव में ऐसा नहीं है। किस भूमिका में किसप्रकार का राग सहचर वर्तता है - यह बताने के लिए ही उसमें व्यवहार धर्म का आरोप किया है।

नग्नदशा कर्ता है और भाव लिंगपना कार्य है - ऐसा निमित्त दृष्टि से भले ही कहने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में आता हो, किन्तुवास्तव में ऐसा नहीं है। वहाँ तो मात्र सहचर-निमित्त ऐसा होता है, इसलिए विरुद्ध नहीं होता, इतना बताने में आया है, किन्तु निमित्त से और उस शुभराग से भाव लिंगरूप मोक्षमार्ग है - ऐसा तो ज्ञानियों का अभिप्राय नहीं है।

शुद्ध चैतन्य स्वभाव का साधन करता है तो व्यवहार साधन और निश्चय साध्य ऐसा कहने में आता है, किन्तुवास्तव में व्यवहार आधार हो और उससे आत्मा में लाभ होना हो अत: वह आधेय हो - ऐसा सम्बंध नहीं है; और न ही ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ होता है।

व्यवहार से निश्चय होता ही नहीं है। 'राग और निमित्त के साथवास्तव में मेरा सम्बंध नहीं है' - ऐसे भानवाले जीव को व्यवहार के ऊपर आरोप आता है; उसी समय निमित्त भी, निमित्त के काल में यथायोग्य होता ही है। भाव लिंगी मुनि वस्त्र सहित कभी भी नहीं होते, किन्तु (भाव लिंग के साथ) नग्नदशा ही होती है; फिर भी नग्नदशा है इसलिए मुनिपना प्रगट हुआ है - ऐसा नहीं है।

'मैं स्वयं असंग-अबन्ध ज्ञायक हूँ' - ऐसा भान करके स्व द्रव्य के उग्र आलम्बन द्वारा मुनिपना प्रगट करते हैं तो वहाँ हट रहित (सहज) व्यवहार कैसा होता है, उसका ज्ञान कराने के लिए उसे सहचर-निमित्त-व्यवहार कहा गया है; किन्तु 'व्यवहार को आदरणीय माननेवाला तो - मिथ्यादृष्टि ही है।'

अज्ञानी जीव धर्म के लिए पर पदार्थों को मिलाने की व्यग्रता करता है। अमुक (अनुकूल) निमित्त हो तो ठीक (अच्छा) हो, अथवा ऐसे विकल्प हो तो ठीक - ऐसा अज्ञानी मानता है;वास्तव में तो अपने स्वभाव का साधन करने पर - निमित्त, निमित्त के कारण स्वयमेव आते हैं। इसीतरह राग भी राग के समय में भूमिका अनुसार आता है, किन्तु इससे आत्मा का पर कारकों के साथ सम्बंध नहीं है।

सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र की शुद्धता के छह कारकों की प्राप्ति के लिए तथा केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए - बाह्य साधनों को ढूँढने की व्यग्रता से (अज्ञानी) जीव व्यर्थ ही परतंत्र होते हैं और सोचते हैं कि - ऐसे वीतरागी निमित्त मिले तो धर्म हो - ऐसा अज्ञानी कहता (मानता) है। तो उससे पूछते हैं कि क्या पर द्रव्यों को मिलाया जा सकता है ? बिलकुल नहीं ! भाई ! यह सभी आकुलता है। ऐसे निमित्त और ऐसा व्यवहार हो तो ठीक, यह मानकर मिथ्या अभिप्राय करके, जीव स्वयं परतंत्र होता है। वास्तव में स्वभाव के छः कारक स्वभाव से ही होते हैं - ऐसा समझकर जब जीव पराश्रय की रुचि और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, स्वभाव का साधन करता है तो केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वास्तव में परद्रव्य के साथ आत्मा का सम्बंध नहीं है; इसीलिए पर सामग्री को मिलाने की आकुलता करना व्यर्थ है। पहले पूर्ण शुद्ध आत्मा को ग्रहण कर; फिर भले ही निमित्त पर आरोप दिया जाए, किन्तु आत्मा का परद्रव्य तथा राग के साथ सम्बन्ध नहीं है। अज्ञानी सम्बंध मानता है पर सम्बंध नहीं है।

शुद्धात्मा का निमित्त तथा विभाव के छह कारकों के साथ सम्बंध नहीं है।

प्रश्न :- अपने को जिनसे वीतरागता प्राप्त हो ऐसे निमित्तों को तो मिलाना चाहिए न ?

समाधान :- भाई ! निमित्त तो पर हैं,इसलिए आत्मा निमित्त को नहीं मिला सकता। जीवों ने ऐसी सत्य बात सुनी नहीं; सत्य बात सुनने को मिले और मन्द कषाय हो तो भी शुभराग, वीतरागता का साधन नहीं है। स्वयं स्वभाव का साधन करें, धर्मरूप परिणमित हो तो उचित निमित्त सहज ही आकर मिलते हैं, किन्तु निमित्त को पराधीन होकर, नहीं आना पड़ता।

आत्मा के स्वभाव का निमित्त के छह कारकों के साथ सम्बंध नहीं है और आत्मा के स्वभाव का विभाव के छह कारकों के साथ भी सम्बंध नहीं है - ऐसा जानकर निमित्त और विभाव के छः कारकों का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का आश्रय करता है तो ही धर्म होता है। शुद्धात्मा तेरे ही पास विद्यमान है। शुद्धात्म स्वभाव की प्राप्ति के लिए - शुद्ध स्वभाव से मिलने के लिए, जो बाह्य सामग्री को मिलाना चाहता है, इसमें तो वह पराधीन हो जाता है - स्वाधीनता नहीं रहती।

आत्मा की ज्ञानकला को जाने बिना दुनिया की चतुराई (होशियारी) सभी कुछ व्यर्थ है।

गाथा १६ के भावार्थ पर प्रवचन

कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ये छह कारकों के नाम है। कारकों अर्थात् कारण। जो स्वतंत्रता पूर्वक अर्थात् स्वाधीनता से करे वह कर्ता है। आत्मा सम्यग्ज्ञान अथवा सम्यक्चारित्र की पर्याय स्वतंत्रता पूर्वक करता है।

ज्ञानी को वीतरागता इष्ट है और अज्ञानी को राग इष्ट है। अज्ञानी को ऊँचे-ऊँचे निमित्त और व्यवहार की बातों में आनन्द आता है वह व्यवहार में जागता है।

कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह कर्म है। कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह उसका इष्ट-कर्म है। अज्ञानी दया-दानादि के शुभ परिणाम को प्राप्त करता है। धर्मात्मा, वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता को स्वयमेव प्राप्त करते हैं और सरागता का निषेध ही करते हैं - यह उनका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कार्य है। राग अथवा व्यवहार को प्राप्त करना वह धर्मी का इष्ट कार्य नहीं है।

जगत की होशियारी, विभूतियाँ और विचक्षणताएँ (आश्चर्य) - पानी में है। इसे समझाने के लिए दृष्टांत देते हैं - समुद्र में गमन करती हुई नाव में बैठा हुआ एक विद्वान नाविक से कह रहा था कि - मैं जगत की अनेक कलाओं को जनता हूँ। इतने में जोरों से हवा चलती है तूफान आ जाता है - जिससे नाव डूबने लगती है तब नाविक विद्वान से कहता है कि - नाव डूबनेवाली है, यदि तैरना नहीं आता हो तो तुम डूब जाओगे और तुम्हारी सारी विद्याएँ जीवन रक्षा के लिए व्यर्थ होगी; इसी तरह बाह्य की कितनी ही लौकिक कलाएं जानता हो, लेकिन वे सभी धर्म में - भव समुद्र से तिरने के लिए किसी भी काम की नहीं होगी और फलतः महादुर्लभता से मिला यह मनुष्यपना व्यर्थ चला जायगा।

अज्ञानी को शारीरिक कष्ट सहन करके तीर्थयात्रा आदि पुण्य करना तो अच्छा लगता है, किन्तु वे सभी क्रियाएं आत्मा को जाने बिना, धर्म के लिए व्यर्थ है। 'आत्मा को जाने तब भी - शरीर की क्रिया और पुण्य से धर्म नहीं होता।' शरीर की क्रिया को तो व्यवहार से भी कोई आत्मा नहीं कर सकता। अज्ञानी जीव कहता है कि - हमें व्यवहार को प्राप्त करना चाहिए। अज्ञानी का इष्ट - राग है और ज्ञानी का इष्ट वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता है। कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह - कर्म है।

अब, साधन (करण कारक) की बात करते हैं। साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन वह करण है। आत्मा स्वयं साधन हैं।

कर्म जिसे दिया जाता है अथवा जिसके लिए किया जाता है वह सम्प्रदान है। आत्मा स्वयं स्वभाव साधन करके निर्मलता - स्वयं को देता है। अज्ञानी कहता है कि - हमें तो पर के लिए उपदेश देना चाहिए। जैसे वृक्ष अपने फल स्वयं के लिए नहीं रखता दूसरों को देता है; वैसे ही साधु पुरुष भी दूसरों के लिए काम करते हैं। उसका यह कथन असत्य ही है।वास्तव में, धर्मात्मा-साधुपुरुष तो अपने लिये ही निर्मलता करते हैं।

श्रोता:- जो उपदेश देते हैं उसका लाभ मिलेगा अथवा नहीं ?

समाधान :- नहीं। क्या जीव वाणी को कर सकता है ? नहीं। क्योंकि वाणी में, वाणी के छहों कारक विद्यमान है; वाणी के एक-एक परमाणु स्वयं कर्ता होकर, अपने कार्य को प्राप्त करते हैं। आत्मा वाणी तक पहुँचकर उसे प्राप्त नहीं करता। भाषा स्वयं अपने साधन से हुई है तथा अपने को अपनी अवस्था देती है,किन्तु आत्मा के आधार से भाषा नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसमें से कर्म किया जाता है ऐसी ध्रुव वस्तु वह अपादान है। और, जिसके आधार से कर्म किया जाता है वह अधिकरण है।

ये छह कारक व्यवहार और निश्चय - ऐसे दो प्रकार के हैं। जहाँ निमित्त से और पुण्य से कार्य की सिद्धी की जाती है, वहाँ व्यवहार कारक कहा है - ऐसा समझना, जो असत्य है; क्योंकि वस्तु स्वरूप ऐसा नहीं है। इसी तरह विकारी पर्याय कर्म के कारण हुई है - ऐसा कहना भी असत्यार्थ है अर्थात् कर्म का उदय आया तो विकार हुआ है यह असत्यार्थ है; यहाँ तो मात्र, निमित्त का ज्ञान कराने के लिए, कथन किया गया है।

स्वभाव का भान करनेवाले जीव के शुभ विकल्प को - व्यवहार धर्म कहने में आता है, किन्तु वस्तु स्वरूप ऐसा नहीं है; और जहाँ अपने ही उपादान कारण से कार्य की सिद्धी कहने में आती है, वहाँ निश्चय कारक है - ऐसा समझना चाहिए। व्यवहार के छह कारक असत्यार्थ समझना चाहिए!

व्यवहार कारकों का दृष्टांत निम्नानुसार है :-

कुम्हार घड़े का कर्ता है यह उपचरित असद्भुत व्यवहारनय से कहने में आया है, इसलिए वह असत्यार्थ है।

घड़ा कुम्हार का कर्म है - यह असत्यार्थ है।

डंडा, चक्र, डोरी आदि करण है यह असत्यार्थ है।

जल भरने के लिए कुम्हार ने घड़ा बनाया है इसीलिए जल भरनेवाला सम्प्रदान है यह असत्यार्थ है।

टोकनी में से मिट्टी लेकर घड़ा बनाया है इसलिए टोकनी अपादान है - यह असत्यार्थ है।

जमीन के आधार से घड़ा बनाता है इसीलिए जमीन अधिकरण है - यह असत्यार्थ है।

इसमें सभी कारक भिन्न-भिन्न है। इसप्रकार कुम्हार, घड़ा, डंडा, जल भरनेवाला, टोकनी और जमीन भिन्न-भिन्न है। यहाँ अन्य कर्ता, अन्य कर्म, अन्य करण, अन्य सम्प्रदान, अन्य अपादान और अन्य अधिकरण है। परमार्थ से कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता।

परमार्थ से कुम्हार घड़े का कर्ता नहीं है, घड़ा कुम्हार का कार्य नहीं है, डंडा-चक्रादि घड़े का साधन नहीं हैं, जल भरनेवाले के लिए घड़ा नहीं बनाया गया है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

टोकनी में से घड़ा नहीं हुआ है और ज़मीन के आधार से घड़ा नहीं हुआ है, अपितु मिट्टी के ही आधार से हुआ है।

इसप्रकार कोई द्रव्य, किसी अन्य द्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता। 'यहाँ द्रव्य का अर्थ पर्याय समझना चाहिए।' कुम्हार घड़े का कर्ता है यह असत्यार्थ है, घड़ा कुम्हार का कार्य है यह झूठ है, किसी भाई नेरुपये दिये यह असत्यार्थ है मात्र व्यवहार का कथन है क्योंकि किसी का कार्य किसी अन्य में नहीं आता।

द्रव्य-कर्म के कारण भाव-कर्म हुए हैं - यह असत्य है। भावकर्म होते हैं वहाँ द्रव्य-कर्म निमित्त हैं; किन्तु अज्ञानी निमित्त का कथन देखकर वहाँ - घोड़े के समान अड़ जाता है और कहता है कि - निमित्त से ही सभी कार्य होते हैं - ऐसी वह विपरीत मान्यता ग्रहण कर लेता है।

द्रव्य-कर्म सत् है और भाव-कर्म भी सत् है - एक सत् का कारण दूसरा सत् हो यह बात खोटी है; मात्र व्यवहार का ज्ञान कराने के लिए ऐसा कथन होता है; जो मात्र उपचरित असद्भुत व्यवहारनय से कहने में आता है दोनों को एक साथ निमित्त देखकर ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। स्वयं स्वभाव का कर्ता हो, तब ऐसा विकल्प सहचर वर्तता है - भूमिका अनुसार ऐसा ही राग होता है जिससे उस पर व्यवहार-भेद-कारकपने का आरोप आता है।

"निश्चय से किसी द्रव्य की पर्याय का, अन्य द्रव्य की पर्याय के साथ कारकपने का सम्बंध है ही नहीं - ऐसा ज्ञान किये बिना निमित्त का सच्चा ज्ञान नहीं होता।"

अशुद्धता और शुद्धता दोनों में छह कारक स्वतंत्र है। यहाँ द्रव्य का अर्थ पर्याय समझना चाहिए। क्योंकि द्रव्य व गुण को कारक नहीं होते। पर्याय में ही कार्यरूप छह कारक निरंतर होते ही हैं। कर्म की पर्याय का राग की पर्याय के साथ कारकपने का सम्बंध है ही नहीं। अज्ञानी जीव स्वयं अशुद्धता करता है, स्वयं अशुद्धता को प्राप्त करता है, अशुद्धता के साधन से अशुद्धता किया है, स्वयं अशुद्धता अपने में रखा है, अपने में से अशुद्धता प्रगट किया है और अपने आधार से अशुद्धता किया है।

इसी प्रवचनसार जी ग्रंथ के ज्ञेय अधिकार की १८७ वीं गाथा में अशुद्धता को 'द्रव्य जातस्य' कहा है। अर्थात् अशुद्धता में कर्म का सम्बंध नहीं है।

"व्यवहारनय का विषय है यह बात सही है किन्तु व्यवहार से निश्चय होता है अथवा निमित्त से कार्य होता है - ऐसी मान्यता अज्ञान भाव है।"

आत्मा स्वयं संसार अवस्था में निरपेक्षपने स्वयं अशुद्धरूप परिणमित होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् विभाव परिणाम का कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण इन छह कारकोंरूप स्वयं परिणमित होता है, इसमें कर्म की अपेक्षा नहीं होती। पंचास्तिकाय परमागम की गाथा ६२ की टीका में भी यही बात कही गई है। विकार के छहों कारक निरपेक्ष हैं जो अन्य द्रव्य के कारकों की अपेक्षा नहीं रखते। जीव स्वयं औदयिक आदि भावरूप परिणमित होता है, जिसमें वह अन्य कर्मादि की अपेक्षा नहीं रखता।

'सर्वप्रथम निश्चय से अपने परिणाम निरपेक्ष सिद्ध किये बिना, निमित्त की सापेक्षता सिद्ध नहीं होती।'

कर्म की पर्याय भी जीव के परिणाम की अपेक्षा बिना ही निर्पेक्ष उत्पन्न होती है और जीव में विकार भी कर्म की अपेक्षा बिना ही उत्पन्न होता है - ऐसा निश्चय सिद्ध हुये बिना निमित्त पर आरोप नहीं दिया जा सकता। छह कारकों की बात व्यवहारज्ञान की है यह समझे बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। अज्ञानी-संयोग से ही देखता है, किन्तु संयोग से कार्य नहीं होता अपितु अपनी पर्याय, स्वयं से ही होती है - इसे न समझकर वहाँ निमित्त और व्यवहार की बात सामने रखता है जिससे वह मिथ्यादृष्टि है। इसप्रकार अपनी अशुद्धता अथवा शुद्धता का पर के साथ सम्बंध नहीं है - मात्र निमित्तों का व्यवहार से कथन होता है वास्तव में निमित्त से किसी का कार्य नहीं होता।

'व्यवहार से कही हुई बात - असत्यार्थ है, इसलिये उसकी श्रद्धा छोड़ना।'

निश्चय कारकों का दृष्टांत इसप्रकार है - निश्चय अर्थात् सत्यार्थ। निश्चय कारक ही परम सत्य है।

यहाँ 'ही' तथा 'परम सत्य' दोनों ही शब्द का प्रयोग किया गया है। मिट्टी स्वतंत्रतया परिणमित होकर अथवा कर्ता होकर घड़ेरूप कार्य को पहुँचती है - प्राप्त करती है 'कुम्हार आया इसीलिये घड़ेरूप कार्य को प्राप्त करती है' - ऐसा नहीं है। कुम्हार घड़े तक पहुँचता नहीं। कुम्हार से घड़े का आकार हुआ है यह बात झूठी है मिट्टी अपने प्रदेशत्व गुण के कारण उस घड़े की पर्यायरूप आकार को स्वयं पहुँच जाती है।

व्यवहार से कही गयी बात (कथन) असत्यार्थ है इसीलिये व्यवहार से जैसा कहा गया है, वैसा वस्तु-स्वरूप नहीं है ऐसा जानकर उसकी श्रद्धा छोड़ना चाहिये और निश्चय द्वारा कहीं गयी बात (कथन) सत्यार्थ है ऐसा जानकर - उसकी श्रद्धा करना चाहिये।

'ईश्वर कर्ता और जगत कार्य - अथवा कुम्हार कर्ता और घड़ा कार्य - यह बात

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खोटी (असत्य) है इसी तरह, द्रव्य-कर्म कर्ता और रागादि कार्य यह बात भी खोटी (असत्य) है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य पर्याय अपेक्षा से स्वतंत्रता पूर्वक अपने कार्य का कर्ता है' - यही कथन सत्यार्थ है और अन्य कथन तो मात्र निमित्त का ज्ञान कराने के लिये किये गये हैं।

प्रत्येक पदार्थ का परिणमन स्वयं के कारण है - पर के कारण नहीं। "सर्वप्रथम निर्पेक्षता सिद्ध करे तभी वहाँ निमित्त अथवा व्यवहार की सापेक्षता का ज्ञान होता है।" जीव ने आज तक कभी एदार्थ की स्वतंत्रता को समझा ही नहीं; एक-एक परमाणु स्वयं अपने कार्य का कर्ता है। कर्ता जिस पर्याय को प्राप्त होता है वह कार्य है। आत्मा, परमाणु की पर्याय को प्राप्त नहीं करता। यह लकड़ी जो ऊंची हुई है वह अपने कारण ऊंची हुई है, लकड़ी परमाणु की है जो अपने कर्तापने के कारक के कारण, कर्ता होकर कार्य करती है - अंगुली उसे प्राप्त नहीं करती। अंगुली लकड़ी को ऊंची-नीची नहीं करती, अंगुली तो मात्र संयोगरूप है। संयोग से स्वभाव का होना मानना भ्रम है। लकड़ी, लकड़ी के कारण ऊंची होती है किन्तु ऊंगली के कारण ऊंची नहीं होती। इसीतरह मिट्टी स्वतंत्रपने - अपने कारण घड़ेरूप कार्य को प्राप्त करती है।

यहाँ शुद्ध (निश्चय) कारकों का वर्णन किया गया है; वैसे ही अशुद्ध कारक भी स्वतंत्र है अर्थात् आत्मा कर्ता होकर विकारी कार्य को प्राप्त करता है। निरपेक्षता सिद्ध करने के बाद कर्म के निमित्त की सापेक्षता लागू पड़ती है। स्वभाव सन्मुख दृष्टि होने के बाद राग छोड़ने के लिये निमित्त की अपेक्षा कहने में आती है। छहों अशुद्ध कारक स्वतंत्र है। छहों निश्चय कारक सत्य है - ऐसे ही है - ऐसी श्रद्धा करना और कुम्हार से घड़ा होता है - ऐसे व्यवहार की श्रद्धा छोड़ना, किन्तु निमित्त का ज्ञान करना। अशुद्धता स्वयं करता है ऐसा समझना चाहिये और कर्म के कारण अशुद्धता होती है ऐसी श्रद्धा छोड़ना चाहिये। विकार में कर्म निमित्तरूप होते हैं - ऐसा ज्ञान करना। घड़ा बनते समय कुम्हार निमित्त होता है किन्तु वकील अथवा डाक्टर निमित्त नहीं होता - ऐसा ज्ञान करना। निमित्त अथवा कर्म के अंश है इसीलिये विकार के अंश हुये है - ऐसी श्रद्धा छोड़ना चाहिये और साथ ही त्रिकाल स्वभाव है इसीलिये विकार है ऐसी श्रद्धा भी छोड़ना।

प्रत्येक पदार्थ की अवस्था का साधन स्वयं है, संयोग तो निमित्त मात्र है। घड़ारूप परिणाम अथवा अवस्था मिट्टी से भिन्न नहीं है इसीलिये मिट्टी स्वयं ही कार्य है किन्तु वह, कुम्हार का कार्य नहीं है - कुम्हार उसरूप नहीं हुआ है। निरपेक्ष ज्ञान किये बिना सापेक्ष ज्ञान भी सही नहीं होता। मिट्टी ने अपने स्वभाव से घड़ा किया है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसलिये स्वयं मिट्टी साधन है, किन्तु डोरी अथवा चक्र घड़े का साधन नहीं है। मेरी पर्याय, मेरे से है - ऐसा निर्णय करे तो जगत के पदार्थों को स्वतंत्र माना जा सकता है। अपनी शुद्ध अथवा अशुद्ध पर्याय संयोग से होती है - ऐसा माननेवाला पर पदार्थों की अवस्था को संयोग से देखता है लेकिन उसके स्वभाव को वह नहीं देख सकता।

इसीतरह बाई से रोटी नहीं बनती अपितु आटे की अवस्था समय-समय होती है;पर्याय रहित आटा नहीं होता। आटा अपनी पर्याय का कर्ता होकर रोटी की अवस्था करता है किन्तु बाई के कारण रोटी नहीं बनती। कोई कहे कि - बाई का हाथ अच्छा है इसीलिये रोटी अच्छी बनी और जब जल जाये तब कहता है कि - अग्नि से जल गई अथवा बिगड़ गई - तो पहले से ही स्वीकार कर कि रोटी की प्रत्येक अवस्था परमाणु से होती है किन्तु बाई से नहीं। इसप्रकार अपने से कार्य का होना कहना वह सत्यार्थ है और पर से कार्य का होना मानना वह असत्यार्थ है।

प्रश्नः- बाई से रोटी हुई है यह तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है न ?

समाधानः- ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, जड़ पदार्थ में प्रत्यक्षपना नहीं है। पर पदार्थ और राग से मेरा ज्ञान भिन्न है - ऐसा ज्ञान जाने तो वह पदार्थ का स्वरूप जानता है। किसी वस्तु की पर्याय को पर से माननेवाला जीव, कर्म से विकार मानता है और वह विकार से स्वभाव मान रहा है।

यदि अच्छा मकान बनाना हो तो वह अच्छे कारीगर से ही हो सकेगा ना ?

नहीं। क्योंकि उस मकान के परमाणु अपनी पृथक-पृथक व्यंजन पर्याय (आकृतिरूप) परिणमित हुए है उनका निमित्त से होना कहना - वह असत्यार्थ है। मिट्टी ने बदलने के स्वभाव से घड़ा बनाया है - यह सत्यार्थ है, और कुम्हार ने घड़ा बनाया है - यह झूठ (असत्य) है। निमित्त का कथन आये वहाँ अज्ञानी जीव मानता है कि - एक पदार्थ दूसरे पदार्थ की अवस्था कर सकता है। वास्तव में मिट्टी ने स्वयं घड़ा बनाया है इसलिये मिट्टी ही स्वयं साधन है इसके विपरीत डंडा, चक्र आदि से घड़ा हुआ ऐसा मानना असत्यार्थ है। रोटी अपने परिणमन स्वभाव के कारण लम्बी व गोल हुई है किन्तु बेलन से नहीं। यदि बेलन से रोटी लम्बी अथवा गोल होती हो तो बेलन से आकाश भी लम्बा हो जाना चाहिये ? लेकिन ऐसा कभी नहीं होता। इसीतरह आत्मा भी अपने परिणमन स्वभाव से विकाररूप होता है किन्तु कर्म के कारण विकार नहीं होता। वैसे ही आत्मा अपने परिणमन स्वभाव में से गतिरूप (गमन करना) परिणमन करता है किन्तु धर्मद्रव्य के कारण गतिरूप नहीं होता। ऐसा होने पर भी - गति में धर्मद्रव्य ही निमित्त होता है - अन्य द्रव्य नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(जो द्रव्य) जिस पर्याय को बनाता है उस (द्रव्य) में वहदशा (पर्याय) रहती है किन्तु अन्य द्रव्य में वह नहीं रहती।

मिट्टी ने घड़ा बनाकर स्वयं को ही दिया इसलिये मिट्टी स्वयं ही सम्प्रदान कारक है।

घड़ा पानी पीनेवाले मनुष्यों के लिये तो बना है न ?

नहीं। मिट्टी ने अपनी पर्याय स्वयं के पास रखी है, लेकिन घड़े की पर्याय पानी में अथवा पीनेवाले के पास नहीं गई है। पैसा देते समय पैसे की पर्याय पैसे में रही - यही दान है। सेठ ने पैसा नहीं दिया। पाँच हजाररुपये अपने साधन से, अपनी पर्याय रखकर क्षेत्रान्तर होते हैं। उसके छह कारक यथार्थ हैं जिसमें सेठ के विकल्प (मात्र) निमित्त है। वह पर्याय जानेवाली थी जो नियत (निश्चित) ही थी। पैसा अपनी पर्याय करके अपने में रखता है। पैसेवाले ने पैसा नहीं दिया - दूसरे ने पैसा नहीं रखा। अज्ञानी पैसे के रखने और दान देने का झूठा अभिमान करता है। ज्ञानियों से कोई कहे कि आपने लाखोंरूपया देकर मंदिर बनाया है तो वे कहते हैं कि हम पैसे और मंदिर के करनेवाले नहीं है।

भाई अज्ञानी ने सत्य बात कभी सुनी नहीं। (सत्य तो यह है कि) - परमाणु ने अपनी पर्याय स्वयं को दी है किन्तु सेठ को नहीं दी, क्योंकि जो बनानेवाला होता है, उसमें वहदशा रहती है। मानस्तंभ और प्रवचन मंडप की अवस्था को बनानेवाले परमाणु हैं इसीलिये उसमें (मान स्तंभ व प्रवचन मंडप में वे) रहते हैं। यदि सेठ ने मंदिर बनाया हो तो सेठ के पास मंदिर की अवस्था रहनी चाहिये, किन्तु आत्मा ने उसे बनाया नहीं है। जो पर्याय अपने साधन से अपने में रहती है उसमें वह स्वयं कर्ता होकर रहती है।

मस्तक के ऊपर टोपी सीधी जमी रहती है वह टोपी के परमाणुओं ने अपने साधन द्धारा अपने में रखी है - जिसमें रखी है वह स्वयं कर्ता है, किन्तु जीव उसका (टोपी का) कर्ता नहीं है। आदमी उसे नहीं पहनता, आत्मा टोपी को स्पर्श भी नहीं करता। एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। विकार भी पर को स्पर्श नहीं करता। जीव राग करता है - कमजोरी से राग होता है। धर्मात्मा राग का जाननेवाला है कर्ता नहीं। एक मात्र राग की दृष्टिवाला राग का कर्ता है।

मिट्टी ने अपने लिये घड़ा बनाया है, उसने स्वयं घड़े को रखा है। मिट्टी का यह पर्याय धर्म है वह स्वभावरूप नहीं होगा तो विपरीत होगा ? घड़ा होने का क्रम है वही पर्याय आई है - ऐसी स्वतंत्रता जाने बिना "मैं पर और राग से पृथक हूँ" ऐसा निर्णय नहीं होता। कर्म से राग नहीं होता - राग कमजोरी का कार्य है। सामान्य दृष्टि से राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव में नहीं है, राग का ज्ञाता है ऐसा निर्णय करना वह धर्म है। मुनि को आहार दिया यह असत्यार्थ कथन है।

पद्मनन्दी पंच विंशतिका में आता है कि - मोक्षमार्ग में मुनि को - शरीर निमित्त है, शरीर को आहार-पानी निमित्त है, आहार-पानी श्रावक देते हैं इसलिये श्रावक ने मुनि को मोक्षमार्ग में स्थिर रखा है - ऐसा आरोप की परम्परा का कथन आता है, जो निमित्त का ज्ञान करानेवाला है।वास्तव में देखा जाए तो श्रावक ने आहार नहीं दिया है, आहार तो आहार में है, आहार मुनि के पास नहीं जाता, इसीतरह मुनि, मुनि में है किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध जानकर ऐसा कथन आता है।

पूर्व अवस्था के पलटने पर भी स्वयं ध्रुव रहता है - जिससे स्वयं अपादान है।

मिट्टी ने अपने में से पिंडरूप अवस्था नष्ट करके, घड़ारूप कर्म किया है फिर भी मिट्टी ध्रुव रही है, इसलिये स्वयं अपादान है। मिट्टी बदलने पर भी ध्रुव रहती है। इसीतरह आत्मा भी पूर्व विकार का व्यय करके नया विकार करे फिर भी आत्मा ध्रुवरूप रहता है।

पूर्व अवस्था का व्यय करके नई अवस्थारूप से उत्पन्न होने पर भी आत्मा ध्रुव रहता है। पूर्व अवस्था के नाश होने पर भी स्वयं आत्मा का नाश नहीं होता। तथा 'उत्पन्न होने पर भी उसमें आत्मा - सम्पूर्ण नहीं आ जाता'। प्रत्येक पदार्थ में पूर्व अवस्था का नाश होता है और नई अवस्था उत्पन्न होती है फिर भी (द्रव्य) ध्रुव रहता है। आत्मा में पूर्व अवस्था के बदलने पर भी ध्रुवरूप रहता है। आत्मा पर के कारण बदलता है और पर के कारण उत्पन्न होता है - ऐसा कहना असत्यार्थ है।

यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक ही आत्मा-अपनी अवस्था को बदलकर अपने में रखता है आत्मा स्वयं अशुद्धरूप अथवा शुद्धरूप परिणमित होने पर भी स्वयं ध्रुव रहता है। पर के कारण परिणमन नहीं होता। त्रिकाली उपादान और क्षणिक उपादान - अपने में ही है इनका निमित्त के कारण होना मानना - असत्यार्थ है। छह कारकों का स्वरूप जीव को समझाने के लिये हैं, इसीलिये यथार्थ समझकर पर के अभिमान को छोड़ देना चाहिये।

मिट्टी ने अपने आधार से घड़ा बनाया है। तवे के आधार से रोटी नहीं है। पटे के आधार से शरीर नहीं है और शरीर के आधार से आत्मा नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने आधार से है इस बात को ध्यान में रखे तभी इसे समझा जा सकता है। छह कारकों के स्वरूप को मिट्टी को नहीं समझाया है और ना ही मिट्टी को यह समझना है। इसीलिये आत्मा को समझाते हैं कि - जगत के प्रत्येक पदार्थ उनके अपने कारण परिणमन कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहे है किन्तु आत्मा के कारण नहीं।

जैसा ज्ञेयों का स्वरूप है वैसा ज्ञेयों को समझ तो तेरा ज्ञान सही होगा और यदि पर के कारण परिणमन माना जाय तो तेरा ज्ञान सही नहीं है। तू विकार कर तो तेरे से होता है और विकार रहित ज्ञान कर तो वह भी तेरे से होता है। जगत के पदार्थ उनके स्वयं के कारण परिणमन कर रहे हैं - ऐसा ज्ञान कर यह मिट्टी को उपदेश नहीं दिया है अपितु मिट्टी का दृष्टांत देकर आत्मा को समझाना है कि - यह पुस्तक रैली (चौकी) के आधार से नहीं है अपितु परमाणु की पर्याय आधेय और परमाणु आधार है। चौकी आधार और पुस्तक आधेय - ऐसा सम्बंध नहीं है।

यहाँ, वेदांत की तरह भ्रम नहीं कहा है। सर्वज्ञ देव के ज्ञान में छह द्रव्य अनादि-अनन्त हैं जो अपने कारण परिणमन कर रहे हैं - ऐसा केवलज्ञान में जानने में आया है। यह उपदेश मिट्टी को नहीं दिया जाता कि - 'हे मिट्टी ! जमीन के आधार से घड़ा होता है ऐसा तू क्यों नहीं मानती ' किन्तु जीव को उपदेश दिया है कि तेरे आधार से दुकान नहीं चलती और न ही तेरी होशियारी के करण दुकान चलती है, इसलिये तू पर का अभिमान छोड़।

इसतरह निश्चय से छहों कारक एक ही द्रव्य में है। परमाणु के छहों कारक परमाणु में है और आत्मा के छहों कारक आत्मा में है परमार्थ से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की सहायता नहीं कर सकता। व्यवहार से सहायता करता है इसका अर्थ यह है कि जब अवस्था स्वयं से हुई है, तब अन्य वस्तु निमित्त कहने में आती है। इसमें निमित्त नहीं आवे तो कार्य न हो - यह प्रश्न ही नहीं रहता। यहाँ प्रत्येक द्रव्य का अर्थ पर्याय समझना।

प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही, अपने को, अपने से, अपने लिये और अपने को देता है। अपने से, अपने में करता होने से। इसप्रकार निश्चय छहों कारक ही परम सत्य है। एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय को कभी भी सहायता नहीं करती। छहों निश्चय कारक परम सत्य है और व्यवहार से काम होता है यह असत्य है। भगवान ने जैसा देखा व जाना है वैसा ही कहा है वस्तु स्वरूप ही ऐसा है - यह भगवान ने जाना और वही उनकी वाणी में आया। पण्डित जयचन्द जी ने भावार्थ में बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया है। पण्डित बनारसीदास जी ने लिखा है कि-

'उपादान बल जहाँ तहाँ नहीं निमित्त को दांव,
एक चक्र सौ रथ चले, रवि को यही स्वभाव
उपादान निज गुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निमित्त का बल निमित्त में है और उपादान उपादान में है। उपादान की पर्याय स्वयं अपने से होती है किन्तु निमित्त आए तो हो और न आए तो न हो - ऐसी पराधीनता नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ अनन्त शक्तिवान प्रभु है, जो किसी को कुछ देता नहीं और किसी से कुछ लेता भी नहीं - इसीलिये वह प्रभु है। ऊपर कहे अनुसार द्रव्य स्वयं ही अपनी अनन्त शक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण है। प्रत्येक आत्मा और परमाणु में अनन्त शक्ति है। परमाणु में अनन्ती सम्पदा है। परमाणु में अनन्त गुण परिणमते हैं, वह उसकी सम्पदा है। प्रत्येक द्रव्य में अपनी स्वभावरूपी सम्पदा है। पर के गुण अपनी सम्पदा नहीं है। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य प्रभु है। कोई कहे कि - एक ही प्रभु है और अन्य सभी अल्पज्ञ है तो यह बात असत्य है क्योंकि सभी द्रव्य प्रभु हैं - ऐसा सर्वज्ञ देव कहते है।

प्रत्येक आत्मा, परमाणु, प्रत्येक कालाणु, धर्म अधर्म एक-एक और आकाश अपनी शक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण है। जो अपनी अशुद्धता करने में भी समर्थ है और शुद्धता करने में भी समर्थ है। प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव परिपूर्ण है इसलिये वह प्रभु है। इसतरह जीव और जड़ सभी प्रभु है। अपनी अनन्त शक्ति अपने से पूर्ण रखता है। किसी को देता नहीं और किसी से लेता भी नहीं। एक समय की पर्याय भी किसी पर के कारण हो ऐसा कभी नहीं होता अपितु पर्याय भी स्वयं सिद्ध अपने से होती है।

प्रत्येक ही आत्मा और परमाणु आदि सभी पदार्थ, स्वयं छह कारकरूप होकर अपना कार्य उत्पन्न करने के लिये समर्थ है जिसे बाह्य सामग्री कुछ भी मदद नहीं कर सकती - बाह्य सामग्री अकिंचित्कर है। इसीलिये जिसको मुक्ति प्राप्त करना हो अथवा सिद्ध भगवान बनना हो उन आत्माओं को बाह्य सामग्री की इच्छा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है।

इसप्रकार अपने से ही अपनी पर्याय होती है किन्तु निमित्त के कारण अपनी पर्याय नहीं होती। प्रत्येक आत्मा और परमाणु की समय-समय की पर्याय स्वतंत्र है,जिसने ऐसा निर्णय नहीं किया उसका रास्ता ही उल्टा है। 'मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूँ' - ऐसा ध्यान करके लीन होकर, आत्मा स्वयं ही छह कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है। स्वभाव में छह कारक बताये हैं। इसप्रकार स्वयं, स्वयं से स्वयंभू होता है।

इसप्रकार धर्म के लिये बाह्यसामग्री की जरुरत नहीं होती - स्वयं का आत्मा ही साधन है। आत्मा को अपने स्वरूप के आधार से - साधन से मुक्तदशा प्रगट होती है। धर्म के लिये देह की क्रिया साधन नहीं है अपितु धर्म तो आत्मा की निर्मल पर्याय है जिसमें देह की क्रिया की जरूरत नहीं पड़ती। प्रत्येक आत्मा और परमाणु में अनन्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शक्ति विद्यमान है जिससे वह स्वयं ही, अपना कार्य करने में समर्थ है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छह कारक स्वयं अंतर स्वरूप के आधार से परिणमित होते हैं जिसमें बाह्य सामग्री कुछ भी मदद नहीं करती।

वास्तव में एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं है इसलिये जो भिन्न सत्ता रखती है वह किसी अन्य वस्तु को मदद करने में समर्थ नहीं होती। आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द स्वरूप है - ऐसी प्रतीति और ज्ञान करने की जरूरत है किन्तु शरीर आदि परद्रव्य अच्छे हो, पैसा हो, पुण्य हो तो धर्म हो सकता है - ऐसी बात है ही नहीं। अंतर में ऐसे का ऐसा पूर्ण स्वभाव विद्यमान है इसका भान करके स्वसन्मुख हो तो धर्म प्रगट किया जा सकता है, जिसमें किसी बाह्य साधन की जरूरत नहीं होती। शरीर अनुकूल हो, बाह्य सामग्री हो तो अच्छा हो - ऐसा अज्ञानी मानता है।

यह भगवान आत्मा आनन्दकंद है, पुण्य-पाप विकार है इसका लक्ष्य छोड़कर ज्ञानानन्द स्वरूप का ध्यान करने से मुक्तिपद प्राप्त होता है। इसतरह स्वतंत्र विधि से आत्मा आनन्द प्राप्त करता है।

आत्मा स्वयं ही केवलज्ञानादि का कर्ता है। अपने में लीन हुआ आत्मा स्वयं छह कारकरूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है, जिसमें कोई परमात्मा मदद नहीं करते। यदि परमात्मा मदद करते हों तो अभी तक उन्होंने मदद क्यों नहीं की ? अतः स्वयं भ्रम करके परिभ्रमण करता है। पुण्य-पाप कृत्रिम उपाधि है, इसलिए रहित स्वभाव को ग्रहण करे तो स्वयं निर्मल भाव का करता है - आत्मदशा का कर्ता है। स्वयं अपना भान करके अपने ज्ञानस्वभाव द्वारा धर्मदशा को स्वयं करता है।

अज्ञानी कहता है कि - शरीर ठीक हो तो धर्म प्रगट करने में बहुत मदद मिलती है - पहला सुख निरोगी काया 'शरीर आद्यम् खलु धर्म साधनम्'। मरण समय शरीर शिथिल हो जाता है, यदि शरीर धर्म का साधन हो तो मृत्यु के समय धर्म होगा ही नहीं। शरीर में चाहे जैसी अवस्था हो इसलिए आत्मा को क्या ? क्योंकि शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न काम करते हैं। स्वयं ही अनन्त शक्तिवाला भगवान है।

जिसप्रकार लेंड़ी पीपरमें जो तिखास शक्तिरूप है वही बाहर में प्रगट होती है। यदि पत्थर से तिखास आती हो तो चूहे की लेंड़ी में से भी तिखास आनी चाहिये, किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। लेंड़ी पीपर में जो तिखास होती है वही बाहर आती है। इसीप्रकार आत्मा में ज्ञान और आनन्द भरा है जो उसमें एकाग्रता करने से प्रगट होता है। इसतरह केवलज्ञान के कर्ता, कर्म आदि छहों कारक स्वयं आत्मा में ही है, जिसके कारण आत्मा स्वयं, स्वयंभू होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा, अपना कार्य स्वयं करता है। आत्मा स्वयं ज्ञान ज्योति आनन्दमय शुद्ध है - ऐसे भानवाला आत्मा स्वयं कार्य करता है जो स्वयं, अपने केवलज्ञानादि कार्य से अभिन्न है। अपनी चैतन्य ज्योति में एकाग्र होने से जो शुद्धदशा होती है उससे आत्मा भिन्न नहीं है। इसलिए आत्मा स्वयं कर्म है।

आत्मा स्वयं अनन्त शक्ति सम्पन्न है जिसका स्वयं अपना बदलने का स्वभाव है। यदि आत्मा सर्वथा कूटस्थ हो तो विविध प्रकार के कार्य नहीं हो सकते और आनन्द का अनुभव भी नहीं हो सकेगा। अतः स्वयं ही परिणमन के स्वभाववाला होने से स्वयं ही केवलज्ञान का साधन है, जिसे वज्र वृषभनाराच संहनन की अपेक्षा नहीं है। यह समझकर निमित्त और विभाव की अपेक्षा छोड़कर, आत्मा अपना साधन स्वयं करता है, जिसमें बाहर के साधन की अपेक्षा नहीं होती। निचलीदशा में भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होने में स्वयं ही साधन है।

स्वयं केवलज्ञान अपने लिए प्रगट करके अपने में रखता है इसीलिए आत्मा स्वयं सम्प्रदान है। अपूर्णज्ञान के नाश होने पर भी, स्वयं ध्रुवरूप रहकर केवलज्ञान प्रगट करता है, इसलिये स्वयं अपादान है और स्वयं अपने ही आधार से केवलज्ञान प्रगट करता है इसलिये स्वयं अधिकरण है। यदि शरीर मजबूत हो - स्वस्थ हो तो ध्यान होता है - ऐसा है ही नहीं। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार अपूर्णज्ञान का नाश होकर, केवलज्ञान की पूर्णदशा का उत्पाद हुआ है और आत्मा स्वयं ध्रुव रहा है। इसतरह स्वयं छह कारकोंरूप होने से आत्मा स्वयंभू कहलाता है।

एक भी सामग्री-संयोग के जाते ही अज्ञानी रोने लगता है, उसके इस अनादि रुदन को आचार्य इस गाथा में मिटाते हैं।

अनादि काल के भावघातिकर्म तथा द्रव्यघातिकर्म का नाश करके, स्वयमेव-स्वतंत्र केवलज्ञान प्रगट हुआ है, जिसे किसी अन्य की जरूरत नहीं और यहाँ सरागदशा में भी किसी पर की जरूरत नहीं होती। आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव है,विकार क्षणिक है। आत्मा शुद्ध आनन्द स्वरूप है किन्तु संयोग में एकता बुद्धिवाला संयोग का वियोग होते समय रोने लगता है। जैसे पीपल के वृक्ष पर एक बंदर बैठा था, वहीं वृक्ष पर अनेक पक्षी आकर बैठते हैं और थोड़े समय में एक-एक करके उड़ते जाते हैं। उन्हें जाता हुआ देखकर मूर्ख बन्दर रोने लगता है कि - देखो ! वे मेरे पक्षी चले गये - ऐसा वह एक-एक पक्षी के लिए रोता रहता है। उसका यह रुदन कैसे मिटें ? वैसे ही अज्ञानी जीव पूर्व कर्म के अनुसार संयोग की प्राप्ति करता है और व्यर्थ ही उनसे अपना भला-बुरा माना करता है। उसे अपनी स्वतंत्रता की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खबर नहीं। शरीर में बुखार आये, लड़की अथवा लड़का मर जाये, पैसा चला जाये इत्यादि पर के परिणमन में रोनेवाला अज्ञानी उक्त बंदर की तरह है। पुण्य से मिले अनुकूल संयोग तो पक्षियों की तरह ही हैं जो परलोक से स्वयं उन्हीं के कारण आए हैं। पुण्योदय से संयोग मिलते हैं लेकिन जब वे जाने लगते हैं तब यह अज्ञानी रोने लगता है।

'मैं स्वयं स्वतंत्र सत् ज्ञानानन्द मूर्ति हूँ' - ऐसा भान नहीं होने के कारण संयोग के जाने पर यह मेरी ही वस्तु गई है - ऐसा मानकर अज्ञानी रोने लगता है। यहाँ कहते हैं कि - आत्मा स्वयं अपने से - परके सहयोग के बिना ही केवलज्ञान प्रगट करता है। पहले अपना भान नहीं था, अब भान करके प्रगट हुआ इसलिये उसे स्वयंभू कहा है।

घर-परिवार का होना वह संसार नहीं है अपितु शरीर, घर, परिवार मेरे हैं - ऐसी विपरीत मान्यता संसार है। पर से भिन्न आत्मा का भान करके आत्मा मुक्तदशा को प्राप्त करता है। इसप्रकार सिद्धदशा का अत्यन्त अविनाशीपना और कथंचित किसीप्रकार से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपने का विचार करते हैं।

अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं हैं, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती।

- श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १७

अथ स्वायम्भुवस्यास्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्यात्यन्तमनपायित्वं कथंचिदुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वं चालोचयति -

भंगविहूणो य भवो संभवपरिवज्जिदो विणासो हि।
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ ॥१७॥

अब इस स्वयंभू के शुद्धात्म स्वभाव की प्राप्ति के अत्यन्त अविनाशीपना और कथंचित् (कोई प्रकार से) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तता का विचार करते हैं :-

उत्पाद विरहित व्यय तथा व्यय से रहित उत्पाद है ।
तो भी उन्हीं के ध्रौव्ययुत उत्पाद व्यय समवाय है ॥१७॥

गाथार्थ :- उसके (शुद्धात्म स्वभाव को प्राप्त आत्मा के) विनाश रहित उत्पाद है, और उत्पाद रहित विनाश है। उसके ही फिर स्थिति, उत्पाद और विनाश का समवाय मिलाप, एकत्रपना विद्यमान है।

टीका :- वास्तव में इस (शुद्धात्म स्वभाव को प्राप्त) आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ जो शुद्धात्म स्वभाव से (शुद्धात्म स्वभावरूप से) उत्पाद है वह, पुनः उसरूप से प्रलय का अभाव होने से विनाश रहित है; और (उस आत्मा के शुद्धोपयोग के प्रसाद से हुआ) जो अशुद्धात्म स्वभाव से विनाश है वह पुनः उत्पत्ति का अभाव होने से, उत्पाद रहित है। इसलिए (यह कहा है कि) उस आत्मा के सिद्धरूप से अविनाशीपना है। ऐसा होने पर भी उस आत्मा के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का समवाय विरोध को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह विनाश रहित उत्पाद के साथ, उत्पाद रहित विनाश के साथ और उन दोनों के आधार भूत द्रव्य के साथ समवेत (तन्मयता से युक्त एकमेक) है।

भावार्थ :- स्वयंभू सर्वज्ञ भगवान के जो शुद्धात्म स्वभाव उत्पन्न हुआ वह कभी नष्ट नहीं होता, इसलिए उनके विनाश रहित उत्पाद है, और अनादि अविद्या जनित विभाव परिणाम एक बार सर्वथा नाश को प्राप्त होने के बाद फिर कभी उत्पन्न नहीं होते, इसलिए उनके उत्पाद रहित विनाश है। इसप्रकार यहाँ यह कहा है कि वे सिद्धरूप से अविनाशी है। इसप्रकार अविनाशी होने पर भी वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त हैं; क्योंकि शुद्ध पर्याय की अपेक्षा से इनके उत्पाद है, अशुद्ध पर्याय की अपेक्षा से व्यय है और उन दोनों के आधार भूत आत्मत्व की अपेक्षा से ध्रौव्य है ॥१७॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा १७ पर प्रवचन

चारगति तो एक के बाद एक, बदला करती है किन्तुसिद्धदशा बदलकर संसाररूप नहीं होती।

संसार में ऐसी देह अनन्तबार मिली है - राजा, रंक, कीड़ा, कौआ, तिर्यंच, नारकी इत्यादि देह आती (मिलती) है और जाती है, किन्तु परमात्मपद आने पर वह नहीं जाता। शुद्ध आत्मा का आश्रय करके जो मुक्तदशा को प्राप्त करते हैं उन्हें फिर संसार में अवतार (जन्म) नहीं लेना पड़ता। आत्मा स्वयं परमात्मा होने के लायक है। संसार में राजा, रंक हो जाता है, रंक राजा हो जाता है, राजा नरक में चला जाता है और नारकी मरकर राजा हो जाता है - ऐसी अवस्थाएँ बदलती रहती है। शिकार करनेवाला, मांस खानेवाला तीव्र ममता के पाप परिणाम द्वारा नरक में जाता है। जैसे पानी में लोहे का गोला नीचे जाता है; वैसे ही अधिक हिंसा करनेवाला सीधे नरक में जाता है, किन्तु ध्रुव स्वभाव के अवलम्बन से जीव, मुक्तदशा (मोक्ष) को प्राप्त करता है - जो अविनाशी होने से फिर नहीं बदलती!

प्रश्न :- जातिस्मरण होने पर ही तो - पूर्व भव का पता चल सकता है ?

समाधान :- प्रत्येक जीव के पास जो भिन्न-भिन्न संयोग दिखाई देते हैं वे स्वयमेव पूर्व भव को सिद्ध करते हैं। भव तो विपरीतता का फल है। ऐसे पूर्व भव को जनानेवाला जातिस्मरण जीव को पहले, अनन्त बार हुआ है - लेकिन उससे क्या ? अर्थात् उससे कोई लाभ नहीं है। जगत में बुद्धि रहित मूर्ख लोग भी लाखों की कमाई कर लेते हैं और बुद्धिमान को खाने को भी नहीं मिलता - ऐसा भी देखा जाता है। यह उनके पूर्व भव में किये गये कर्म से मिलनेवाले इन फलों को सिद्ध करते हैं।

'एक रंक ने एक नृप, अे आदि जे भेद ।
कारण बिना न कार्यते, अे ज शुभाशुभ वेद्य ।।'

पूर्व में बांधे हुये कर्मों के अनुसार ही संयोग दिखाई देते हैं। एक व्यक्ति शरीर की सुरक्षा की बहुत चिंता करते हुये देखा जाता है फिर भी उसका रोग दूर नहीं होता और कोई तो शरीर की थोड़ी भी चिंता-फिकर नहीं रखता फिर भी एकदम स्वस्थ दिखाई देता है। यह सब पुण्य-पाप के फल प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। पापी जीव लाखोंरुपये पैदा करते हैं और अनुकम्पा, दया परिणामवाले श्रावक कमाई न भी कर सके। यह सभी प्रत्यक्ष असमानताएं पूर्व जन्म और वहाँ किये गये पुण्य-पाप कर्म को ही सिद्ध करती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्ध उपयोग से प्रगट हुई सिद्धदशा का उत्पाद ऐसे का ऐसा (एक जैसा) सदृश रहता है। जगत ज्ञेय है - मैं ज्ञाता हूँ, जगत दृश्य है - मैं दृष्टा हूँ इसके अलावा मेरा पर के साथ कोई भी सम्बंध नहीं है - ऐसा निर्णय करे तो शान्ति मिले। पर पदार्थ अपना मानने लायक नहीं है। आत्मा का भान करके अविनाशी पद प्रगट करते हैं जो सदा वैसे का वैसा रहता है।

जैसे मक्खन से घी बनने के बाद फिर वापस घी से मक्खन नहीं हो सकता अथवा जैसे लेंड़ीपीपर में से चौंसठ पुटी तिखास प्रगट होने के बाद फिर चौंसठ पुटी में से मूल सामान्यरूप लेंड़ीपीपर नहीं हो सकती अथवा जैसे कच्चे चने को पकाने पर वह मीठा हो जाता है किन्तु वह पका चना फिर कच्चा चना नहीं हो सकता और वापिस फिर से नहीं ऊग सकता, वैसे ही शुद्ध चिदानन्द आत्मा का भान और रमणता करके पूर्णदशा प्रगट होने के बाद फिर संसार में अवतार नहीं होता।

शुद्ध उपयोग के प्रसाद से पूर्णदशा होती है जैसे चौंसठ पुटी तिखास प्रगट होने परवापिस फिर से त्रेसठ पुटी नहीं होती। जैसे त्रेसठ पुटी तिखास, चौंसठ पुटी तिखासरूप होती है; वैसे ही चिदानन्द स्वरूप भगवान आत्मा में एकाग्र होकर पूर्णदशा होती है वह नवीन दशा है, यह दशा पहले नहीं थी। पूर्ण सर्वज्ञ पद प्रगट हुआ जो फिर पीछे नहीं जाता। पुण्य-पाप के परिणाम तो पुनः-पुनः (बारम्बार) क्रम-क्रम से बदलते हैं किन्तु शुद्धोपयोग से जो पूर्णदशा प्रगट होती है वह आकर फिर नहीं जाती। इसीलिए पुण्य-पाप परिणाम करने लायक नहीं है। शुद्ध स्वभाव के अवलम्बन से जो पूर्णदशा प्रगट होती है वह सादि-अनन्त काल रहती है। सिद्धदशा प्रत्येक समय बदलने पर भी ऐसी की ऐसी ही रहती है।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की ९६००० रानियाँ, ६४००० पुत्र, ३२००० पुत्रियाँ, १६००० देव सेवक और ६ खंड का राज्य था लेकिन मरकर नरक में चला गया है। ऐसा संसार की गति में परिणमन होता है किन्तु मुक्ति का उत्पाद संसार से भिन्न जाति का है।

ऐसे शुद्ध उपयोग के प्रसादरूप ज्ञानमूर्ति के अंतर स्वभाव के अवलम्बन से सिद्धदशा प्रगट होती है। परमात्मा होने के बाद - परमात्मदशा का नाश होकर संसारदशा उत्पन्न हो जावे ऐसा कभी नहीं होता। चारित्रवंत मुनि स्वर्ग में जाय तो चारित्र छूट जाता है। केवलज्ञान प्राप्त न करें तो चारित्र बदल जाता है, किन्तु शुद्धोपयोग से सिद्धदशा को प्राप्त करे तो उसका नाश हो जाय - ऐसा कभी होता ही नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी शक्ति, आत्मा के आश्रय से पूर्ण प्रगट हुई है जिसका फल कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता। शुद्धात्म स्वभाव महात्मवाला (महिमावंत) है, उसके आश्रय से सुख प्रगट होता है। पुण्यरूप उत्पन्न होने पर फिर पापरूप उत्पन्न होता है। यह संसार पुण्य-पापरूप उत्पन्न होता है और नाश को प्राप्त होता है। किन्तु सिद्धदशा में (सिद्धत्व का) विनाश नहीं होता, इसलिए आत्मा के भान द्वारा शुद्धोपयोग करके सिद्धदशा ही प्रगट करने लायक है।

संसार में पुण्य-पाप बदल-बदलकर उत्पन्न होते हैं किन्तु सिद्धदशा के होने पर विनाश को प्राप्त हुये जो विभाव परिणाम है वे फिर उत्पन्न नहीं होते। आत्मा का भान होने के पश्चात् केवलज्ञानदशा होती है, वहाँ तेरहवें गुणस्थान में थोड़ी सी अशुद्धता है। विदेह मुक्त होने के पश्चात् अशुद्धता नहीं होती।

शुद्धोपयोग के प्रसाद से सिद्ध भगवान ने अशुद्धता का पूर्ण विनाश किया है। आनन्द स्वरूप हूँ - ऐसी लीनता द्वारा पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है और अशुद्धता का नाश होता है। केवली भगवान को ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य आदि गुणों की पर्यायें पूर्ण प्रगट हैं किन्तु कंपन आदि अशुद्धता है। अघाति कर्म के साथ निमित्त जितनी अशुद्धता है, जिसका शुद्धोपयोग के प्रसाद से नाश होता है।

शुद्धोपयोग के प्रसाद से ही केवलज्ञान प्रगट होता है। उसके बाद में भी अशुद्धता रहती है वह भी सिद्धदशा होते ही नाश हो जाती है जैसे चौंसठ पुटी तिखास प्रगट होने के बाद लेंड़ीपीपर मेंवापिस त्रैसठ पुटी तिखास नहीं आती, वैसे ही जिनने आत्मा की प्रतीति करके लीनता द्वारा सिद्धपद प्राप्त किया और संसार का नाश किया है वे फिरवापिस संसार में उत्पन्न नहीं होते।

कितने ही लोग कहते हैं कि युवा अवस्था में तकलीफ आई हो तो सहन की जा सकती है किन्तु यदि वृद्धावस्था में तकलीफ आए तो कैसे सहन हो ? धनवानपना, निर्धनता, रोगदशा, वृद्धावस्था इत्यादि अवस्था अनित्य है। पुण्य हो अथवा पाप हो सभी अनित्य है, शरण मानने योग्य नहीं है। इसीलिए शुद्ध आत्मा की पहिचान करके लीन होना तथा व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और राग की रमणता से दूर होकर, निर्मल स्वरूप में श्रद्धा-ज्ञान और लीनता करना योग्य है। इसके फल में सिद्धदशा के उत्पाद पूर्वक विभाव परिणाम का जो विनाश हुआ है वह अब इसके बाद (पुण्य-पाप) पुनः उत्पन्न नहीं होते। आत्मा की पूर्ण निर्मल पर्याय का नाश नहीं होता इसलिये वह अविनाशी है अतः वह प्रगट करने योग्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सिद्ध पर्याय अविनाशी होने पर भी सिद्ध में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों लागू होते हैं। ऐसा होने पर सिद्धपना अविनाशी होने पर भी अर्थात् कि सिद्धपने अविनाशी होने पर भी उसमें ध्रौव्य-उत्पाद और विनाश का स्वभाव - विरोध को प्राप्त नहीं होता।

अविनाशी में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य क्या है ?

वह पर्याय ऐसी की ऐसी रहती है इसलिए उसे अविनाशी कहा है, फिर भी प्रत्येक समय उत्पाद-व्यय होता है। मलिन अवस्था का व्यय होता है, निर्मल अवस्था उत्पन्न होती है और स्वयं आत्मा ध्रुव रहता है। शुद्ध अवस्था का उत्पाद हुआ, अशुद्ध अवस्था का व्यय हुआ और आत्मपने कायम रहता है - इसप्रकार उसमें तीनों लागू पड़ते हैं। सिद्ध पर्याय नाश को प्राप्त नहीं होती। ऐसे विनाश रहित उत्पाद के साथ, संसार पर्याय विनाश को प्राप्त हुई है - जो उत्पाद रहित है इसलिए उत्पाद रहित विनाश के साथ उन दोनों का आधारभूत द्रव्य एकमेक है।

आत्मा स्वयं शुद्धपने उत्पन्न हुआ है - वह उत्पाद अपेक्षा है, अशुद्धपने का नाश हुआ है - यह व्यय अपेक्षा है और उस समय स्वयं ध्रुव है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक समय में है। यह लकड़ी जो टेढ़ी होती है उसमें टेढ़े होनेरूप अवस्था का उत्पाद, सीधेरूप अवस्था का व्यय और स्वयं ध्रुव - इसप्रकार तीनों एक साथ हैं। इसीतरह सिद्ध में समझना चाहिए।

गाथा १७ के भावार्थ पर प्रवचन

अब, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सर्व द्रव्यों के साधारण होने से, शुद्ध आत्मा को, केवली भगवान को और सिद्ध भगवान को भी होना अवश्यम्भावी (अपरिहार्य) है - यह बताते हैं।

यहाँ परमाणु का दृष्टान्त लिया है। रोटी-दाल-भात में से खून बनता है। पूर्व की अवस्था बदलकर नई अवस्था उत्पन्न हुई है। स्वयं कायम रहे ऐसा वस्तु का स्वभाव है। जो पदार्थ होता है उसका नाश नहीं होता और जो नहीं होता वह नया उत्पन्न नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ स्वयं ध्रुव रहकर बदलता है। कोई जीव कहता है कि मुझे शान्ति चाहिए। 'चाहिए' वह बताता है कि वर्तमान में अशान्ति है इसलिए अशान्ति का नाश होकर शान्ति का उत्पाद होता है और स्वयं ध्रुव रहता है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य प्रत्येक पदार्थ में है।

सिद्ध में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागू पड़ते हैं। वहाँ अविनाशीपना होने पर भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नया-नया अनुभव होता है। अविनाशीपना कहा है इसलिए वहाँ परिणमन नहीं होता हो - ऐसा इसका अर्थ नहीं है। वहाँ अशुद्धता नहीं होती किन्तु वहाँ भी समय-समय अवस्था बदलती है। यदि एक समय के लिए भी पलटने का स्वभाव न हो तो जो एक समय नहीं पलटे वह दूसरे समय में भी नहीं पलटे तो अनुभव ही नहीं होगा।

कोई कहता है कि आत्मा एकान्त अपरिणामी-कूटस्थ-नित्य ही है तो उससे पूछते हैं कि यह जो नित्य है वह किस में निर्णय किया ? कूटस्थ में निर्णय नहीं होता किन्तु पर्याय परिणमन करती है। पूर्व अवस्था व्यय हुई, नई अवस्थारूप से उत्पन्न हुई है और स्वयं ध्रुव है - ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य प्रत्येक पदार्थ में है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य शुद्ध स्वभावपने सिद्ध में भी लागू होता है।

हे जीव ! एक बार हर्ष तो ला कि 'अहो ! मेरा आत्मा ऐसा !' कैसा ? - कि सिद्ध भगवान जैसा। सिद्ध भगवान जैसी ज्ञान-आनन्द की परिपूर्ण शक्ति मेरे आत्मा में भरी पड़ी ही है, मेरे आत्मा की शक्ति नष्ट नहीं हो गई है। अरे रे ! मैं दब गया, विकारी हो गया, अब मेरा क्या होगा ?' - इस प्रकार डर मत, हताश न हो। एक बार स्वाभाव का हर्ष ला, स्वरूप का उत्साह प्रगट कर, उसकी महिमा लाकर अपने पुरुषार्थ को उछाल, तो तुझे अपने अपूर्व आहलाद का अनुभव होगा, और तू सिद्ध पद को प्राप्त करेगा।

- गुरुदेवश्री के वचनामृत, २३४

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १८

अथोत्पादादित्रयं सर्वद्रव्यसाधारणत्वेन शुद्धात्मनोऽप्यवश्यंभावीति विभावयति-

उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स।
पज्जाएण दु केणवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो ॥१८॥

अब, उत्पाद आदि तीनों (उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य) सर्व द्रव्यों के साधारण है इसलिए शुद्धात्मा (केवली भगवान और सिद्ध भगवान) के भी अवश्यम्भावी है ऐसा व्यक्त करते हैं :-

उत्पाद व्यय होते सदा सम्पूर्ण अर्थ समूह के ।
एवं किसी पर्याय से सद्भूत होते अर्थ वे ॥१८॥

गाथार्थ :- किसी पर्याय से उत्पाद और किसी पर्याय से विनाश सर्व पदार्थ मात्र के होता है, और किसी पर्याय से पदार्थ वास्तव में ध्रुव है।

टीका :- जैसे उत्तम स्वर्ण की बाजूबंदरूप पर्याय से उत्पत्ति दिखाई देती है, पूर्व अवस्थारूप से वर्तनेवाली अंगूठी इत्यादिक पर्याय से विनाश देखा जाता है और पीलापन इत्यादि पर्याय से दोनों में (बाजूबंद और अंगूठी में) उत्पत्ति-विनाश को प्राप्त न होने से ध्रौव्यत्व दिखाई देता है। इसप्रकार सर्वद्रव्यों के किसी पर्याय से उत्पाद, किसी पर्याय से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्य होता है, ऐसा जानना चाहिए। इसलिए (यह कहा गया है कि) शुद्ध आत्मा के भी द्रव्य का लक्षण भूत उत्पाद, व्यय ध्रौव्यरूप अस्तित्त्व अवश्यम्भावी है।

भावार्थ :- द्रव्य का लक्षण अस्तित्त्व है और अस्तित्त्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। इसलिए किसी पर्याय से उत्पाद, किसी पर्याय से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्यत्व प्रत्येक पदार्थ के होता है।

प्रश्न :- 'द्रव्य का अस्तित्त्व उत्पादादिक तीनों से क्यों कहा है ? एक मात्र ध्रौव्य ही कहना चाहिए, क्योंकि जो ध्रुव रहता है वह सदा बना रह सकता है ?'

उत्तर :- यदि पदार्थ ध्रुव ही हो तो मिट्टी, सोना, दूध इत्यादि समस्त पदार्थ एक ही सामान्य आकार से रहना चाहिए; और घड़ा, कुण्डल, दही इत्यादि भेद कभी नहीं होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता अर्थात् भेद तो अवश्य दिखाई देते हैं। इसलिए पदार्थ सर्वथा ध्रुव न रहकर किसी पर्याय से उत्पन्न और किसी पर्याय से नष्ट

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी होते हैं। यदि ऐसा न माना जाए तो संसार का ही लोप हो जाय।

इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है, इसलिए मुक्त आत्मा के भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अवश्य होते हैं। यदि स्थूलता से देखा जाए तो, सिद्ध पर्याय का उत्पाद और संसार पर्याय का व्यय हुआ तथा आत्मत्व ध्रुव बना रहा। इस अपेक्षा से मुक्त आत्मा के भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। अथवा मुक्त आत्मा का ज्ञान ज्ञेय पदार्थों के आकाररूप हुआ करता है इसलिए समस्त ज्ञेय पदार्थों में जिस-जिसप्रकार से उत्पादादिक होता है, उस-उसप्रकार से ज्ञान में उत्पादादिक होता रहता है, इसलिए मुक्त आत्मा के समय-समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है। अथवा अधिक सूक्ष्मता से देखा जाए तो अगुरुलघुगुण में होनेवाली षट्गुनी हानि वृद्धि के कारण मुक्त आत्मा में समय-समय पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वर्तता है। यहाँ जैसे सिद्ध भगवान के उत्पादादि कहे हैं उसीप्रकार केवली भगवान के भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए॥१८॥

* * *

गाथा १८ पर प्रवचन

इस गाथा में किसी पर्याय से पदार्थ को ध्रुव कहा गया है, यहाँ पर्याय का अर्थ गुण समझना चाहिए।

'मुझे धर्म करना है' इसमें ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध हो जाते हैं।

चारित्र ही धर्म है। धर्म निर्विकारी परिणाम है। शुद्ध स्वभाव सन्मुख हुई पर्याय अथवा शुद्ध स्वभाव को स्वीकार करनेवाले वीतरागी अंश को चारित्र और धर्म कहते हैं। इस धर्म के फलस्वरूप मुक्तदशा होती है। वह मुक्तदशा विनाश रहित है। शुद्ध चिदानन्द के अवलम्बन से जो मुक्तदशा होती है वह विनाश को प्राप्त नहीं होती। जिन मति आदि चार अपूर्ण ज्ञान का नाश हुआ है उनका फिर से उत्पाद नहीं होता - ऐसी यह मोक्षदशा अविनाशी है। सिद्ध में अविनाशीपना होते हुये भी वहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है। यह बात अन्य कहीं नहीं मिलती।

जीव को धर्म करना है - इसका अर्थ यह होता है कि वर्तमान में जो अधर्म अवस्था है उसे बदलना है और धर्मरूप नई अवस्था को उत्पन्न करना है और स्वयं ध्रुवरूप रहता है। पूर्व अवस्था का व्यय होना, नई अवस्थारूप उत्पन्न होना और स्वयं कायम ध्रुव रहना इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों को स्वीकार करना चाहिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु का स्वरूप जैसा है उसे वैसा ही जाने बिना धर्म नहीं होता। वर्तमान दशा में यदि धर्म हो तो धर्म प्रगट करना नहीं रहता और धर्म प्रगट करने की शक्ति अन्तर में न हो तो धर्म प्रगट नहीं होता, क्योंकि बाहर से धर्म नहीं आता। वर्तमान अधर्मदशा है जिसका नाश होकर धर्म की उत्पत्ति हुई और ध्रुव रहनेवाला सदृश अंश, इसप्रकार एक समय में तीनों अंश है। एक समय में ऐसे तीनों अंशों सहित सर्व पदार्थ एक समय में पूर्णरूप से जान लेते हैं वे सर्वज्ञ हैं।

प्रत्येक पदार्थ स्वयं स्थिर रहकर परिणमन करते हैं
किन्तु वे एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता.

कोई कहे कि - पर की दया पालने से धर्म होता है तो यह बात असत्य है, क्योंकि जब पर की अवस्था पर के कारण होती है तो फिर - तू उसे कैसे कर सकता है ? तेरे में जो राग परिणाम होता है वह पुण्य है - ऐसा निर्णय कर। सामनेवाला पदार्थ स्वतंत्ररूप से परिणमन करता है और स्वयं ही बदलता है फिर भी ध्रुव रहता है। स्थिर रहनेवाले का आश्रय करे तो अधर्मदशा बदलकर धर्मदशा प्रगट होती है।

एक वस्तु तीन अंशों द्वारा सिद्ध न हो तो वह वस्तु ही सिद्ध नहीं होगी। यदि एक वस्तु एक समय में न बदले तो वह दूसरे समय में भी नहीं बदलेगी व तीसरे समय में भी नहीं बदलेगी, इसप्रकार नहीं बदलने से अधर्मदशा का नाश करके धर्मदशा भी प्रगट नहीं हो सकेगी। पर की पर्याय आत्मा नहीं कर सकता। पर वस्तु भी सत् है। पर की दया कर सके अथवा पर का आशीर्वाद ले सके अथवा दूसरों को श्राप देने से नुकसान हो जाय अथवा अपनी अवस्था पर के कारण बदल जाये - यह बात कभी भी नहीं हो सकती - ऐसा निर्णय करके पर्याय, स्वभाव के सन्मुख झुकते ही मिथ्यात्व का नाश होता है, सम्यक् दर्शन का उत्पाद होता है और स्वयं ध्रुव रहता है।

प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ये तीनों ही अंश रहते हैं।

प्रश्न :- संसारी जीव तो पर का कर्ता है ना ?

समाधान :- नहीं। "आत्मा पर का तो नहीं कर सकता किन्तु वास्तव में तो आत्मा राग का भी कर्त्ता नहीं है।" आत्मा रोटी, दाल-भात, भाषा आदि का कर्ता नहीं है। भाषा भी वस्तु है इसमें भी एक समय में तीनों अंश रहते हैं किन्तु चौथा अंश नहीं रहता। यदि आत्मा पर का करे तो आत्मा का अंश पर में चले जाने से पर में चार अंश हो जायगें, किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। पर पदार्थ अपनी शक्ति से परिणमन करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य इन तीन अंशों सहित प्रत्येक पदार्थ है। उत्पाद पर के कारण नहीं होता किन्तु स्वभाव के कारण धर्म उत्पन्न होता है और अधर्मदशा का नाश होता है - ऐसा होने पर भी ध्रुव रहता है। संसार में वर्तमान मोह की उत्पत्ति, पूर्व के मोह का नाश और स्वयं ध्रुव रहता है इसप्रकार ये तीन अंश हैं। मिथ्यात्व का व्यय, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति और श्रद्धा गुण ध्रुव है ऐसे तीनों अंश ध्रुव रहते हैं। जो प्रगट करना चाहते हैं, वह पर्याय है। पूर्व अवस्था नाश होकर नई अवस्था उत्पन्न होती है और गुण ध्रुव रहते हैं, इसप्रकार पदार्थ में तीनों अंश रहते हैं।

जीव भले ही राग उत्पन्न करे किन्तु राग के कारण मन्दिर का उत्पाद हो जाये - ऐसा कभी नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ में अर्थात् छहों पदार्थों में प्रति समय किसी पर्याय का उत्पाद और किसी पर्याय का व्यय होता है इसमें किसी भी पर पदार्थ की जरूरत नहीं होती - ऐसा सुने और समझे तो झगड़ा मिट जाता है। आत्मा पर को भी यथार्थ जाने कि वे अन्य पदार्थ भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले हैं - ऐसा जानकर एक दूसरे में मिलावट न करें।

सहवर्ती पर्याय से पदार्थवास्तव में ध्रुव है और क्रमवर्ती पर्याय से पूर्व अवस्था का नाश होकर नई अवस्थारूप उत्पन्न होता है, इसप्रकार वह अनित्य है। यदि अवस्था में परिणमन न हो तो कार्य नहीं हो सकता, और यदि ध्रुवपना न हो तो ध्रुव के आधार बिना कार्य ही प्रगट नहीं होगा।

प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वयं से है किन्तु पर के कारण नहीं। जैसे उत्तम सोने की बाजूबंद की पर्याय से उत्पत्ति दिखाई देती है किन्तु सोनी और हथौड़ी से वह पर्याय उत्पन्न हुई है - ऐसा दिखाई नहीं देता। अन्य वस्तु भले ही वहाँ उपस्थित हो किन्तु हथौड़ी, सोनी आदि से कार्य नहीं हुआ है। इसीप्रकार मन्दिर रोटी आदि की अवस्था उनके परमाणुओं के द्वारा हुई है किन्तु अन्य किसी कारीगर, पैसा, स्त्री, अग्नि द्वारा परमाणुओं की मन्दिर व रोटीरूप अवस्था का होना दिखाई नहीं देता। यहाँ अन्य निमित्त से पदार्थ का उत्पाद होना नहीं कहा। अज्ञानी हथौड़ी कारीगर, बाई आदि संयोग से (कार्य का होना) देखता है लेकिन सोने के स्वभाव को नहीं देखता क्योंकि स्वभाव के ऊपर उसकी नजर नहीं जाती।

प्रश्न :- यदि अग्नि न हो तो क्या रोटी बन सकती है ?

समाधान :- रोटी अपनी पर्याय से ही उत्पन्न हुई दिखाई देती है इसीतरह अग्नि की भी अपनी उष्ण पर्याय से उत्पत्ति होती हुई दिखाई देती है। जो है - जो शक्ति जिससे है वह उसके नहीं है - ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? वास्तव में द्रव्य ही उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायरूप उत्पन्न हुआ है लेकिन कोई अन्य द्रव्य उस पर्यायरूप उत्पन्न नहीं हुआ है। सोने में पूर्व अवस्थारूप में वर्तती अंगूठी इत्यादि अवस्था थी उसका उसी पदार्थ के व्यय स्वभाव से विनाश दिखाई देता है। सोना स्वयं अपनी जिस पूर्व अवस्था में वर्तता था उस अवस्था का विनाश हुआ है लेकिन किसी अन्य ने सोने की अवस्था का विनाश नहीं किया है।

इसप्रकार सर्व पदार्थों के स्वरूप को समझना चाहिए। सोने के पीलापन, चिकनापन आदि सहभागी पर्यायों से देखा जाये तो बाजूबंद और अंगूठी इन दोनों अवस्थाओं में सोने का उत्पाद और विनाश नहीं होने से सोना - ध्रुव दिखाई देता है अर्थात् सहवर्ती गुण से देखने पर - अंगूठी अवस्था के व्यय के समय में और बाजूबंद के उत्पाद काल में सोने में ही ध्रुवपना दिखाई देता है - ऐसा यथार्थ समझे तो पर के स्वामित्व व कर्तत्व का अहंकार मिटे और क्षणिक राग से भेदज्ञान हो।

अज्ञानी कहता है कि -'हमने पर द्रव्यों को व्यवस्थित किया है'। (तो उससे ज्ञानी पूछते हैं कि) वह पर द्रव्य भी वस्तु है अथवा नहीं ? यदि वह वस्तु है तो उसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों ही अंश उसी से हैं। ऐसा होने पर भी तेरे व्दारा पर द्रव्यों के तीनों अंशों का होना मानना असत्य है। इसप्रकार सभी द्रव्यों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझना चाहिये।

यह लकड़ी जो आड़ी हुई है इस आड़ी अवस्था का उत्पाद लकड़ी से है और सदृश-ध्रुव अंश भी उसी लकड़ी से है किन्तु अंगुली के कारण लकड़ी का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य नहीं हुआ है। अंगुली का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंगुली में है। अंगुली की मुड़ी हुई अवस्था का व्यय होकर सीधी पर्याय का उत्पाद हुआ है। पदार्थ सहवर्ती गुण से ध्रुव होता है। इस लकड़ी को आत्मा उठाता नहीं है क्योंकि स्वयं लकड़ी में ये तीनों अंश विद्यमान है। पूर्व अवस्था का व्यय, नई अवस्था का उत्पाद और सद्दश अंश ध्रुव। इसप्रकार तीनों अंश प्रत्येक पदार्थ में अनादि अनन्त है इसप्रकार यथार्थ समझे तो पर का अहंकार दूर होकर-स्वयं ज्ञाता रहे।

सम्पूर्ण जगत के पदार्थों के नई अवस्थारूप से उत्पाद देखने में आता है, पूर्व पर्याय से नाश-व्यय और किसी सहवर्ती पर्याय से वह ध्रौव्य है। इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से रहनेवाले हैं - ऐसा निर्णय करते ही पर से भेद-विज्ञान होता है। अपने में जो राग का उत्पाद होता है वह क्षणिक है और स्वयं ध्रुव है इसप्रकार राग से भेद-ज्ञान होन पर स्व-सन्मुखतारूप धर्म होता है।

जगत का व्यवहार मनाने के लिये, जगत को खुश (प्रसन्न) करने के लिये और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लोक को राजी करने के लिये जीव ने अनन्त काल गमाया है किन्तु दुनिया को यह प्रसन्न नहीं कर सका, क्योंकि दुनिया की प्रसन्नता और नाराजगी स्वयं उन्हीं के कारण है। उनकी यह पर्याय स्वयं उन्हीं के कारण व उनके समय में उत्पन्न होती है। पूर्व अवस्था का नाश होकर सहवर्तीपने से पदार्थ ध्रुव रहता है।

मेरा आत्मा नई अवस्थारूप उत्पन्न होता है, पूर्व अवस्था नाश को प्राप्त होती है और स्वयं ध्रुव रहता है। पर द्रव्य को प्राप्त किये बिना ही, चारित्र-गुण रागपने उत्पन्न होता हुआ देखने में आता है, पूर्व अवस्था का नाश हुआ देखने में आता है और गुण ध्रुवरूप रहते हैं। सिद्ध में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण नियम से होता है।

आत्मा में विकारदशा थी उसका व्यय होकर सिद्धदशा हुई फिर इसके बाद सिद्धदशा का विनाश नहीं होता और संसार उत्पन्न नहीं होता ऐसे सिद्ध भगवान को भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अस्तित्त्व जो कि द्रव्य का लक्षण है वह अवश्य ही होता है।

यहाँ कोई कहे कि पूर्णदशा होने के पश्चात क्या परिणमन होता है ? भाई वहाँ भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव है। वस्तु होती है तो वह ध्रुव रहकर परिणमित होती है और एक समय में परिणमित हो ऐसा स्वभाव है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ये लक्षण सिद्ध-मुक्त आत्मा में चला नहीं जाता। सिद्ध में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य नियम से होते हैं।

भावार्थ पर प्रवचन

वस्तु ही न हो, ऐसा कभी नहीं होता। द्रव्य का लक्षण सत् है। अस्तित्त्व, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से लक्षित है, इसीलिये किसी पर्याय से उत्पाद, किसी पर्याय से विनाश और किसी पर्याय से ध्रुवपना प्रत्येक पदार्थ को होता है। स्थूलरूप से कहें तो - संसार का व्यय, मुक्ति की उत्पत्ति और स्वयं ध्रुव रहता है। केवलज्ञानी तथा सिद्धदशा ज्यों कि त्यों यथावत् कायम रहती है फिर भी प्रति समय उत्पाद-व्यय होता है।

परमाणु आदि वस्तुओं में ध्रुवपना रहकर, परिणमन नहीं माना जावे तो कार्य की विविधता ही सिद्ध नहीं होगी.

प्रश्नः- यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि द्रव्य का अस्तित्त्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य इन तीन में क्यों कहा गया ? वस्तु में एक ध्रौव्यपना ही कहना चाहिये। परमाणु है, अविनाशी है ऐसा कहना चाहिये।

यदि, एकरूप ध्रुव रहे तो अस्तित्त्व रह सकता है, किन्तु उत्पाद-व्यय तो क्षणिक होने से वे ध्रुव स्थिर नहीं रहते फिर उन्हें सत् क्यों कहा ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस प्रश्न का समाधान इसप्रकार है - यदि, पदार्थ गुणरूप सदृश ही रहता हो और परिणमन ही न हो तो मिट्टी, सोना और दूध एक ही प्रकार के कार्यरूप रहना चाहिये किन्तु ऐसा तो दिखाई नहीं देता। मिट्टी का घड़ा दिखाई देता है। वहाँ घड़े की उत्पत्ति और पिण्ड का व्यय दिखाई देता है। इसप्रकार अनेकरूपता और विचित्रता दिखाई देती है, जिससे परिणमन (उत्पाद-व्यय का होना) सिद्ध होता है और यदि परिणमन एक समय में न हो तो परिणमन नहीं रहेगा। शरीर आदि मात्र ध्रुव हो तो उसमें रूपान्तर न हो, लेकिन ऐसा कभी नहीं होता।

मिट्टी में से घड़ा होता हुआ दिखाई देता है और दूध में से दही होता हुआ दिखाई देता है। सोना हो तो जेवर (गहने) होते हैं यह बात यहाँ नहीं कही है किन्तु पदार्थ एकरूप नहीं रहता अपितु प्रति समय परिणमन करता है इसलिये मिट्टी में मिट्टी द्वारा घड़ा बनता है यह कहा है।

जगत के पदार्थ एक समय में रूपान्तरता को प्राप्त करते हैं इसलिये मात्र ध्रुवपना वह पदार्थ का लक्षण नहीं है। अत: ध्रुवपने के साथरूपान्तर होना चाहिये तब ही वस्तु का स्वरूप सिद्ध होता है।

जैन अर्थात् जीतनेवाला। पहले स्व को छोड़कर पर- सन्मुखता द्वारा सदा ही विकार की जीत हुआ करती थी। अब विकार को जीतकर अर्थात् विकार का व्यय करके अविकारीदशा प्रगट करे और स्वयं ध्रुव रहे इसप्रकार यहाँ तीनों अंश सिद्ध होते हैं। मिट्टी का घड़ा आदि भेद (पर्याय) प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। इसतरह भेद होने पर भी भेद नहीं है ऐसा कहकर इन्कार करनेवाले की पर्याय में इन्कार करनेरूप कार्य, पर्याय में होता है। अभेद में कार्य नहीं होता।

यदि तुझे धर्म करना हो तो द्रव्य स्वयं धर्मरूप उत्पन्न होता है और अधर्म पर्यायरूप से नाश का प्राप्त होता है। सहभावी गुण अपेक्षा से ध्रुव रहता है। शास्त्र में संयोग का कथन आता है वहाँ अज्ञानी को भ्रम हो जाता है। इस लकड़ी का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, स्वयं लकड़ी के कारण है और अंगुली के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंगुली में है इसलिये पदार्थ सर्वथा ध्रुवरूप - एकरूप नहीं रहता अपितु किसी अवस्था से उत्पन्न भी होता है और किसी अवस्था से नाश को भी प्राप्त होता है। इसप्रकार न माना जाए तो संसार सिद्ध नहीं होता।

राग की भिन्न-भिन्न अवस्थायें दिखती है। आम में नई अवस्था पकनेरूप हुआ करती है। वहाँ पूर्व की कच्ची अवस्था का व्यय हुआ है और ध्रुवपने का रहना वह स्वयं से है पर के कारण नहीं - यदि ऐसा न माना जाये तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सिद्ध जीव में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय होने से सिद्ध-मुक्त आत्मा को भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ये तीनों ही अंश होते हैं स्थूल दृष्टि से देखा जाये तो सिद्ध पर्याय का उत्पाद हुआ, संसार पर्याय का व्यय हुआ और गुणपने ध्रुव रहना इस अपेक्षा से सिद्ध को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है। अंतरंग में शुद्ध चिदानन्द स्वरूप विद्यमान है उसमें से जो शुद्ध पर्याय प्रगट हुई उसरूप उत्पन्न होना, पूर्व अवस्थारूप न होना और स्वयं गुणपने ध्रुव रहना - इसप्रकार सिद्ध जीवों में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

केवलज्ञान पर्याय लोकालोक को निमित्त है और लोकालोक केवलज्ञान को निमित्त है और दोनों स्वतंत्र हैं। अथवा जिस-जिसप्रकार का ज्ञेयों में परिणमन होता है, उस-उसप्रकार का ज्ञान में ज्ञान की सामर्थ्य से परिणमन होता है अर्थात् समस्त पदार्थों में जैसा उत्पादादि होता है वैसा ज्ञान में उत्पादादि हुआ करता है - यह ज्ञेय की अपेक्षा कथन किया गया है।

यह लकड़ी सीधी है तो केवलज्ञानी सीधी जानेंगे और लकड़ी टेड़ी हुई तो केवलज्ञानी टेड़ी जानेंगे। इसप्रकार तीनों काल के सर्व प्रकार (द्रव्य-गुण-पर्याय को) वे एक साथ जानते हैं। यह आत्मा संसारी है अत: केवलज्ञानी वैसा ही जानते हैं। संसार का अभाव होकर मुक्तदशा होने पर केवलज्ञान उसे मुक्तरूप जानता है। इस जीव की भविष्य में मुक्तदशा होगी उसे केवलज्ञानी पहले से जानते थे - उस जीव की मुक्तदशा होने पर - वर्तमान में उसकी मुक्ति है - ऐसा जानते हैं।

ज्ञान ज्ञेय पदार्थों के आकाररूप हुआ करता है ऐसा जो यहाँ कहते हैं वह उस परिणमन को समझाने के लिये है किन्तुवास्तव में दोनो ही परिणमन स्वतंत्र ही हुआ करते हैं। एक जीव संसारी है - जो भविष्य में मुक्ति को प्राप्त करेगा उसे केवलज्ञानी ऐसा जानते हैं कि इस जीव को भविष्य में मुक्ति है और मुक्ति होने पर केवलज्ञानी, उसे वर्तमान में मुक्ति है - ऐसा जानते हैं। इसप्रकार जितने भी ज्ञेय हैं उन सभी को तीनों काल सहित केवलज्ञान जानता है और जैसा ज्ञान जानता है; वैसे ही ज्ञेय होते हैं।

इसप्रकार परस्पर ज्ञान-ज्ञेय दोनों निमित्त है अर्थात् लोकालोक केवलज्ञान को निमित्त है और केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है किन्तु वे किंचित मात्र भी पराधीन नहीं है। केवलज्ञान पर्याय ज्ञेयों को निमित्त है और केवलज्ञानं पर्याय को ज्ञेय निमित्त है। जैसा केवलज्ञान जानता है; वैसे ही ज्ञेय स्वयं के कारण से परिणमित होते हैं और जैसे ज्ञेय परिणमित होते हैं वैसा ही केवलज्ञान स्वयं परिणमित होता है - ऐसा होने पर भी; पदार्थ परिणमित होते हैं इसलिये केवलज्ञान जानता है - ऐसा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिकालवर्ती समस्त ज्ञेयों को केवलज्ञान एक साथ जानता है ऐसा केवलज्ञान का स्वरूप है इस तरह अपने ज्ञान का निर्णय करने पर कुछ विरोध नहीं आता। इसलिये मुक्त आत्मा को प्रत्येक समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है अथवा अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो अगुरुलघुत्त्व में होनेवाली षट्गुणी हानि वृद्धि के कारण मुक्त आत्मा में प्रत्येक समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वर्तता है। अगुरुलघतत्त्व गुण में पूर्व अवस्था का व्यय होता है, नई अवस्थारूप उत्पन्न होता है और स्वयं ध्रुव रहता है।

जिसप्रकार यहाँ सिद्ध भगवान के उत्पादादि कहे गये हैं उसीप्रकार केवली भगवान के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये। इस तरह स्वतंत्रता का ज्ञान करे तो विपरीत दृष्टि दूर हो जाती है और सर्वज्ञता, देव, उपादान-निमित्त इत्यादि के सम्बंध में उल्टी मान्यता का भी अभाव हो जाता है।

प्रश्न :- इन्द्रियों के बिना भगवान को ज्ञान और आनन्द कैसे होता होगा ?

समाधान :- अब शुद्ध उपयोग के प्रभाव से स्वयंभू हुए पूर्वोक्त आत्मा को इन्द्रियों के बिना किस तरह ज्ञान और आनन्द होता होगा - ऐसे संदेह का यहाँ निराकरण करते हैं। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द है अर्थात् आत्मा ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। सिद्ध भगवान को इन्द्रियां और शरीर नहीं होने पर भी ज्ञान और आनन्द है। आत्मा का स्वभाव त्रिकाल आनन्द है; इसलिए अंतर रुचि, ज्ञान और रमणतारूप शुद्धोपयोग के फल में अनन्त ज्ञान और आनन्द प्रगट होता है; जिसे इसके लिये शरीर और इन्द्रिय की जरूरत नहीं होती। आत्मा का ज्ञान और आनन्द स्वभाव है ऐसा भान और लीनता होते ही पर्याय में आनन्द प्रगट हो गया है उन्हें शरीर और इन्द्रियों की जरूरत नहीं होती।

यहाँ शुद्धोपयोग के प्रभाव से आत्मा को स्वयंभू कहा किन्तु किसी निमित्त, व्यवहार अथवा राग के प्रभाव के कारण स्वयंभू नहीं कहा अपितु मात्र शुद्धोपयोग के प्रभाव से ही स्वयंभू होता है।

अज्ञानी कहता है कि इस आत्मा को इन्द्रियों के बिना किस तरह ज्ञान और आनन्द हो सकता है ? यदि शरीर और इन्द्रियाँ हो तो ज्ञान और आनन्द हो सकता है।

उससे कहते हैं कि - आत्मा में ज्ञान और आनन्द एक साथ शक्तिरूप तो है ही किन्तु उसकी यथार्थ श्रद्धा और लीनता से उसमें से ज्ञान और आनन्द प्रगट होता है।

सम्यक्दृष्टि शरीर के होने पर भी निचलीदशा में ही ऐसी श्रद्धा करते हैं कि - मेरी तो ज्ञान और आनन्द गुणरूप शक्ति है उसकी पूर्ण व्यक्तदशा होने के लिये - इन्द्रिय और शरीर की जरूरत नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा १९

अथास्यात्मनः शुद्धोपयोगानुभावात्स्वयंभुवो भूतस्य कथमिन्द्रियैर्विना ज्ञानानन्दाविति संदेहमुदस्यति -

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अहियतेजो ।
जादो अदिंदिओ सा णाणं सोक्खं च परिणमदि ॥१९॥

अब, शुद्धोपयोग के प्रभाव से स्वयंभू हुए इस (पूर्वोक्त) आत्मा के इन्द्रियों के बिना ज्ञान और आनन्द कैसे होता है ? ऐसे संदेह का निवारण करते हैं :-

है घाति कर्म विहीन अतिशय तेज शक्तिमय तथा ।
इन्द्रिय रहित हैं यद्यपि सुख ज्ञान युत वर्ते सदा ॥१९॥

गाथार्थः- जिसके घातिकर्म क्षय हो चुके हैं, जो अतीन्द्रिय हो गया है, अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है और अधिक जिसका (केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप) तेज है ऐसा वह (स्वयंभू आत्मा) ज्ञान और सुखरूप परिणमन करता है।

टीकाः- शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं, क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शन के साथ असंपृक्त (संपर्क रहित) होने से जो अतीन्द्रिय हो गया है, समस्त अन्तराय का क्षय होने से अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है, समस्त ज्ञानावरण और दर्शनावरण का प्रलय हो जाने से अधिक जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शन नामक तेज है - ऐसा यह (स्वयंभू) आत्मा, समस्त मोहनीय के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार शुद्ध चैतन्य स्वभाववाले आत्मा का (अत्यन्त निर्विकार शुद्ध चैतन्य जिसका स्वभाव है ऐसे आत्मा का) अनुभव करता हुआ स्वयमेव स्व-पर प्रकाशकता लक्षण ज्ञान और अनाकुलता लक्षण सुख होकर परिणमित होता है। इसप्रकार आत्मा का, ज्ञान और आनन्द स्वभाव ही है। और स्वभाव पर से अनपेक्ष होने के कारण इन्द्रियों के बिना भी आत्मा के ज्ञान और आनन्द होता है।

भावार्थः- आत्मा को ज्ञान और सुखरूप परिणमित होने में इन्द्रियादिक पर निमित्तों की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप स्व-पर प्रकाशकता है ऐसा ज्ञान और जिसका लक्षण अनाकुलता है ऐसा सुख आत्मा का स्वभाव ही है ॥१९॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा १९ पर प्रवचन

सर्वज्ञ परमात्मा को घातिकर्मों का नाश हुआ है; इसमें इन्द्रिय और शरीर की निमित्तता नहीं है। अनन्तवीर्य परिणमित हो गया है जिसे वे स्वयं धारण करते हैं। अर्थात् जो केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप है वे सभी स्वयंभू आत्मा - पर्याय में ज्ञान और सुखरूप परिणमित हुए हैं। उन्हें इसरूप परिणमित होने के लिए शरीर और इन्द्रियों की जरूरत नहीं होती।

भगवान को पूर्ण क्षायिक ज्ञान प्रगट हुआ है इसलिए उन्हें इन्द्रिय और मन का संबध नहीं है।

आत्मा का ज्ञान करके उसमें एकाग्रता होने से घातिकर्म नाश को प्राप्त हुए हैं - यह ज्ञान प्रधान कथन है। केवलज्ञान होते ही घातिकर्मों का नाश हुआ है ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। आत्मा कर्म का नाश करता है - यह व्यवहार का कथन है।

भगवान को अल्पज्ञान और अल्पदर्शन का सम्बंध नहीं है। यदि भगवान को क्षयोपशम ज्ञान हो तो उन्हें इन्दिय और मन का सम्बंध हो किन्तु भगवान को केवलज्ञान है जिससे उन्हें इन्द्रिय और मन का सम्बंध नहीं है। केवली भगवान का आत्मा पूर्णरूप से पर्याय में अतीन्द्रिय हुआ है।

यहाँ शुद्धोपयोग का बल कहा है किन्तु रागादि आचरण का बल नहीं कहा। लोग जिसे तप कहते हैं वहवास्तव में तप नहीं है। भगवान का आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय हो गया है जो ज्ञान और आनन्द स्वरूप है - ऐसे अतीन्द्रिय स्वभाव में स्थिरता द्वारा वे अतीन्द्रिय हुए हैं। चार घातिकर्मों का अभाव करके आत्मा स्वयं निर्विकार, शुद्ध, चैतन्य स्वभाववान हुआ है।

सर्वज्ञ परमात्मा को समस्त अंतराय का नाश हुआ है इससे उन्हें अनन्त उत्तम वीर्य प्रगट हुआ है। उन्होंने समस्त ज्ञानावरणी-दर्शनावरणी का अभाव किया है इससे उनके केवलज्ञान और केवलदर्शन नामक नेत्र प्रगट हुए हैं। इस तरह भगवान स्वयं से - स्वयंभू हुए हैं। उन्हें शरीर और इन्द्रियों की जरूरत नहीं होती।

सिद्ध भगवान को स्त्री, मकान, घोड़ा-गाड़ी, इत्यादि नहीं होने पर भी - वहाँ आनन्द होगा ? इस शंका का यहाँ समाधान करते हैं।

निचलीदशा में रागी जीव के पास ये सभी पदार्थ होते हुए भी उनसे वीर्य, ज्ञान और आनन्द नहीं है। पर पदार्थ भिन्न होने से पर के कारण ज्ञान और आनन्द नहीं होता। आत्मा का स्वभाव ही ज्ञान और आनन्द है, उसमें से ज्ञान और आनन्द प्रगट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है। उपदेश के कारण ज्ञान नहीं होता। अपनी वर्तमान पर्याय की योग्यता उसमें ज्ञान के विकासरूप होती है; उसमें निमित्त, सहज होते हैं किन्तु निमित्त आए तो ज्ञान पर्याय हो अथवा निमित्त न आए तो ज्ञान पर्याय न हो - ऐसा नहीं है।

भाषा का स्वकाल और ज्ञान का स्वकाल भिन्न-भिन्न है भाषा के काल के कारण ज्ञान का काल प्रगट नहीं होता। इसप्रकार स्वयंभू आत्मा ने समस्त घातिकर्मों का नाश किया है। आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वभाववान द्रव्य है; चैतन्य उसका स्वभाव है अथवा गुण है। आत्मा जानने-देखने के स्वभाववाला है। जानना देखना उसका गुण है। राग अथवा पुण्य उसका स्वभाव नहीं। निमित्त पाकर ज्ञान होता हो - ऐसा नहीं है। भगवान ऐसे ज्ञान और आनन्द स्वभाववाले आत्मा को अनुभवते हैं।

इन्द्रियों की अपेक्षा बिना - आत्मा स्वयं ही पर्याय में पूर्णज्ञान और आनन्दरूप परिणमित होता है.

केवली भगवान - आत्मा का अनुभव करते हैं। स्व-पर प्रकाशक ज्ञानरूप तथा निराकुलता लक्षण - सुखरूप होकर परिणमित होता है। ऐसी शक्ति द्रव्य में विद्यमान थी जो पर्याय में परिणमित हो जाती है; इस व्यक्तता के लिये शरीर और इन्द्रियों की जरूरत नहीं होती। निचली (साधक) अवस्था में भी इन्द्रिय और निमित्त की जितनी अपेक्षा रखते हैं उतनी पराधीनता व दुःख स्वयं से है और उनकी अपेक्षा बिना, जितनी आत्मा की अपेक्षा रखे - उतना सुख है।

सिद्ध भगवान की पर्याय - पूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप परिणमित हो गई है। इस तरह आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द ही है और स्वभाव तो सदा पर से निर्पेक्ष ही होने से - इन्द्रिय और निमित्त के बिना ही आत्मा को ज्ञान और आनन्द होता है; अतः उसे इन्द्रिय और मन की अपेक्षा नहीं होती। इसतरह आत्मा ज्ञान व आनन्ददशा को प्रगट करता है।

प्रश्नः- यह तो आपने भगवान की बात कही किन्तु निचलीदशा में क्या करना चाहिये? जिस शुद्ध उपयोग से भगवान हुआ जाता है - ऐसा शुद्ध उपयोग कब होता है?

समाधान :- आत्मा-ज्ञान और आनन्द स्वरूप है ऐसी श्रद्धा ज्ञान करने के पश्चात् - शुद्ध उपयोग होता है इसके फल में आत्मा ज्ञान और आनन्दरूप परिणमित होता है। शुद्ध उपयोग होने पर कर्म, कर्म के कारण स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। दोनों के होने का काल एक ही है - भिन्न नहीं। घातिकर्म के नाश से अतीन्द्रिय आनन्द हुआ कहना - यह तो उपचार का कथन है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई बाबा बनकर किसी खड्डे में बैठकर ध्यान करे - कई दिनों तक कुछ न खाए, पैर ऊपर और सर नीचे रखे, ऐसा करने पर भी जबतक उसे सत्य का निर्णय नहीं होता तबतक वह देहातीत नहीं होगा; जहाँ तक सत्य का निर्णय नहीं वहाँ तक अज्ञानी है, वह चार गतियों में ही भटकता रहेगा।

अनन्त ही द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप होने से कोई द्रव्य किसी का कर्ता-भोक्ता नहीं है। शुभराग भी दोष है - इस बात की भी जिसे खबर नहीं उसे सम्यक्त्व कैसे हो सकता है ?

यहाँ कहते हैं कि सभी द्रव्य प्रत्येक ही समय उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं दूसरी जगह नहीं है। जैन सम्प्रदाय में जन्म होने पर भी अज्ञानी सर्वज्ञ भगवान को रोग, उपसर्ग, आहार-पानी का ग्रहण आदि मानते हैं; वे सभी मिथ्यादृष्टि है। सर्वज्ञ भगवान का आत्मा तो - साक्षात् ज्ञान और आनन्दरूप परिणमित हो गया है।

भावार्थ पर प्रवचनः- आत्मा को ज्ञान और सुखरूप परिणमन करने में इन्द्रियादि पर निमित्तों की जरूरत नहीं होती। निचलीदशा में जितनी आत्मा की अपेक्षा की और इन्द्रिय और मन की अपेक्षा छूटी है उतना आनन्द प्रगट होता है; जिसके लिये आत्मा को निमित्त की जरूरत नहीं होती। स्व-पर का प्रकाशकपना जिसका स्वरूप है - ऐसा ज्ञान और अनाकुलपना जिसका लक्षण है ऐसा सुख - आत्मा के स्वभाव में ही है; यह पर्याय की बात है। प्रत्येक समय जो नया ज्ञान भाव और आनन्द की पर्याय प्रगट होती है उसमें उन्हें आहार-शरीर अथवा द्रव्य की जरूरत नहीं होती।

प्रश्नः- अभी हमें काम चलाऊ ज्ञान और आनन्द तो है ?

समाधानः- काम अर्थात् कार्य - परिणमन। स्व-द्रव्य के अवलम्बन से ही ज्ञान होता है वह काम चलाऊ है किन्तु इन्द्रिय के निमित्त से जो ज्ञान प्रगट होता है वह काम चलाऊ नहीं। इन्द्रिय के कारण ज्ञान नहीं अपितु, जैसा ज्ञान का उघाड़ होता है - वैसा ज्ञान प्रगट होता है। हाथी की इन्द्रियाँ मनुष्य से बड़ी होने पर भी उसे मनुष्य की अपेक्षा थोड़ा ज्ञान है। इसलिये इन्द्रिय और शरीर के अनुसार ज्ञान नहीं होता अपितु ज्ञान का होना स्वयं अपने कारण से है। यहाँ सिद्ध भगवान को इन्द्रिय और मन नहीं होने पर भी ज्ञान और आनन्द है - यह बतलाया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २०

अथातीन्द्रियत्वादेव शुद्धात्मनः शारीरं सुखदुःखं नास्तीति विभावयति -

सोक्खंवा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं ॥२०॥

अब अतीन्द्रियता के कारण ही शुद्ध आत्मा के (केवली भगवान के) शारीरिक सुख-दुःख नहीं है यह व्यक्त करते हैं :-

है इन्द्रियों से रहित वे जिन अतीन्द्रिय हैं इसी से।
है नहीं सुख दुःख देहगत उनको सभी जानो इसे ॥२०॥

गाथार्थः- केवलज्ञानी के शरीर सम्बंधी सुख या दुःख नहीं है क्योंकि अतीन्द्रियता उत्पन्न हुई है इसलिये ऐसा जानना चाहिये।

टीकाः- जैसे अग्नि को लोह पिण्ड के तप्त पुद्गलों का समस्त विलास नहीं है (अर्थात् अग्नि लोहे के गोले के पुद्गलों के विलास से - उनकी क्रिया से भिन्न है) उसीप्रकार शुद्ध आत्मा के (अर्थात् केवलज्ञानी भगवान के) इन्द्रिय-समूह नहीं है; इसलिये जैसे अग्नि को घन के घोर आघातों की परम्परा नहीं है (लोहे के गोले के संसर्ग का अभाव होने पर घन के लगातार आघातों की भयंकर मार अग्नि पर नहीं पड़ती) इसीप्रकार शुद्ध आत्मा के शरीर सम्बंधी सुख-दुःख नहीं है।

भावार्थः- केवली भगवान के शरीर सम्बंधी क्षुधादिका दुःख या भोजनादि का सुख नहीं होता इसलिये उनके कवलाहार नहीं होता ॥२०॥

* * *

गाथा २० पर प्रवचन

अब अतीन्द्रियता के कारण ही शुद्ध आत्मा (केवली भगवान के) शारीरिक सुख-दुःख नहीं है यह व्यक्त करते हैं। भगवान को क्षुधा, तृषा, रोग, उपसर्गादि हीनता (दोष) माननेवाला केवली के स्वरूप को नहीं जानता।

प्रश्नः- कोई कहे कि केवली भगवान को अहारक कहा गया है इसलिये हम उन्हें आहारादि ग्रहण करनेवाले माने तो क्या आपत्ति है ?

समाधानः- केवली भगवान के शरीर के सभी भाग में और असंख्यात आत्म प्रदेशों में नौ कर्म वर्गणा के परमाणु तथा द्रव्य-कर्म के परमाणु आते हैं, इस अपेक्षा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन्हें आहारक कहा है किन्तु किसी भी प्रकार से वे कवलाहार ग्रहण करें - ऐसे केवली जिनागम में नहीं कहे हैं। रोटी खाए वे आहारक और रोटी न खाए वे अनाहारक ऐसी व्याख्या जिनशास्त्र के हिसाब से सही नहीं है, क्योंकि विग्रहगति में अनाहारक का समय तो एक समय से तीन समय तक है; इसलिये भगवान को कवलाहार की अपेक्षा उन्हें आहारक कहा ही नहीं है किन्तु अन्य परमाणु आने की अपेक्षा उन्हें आहारक कहा है।

देखो ! सर्वार्थसिद्धि टीका अध्याय २, सूत्र ४ पृष्ठ १४, १५ में कहा है कि - 'लाभान्तराय' कर्म के सम्पूर्ण अभाव से किसी भी प्रकार से कवलाहार की क्रिया नहीं है - ऐसे केवली भगवान होने से जिनको शरीर के आधार का कारण और अन्य मनुष्य में न रहे ऐसे अत्यंत सूक्ष्म और शुभ पुद्गल के सूक्ष्म अनन्त परमाणु प्रति समय शरीर सम्बंध को प्राप्त करते हैं। इसलिए सिद्ध होता है कि किसी भी केवली भगवान को कवलाहार कभी भी नहीं हो सकता।

भगवान को ध्यान का कारण पूर्ण हुआ है
अतः भगवान को आहार नहीं होता है .

आचार्य भगवान अरहन्त के स्वरूप को बताकर कहते हैं कि - यह तुम यथार्थ समझना; वाद-विवाद से इसे नहीं समझा जा सकता। तेरा स्वभाव अनाहारक है - ऐसी सर्वप्रथम प्रतीति करे उसे सर्वज्ञ वीतरागी भगवान कवलाहार रहित ही होते हैं ऐसी प्रतीति आ जाती है। केवली भगवान को शरीर संबधी क्षुधा, तृषा, रोगादि के कोई दुःख नहीं होते।

आहार की आवश्यकता यदि हो तो - आहार पानी हो वह सुखी और आहार - पानी न हो वह दुःखी हुआ ? किन्तु ऐसा भगवान को नहीं होता। संप्रदाय की दृष्टिवालों को यह बात कठिन लगती है।

जिसप्रकार कर्म के कारण विकार माननेवाला अपनी विपरीत दृष्टि (मान्यता) को नहीं छोड़ता उसीप्रकार भगवान को आहार - पानी माननेवाला अपनी विपरीत दृष्टि नहीं छोड़ता। प्रत्येक समय (पदार्थ) का स्वकाल, पर द्रव्य-क्षेत्र और पर काल के कारण परिणमित नहीं होता - ऐसा होने पर भी पर काल और निमित्त के कारण आत्मा विकार भावरूप परिणमित होता है - ऐसा माननेवाले को विकार रहित स्वभाव की श्रद्धा नहीं होती; क्योंकि जिसे पर्याय की स्वतंत्रता समझ में नहीं आती (स्वीकृत नहीं होती) उसे निर्विकारी स्वभाव की भी श्रद्धा नहीं होती।

विकार में कर्म को निमित्त बताया है, किन्तु कर्म का उदय आया है इसलिये राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करना पड़ेगा - ऐसा नहीं है। स्वयं राग करे तो कर्म को निमित्त कहा जाता है। 'निमित्त है इसलिये राग नियम से होगा ही' यदि ऐसा हो तो संसारी को सर्वथा कर्म का सद्भाव होने से किसी को भी स्वभाव सन्मुख होने का अवसर ही नहीं रहेगा।

केवली भगवान को आहार नहीं होने पर भी केवली भगवान को आहार माननेवाले जीव अपनी उल्टी मान्यता नहीं छोड़ते। यशोविजय जी कहते हैं कि - केवली भगवान को आहार होता है - ऐसा ही तुम मानो। तत्सम्बंध में निश्चय (परीक्षा) करे तो परीक्षक को झूठा कहते हैं। केवली को आहार होता है ऐसा ही तुम मानो - ऐसा वे विपरीत निर्णय करवाते हैं, जबकि यह बात ही असत्य है।

केवली भगवान को शरीर सम्बंधी क्षुधा-तृषा नहीं होती; क्योंकि वे सम्पूर्ण अतीन्द्रियता को प्राप्त किये हुये है। मुनिराज आहार लेते भी हैं तो वे ज्ञान-दर्शन व ध्यान के अर्थ (प्रयोजन से) लेते हैं; इसलिये मुनि के आहार लेने का भाव भी पुण्य है - पाप भाव नहीं। मुनि को आहार संज्ञा हुई और यदि गृद्धता हो जाय तो पाप है; किन्तु ज्ञान-दर्शन के, ध्यान के हेतु (प्रयोजन से) छटवें गुणस्थान के समय में आहार लेते हैं; किन्तु जिनके ज्ञान-दर्शन, ध्यान का प्रयोजन ही पूर्ण हो गया है - ऐसे सर्वज्ञ भगवान को आहार नहीं होता।

मुनि को आहार लेने का भाव आता है वह २८ मूलगुण पालन में शामिल होने से वह पुण्य भाव है। मुनिपना तो अपूर्णदशा है - पूर्ण वीतरागीदशा नहीं, इसलिये वहाँ आहार लेने का विकल्प आ जाता है, किन्तु जिन्हें पूर्ण दर्शन-ज्ञान प्रगट हो गया है - ऐसे केवली भगवान को किसी भी तरह आहार नहीं होता - यह बात यहाँ स्पष्ट करते हैं।

जो भगवान को आहार मानते हैं उनकी देव के स्वरूप में विपरीतता है। मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ट १५२ में कहा है कि जहाँ केवली भगवान को क्षुधा आदि दोष कहे हैं वहाँ तो देव का अन्यथा स्वरूप है, क्योंकि क्षुधादिक दोष होते हुये अनन्त सुख किस तरह हो सकता है ?

वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा स्थापित करे और जो विपरीत हो उसे उत्थापित करे तो वह राग द्वेष का कारण नहीं है, क्योंकि इसमें सत्य का स्थापन करके, वीतराग मार्ग का ही आदर करने का अभिप्राय है।

इसप्रकार भगवान को ध्यान का प्रयोजन - पूर्ण हो जाने से अब भगवान को आहार नहीं होता.

केवली भगवान को इन्द्रिय और मन का सम्बंध छूट गया होने से उन्हें शरीर सम्बंधी सुख-दुःख नहीं होते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

टीका पर प्रवचन :- जैसे अग्नि को लोहे के गोले के पुद्गल का समस्त विलास नहीं अर्थात् अग्नि, लोहे के गोले के पुद्गलों के विलास से भिन्न है; वैसे ही चैतन्य आत्मा अग्नि समान है उसे इन्द्रिय और शरीर का सम्बंध नहीं है। जिस तरह अग्नि लोहे के गोले का संग करती है तो उसे घनों की मार सहन करना पड़ता है किन्तु अग्नि अकेली रहे तो उसे घनों की मार को सहन नहीं करना पड़ता। कहा भी है :-

'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई ।
अग्नि सहे घनघात, लोह की संगती पाई ।।'

उसी तरह चैतन्य आत्मा भी कर्म का संग करे तो विकार होता है और संग न करे तो विकार नहीं होता। वहाँ कर्म की बात ली गई है और यहाँ शरीर की बात ली है। शरीर, इन्द्रिय और खण्ड-खण्ड ज्ञान मति-श्रुत ज्ञान के साथ जिन्होंने सम्बंध तोड़ दिया है - उनकी बात है।

सर्वज्ञ भगवान को भाव इन्द्रिय नहीं, इसलिये जड़ इन्द्रिय तथा द्रव्यमन विद्यमान होने पर भी उनके साथ केवली भगवान का थोड़ा भी निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध नहीं कहा जा सकता। सर्वज्ञ भगवान सम्पूर्णरूप से अतीन्द्रिय है जैसे अग्नि को घनों की भयंकर मार पड़ने की परम्परा नहीं होती; अर्थात् लोहे के गोले के संसर्ग का अभाव होने पर घन की भयंकर मार अग्नि को नहीं पड़ती; वैसे ही, केवलज्ञानरूप हुये शुद्ध आत्माओं को शरीर सम्बंधी थोड़ा भी सुख-दुःख नहीं होता इसलिए केवली भगवान को क्षुधा-तृषा रोगादिक दोष नहीं होते।

प्रश्नः- कोई कहे कि - भगवान केवली को अभी चार अघातिया कर्म शेष हैं; उसमें असाता वेदनीयकर्म के उदय के कारण उन्हें क्षुधा आदि होते हैं - ऐसा मानो।

समाधानः- उक्त कथन सही नहीं है, क्योंकि असाता का मन्द उदय भगवान को दुःख उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता। उनका तो शरीर और इन्द्रियों के साथ सम्बंध ही टूट गया है - अतीन्द्रिय हुए है; इसलिये देहगत सुख-दुःख केवली भगवान को नहीं होते। अज्ञानी को जो खोटी बात अंतर में बैठी है उसे सिद्ध करने के लिये वह उल्टे तर्कादि लगाया करता है।

केविली भगवान - अरहन्त को जो चार अघातिया कर्म शेष हैं वे भी मात्र जली हुई रस्सी के समान है; जैसे जली हुई रस्सी किसी को बांधने के काम में नहीं आती; वैसे ही अघाति कर्म कुछ भी दुःख उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते।

वेदनीय आदि चार कर्म वर्ते जहाँ।
बली सीदरीवत् आकृति मात्र जो ।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार श्रीमद्राजचन्द्र जी ने भी कहा है। जिन्हें पूर्ण वीतरागदशा होती है वे सर्वज्ञ होते हैं। यहाँ उन सर्वज्ञ भगवान का स्वरूप बताते हैं। जो सर्वज्ञ के स्वरूप को नहीं जानते उन्हें धर्म नहीं हो सकता। सर्वज्ञ अरहन्त भगवान को शरीर है किन्तु इन्द्रियों के साथ उनका सम्बंध टूट गया है; इसलिये इन्द्रिय और इन्द्रियज्ञान के निमित्तों का अभाव होने से - केवली भगवान को क्षुधा-तृषादि दोष कभी नहीं होते।

जिन्हें आत्मा की ख़बर (अनुभूती) हुई है वे यह भी जान लेते हैं कि - आत्मा की पूर्ण पर्याय में - ज्ञान और आनन्द की - कैसीदशा होती है। स्व की अस्ति का ज्ञान तथा पर की नास्ति का ज्ञान - इसप्रकार दोनों ज्ञान होने पर प्रमाण ज्ञान होता है। इस तरह कोई केवली भगवान के स्वरूप को अन्यथा मानता हो और उसे यथार्थ स्वरूप का ज्ञान करावें तो वह कहता है कि हमें इसका निर्णय ही नहीं करना - ऐसा जीव अपनी मूर्खता को ही प्रसिद्ध करता है। आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है ऐसा तो जाने किन्तु सर्वज्ञ पर्याय का स्वरूप न जानें - ऐसा नहीं होता।

भावार्थ पर प्रवचन:- भूख लगने पर दु:ख होता है और भोजन मिलने पर सुख होता है - ऐसा सुख-दु:ख भगवान को नहीं होता। भगवान को रोग हो जाए अथवा वे दवा लें - ऐसा नहीं होता; फिर भी भगवान को आहार आदि होते हैं - ऐसा माननेवाला वस्तु स्वरूप को नहीं समझता। भगवान को क्षुधा-तृषा दु:ख अथवा भोजनादि सुख नहीं होते। इसलिये उन्हें कवलाहार नहीं होता।

❁ ❁ ❁

यह जीवन तो बिजली की चमकार के समान क्षणभंगुर है और स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादि का संयोग स्वप्न के समान है, प्राणियों के साथ स्नेह संध्या की लाली के समान है, तिनके पर पड़ी हुई ओस की बिन्दु के समान शरीर पतनशील है।

- श्री सारसमुच्चय

हे आत्माराम! तू देह का बुढ़ापा और मरण को देखकर डर मत। जो अजर अमर परमब्रह्म शुद्ध स्वभाव है, उसको तू आत्मा जान।

- श्री परमात्म प्रकाश

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २१

अथ ज्ञानस्वरूपप्रपञ्चं सौख्यस्वरूपप्रपञ्चं च क्रमप्रवृत्तप्रबन्धद्वयेनाभिदधाति । तत्र केवलिनोऽतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्त्वात्सर्वं प्रत्यक्षं भवतीति विभावयति -

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जया ।
सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं ॥२१॥

अब, ज्ञानके स्वरूप का विस्तार और सुख के स्वरूपका विस्तार क्रमशः प्रवर्तमान दो अधिकारों के द्वारा कहते हैं । इनमें से प्रथम अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमित होने से केवली भगवान के सब प्रत्यक्ष है यह प्रगट करते हैं:-

प्रत्यक्ष हैं सब द्रव्य पर्यय ज्ञान परिणत ईश को ।
पर अवग्रहादि क्रिया से नहिं जानते वे ज्ञेय को ॥२१॥

गाथार्थः-वास्तव में ज्ञानरूप से (केवलज्ञानरूप से) परिणमित होते हुए केवलीभगवान के सर्व द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष हैं; वे उन्हें अवग्रहादि क्रियाओं से नहीं जानते ।

टीकाः- केवली भगवान इन्द्रियों के आलम्बन से अवग्रह-ईहा-अवाय पूर्वक क्रम से नहीं जानते, (किन्तु) स्वयमेंव समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही, अनादि अनन्त, अहेतुक और असाधारण ज्ञानस्वभाव को ही कारणरूप ग्रहण करने से तत्काल ही प्रगट होनेवाले केवलज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं, इसलिये उनके समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अक्रमिक ग्रहण होने से समक्ष संवेदन की (प्रत्यक्ष ज्ञान की) आलम्बनभूत द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं ।

भावार्थः- जिसका न आदि है न अन्त है, तथा जिसका कोई कारण नहीं और जो अन्य किसी द्रव्य में नहीं है, ऐसे ज्ञानस्वभाव को ही उपादेय करके, केवलज्ञानकी उत्पत्ति के बीजभूत शुक्लध्यान नामक स्वसंवेदनज्ञानरूप से जब आत्मा परिणमित होता है तब उसके निमित्त से सर्व घातिकर्मों का क्षय हो जाता है और उस क्षय होने के समय ही आत्मा स्वयमेव केवलज्ञानरूप परिणमित होने लगता है । वे केवलज्ञानी भगवान क्षायोपशमिक ज्ञानवाले जीवों की भाँति अवग्रह-ईहा-अवाय और धारणरूप क्रम से नहीं जानते किन्तु सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको युगपत् जानते हैं । इसप्रकार उनके सब कुछ प्रत्यक्ष होता है ॥२१॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा २१ पर प्रवचन

अब, ज्ञान के स्वरूप का विस्तार और सुख के स्वरूप का विस्तार क्रमशः प्रवर्तमान - दो अधिकारों के द्वारा कहते हैं। इनमें से प्रथम केवलज्ञान का स्वरूप क्या है तथा केवलज्ञान के साथ आनन्द कैसा है ? अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमित होने से केवली भगवान को सब प्रत्यक्ष है - यह प्रगट करते हैं।

वास्तव में, केवलान और लोकालोक स्वतंत्र है और परस्पर निमित्त है। केवली भगवान ज्ञान की पूर्ण अवस्थारूप परिणमित हुये हैं। इन पंक्तियों में से टीकाकार अमृतचंद्राचार्य देव टीका करते हैं। केवलज्ञान की वर्तमान अवस्थारूप अरहन्त हुये हैं; उन्हें सम्पूर्ण दुनिया का भाव द्रव्य-गुण-पर्याय प्रत्यक्ष वर्तते (जानने में आते) हैं; जैसा प्रमाण ज्ञान वर्तता है इसीप्रकार जगत में सर्व ज्ञेयों का परिणमन होता है जिसमें केवलज्ञान निमित्त है।

सम्पूर्ण लोक स्वयं के कारण - पर्यायरूप परिणमित होता है इसलिये लोकालोक निमित्त है; लोकालोक निमित्त है और केवलज्ञान नैमित्तिक है। इसप्रकार परस्पर निमित्तता है। केवली भगवान इन्द्रिय और मन का अवलम्बन लेकर क्रम से अर्थात् एक के बाद एक - नहीं जानते; किन्तु अक्रम (एक साथ) जानते हैं।

प्रश्नः- भगवान सभी कुछ जानते हैं और भगवान ने जैसी निश्चित पर्याय देखी है वैसी ही होती है, अन्यथा नहीं - यदि ऐसा मान लिया जाये तो हमारे हाथ में कुछ भी नहीं रहा ? जैसे कि हमारे ज्ञान में आप जैसे हो वैसे ही जानने में आते हो - यदि तुम हमारे ज्ञान के आधीन नहीं हो तो अन्यरूप क्यों नहीं हो सकता ?

समाधानः- जो ज्ञान में जानने में आया उसके समान ही ज्ञेय जानने में आते हैं और जैसे ज्ञेय हैं वैसा ज्ञान जानता है - ऐसा परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। ज्ञान, ज्ञेय को निमित्त है और ज्ञेय, ज्ञान को निमित्त है; इसलिए एक दूसरे की - पराधीनता की प्रसिद्धि नहीं होती। केवलज्ञान को निमित्त कहें तो लोकाकाश के ज्ञेय नैमित्तिक हैं और लोकाकाश के ज्ञेय को निमित्त कहें तो केवलज्ञान नैमित्तिक है; दोनों स्वतंत्र है। ज्ञान के आधीन होकर पदार्थ परिणमित नहीं होते। पदार्थ का अपना स्वभाव परिणमन करने का है। जैसा केवलज्ञान में जानने में आया है वैसा ही नियम से होगा ऐसा मानने पर - स्वतंत्र वस्तु स्थिति का यथार्थ निश्चय होता है।

असाधारण ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करने से ही केवलज्ञान प्रगट होता है। इन्दियों का अवलम्बन लेकर अवग्रह, ईहा, अवाय आदि क्रम पूर्वक केवली भगवान नहीं जानते। केवली भगवान का ज्ञान केवलज्ञानरूप परिणमित हुआ है; वह वर्तमान पर्याय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है जो अक्रम एक साथ जानती है किन्तु अवग्रह आदि से सक्रमरूप नहीं जानती।

केवलज्ञानरूप पर्याय किस कारण हुई है और उसमें अक्रम जानना किस कारण हुआ है यह इस गाथा में बताया गया है। समस्त आवरण के क्षय से एक समय में ही वे केवलज्ञानरूप परिणमित हुये हैं। आत्मा आदि और अन्त रहित है; उसे कोई अन्य हेतु (कारण) नहीं है - ऐसा अकारणीय है।

यहाँ स्वयमेव शब्द ''ज्ञानस्वभाव परिणमित होता है'' इसके साथ लिया है। ज्ञानस्वभाव अहेतुक है। ज्ञानस्वभाव अपने में है, अन्य में नहीं।

कितने उपवास, शुभराग अथवा सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग करने से केवलज्ञान होता है ?

नहीं ! उससे केवलज्ञान नहीं होता।

फिर किस तरह होता है ?

अनादि-अनन्त, अहेतुक, असाधारण ज्ञानस्वभाव है; उसी को ग्रहण करने से केवलज्ञान प्रगट होता है। उत्तम संहनन, वज्रकाय, मनुष्य देह चौथा काल, महाविदेह इन सभी को निकाल दिया है; और कहते हैं कि वे संयोग उनके कारण भले ही उपस्थित हो, किन्तु उनके कारण केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। केवलज्ञान कावास्तविक कारण एक ही है - यह बताते हैं।

सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्र-केवलज्ञान आदि निर्मल पर्यायों में एक ही कारण है अन्य कारण उपचार मात्र है महाविदेह क्षेत्र आदि जहाँ-जहाँ केवलज्ञान प्राप्त होता है; वहाँ चैतन्य स्वभाव ही कारण है उसे अन्य कोई हेतु (कारण) नहीं है। असाधारण गुण अन्य द्रव्य में नहीं होते। ऐसे अपने असाधारण ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करने से केवलज्ञान प्रगट होता है; किन्तु किसी निमित्त, राग अथवा अपूर्ण पर्याय को कारणपने ग्रहण करने से केवलज्ञान नहीं होता।

'भगवान महावीर ने इतने उपवास किये, बारह वर्ष तपश्चर्या की भोजन होने पर भी भोजन नहीं किया पानी होने पर भी पानी नहीं पिया ऐसी बहोत तपस्या की थी जिससे उन्हें केवलज्ञान हुआ है' - ऐसा अज्ञानी मानते हैं। जबकि ज्ञान जिसकारूप है, ज्ञान जिसका सर्वस्व है, ज्ञान जिससे तद्रूप है - ऐसे ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करे उससे ही सम्यग्दर्शन होता है।

ऐसे ही ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करे उसे चारित्र होता है; तथा ऐसे ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करके पूर्ण एकाग्रता करे उसे ही केवलज्ञान होता है। तीनों ही काल में सुखी होने के उपाय में यह एक ही कारण है - अन्य कारण नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आदिनाथ भगवान ने बारह माह उपवास किया - ऐसा लोग कहते हैं। भाई ! अज्ञानी को खबर (समझ) नहीं है। उपवास, व्रत, तप और दान में शुभराग-मंदकषाय करे - वह पुण्य है, किन्तु पुण्य से धर्म नहीं होता। परमाणु को कोई भी परिणमित नहीं कर सकता। देह की क्रिया से राग मंद नहीं होता, राग मंद हो तो पुण्य होता है; किन्तु पुण्य को कारणपने ग्रहण करने से - धर्म नहीं होता।

लोग कहते हैं कि महावीर भगवान ने बारह वर्ष तक तप किया उससे उन्हें केवलज्ञान हुआ है। ऐसा माननेवाले अज्ञानी को भगवान के तप की खबर नहीं है।

१. आहार ग्रहण की इच्छा नहीं हुई इसलिये आहार नहीं हुआ - ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि हैं।

२. इच्छा के लक्ष्य से इच्छा का अभाव होता है - ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि हैं।

अज्ञानी को तप की खबर नहीं केवलज्ञानी ज्ञानरूप कैसे परिणमित हुये हैं ? वह विधि बताते हैं।

इतने उपवास किये, नग्न हुये पाँच महाव्रत धारण किये, २८ मूलगुण का पालन किये हैं इसलिये उन्हें केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं है, क्योंकि इनकी कारणपना के ग्रहण करने से केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। २८ मूलगुणों के पालने का भाव राग है, अत: उसकी कारणता से केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। मुनिदशा में चार अपूर्ण ज्ञान, भगवान को होते हैं, किन्तु उनको कारणरूप में ग्रहण करने से केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। स्वयं अंतर में ज्ञानस्वभाव, ध्रुव शक्ति का पिंड विद्यमान है; उसमें एकाग्रता करने से केवलज्ञान प्रगट होता है, किन्तु निमित्त, शुभराग अथवा अपूर्ण ज्ञान पर्याय को कारणपने ग्रहण करने से केवलज्ञान प्रगट हुआ है - ऐसा नहीं है। वास्तव में तो ज्ञानस्वभाव के ग्रहण करने से ही केवलज्ञान प्रगट होता है।

तीर्थंकरों अथवा केवलियों ने केवलज्ञान कैसे प्राप्त किया ?

उन्होंने इतने उपवास किये जंगल में खड़े रहे यह सभी निमित्त के कथन हैवास्तव में, अंतर में ज्ञानानन्द स्वभाव को ग्रहण करके अंतर में स्थिर हुये इसलिए उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ है; किन्तु किसी बाह्य संयोग के कारण वह प्रगट नहीं हुआ।

श्रोता :- कितनी पूजा करने और मंदिर बनवाने से केवलज्ञान प्रगट होगा ?

समाधान :- नहीं ! इन सबसे केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। साधकदशा में शुभराग भी आता है और निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता है, किन्तु निमित्त और शुभराग का कारण ग्रहण करने से केवलज्ञान नहीं होता, अपितु ज्ञान का कारण ग्रहण करने से केवलज्ञान होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, शुक्लध्यान और केवलज्ञान का कारण - एकमात्र ज्ञानस्वभाव ही है.

इसी तरह निचली साधकदशा में भी - सम्यग्दर्शनादि ज्ञानस्वभाव को - कारणपने ग्रहण करने से ही होते हैं। क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धिलब्धि अथवा गुरु को कारणपने ग्रहण करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। अनन्त बार समवशरण में गया फिर भी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ।

यहाँ केवलज्ञान की बात है। एक समय में तीनकाल-तीनलोक को जाननेवाला केवलज्ञान किस तरह उत्पन्न हुआ ? वह बताते हैं। ज्ञानस्वभाव अनादि अनन्त है इसका कोई ईश्वर कर्ता नहीं है। राग की मंदता हुई इसलिये स्वभाव सत्ता रही है - ऐसा नहीं है। ज्ञानस्वभाव त्रिकाल अहेतुक है। ज्ञान असाधारण गुण है। ज्ञान का परिणमित होना कहा है इसलिए ज्ञानगुण को यहाँ लिया है। जहाँ आनन्द का परिणमन कहा हो वहाँ आनन्दगुण के कारणपने को ग्रहण करने से आनन्द प्रगट होता है यह समझना; किन्तु भगवान की कृपा अथवा किसी अन्य से केवलज्ञानादि नहीं होते।

सच्चे देव-गरू-शास्त्र की श्रद्धा का राग-पुण्य है उनके निमित्त से ११ अंग का ज्ञान प्रगट हुआ है, किन्तु उन निमित्तों को कारणपने ग्रहण करने से सम्यग्दर्शन, चारित्र और केवलज्ञान नहीं होता। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय इन चार अपूर्ण ज्ञान का व्यय हुआ है और केवलज्ञान हुआ है - ऐसा होने पर भी अपूर्ण ज्ञान व राग केवलज्ञान का कारण नहीं है; अपितु त्रिकाल, एकरूप, ध्रुव, शुद्ध स्वभाव है उसे कारणपने ग्रहण करने से केवलज्ञान प्रगट होता है। इसी से ही केवलज्ञान होता है किन्तु अन्य से नहीं होता। बीच मे किसप्रकार का व्यवहार आता है उसका कथन आता है किन्तु उससे केवज्ञानादि प्रगट नहीं होते।

प्रश्न:- यदि ऐसा है तो व्यवहार को क्यों कहा गया ?

समाधान:- साधकदशा में ऐसा ही सहचर राग उसमें निमित्त होता है, इसका ज्ञान कराने के लिये ही उससे (निमित्त से) हुआ - ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। जितने ज्ञानस्वभाव का ग्रहण नहीं किया उतना राग आता है; अपना राग, स्वयं को रोकता है जो यह बताता है कि इतनी पुरुषार्थ की कमी है। इस तरह स्वयं अपने से अटकता है अन्य से नहीं।

तीनकाल व तीनलोक में जहाँ भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्र को प्राप्त किया जाता है वह सदैव स्वभाव के आश्रय से ही होता है। सर्वज्ञ स्वभाव के आश्रय से ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक्त्व और केवलज्ञान प्रगट होता है ऐसा कहनेवाले को ही सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति हुई है किन्तु देव-गुरु-शास्त्र के कारणपने से सम्यग्दर्शनादि नहीं होते। अंदर परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव विद्यमान है इसी की प्रतीति ज्ञान और रमणता करना यही एक मात्र सम्यग्दर्शनादि का कारण है; अन्य को कारण कहना वह आरोपित कारण (कथन) है। आरोपित कारण को ग्रहण करने से धर्म नहीं होता। यहाँ महासिद्धाँत बताया है। सर्वप्रथम स्वीकार कर कि - भगवान आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, उसी के आश्रय से लाभ होता है।

तुम अपने ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करो ऐसा जो कहे वे ही सच्चे देव-गुरु-शास्त्र है और इसके विपरीत कहे (मनावे) वे सभी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र है.

अज्ञानी पर के कारण सम्यग्दर्शन का होना मानता है अथवा कुदेव-कुगरु-कुशास्त्र के निमित्त से केवलज्ञान का होना मानना विपरीत है। व्यवहार पहले होता है और निश्चय बाद में होता है अथवा हमारे आधार से ही तुम्हारा धर्म होगा ऐसा जो कहे वे सभी खोटे (झूठे) हैं।

राग और पुण्य में लाभ अर्थात् उसमें एकत्व की मान्यता का नाश ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करने से होता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र तो कहते हैं कि - तेरे ज्ञानस्वभाव से लाभ मानकर उसमें एकाग्र हो तो केवलज्ञान होगा; इसके विपरीत कोई यह कहे कि शुभराग कर तो सम्यग्दर्शन होगा, व्यवहार कर तो धर्म होगा अथवा हमारी कृपा से धर्म होगा - ऐसा कहनेवाले सभी खोटे (झूठे) हैं।

जिस तरह किसी को आम चाहिये और वह बबूल के पेड़ पर चढ़े तो उसे आम नहीं मिलते; उसी तरह कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को माननेवाले को कभी भी धर्म नहीं होता। जो भी सर्वज्ञ हुये हैं। वे सभी अपने ज्ञानस्वभाव से सर्वज्ञ हुये हैं। उनकी वाणी में भी यही आया कि - तुम भी अपने ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करोगे तो केवलज्ञान को प्राप्त करोगे। गुरु भी यही कहते हैं कि तुम अपने ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करो; क्योंकि ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करने से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा प्राप्त होती है अतः तुम उसे ग्रहण करो - ऐसा कहे वे ही गुरु सच्चे हैं और इसलिए विरुद्ध कहनेवाले कुगुरु है - सच्चे नहीं।

यह आत्मा स्वयं भगवान है - इसके सन्मुख होनेरूप पूजा से सम्यग्दर्शन होता है किन्तु साक्षात् परमात्मा की भक्ति से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आत्मा स्वयं निश्चय परमात्मा है उसको कारणपने ग्रहण करने से सम्यग्दर्शन होता है। यहाँ केवलज्ञान की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चर्चा की गई है इसलिये - ज्ञानस्वभाव को कारणपने ग्रहण करने की बात कही गई है किन्तु इसमें भी सम्पूर्ण आत्मा को ग्रहण करने की बात है - यह समझ लेना चाहिये।

ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करने से तुरन्त ही केवलज्ञान प्रगट होता है यह कहा है। जीव को केवलज्ञान अनादि से नहीं होता गुण अनादि से है किन्तु केवलज्ञान पर्याय प्रगटपने अनादि से किसी को, कभी भी नहीं होती। केवलज्ञान की पर्याय नई उत्पन्न होती है। साधक को कमजोरी से शुभराग होता है किन्तु यह जैन सिद्धांत का प्राण नहीं है। जैन सिद्धांत अर्थात् शुद्धात्मा को जानकर उसके आश्रय से वीतरागता हो वह जैन शासन का प्राण है।

केवलज्ञान समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को स्पष्ट जानता है। इसलिये उनको समस्त ही द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव का अक्रम ग्रहण होने से समक्ष संवेदन (प्रत्यक्ष ज्ञान) को आलंबन भूत समस्त द्रव्य-पर्यायें उन्हें प्रत्यक्ष ही है। केवलज्ञान पर्याय है।

केवली भगवान को केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई तब उन्होंने क्या जाना ? वह यहाँ बताते हैं।

केवलज्ञान पर्याय प्रगट होते ही उन्होंने समस्त द्रव्यों को उनके समस्त गुण पर्यायों सहित अक्रम एक ही साथ, एक समय में जाना है। पहले जीव को जाने, फिर अजीव जानने में आए ऐसा नहीं होता अथवा पहले द्रव्य को जाने बाद में क्षेत्र को जाने ऐसा भी नहीं है - ऐसा केवलज्ञान की पर्याय का स्वरूप ही नहीं है। समस्त द्रव्य, उनके क्षेत्र उनकी पर्यायें और उनके भावों को अक्रमरूप से भगवान जानते हैं। पहले भूतकाल को जाने और इसके बाद भविष्य को जाने ऐसा नहीं है। यहाँ ग्रहण का अर्थ उन्हें पकड़ना नहीं किन्तु जानना है - ऐसा अर्थ समझना।

अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करने पर ही केवलज्ञान की स्वीकृति होती है.

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि - हमारे भविष्य को भगवान ने जैसा देखा है ठीक वैसा ही होगा अन्यथा बिल्कुल नहीं तब फिर हमारा भविष्य हमारे हाथ में नहीं रहा भगवान के आधीन हो गया ?

समाधान:- केवलज्ञानी ने भूत-वर्तमान-भविष्य को जाना है - ऐसे केवलज्ञानी की प्रतीति अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होने पर ही होती है - तो क्या केवलज्ञानी तुम्हारी प्रतीति में आए हैं ? सभी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को अक्रम केवलज्ञान जानता है इस बात को तुमने स्वीकार किया है ? वर्तमान केवलज्ञान पर्याय त्रिकाल गुण के कारण से प्रगट करते हैं - ऐसे ज्ञानस्वभाव के कारणपने को ग्रहण किये बिना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं होती। झगड़ालू बालक को तरबूज का समान भाग देवें तो भी वह झगड़ा करता है उसीप्रकार यहाँ भेद करके बात करते हैं। केवलज्ञान का भाग केवली के पास रहा है और केवलज्ञान की प्रतीति तेरे पास रही है।

''केवली ने देखा है इसलिये तेरा भविष्य पराधीन हो गया है - ऐसा नहीं है; तेरा भविष्य स्वयं तेरे कारण है - ऐसा केवली ने देखा है।''

केवलज्ञान को स्वीकार करने का अर्थ है कि वह निमित्त, राग और पर्याय के भेद से विमुख हुआ हो और स्वभाव सन्मुख हुआ हो तभी समझना कि उसे केवलज्ञान की प्रतीति हुई है। यह तुझे भाग-भेद करके निश्चितता का निर्णय कराया गया है कि भगवान ने देखा है वही होगा।

सभी क्रमबद्ध होगा यह निर्णय किसमें होगा ?

ज्ञानस्वभाव का निर्णय करे तो यह निर्णय है। अज्ञानी शोर करता है कि निमित्त तो होना चाहिये न, इसप्रकार वह अनेक प्रकार से आकुलता किया करता है।

'निमित्त और विकार निश्चित है - यह निर्णय करनेवाला जीव ज्ञान को रागादि से भिन्न जानता है।'

केवलज्ञान सभी क्षेत्र को जानता है। केवलज्ञान अलोक में नहीं जाता - अपने में रहकर जानता है। साधकदशा में भी ज्ञान पर पदार्थों में नहीं जाता। स्पर्श होकर प्रवेश हो तभी ज्ञान हो ऐसा नहीं है। अलोक में गए बिना ही केवलज्ञान अलोक को जानता है।

इस तरह केवलज्ञान को स्वीकार करे तो - 'निमित्त आवे तो कार्य होगा' यह बात नहीं रहती और कोई कहे कि - भविष्य में कार्य होगा तब केवलज्ञान जानेगा - तो यह बात भी असत्य है क्योंकि तीनों काल को भगवान वर्तमान में जानते हैं - ऐसा जाने तो पदार्थ में फेरफार करने की बुद्धि कौन करे ?

जिस पदार्थ की जो अवस्था होनेवाली है वह सुनिश्चित है; उसे जो निमित्त होंगे वे भी सुनिश्चित है। निमित्त आए तो कार्य होगा और निमित्त नहीं आए तो कार्य नहीं होगा - ऐसा माननेवाला तो केवलज्ञान का अभाव करता है।

अज्ञानी कहता है कि किसी भी द्रव्य में ऐसा कोई गुण नहीं है कि समय-समय कोई अमुक निश्चित विकार ही उत्पन्न होगा और इसीप्रकार का ही निश्चित निमित्त होगा। ऐसी कोई दलील करता है तो उसका यह कथन असत्य है। क्योंकि आत्मा में, जिस समय जो विकार होनेवाला है वह निश्चित है और उस-उस समय जो निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होंगे वे भी निश्चित ही है। इस तरह केवलज्ञान में निश्चित है - ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि बदल गई है। पहले, ज्ञान और विकार को एक करके जानता था, किन्तु अब सत्य का निर्णय होते ही, ज्ञान तथा राग को भिन्न जानने लग जाता हैं। जो राग आनेवाला होगा उसका आना तो निश्चित ही है, किन्तु उसकी दृष्टि बदल गई है।

जिसे क्रमबद्ध का निर्णय हुआ हो वह कर्तापने की आकुलता का बोझा उतारकर निर्भार हो जाता है। पर की कोई भी अवस्था मेरे कारण से नहीं होती, राग कमजोरी से होता है किन्तु मुझे उसकी जरा भी रुचि नहीं है। "मैं ज्ञानस्वभावी हूँ" यह निर्णय करनेवाला ज्ञान तथा राग को एक बनाए - ऐसा नहीं हो सकता। इस तरह वह निर्भार-हल्का हुआ है।

यहाँ केवलज्ञान की बात चलती है। ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से अक्रम केवलज्ञान प्रगट हुआ है उसमें लोकालोक निमित्त है। केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त होता है। स्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान प्रगट हुआ तब लोकालोक को निमित्त कहा गया। ऐसे केवलज्ञान के स्वरूप को स्वीकार करे - उसे धर्म होता है।

ज्ञान पर्याय ने निमित्त और राग का पक्ष छोड़कर त्रिकाली स्वभाव का पक्ष लिया वही स्वभाव का उपादेयपना है.

प्रश्न:- आत्मा केवलज्ञान की प्राप्ति किस तरह करता है ? केवलज्ञान की प्राप्ति के लिये - साधनरूप कौन सी क्रिया है ?

समाधान:- आत्मा के ज्ञानस्वभाव की आदि (प्रारंभ) नहीं है। आत्मा स्वभाववान है और ज्ञान उसका स्वभाव है। इसका आदि नहीं है, और ज्ञानस्वभाव का नाश हो जाए ऐसा भी नहीं है। आत्मा के इस ज्ञानस्वभाव का कोई कारण नहीं - ऐसा ज्ञायक स्वभाव त्रिकाल है।

यह ज्ञानस्वभाव जड़ द्रव्यों में नहीं होता एक आत्मा का ज्ञानस्वभाव दूसरी आत्मा में नहीं होता। केवलज्ञान क्रिया प्रगट करने के लिये ज्ञानस्वभाव को कारणपने ग्रहण करने में आए तो उसका कार्य प्रगट होता है।

अपना ज्ञानस्वभाव गुरु और शास्त्र के पास नहीं, यह तो स्वयं चैतन्य द्रव्य का स्वभाव है। चेतन का ज्ञानस्वभाव अंदर में ध्रुवपने है, वह ज्ञान किसी केवली के पास नहीं। अपना ज्ञानस्वभाव अपने में ही है। इस तरह ज्ञानस्वभाव को अंगीकार करके वर्तमान ज्ञान पर्याय को स्वभाव में अंतर्मुख करना इसके सिवाय अन्य कुछ भी लाभ-दायक नहीं है - ऐसा जानकर ज्ञान पर्याय, ज्ञानस्वभाव की तरफ झुकी अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करने का उपाय किया। जिससे लाभ नहीं उसका लक्ष्य छोड़कर अर्थात् निमित्त और राग का लक्ष्य छोड़कर तथा वर्तमान पर्याय के आलंबन से राग होता है इसलिये उसका भी लक्ष्य छोड़कर ध्रुव सामान्य स्वभाव का लक्ष्य करता है - वही उपादेयपना है। ज्ञान की चलतीदशा जो निमित्त और राग के पक्ष में थी उसे ज्ञानस्वभाव के पक्ष में करने का नाम ही ज्ञानस्वभाव का उपादेयपना कहने में आता है।

यह धर्म की क्रिया है, धर्म कैसे होता है उस उपाय को बताते हैं। वर्तमानदशा को अंतर्मुख झुकाना अर्थात् इसके अतिरिक्त वह अन्य किसी का आदर नहीं करता। पर्याय स्वभाव तरफ झुकी अर्थात् ज्ञानस्वभाव का आदर किया। इस तरह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा होती है - जोवास्तव में धार्मिक क्रिया है।

सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य कहीं भी यह बात नहीं है। ज्ञानस्वभाव तो आदि-अन्त रहित है और वैसे ही कारण रहित है। वर्तमान अपूर्ण पर्याय में कर्म का क्षयोपशम निमित्त कहा जाता है अथवा पूर्व पर्याय का अभाव निमित्त कहा जाता है किन्तु त्रिकाली स्वभाव को कोई हेतु नहीं होता।

प्रश्नः- केवली भगवान की स्तुति करना कब कहा जाता है ? ज्ञानस्वभाव की रुचि करनेवाला ही जिनेन्द्र भगवान की सच्ची स्तुति करता है।

समाधानः- जिसने वर्तमान ज्ञान-पर्याय को त्रिकाली ज्ञानस्वभाव की तरफ झुकाया है उसी ने भगवान की स्तुति की है यह कहा जाएगा। द्रव्य इन्द्रियाँ, भाव इन्द्रियाँ और उनके विषयों का लक्ष्य छोड़कर, स्वभाव की तरफ ढले तब उसने भगवान की स्तुति की है यह कहा जाता है। यह स्वभाव किसी अन्य की कारणता से रहित है। अन्य में नहीं ऐसे स्वभाव की ओर एकाग्र हुआ इसलिये निर्मल पर्याय प्रगट होती है। निमित्त राग अथवा पर्याय में से धर्म पर्याय नहीं आती अपितु द्रव्य स्वभाव में से निर्मल धर्म पर्याय आती है - ऐसी श्रद्धा बिना धर्म नहीं होता। अज्ञानी पर और राग में धर्म मानकर रुक जाता है इसलिए उसका वीर्य पर में रुक गया है - इसलिये यहाँ आचार्य स्व की रुचि करने की बात कहते हैं।

यहाँ कहते हैं कि जो आत्मा के ज्ञानस्वभाव में एकाग्रता करके शुक्ल ध्यान प्रगट करते हैं तब उन्हें चार घातिया कर्मों का नाश हो जाता है। केवलज्ञान, चारित्र अथवा सम्यग्दर्शनादि को प्राप्त करने की यही एक विधि है। चार घातिकर्म का क्षय होते ही आत्मा स्वयमेव केवलज्ञान प्रगट करता है। यही एक धर्म क्रिया बताई है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्नः- यहाँ कोई पूछता है कि तीर्थयात्रा, पूजा, मंदिर इत्यादि कहाँ गये ? व्यवहार साधन और निश्चय साध्य भी कहाँ गया ? व्यवहार साधन न माने - उसे पंचास्तिकाय शास्त्र में निश्चयाभाषी कहा है; परंतु यहाँ तो व्यवहार साधन को याद भी नहीं किया ?

समाधानः- धर्म की क्रिया में तो एक ही बात है। जहाँ स्वभाव को साधन बनाया और स्वभाव प्रगट करता है तो व्यवहार पर साधनपने का उपचार किया जाता है। पंचास्तिकाय गाथा १७२ में निश्चयाभाषी और व्यवहाराभाषी दोनों का ही वर्णन किया गया है।वास्तविक कारण एक ही है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी यही बात बताई गई है कि - निश्चय और व्यवहार दोनों को कारण माने वह वस्तु को समझता नहीं।

❁ ❁ ❁

एक मनुष्य पर्याय में कोई अपना भला होने का उपाय करे तो हो सकता है। जैसे - काने गन्ने की जड़ व उसका ऊपरी फीका भाग तो चूसने योग्य ही नहीं है, और बीच की पोरें कानी होने से वे भी नहीं चूसी जाती; कोई स्वाद का लोभी उन्हें बिगाड़े तो बिगाड़ो; परन्तु यदि उन्हें बो दे तो उनसे बहुत से गन्ने हों, और उनका स्वाद बहुत मीठा आये। उसीप्रकार मनुष्य-पर्याय का बालक-वृद्धपना तो सुखयोग्य नहीं है, और बीच की अवस्था रोगक्लेशादि से युक्त है, वहाँ सुख हो नहीं सकता; कोई विषयसुख का लोभी उसे बिगाड़े तो बिगाड़ो; परन्तु यदि उसे धर्म साधन में लगाये तो बहुत उच्च पद को पाये, वहाँ सुख बहुत निराकुल पाया जाता है। इसलिये यहाँ अपना हित साधना, सुख होने के भ्रम से वृथा नहीं खोना।

- श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २२

अथास्य भगवतोऽतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्त्वादेव न किंचित्परोक्षं भवतीत्यभिप्रैति -

णत्थि परोक्खं किंचि वि समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स ।
अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स ॥२२॥

अब, अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमित होने से ही इन भगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं है, ऐसा अभिप्राय प्रगट करते हैं:-

सर्वतः सर्वाक्ष गुणसम्पन्न इन्द्रियरहित हैं ।
कुछ भी परोक्ष नहीं स्वयं ही ज्ञान परिणत नित रहें ॥२२॥

गाथार्थ :- जो सदा इन्द्रियातीत हैं, जो सर्व ओर से सर्व आत्म प्रदेशों से सर्व इन्द्रिय गुणों से समृद्ध हैं और जो स्वयमेव ज्ञानरूप हुए हैं, उन केवली भगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं है।

टीका:- समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही जो भगवान सांसारिक ज्ञान को उत्पन्न करने के बल को कार्यरूप देने में हेतु भूत ऐसी अपने-अपने निश्चित विषयों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों से अतीत हैं, जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द के ज्ञानरूप सर्व इन्द्रिय - गुणों द्वारा सर्व ओर से समरसरूप से समृद्ध हैं अर्थात् जो भगवान स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तथा शब्द को सर्व आत्म प्रदेशों से समानरूप से जानते हैं और जो स्वयमेव समस्तरूप स्व-पर का प्रकाशन करने में समर्थ अविनाशी लोकोत्तर ज्ञानरूप हुए हैं, ऐसे इन केवली भगवान को समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का अक्रमिक ग्रहण होने से कुछ भी परोक्ष नहीं है।

भावार्थ :- इन्द्रिय का गुण तो स्पर्शादिक एक-एक गुण को ही जानना है, जैसे चक्षु इन्द्रिय का गुण रूप को ही जानना है अर्थात्रूप को ही जानने में निमित्त होता है। और इन्द्रियज्ञान क्रमिक है। केवलीभगवान इन्द्रियों के निमित्त के बिना समस्त आत्म प्रदेशों से स्पर्शादि सर्व विषयों को जानते हैं और जो समस्तरूप से स्व-पर प्रकाशक है ऐसे लोकोत्तर ज्ञानरूप लौकिक ज्ञान से भिन्न केवलज्ञानरूप स्वयमेव परिणमित हुआ करते हैं इसलिये समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को अवग्रहादि क्रम रहित जानते हैं; इसलिये केवली भगवान के कुछ भी परोक्ष नहीं है।

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा २२ पर प्रवचन

भगवान केवली क्रम से नहीं जानते किन्तु अतीन्द्रिय स्वभाव से सभी को प्रत्यक्ष-अक्रम-एकसाथ जानते हैं.

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा यह मतिज्ञान के भेद हैं। वस्तु क्या है ? उसे जानने की उत्सुकता का होना वह अवग्रह है इस तरह उत्तरोत्तर अवग्रह आदि भेद मतिज्ञान के हैं। ईहा अर्थात् विचारना। अवाय अर्थात् निर्णय। धारणा अर्थात् ज्ञान को निश्चितपने स्थिर रखना। इस तरह क्रमशः भेद पूर्वक भगवान नहीं जानते किन्तु तीनकाल- तीनलोक के सर्व पदार्थों को अक्रम (एक साथ) जानते हैं।

किस जीव को कब सम्यक्त्व अथवा केवलज्ञान होगा ? अथवा कितने भव में मोक्ष होगा इन सभी का निश्चय केवलज्ञान में है। केवली सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को युगपद् जानते हैं; इस तरह उन्हें सर्व प्रत्यक्ष है।

देवाधिदेव भगवान को इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं होती - उन्हें तो अतीन्द्रियज्ञान हुआ है। भगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं होता भविष्य में अवस्था होने के बाद उसे भगवान जानेंगे - ऐसा नहीं है; अपितु तीनकाल व तीनलोक के पदार्थों को उनकी भूत, वर्तमान और भविष्य की बातें पर्यायों सहित एक समय में जानते हैं - ऐसा अभिप्राय प्रगट करते हैं।

धर्मात्मा दृष्टि से अतीन्द्रिय है, मुनिराज चारित्र से अतीन्द्रिय है और केवली भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय है.

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा पहले संसारदशा में थे। निज स्वभाव को ग्रहण करने से उन्हें केवलज्ञान हुआ है; समस्त आवरण के क्षय के क्षण ही केवलज्ञान होता है। भगवान इन्द्रियों से अतीत हुये हैं। पाँच भावेन्द्रियाँ और निमित्तरूप जड़ इन्द्रियाँ सांसारिक ज्ञान को उत्पन्न करने में निमित्त हैं। क्षयोपशम (प्रगटपना) लब्धिरूप था उसमें से क्षयोपशम ज्ञान उपयोग होकर संसार का ज्ञान उत्पन्न करने में इन्द्रियाँ निमित्त हैं; किन्तु केवलज्ञान अथवा सम्यग्ज्ञान इन्द्रियों के निमित्त से नहीं होते।

इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को जानती है अर्थात् आँख देखती है, कान सुनते हैं इसतरह उनमें इन्द्रियाँ निमित्त हैं। सांसारिक ज्ञान में भी इन्द्रियाँ निमित्त मात्र हैं। ज्ञान का उघाड़ (क्षयोपशम)रूप उपयोग कर, तब वहाँ तेरा लक्ष्य इन्द्रियों की ओर जाता है; उस ज्ञान को अंदर झुकाए तो इन्द्रियों की तरफ लक्ष्य नहीं जाता। प्रगट हुआ ज्ञान संसार के विषयों की तरफ झुकता है तो उसमें इन्दियाँ निमित्त कहलाती हैं। ज्ञान पर्याय अतीन्द्रिय स्वभाव की ओर झुके तो उसमें इन्द्रियाँ निमित्त नहीं होती। वह ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय पर तरफ झुकता है तो इन्द्रिय की तरफ लक्ष्य जायेगा; और उसमें संसारदशारूप आकुलता ही होगी। ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है उसे कारणपने ग्रहण करने की ओर झुके तो इन्द्रियातीत आनन्दरूप हो जाता है।

पर्याय तथा गुण को एक करे तो इस ज्ञान में इन्द्रिय निमित्त नहीं होती। भावेन्द्रियाँ द्रव्येन्द्रियों का निमित्त लेकर काम करे तो सांसारिक ज्ञान होता है और जब उसे सामान्य स्वभाव की ओर झुकाए तो अतीन्द्रियज्ञान अक्रम जाननेरूप होता है। जब पर से भेद का ज्ञान करके, भावेन्द्रिय तथा जड़इन्द्रिय की ओर नहीं ढलता तथा विषयों की तरफ लक्ष्य नहीं रखता; ज्ञानस्वभाव से अधिक सामान्य स्वभाव की तरफ ज्ञान को झुकाया है; जिससे जड़इन्द्रिय, भावइन्द्रिय और विषयों को जीतनेवाला कहलाया है। उसे ही सम्यग्दर्शनरूप निश्चय स्तुति होती है।

इन्द्रिय की तरफ जाते हुए खण्ड-खण्ड ज्ञान को निमित्त की तरफ झुकाए तो स्वयं पर को निमित्त बनाता है और इसलिए विषयों की तरफ लक्ष्य जाता है किन्तु जब उस ज्ञान पर्याय को स्वभाव तरफ झुकाए तो वह अतीन्द्रियज्ञानवाला दृष्टि अपेक्षा से हुआ; है उसने ही द्रव्यइन्द्रियाों, भावइन्द्रियों और उनके विषयों को जीता है।

अब, केवली भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय हुये हैं। चौथे गुणस्थान में दृष्टि अपेक्षा अतीन्द्रिय होते हैं। केवली भगवान यथाख्यात चारित्र करके पूर्ण अतीन्दिय हुए हैं, इसलिए उनको शरीर सम्बंधी किसी भी प्रकार का सुख-दुःख नहीं है। तीनकाल व तीनलोक को वे प्रत्यक्ष जानते हैं - उन्हें क्षुधा-तृषादि नहीं होते क्योंकि वे अतीन्द्रिय हुए हैं। उन्हें अब कुछ भी परोक्ष नहीं रहा। पूर्ण ज्ञानस्वभाव की तरफ पूर्ण झुकाव हुआ है इससे वे पूर्ण अतीन्द्रिय हुए हैं। अतीन्द्रियपने में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और केवलज्ञान सभी आ जाते हैं।

प्रश्नः- उल्टे विचार रोकने पर भी नहीं रुकते - क्या करें ?

समाधानः- पर तरफ के विचारों को स्वयं करता है किन्तु स्वयं स्व तरफ का विचार नहीं करता - इसमें अन्य कोई भी कर्ता नहीं है। पर तरफ के विचार सहज नहीं - कृत्रिम है। राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प आदि सभी कृत्रिम है। अंतर्मुख सामान्य स्वभाव के आश्रय से सहजदशा होती है।

केवली भगवान को पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट हुआ है.

जो ज्ञानपर्याय शब्द,रूप, गंध आदि को क्रम-क्रम से जानती है वह खण्ड-खण्ड पर्याय है-भावेन्द्रिय है उसमें द्रव्यइन्द्रिय निमित्त है। क्षयोपशम ज्ञान में उपयोग करके खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय काम करती थी, जो अब भगवान को नहीं होती; क्योंकि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन्होंने भावेन्द्रिय को जीत लिया है - स्वभाव में वे पूर्णत: ढल गये हैं।

आचार्य भगवान की शैली बहुत ही अद्भुत है। साधकदशा में जितना ज्ञानस्वभाव की तरफ झुकाव है उतना प्रत्यक्ष ज्ञान साधक को है और जितना पर की तरफ झुकाव है उतना बाधक है और परोक्ष है। भगवान का पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान है - एक अंश भी परोक्ष नहीं रहा। अनादि से अज्ञानी जीव इन्द्रियों तथा राग को निमित्त बनाकर एक मात्र परोक्ष ही है। साधक को आंशिक प्रत्यक्ष और आंशिक परोक्ष है और केवली भगवान को पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान है।

सर्वज्ञ देव समस्त पदार्थों को असंख्य प्रदेशों से, अक्रम प्रत्यक्ष जानते हैं.

स्पर्श-रस-गंध-वर्ण और शब्द के ज्ञानरूप सर्व इन्द्रिय गुणों द्वारा सर्व ओर से समरसपने समृद्ध है। भगवान को एक साथ सभी विषयों का ज्ञान - सम्पूर्ण आत्मा से होता है। निचलीदशा में देखनेवाला ज्ञान एक-एक इन्द्रिय के आलम्बन से क्रमश: होता था - ऐसा खण्ड-खण्ड ज्ञान अब उन्हें नहीं रहा। असंख्य प्रदेश में केवलज्ञान सूर्य ऊग गया है; जिसमें सभी कुछ जानने में आ जाता है। वे सर्व आत्म प्रदेशों से समानरूप से जानते हैं। निचलीदशा में एक-एक इन्दिय द्वारा जानते थे अर्थात् समानपना नहीं था। जैसे आंख सेरूप ही जानने में आता है कान से शब्द ही जानने में आते हैं इत्यादि; किन्तु भगवान तो सभी विषय सर्व ओर से - वीतराग भाव से देखते हैं; कोई विषय पहले और कोई विषय बाद में देखे ऐसा नहीं होता। वे असंख्य प्रदेशों से समस्त पदार्थों को जानते हैं। निचलीदशा में शब्द का उघाड़ (क्षयोपशमरूप) ज्ञान समस्त प्रदेशों में होता है फिर भी उपयोग में अमुक कुछ खास प्रदेश निमित्त होते थे, किन्तु केवलज्ञान होने पर भगवान असंख्य प्रदेशों से सर्व को जानते हैं।

केवलज्ञान का निर्णय करते ही - पर का अहंकार और पर की रुचि का अभाव हो जाता है, और स्वभाव की रुचि हो जाती है।

इस तरह केवलज्ञान स्वयमेव अर्थात् अपने से समस्तरूप से, स्व-पर को प्रकाशित करने में समर्थ है। भगवान ऐसे अविनाशी लोकोत्तर ज्ञानरूप हुए हैं। जिनका लौकिक ज्ञान दूर हो गया है। सांसारिक ज्ञान के सामने - लोकोत्तर ज्ञान लिया है। इस तरह वे ज्ञानरूप हुए हैं अर्थात् लोकालोक को जानने का परिणमन हुआ है। पहले इन्द्रियों में क्रम पड़ता था, अब क्रम नहीं रहा - अक्रम जानते हैं; इसलिये उन्हें कुछ भी परोक्ष नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि भगवान अपेक्षित धर्मों को नहीं जानते। उनका यह मानना असत्य है। श्रुतज्ञान में अपेक्षित धर्म जानने में आते हैं और उस श्रुतज्ञान की पर्याय को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवली भगवान जानते हैं इसलिये केवली भगवान अपेक्षित धर्मों को केवलज्ञान द्वारा जानते हैं। इसलिए केवली भगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं है।

यहाँ कितने ही लोग सर्वज्ञ को नहीं मानते। उनमें से कोई तो कहता है कि महावीर भगवान सर्वज्ञ थे सो कैसे ? उनमें से एक विशिष्ट विचारक थे उनने कहा कि - 'यदि केवली भगवान को सर्वज्ञ मान लिया जाए तो फिर पर को करने की - पराधीन मानने की हमारी मान्यता ही नहीं रहेगी।' इस तरह के बाद केवली के सम्बंध में अनेक प्रकार की विपरीत मान्यताएं प्रवर्तित हैं।

क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय स्वभाव में होता है और स्वभाव के निर्णय में सही पुरुषार्थ आता है। उस समय जो होनेवाला था वही हुआ है वह निश्चित है यही स्वसन्मुखता करनेरूप काललब्धि है। उस समय कर्म का अभाव होता है। इस तरह इसमें पाँचों समवाय आ जाते हैं। केवलज्ञान एक समय में सर्वद्रव्यों के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद भी जानता है।

ज्ञानपर्याय की ज्ञानस्वभाव के साथ एकता और राग से पृथकता करे तो ही ज्ञानस्वभाव और केवली का निर्णय हुआ है; यही सम्यग्दर्शन है। पर का सभी कुछ द्रव्य-गुण-पर्याय पर के कारण होते हैं यह निर्णय होते ही पर का अभिमान छूट गया। अपने में एक-एक पर्याय क्रम-क्रम से होती है - ऐसा निर्णय पर्याय में होता है; किन्तु क्रम पर्याय के आश्रय से निर्णय नहीं होता। इस तरह पर्याय की रुचि छूटकर पर्यायवान की रुचि हो जाती है। इस तरह अक्रम स्वभाव के आश्रय से निर्णय होता है यह सम्यग्दर्शन है।

'पर का अहंकार छोड़।'

फिर कोई कहे कि - 'अशुद्धता में अमुक प्रकार का ही राग आयेगा यह निश्चित नहीं है।' तो उसका यह कथन असत्य है। जिसप्रकार का राग जिस समय आनेवाला होता है, वही राग उसी समय आना निश्चित है। इस तरह निर्णय होने पर तथा राग का कर्तापना मिटकर स्वसन्मुखता की रुचिवाला ज्ञाता हो जाता है। ज्ञाता स्वभाव की महिमा में रागादिरूप आकुलता का आदर कैसे रहे ?

अज्ञानी, रागादि को दोषरूप नहीं मानता क्योंकि राग, द्वेष, पुण्य, पाप को करने योग्य मानता है। उससे पूछते हैं कि जो तू पर में करना चाहता है तो यह बता कि पर की अवस्था सत् है अथवा असत् ? वह पदार्थ त्रिकाली है अथवा क्षणिक ? पदार्थ त्रिकाली है।

उसका वर्तमान उसके त्रिकाली द्रव्य के आधार से है अथवा तेरे आधार से ?

उसका वर्तमान तेरे कारण नहीं होता। इसलिये पर का अभिमान छोड़ देना चाहिए। पदार्थ की अवस्था उसी में से होती है फिर भी मेरे से वह होती है ऐसी मिथ्या

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मान्यता ही संसार में परिभ्रमण का बीज है।

ज्ञानस्वभाव की रुचिवन्त को ही केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार है.

इस जगत में केवलज्ञान है जो भूत, वर्तमान, भविष्य का सभी कुछ जानता है - ऐसा निर्णय किस तरह होगा ? निमित्त से, राग से अथवा पर्याय के लक्ष्य से केवलज्ञान का स्वीकार नहीं होता, अपितु ध्रुव ज्ञानस्वभाव के स्वीकार से ही केवलज्ञान का स्वीकार होगा। ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का निर्णय ही सर्वज्ञ भगवान का निर्णय है। भविष्य में होने के पश्चात् भगवान जानेंगे ऐसा नहीं है अपितु वे तो तीनकाल-तीनलोक को एक समय में प्रत्यक्ष जानते हैं।

केवलज्ञान सभी कुछ जानता है - ऐसा ज्ञान-गुण इसीके आश्रय से प्रगट हुआ है - ऐसा निर्णय करनेवाले को ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता हुये बिना नहीं रहती। तेरे भविष्य की अवस्था भी उनके ज्ञान में आ गई है। ऐसे त्रिकाल वेत्ता इस जगत में निश्चित है - ऐसा निर्णय करनेवाला निश्चित करता है कि - पर की अवस्था पर के कारण से है - मेरे कारण नहीं। मेरी अवस्था भी क्रमबद्ध होती है, अपने अक्रम ज्ञानस्वभाव के आश्रय से धर्म है; इस तरह ज्ञानस्वभाव की रुचिवान को केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार है।

तीनकाल-तीनलोक को भगवान जानते हैं - ऐसी प्रतीति इन्द्रिय के निमित्त से नहीं होती, किन्तु अतीन्द्रिय स्वभाव के अवलम्बन से होगी; इसलिये 'मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ' लेकिन पर को हरन करनेवाला अथवा उनमें फेरफार करनेवाला मैं नहीं हूँ - ऐसा निर्णय करनेवाले को स्वसन्मुखता द्वारा सम्यग्दर्शन होगा। जगत के पदार्थ ज्ञेय हैं और मैं ज्ञाता हूँ - ऐसे निर्णय में स्वसन्मुखता और शान्ति है।

कोई कहता है कि प्रतिकूलता के समय तो उन पदार्थों की अवस्था उनसे होती है, किन्तु अनुकूलता के समय आत्मा से पर का काम होता है; तो यह बात असत्य है। क्योंकि पर की अनुकूल अथवा प्रतिकूल अवस्था मेरे से नहीं होती; पर का वह समस्त ही परिणमन उन्हीं से होता है, किन्तु पर का कार्य मेरे से नहीं होता। इस तरह यथार्थ समझे तो शान्ति प्रगट होती है।

अज्ञानी बाहर में शान्ति मानता है। जहाँ शान्ति पड़ी है वहाँ से उल्टीदशा में तो - अशान्ति है। स्वभाव के आश्रय से शान्ति है। शान्ति अथवा अशान्ति बाहर में नहीं है। ''मैं जाननहार हूँ, ज्ञाता-दृष्टा हूँ'' जगत के पदार्थ ज्ञेय हैं, मैं ज्ञाता हूँ - जगत के अनन्त ही पदार्थ दृश्य है मैं दृष्टा हूँ वह मेरा कार्य नहीं। इस तरह ज्ञाता-दृष्टा रहना यही शान्ति का उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रत्येक ही पदार्थ अपने-अपने समय पर उनके चालू काल के कारण परिवर्तन करते हैं - ऐसा ही वस्तु स्वरूप होने पर भी, उसके बदले उनकी अवस्था मेरे से बदलती है - ऐसी मान्यता ही दु:ख का मूल है।

* * *

गाथा २२ के भावार्थ पर प्रवचन

खण्ड-खण्ड ज्ञान का उपयोग-स्पर्श-रस-गंध-वर्ण आदि एक-एक विषय को ही जानता है। जानने में चक्षु इन्द्रिय निमित्त है अंदर ज्ञान का क्षयोपशम उघाड़ इन्द्रिय का लक्ष्य करके रूप को ही जानता है - रूप को ही जानने में निमित्त होता है; जिस समय वह रूप को जानता है उस समय शब्द को नहीं सुनता। इसप्रकार इन्द्रियज्ञान क्रमिक है। इन्द्रियां और राग का अवलम्बन छोड़कर, स्वभाव का पूर्ण अवलम्बन लेकर पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान होने से केवली, सर्व प्रदेशों से विश्व के सर्व पदार्थों को एक साथ जानते हैं।

केवलज्ञान कैसा है ?

केवलज्ञान इन्द्रियों के निमित्त बिना सर्व प्रदेशों से जानता है। अपने स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय तथा पर के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है। ऐसे अहेतुक ज्ञानस्वभाव को कारणपने ग्रहण करने से ज्ञान के आधार से प्रगट हुआ केवलज्ञान, स्वयमेव ही परिणमित होता है। इसलिये समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को अवग्रहादि क्रम बिना ही जानने से केवली भगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं है।

यदि जीव ज्ञान की अपूर्णता और राग की विपरीतता छोड़ना चाहता है तो, पूर्णज्ञानी किस तरह हुये हैं और वे कैसे होते हैं - ऐसी दृष्टि और ज्ञान यथार्थ करना चाहिये, इसके बिना पूर्णता नहीं हो सकती। निचलीदशा में जो खण्ड-खण्ड ज्ञान काम करता था, अब पूर्णदशा होने पर उस खण्ड-खण्ड ज्ञान का अभाव हुआ और वह अक्रमरूप जानने लगा।

केवली भगवान को ज्ञान, आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुआ है इसलिए मुझे भी आत्मा के आश्रय से ही केवलज्ञान होगा; इस तरह जानकर आत्मा का अवलम्बन लेना वही धार्मिक क्रिया है। लेंड़ीपीपर में चौंसठ पुटी तिखास जो भीतर थी वह आई है। तीनलोक व तीनकाल का ज्ञान अंदर ध्रुव स्वभाव की शक्ति में से आया है किन्तु बाहर में से नहीं आया। इस तरह भगवान का ज्ञान समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को क्रम रहित जानता है इसलिये भगवान को कुछ भी परोक्ष नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २३

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वं ज्ञानस्य सर्वगतत्त्वं चोद्योतयति -

आदा णाणापमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं ।
णेयं लोयालोयं तम्हा णाणं तु सव्वगयं ॥२३॥

अब, आत्मा का ज्ञान प्रमाणपना और ज्ञान का सर्वगतपना उद्योत करते हैं:-

है जीव ज्ञान प्रमाण वर्णित ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है ।
हैं ज्ञेय लोकालोक इसलिए सर्वगत भी ज्ञान है ॥२३॥

गाथार्थः- आत्मा ज्ञान प्रमाण है; ज्ञान ज्ञेय प्रमाण कहा गया है। ज्ञेय लोकालोक है इसलिये ज्ञान सर्वगत - सर्व व्यापक है।

टीकाः- 'समगुणपर्यायं द्रव्यं (गुण-पर्यायें अर्थात् युगपद् सर्वगुण और पर्यायें ही द्रव्य है)' इस वचन के अनुसार आत्मा ज्ञान से हीनाधिकता रहितरूपसे परिणमित होने के कारण ज्ञानप्रमाण है, और ज्ञान ज्ञेयनिष्ठ होने से, दाह्यनिष्ठ दहन की भाँति, ज्ञेय प्रमाण है। ज्ञेय तो लोक और अलोक के विभाग से विभक्त अनन्त पर्याय माला से आलिंगित स्वरूप से सूचित (प्रगट, ज्ञान) नाशवान दिखाई देता हुआ भी ध्रुव ऐसा षट्द्रव्य-समूह, अर्थात् सब कुछ है। (ज्ञेय छहों द्रव्यों का समूह अर्थात् सब कुछ है) इसलिये निःशेष आवरण के क्षय के समय ही लोक और अलोक के विभाग से विभक्त समस्त वस्तुओं के आकारों के पार को प्राप्त करके इसीप्रकार अच्युतरूप रहने से ज्ञान सर्वगत है।

भावार्थः- गुण-पर्यायों से द्रव्य अनन्य है इसलिये आत्मा ज्ञान से हीनाधिक न होने से ज्ञान जितना ही है; और जैसे दाह्य (जलने योग्य पदार्थ) का अवलम्बन करनेवाला दहन दाह्य के बराबर ही है; उसीप्रकार ज्ञेय का अवलम्बन करनेवाला ज्ञान ज्ञेय के बराबर ही है। ज्ञेय तो समस्त लोकालोक अर्थात् सब ही है। इसलिये, सर्व आवरण का क्षय होते ही (ज्ञान) सबको जानता है और फिर कभी भी सबके जानने से च्युत नहीं होता इसलिये ज्ञान सर्वव्यापक है।

* * *

गाथा २३ पर प्रवचन

अब आत्मा का ज्ञानप्रमाणपना और ज्ञान का सर्वगतपना प्रकाशित करते

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा और केवलज्ञान की पर्याय के क्षेत्र में हीनाधिकता नहीं है इसलिये, आत्मा ज्ञान प्रमाण है.

गुण-पर्याय अर्थात् युगपद् सर्व गुण और पर्याय वही द्रव्य है। पहले यह कथन किया था कि - आत्मा का केवलज्ञान परिणमन है जो त्रिकाल अहेतुक असाधारण ज्ञानस्वभाव का परिणमन है। अब यहाँ यह बताते हैं कि - ज्ञान का स्वभाव आत्म प्रमाण है।

केवलज्ञान कहाँ से आया ?

आत्मा जितना है उतना ज्ञान है। ज्ञान असाधारण है जो अन्य में नहीं पहुँचता - ऐसे अहेतुक असाधारण ज्ञान के अवलम्बन से केवलज्ञान हुआ है।

केवलज्ञान लोकालोक में व्याप्त है। अर्थात् लोकालोक को जानता है; ऐसा होने पर भी वह केवल अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में ही रहा है। आत्मा वस्तु है जिसका ज्ञान गुण आत्मा के प्रमाण में रहता है। प्रत्येक ही आत्मा अनादि अनन्त है उसका ज्ञान गुण भी काल की अपेक्षा अनादि अनन्त है तथा क्षेत्र की अपेक्षा देखा जाये तो जितना आत्मा है उतने में ही ज्ञान-गुण है। इस अभेद ज्ञान-गुण को कारणपने बनाने से केवलज्ञान प्रगट होता है। अंतर ज्ञानस्वभाव में एकाग्रता होने पर केवलज्ञान होता है।

ज्ञानस्वभाव को अन्य कोई कारण नहीं है; ज्ञाता द्रव्य है उसे अन्य कारण नहीं है; जो है उसके (लिये अन्य) कारण नहीं होता। ऐसे अकारण गुण को कारण बनाकर जो केवलज्ञान प्रगट हुआ है वह आत्मा के प्रमाण में रहता है। वह सर्व लोकालोक में व्याप्त हो जाता है- ऐसा व्यवहार से कहने में आता है।

वह केवलज्ञान निज आत्मा के सभी गुणों को तथा लोकालोक को जानता है। केवलज्ञान पर्याय एक समय की होती है और द्रव्य-गुण का काल अनादि अनन्त है, गुण का क्षेत्र भी द्रव्य प्रमाण है।

ऐसे ज्ञान गुण की कितनी ताकत है ?

त्रिकालवर्ती लोकालोक को एक समय में जाननेवाला है इस कारण केवलज्ञान सर्वगत है - ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से केवलज्ञान अपने द्रव्यप्रमाण में है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कि जितने भी लोकालोक के पदार्थ हैं - वे ज्ञान में समा गये हों और ज्ञेयों में केवलज्ञान समा गया हो - ऐसी ताकत (शक्ति) है।

गुण अर्थात् ज्ञानादि गुण और पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था। इस तरह गुण पर्याय सहित द्रव्य है। इसलिए केवलज्ञान द्रव्य में आ गया और जिस गुण के कारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान प्रगट हुआ - वह भी आ गया।

ज्ञानगुण के कारण जो केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई है वह पर पदार्थ को जानती है अथवा नहीं ?

हाँ ! जानती है। सर्व को जानने की अपेक्षा सर्वगत कहते हैं। किन्तु वेदांत मत जैसा सर्वगत कहता है वैसा यहाँ नहीं है। वास्तव में, ज्ञान विश्व में प्रवेश नहीं कर जाता अपितु अपने में रहकर लोकालोक को जानता है। आत्मा छोटा रह जाये और पर्याय आत्मा से बड़ी (बाहर) हो जाय - ऐसा नहीं होता। अथवा आत्मा छोटा रहे - और क्षेत्र बड़ा हो जाय ऐसा भी नहीं होता। अत: ज्ञानपर्याय आत्मप्रमाण ही होती है और ज्ञान, ज्ञेय प्रमाण है। ज्ञान एक समय में समस्त ज्ञेयों को जानता है इसलिये ज्ञान को ज्ञेयप्रमाण कहा है। कपड़ा छोटा रह जाये और उसकी सफेदी पर्याय कपड़े से बाहर लंबी हो जाए - ऐसा नहीं होता। सफेदपना कपड़े के प्रमाण में है; वैसे ही आत्मा की ज्ञान पर्याय भी आत्मा के सम्पूर्ण क्षेत्रप्रमाण है। अर्थात् क्षेत्र की अपेक्षा आत्मा ज्ञान पर्याय से कम अथवा अधिक हो जाए- ऐसा नहीं होता।

यह आत्मा नित्य असंख्य प्रदेशी है तथा उसका ज्ञानगुण भी असंख्य प्रदेशी है - उसे कारण बनाकर उसमें एकाग्र होने से केवलज्ञान प्रगट होता है, यह केवलज्ञान पर्याय आत्मप्रमाण है।

प्रश्न:- आत्मा अनादि से ऐसे का ऐसा है और केवलज्ञान बाद में परिणमित होता है इसलिये केवलज्ञान क्षेत्र से अधिक होता होगा ?

समाधान:- नहीं। यदि केवलज्ञान का क्षेत्र अधिक माना जाए तो इस कथन में विरोध आता है। आत्मा में केवलज्ञान आदि अनन्त प्रगट होता है इसलिए आत्मा केवलज्ञान से अधिक हो गया होगा - ऐसा नहीं है।वास्तव में देखा जाए तो आत्मा और केवलज्ञान दोनों ही क्षेत्र की अपेक्षा समान हैं। द्रव्य में केवलज्ञान प्रगट करने का कारण होने पर भी द्रव्य अधिक नहीं होता।

इस तरह केवलज्ञान अपने में रहकर जानता है। ज्ञान पर क्षेत्र में जाता है - ऐसा कहना व्यवहार है। केवलज्ञान पर्याय पहले अनन्तकाल में नहीं थी वह अब, व्यक्त होकर प्रगट हुई है इसलिये आत्मा शक्ति में हीन हो गया हो - ऐसा नहीं है; क्योंकि उसमें अनन्त काल तक अनन्त केवलज्ञान पर्याय प्रगट करने की ताकत है; इसलिये आत्मा अपने असंख्य प्रदेश में व्याप्त रहता है। ज्ञान गुण असंख्य प्रदेश में रहता है और केवलज्ञान पर्याय भी इन्हीं असंख्य प्रदेश में पहुँचती रहती है। आत्मा ज्ञान पर्याय के प्रमाण में है। द्रव्य-गुण-पर्याय का क्षेत्र एक है - एक समान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान सर्वगुणों को जानता है, इसके अतिरिक्त भी क्या केवलज्ञान में अन्य कोई शक्ति है ?

वह अनन्त पर पदार्थों को जानता है। व्यवहार से लोकालोक में व्यापक हो गया है। आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है इसलिए केवलज्ञान को लोकालोक प्रमाण कहा है।

ज्ञान ज्ञेयनिष्ट होने से, दाह्यनिष्ट दहन के समान वह ज्ञेय प्रमाण है। यहाँ ज्ञान अर्थात् प्रगट हुई केवलज्ञान की पर्याय की बात समझना। केवलज्ञान ज्ञेयों में तत्पर अथवा ज्ञेयों में रहा हुआ है। अग्नि जलने योग्य ईंधन में प्रवेश कर गई है उस आकाररूप हुई है; वैसे ही आत्मा की ज्ञान पर्याय ज्ञेय प्रमाण हुई है।

यह बात लोगों को कठिन लगती है। जैसे लकड़ी में अग्नि फैली हुई है; वैसे ही ज्ञान ज्ञेयों में फैलता है, इस तरह ज्ञान ज्ञेयों में रहने से ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है यह व्यवहारनय का कथन है। यहाँ स्वतंत्रता सिद्ध करना है; लोकालोक जैसा परिणमित होता है - वैसा ही ज्ञान जानता है। जैसा लोकालोक परिणमित होता है ऐसा केवलज्ञान परिणमित होता है ऐसा घनिष्ठ निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है।

अपनी विकारी अथवा अविकारी पर्याय से प्रत्येक द्रव्य एकमेक है।

ज्ञेय कितने हैं ?

लोक और अलोक ये दो विभाग है। फिर भी ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है।

द्रव्य कैसा है ?

गुण के आश्रय से पर्याय प्रगट होती है।

ज्ञेय कितने हैं ?

अनन्त पर्यायरूपी माला से आलिंगित स्वरूप से सूचित उत्पाद व्ययपने क्षणिक दिखाई देता हुआ होने पर भी ध्रुव ऐसा षट्द्रव्य समूह है अर्थात् कि वे सभी छः द्रव्य ज्ञेय हैं। यहाँ पर्याय माला कहने पर समस्त ही शुद्ध व अशुद्ध पर्याय समझना। जिस तरह माला के मोती जहाँ होते हैं वहीं निश्चित होते हैं किन्तु इधर-उधर नहीं होते। अनन्त ही द्रव्य स्वयं अपनी अनन्त पर्याय माला से आलिंगित अर्थात् स्पर्शित हुए, पर्यायरूप से सूचित हैं। प्रत्येक ही जीव और अजीव द्रव्य अपनी पर्यायों में तन्मय हैं - अपनी पर्याय से भिन्न नहीं है।

पर्याय एक के बाद एक होती है। वैसा ज्ञान जानता है। जैसा ज्ञान परिणमित होता है; वैसे ही ज्ञेय परिणमते हैं; और जैसे-जैसे ज्ञेय परिणमते हैं वैसा-वैसा ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमता है। पर्यायों की हार से स्पर्शित आलिंगित स्वरूप है। प्रत्येक ही द्रव्य अपनी पर्याय से भिन्न जानने में नहीं आता।

जिस समय जिस द्रव्य की जो पर्याय है उस स्वरूप से वह द्रव्य जानने में आता है। विकार की पर्याय हो तो उस समय उससे एकमेक स्वरूप जीव जानने में आता है। वह पर्यायमाला से भिन्न जानने में नहीं आता। अज्ञानी मानता है कि हमें सांसारिक काम अच्छे आते हैं - ऐसा अभिमान करता है। जबकि देखा जाए तो अक्ल अथवा बुद्धि की पर्याय पर में अथवा ज्ञेय में नहीं जाती अपितु, अपने में रहती है जैसा ज्ञेय है वैसा ज्ञान जानता है।

केवलज्ञान जैसा परिणमित होता है वैसा लोकालोक परिणमता है। जो पर्याय वर्तमान में है वह दूसरे समय भूतकाल में चली जायेगी और भविष्य की पर्याय वर्तमान हो जायेगी इन सभी पर्यायों को केवलज्ञान ठीक इसी तरह व्यवस्थित जानता है। छहों द्रव्यों का एक समान व्यवस्थित चक्र चलता है।

पहले कहा था कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष हो गया है - तो वह कितना है ?

केवलज्ञान ज्ञेय जितना है। क्षेत्र के लोक और अलोक - ऐसे दो भाग किये हैं। द्रव्य में अनन्त पर्यायें होती है। विकारी पर्याय विकारी जीव में होती है। ऐसे स्वरूपवाला द्रव्य है पुण्य-पाप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, आर्तध्यान, रौद्रध्यान-रूप जो पर्याय होती है वह जीवद्रव्य में होती है। ऐसे स्वरूपवाला प्रत्येक द्रव्य जानने में आता है। विकारी पर्याय हो तो विकार स्वरूपवाला और अविकारी पर्याय हो तो अविकारी स्वरूपवाला जीव दिखाई देता है।

यहाँ पर्यायमाला कहकर क्रमसर-क्रमबद्ध कहते हैं। केवलज्ञान पर्याय क्रमबद्ध होती है और लोकालोक की पर्याय भी क्रमबद्ध होती है किन्तु अपनी और पर की पर्याय को केवली भगवान अक्रम अर्थात् एक साथ युगपद् जानते हैं। छद्मस्थ जीव को अपूर्णज्ञान होने से वे क्रम से जानते हैं किन्तु केवली भगवान पूर्णज्ञान द्वारा सभी को अक्रम जानते हैं - वे किसी को न जाने ऐसा नहीं होता।

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध होती है। इसके विपरीत कोई कहता है कि समय-समय पर अमुक प्रकार - की ही अशुद्धता होती है - ऐसा कोई गुण नहीं है, तो उसकी यह बात झूठी है। यहाँ कहते हैं कि प्रत्येक गुण की पर्याय - अशुद्धता भी क्रमबद्ध ही होती है - प्रत्येक पर्यायमाला निश्चितपने स्पर्शित हुआ ऐसा द्रव्य है। जिस-जिस द्रव्य की जिस समय में होने योग्य जो पर्याय है वह सभी क्रमबद्ध ही होती है।

पर्याय क्रमबद्ध हो ऐसा कोई गुण द्रव्य में नहीं है - यह माननेवाला द्रव्य का तथा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान का ही अपने अभिप्राय में नाश करता है। यहाँ आचार्य भगवान द्रव्य और उसका क्षेत्र अर्थात् गुण-पर्याय को सिद्ध करते हैं। छहों द्रव्य के समूह में प्रत्येक ही द्रव्य बदलता - परिणमता हुआ दिखाई देने पर भी ध्रुव है - ऐसा छह द्रव्य समूह है अर्थात् ऐसे स्वरूपवाले सभी हैं। ज्ञेय तो छहों द्रव्य का समूह है अर्थात् सभी हैं।

'लोकालोक को केवलज्ञान जानता है इसलिये केवलज्ञान सर्वगत है।' निःशेष आवरण के क्षय के समय ही, लोक और अलोक के विभाग से विभक्त समस्त वस्तुओं के आकारों के पार को प्राप्त पाकर - इस तरह अच्युतपने रहता होने से ज्ञान-सर्वगत है। ज्ञान अच्युत है। केवलज्ञान पर्याय होने पर भी ऐसी की ऐसी रहती है इसलिये अच्युत है। ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है इसलिये ज्ञान को सर्वगत कहते हैं। ऐसा भगवान का केवलज्ञान होता है। भगवान ने केवलज्ञान किस विधि से प्रगट किया यह प्रतीति करनेवाले साधक को पर्यायमाला प्रगट होने लगी है।

ऐसा लगता है जैसे कि केवलज्ञान, ज्ञेयों में चला गया हो। इस अपेक्षा से केवलज्ञान को सर्वगत कहा गया है। वेदांत कहता है कि केवलज्ञान निश्चय से लोकालोक में चला गया है अथवा कोई जीव मरकर के अनन्त में मिल गया है - तो उसका यह कथन असत्य ही है। क्योंकि, केवलज्ञान पर में नहीं जाता, अपने में रहकर सर्व को जानता है इसलिये इसे व्यवहार से सर्वगत कहा है।वास्तविक गुण तथा आत्मा को जाने बिना सच्ची दृष्टि नहीं होती। केवलज्ञान ने सभी वस्तुओं के पार को प्राप्त किया है। इस तरह केवलज्ञान को, सर्व को जानने की सामर्थ्य के कारण - सर्वव्यापक कहने में आया है।

* * *

गाथा २३ के भावार्थ पर प्रवचन

गुण और उसकी एक अवस्था से द्रव्य भिन्न नहीं है। गुण का काल त्रिकाली है और पर्याय का काल एक समय है; किन्तु द्रव्य भिन्न नहीं है। इसलिये केवलज्ञान से आत्मा कम-अधिक नहीं होने से वह केवलज्ञान जितना ही है। जैसे जलने योग्य पदार्थ का अवलम्बन करनेवाला दहन, दाह्य के बराबर है। अग्नि अपने कारण से ही उस आकाररूप हुई है पर के कारण नहीं; फिर भी उसके आकार जैसी है, जिससे जलने योग्य पदार्थ के क्षेत्र प्रमाण है।

भगवान की आत्मा का केवलज्ञान ज्ञेयप्रमाण है। ज्ञेय तो समस्त लोकालोक अर्थात् सभी हैं इसमें भव्य-अभव्य, शुद्ध-अशुद्ध सभी आ गये। सभी ज्ञेय हैं ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व को जानता है। केवली भगवान भविष्य को नहीं जाने ऐसा नहीं होता। अथवा केवली को पहले समय में ज्ञानोपयोग हो और दूसरे समय में केवल दर्शनोपयोग हो ऐसा नहीं होता। प्रत्येक ही समय केवलज्ञान परिणमता है। जानने से कभी च्युत नहीं होता। ज्ञान सर्वव्यापक है।

यह तो आत्मा की ऋद्धियों का वर्णन है। लड़की की शादी के समय पैसे की ऋद्धि बताते हैं। वहाँ पर बहुत से सगे-सम्बंधी व प्रमुख लोग दहेज-धनादि देखते हैं तब इसे अपार सुख-आनन्द होता है। उसी तरह यहाँ लोकालोक को जाने तब सुख होगा। ज्ञान गुण के आश्रय से प्रगट होनेवाला केवलज्ञान सभी को जाने तब सुख होगा। ज्ञान पर्याय पूर्ण होने पर सुख पूर्ण होता है।

इस शास्त्र में पहले ज्ञान अधिकार लिया है बाद में सुख अधिकार लेंगे। पूर्ण ज्ञान प्रगट होने पर पूर्ण सुख प्रगट होता है। अज्ञानी पर का अभिमान करता है।

जगत के जीवों की ममता कभी समाप्त नहीं होती। यह तो सदा ही मानता है कि मेरे बिना कोई भी काम नहीं हो सकता - ऐसी ममतावाले के मर जाने पर भी लोक के काम पूरे हुए बिना नहीं रहते - अधूरे नहीं रहते। देखो ! जगत के कार्यों में जीव का सोचा हुआ काम नहीं होता। इस तरह ज्ञान करे तो ज्ञान में जैसा है वैसा जाने तो उससे सुख प्रगट होता है।

अब आत्मा को केवलज्ञान प्रगट हुआ है, इसलिये आत्मा हीनाधिक होवे तो दोष आता है, ऐसा बताकर आत्मा को ज्ञान प्रमाण सिद्ध करेंगे।

हे जिनेन्द्र ! देवयोग से मैं स्वर्ग में होऊँ, इस मनुष्य लोक में होऊँ, विद्याधर के स्थान में होऊँ, ज्योतिष्क देवों के लोक में होऊँ, नागेन्द्र के नगर में होऊँ, नारकों के निवास में होऊँ, जिनपति के भवन में होऊँ या अन्य चाहे स्थान पर होऊँ, परन्तु मुझे कर्म का उद्भव न हो, पुनः पुनः आपके पादपंजक की भक्ति हो।

- श्री नियमसार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २४ एवं २५

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वानभ्युपगमे दौ पक्षावुपन्यस्य दूषयति -

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा ।
हीणो वा अहिओ वा णाणादो हवदि धुवमेवं ॥२४॥
हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेदणं ण जाणादि ।
अहिओ वा णाणादो णाणेण विणा कहं जाणादि ॥२५॥जुगलं।

अब, आत्मा को ज्ञान प्रमाण न मानने में दो पक्ष उपस्थित करके दोष बतलाते हैं:-

नहिं जीव ज्ञान प्रमाण है जिसके यहाँ यह मान्यता ।
उससे अधिक वा हीन निश्चित ज्ञान से हो आत्मा ॥२४॥
हो हीन चेतन ज्ञान से तो अचेतन जाने नहीं ।
यदि ज्ञान से हो अधिक तो भी ज्ञान बिन जाने नहीं ॥२५॥

गाथार्थः- इस जगत में जिसके मत में आत्मा ज्ञान प्रमाण नहीं है, उसके मत में वह आत्मा अवश्य ज्ञान से हीन अथवा अधिक होना चाहिये।

यदि वह आत्मा ज्ञान से हीन हो तो वह ज्ञान अचेतन होने से नहीं जानेगा, और यदि (आत्मा) ज्ञान से अधिक हो तो (वह आत्मा) ज्ञान के बिना कैसे जानेगा ?

टीकाः- यदि यह स्वीकार किया जाये कि यह आत्मा ज्ञान से हीन है तो आत्मा से आगे बढ़ जानेवाला ज्ञान (आत्मा के क्षेत्र से आगे बढ़कर उससे बाहर व्याप्त होनवाला ज्ञान) अपने आश्रयभूत चेतन द्रव्य का समवाय (सम्बंध) न रहने से अचेतन होता हुआ रूपादि गुण जैसा होने से नहीं जानेगा; और यदि ऐसा पक्ष स्वीकार किया जाये कि यह आत्मा ज्ञान से अधिक है तो अवश्य (आत्मा) ज्ञान से आगे बढ़ जाने से (ज्ञान के क्षेत्र से बाहर व्याप्त होने से) ज्ञान से पृथक् होता हुआ घटपटादि जैसा होने से ज्ञान के बिना नहीं जानेगा। इसलिये यह आत्मा ज्ञानप्रमाण ही मानना योग्य है।

भावार्थः- आत्मा का क्षेत्र ज्ञान के क्षेत्र से कम माना जाये तो आत्मा के क्षेत्र से बाहर वर्तनेवाला ज्ञान चेतन द्रव्य के साथ सम्बंध न होने से, अचेतन गुण जैसा ही होगा, इसलिये वह जानने का काम नहीं कर सकेगा, जैसे कि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इत्यादि अचेतन गुण जानने का काम नहीं कर सकते। यदि आत्मा का क्षेत्र ज्ञान के

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षेत्र से अधिक माना जाये तो ज्ञान के क्षेत्र से बाहर वर्तनेवाला ज्ञान शून्य आत्मा ज्ञान के बिना जानने का काम नहीं कर सकेगा, जैसे कि ज्ञान शून्य घट, पट इत्यादि पदार्थ जाननेका काम नहीं कर सकते। इसलिये आत्मा न तो ज्ञानसे हीन है और न अधिक है, किन्तु ज्ञान जितना ही है। २४-२५।

* * *

गाथा २४-२५ पर प्रवचन

इस जगत में जिसके मत में आत्मा ज्ञान प्रमाण नहीं है, उसके मत में आत्मा अवश्य ही ज्ञान से हीन या अधिक होना चाहिये। यदि वह आत्मा ज्ञान से हीन हो तो ज्ञान अचेतन होने से नहीं जानेगा; और यदि ज्ञान से अधिक हो तो वह आत्मा ज्ञान के बिना कैसे जानेगा ?

केवल ज्ञान लोकालोक को जानता है इसलिये सर्वगत कहा किन्तु केवलज्ञान लोकालोक में प्रवेश नहीं करता।

आत्मा सर्वगत है इसलिए आत्मा का स्व-पर प्रकाशक ज्ञान भी सर्वगत है जो स्व-पर सर्व को जानता है। आत्मा अपनी ज्ञान पर्याय अपने कारण से प्रगट करता है। वह सभी को जानती है इसलिये उसे सर्वगत कहा है; फिर भी वह अपने क्षेत्र से भिन्न नहीं है। आत्मा की केवलज्ञान पर्याय द्रव्य से होती है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है उसकी पर्याय भिन्न नहीं है, राग से केवलज्ञान पर्याय प्रगट नहीं होती; अपितु ज्ञानस्वभाव के आधार से वह प्रगट होती है।

केवलज्ञान पर्याय लोकालोक को जानती है इसलिये उसे सर्वगत कहा है, किन्तु जैसा वेदांत सर्वगत कहता है वैसा सर्वगत नहीं है। अर्थात् ज्ञान सभी में प्रवेश कर जावे - ऐसा नहीं होता। केवलज्ञान लोकालोक को अपनी पर्याय में जानता है इसलिये उसे सर्वगत कहा गया है। ऐसा कहे जाने पर भी अपनी पर्याय तो अपने क्षेत्र में ही रहती है।

भगवान आत्मा का ज्ञान गुण त्रिकाल है। उसकी केवलज्ञान पर्याय लोकालोक को जानती है, किन्तु केवलज्ञान पर्याय से आत्मा हीन (कम) अथवा अधिक नहीं है।

पुण्य-पाप और निमित्त की क्रिया धर्म नहीं है अपितु ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से जो ज्ञान क्रिया प्रगट होती है वह धर्म है, इसका फल केवलज्ञान है जो लोकालोक को जानता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि - केवलज्ञान अधिक हो गया हो और आत्मा छोटा रह गया हो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर पदार्थ का ग्रहण अथवा त्याग करना व राग को ग्रहण करना अथवा छोड़ना वस्तु स्वभाव में ही नहीं है - ऐसे ज्ञानस्वभाव को जानकर और ज्ञानस्वभाव को कारणपने बनाकर जो केवलज्ञान प्रगट हुआ वह लोकालोक को जानता है; इसलिए केवलज्ञान अधिक बड़ा हो जाता होगा, और आत्मा कम हो जाता होगा - ऐसा नहीं है।

केवलज्ञान लोकालोक में प्रवेश नहीं करता उसी तरह निचली अपूर्णदशा में भी ज्ञान पर पदार्थों में अथवा राग में प्रवेश नहीं करता.

यदि, आत्मा ज्ञान से हीन (कम) है अथवा ज्ञान आत्मा से अधिक है अथवा ज्ञान लोकालोक में प्रवेश कर जाता है - यह स्वीकार किया जाए तो इसमें बाधा आती है। लोग जिसे बरसी तप मानते हैं वह तप नहीं है।

फिर तप किसे कहते हैं ?

तप तो चारित्र गुण की निर्मल पर्याय है किन्तु शरीर की अवस्थारूप क्रिया, आहारादि ग्रहण नहीं करना और शुभराग करना वह तप नहीं है। जो शरीर की क्रिया को तप मानता है उसे ज्ञान-ज्ञातापने से परसन्मुखता में अधिकता है और वह पर के ग्रहण व त्याग में रूक गया है। ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से जो ज्ञान हुआ तो क्या वह ज्ञान अधिक होकर (फैलकर) राग में घुस गया ? क्या, ज्ञान पर पदार्थों में घुस (प्रवेश कर) जाता है ? यदि, शरीर, परमाणु आदि में ज्ञान घुस जाए तो फिर ज्ञान अधिक और आत्मा छोटा हो जायगा किन्तु ऐसा नहीं होता। आत्मा असंख्य प्रदेश प्रमाण ही रहता है और केवलज्ञान लोकालोक में घुस जाता है - ऐसा नहीं होता।

क्या, निचली (अपूर्ण)दशा में ज्ञानपर्याय पर पदार्थों में प्रवेश कर जाती है ? यदि ऐसा हो जाए तो आत्मा छोटा रह जायगा किन्तु ऐसा नहीं होता। ज्ञान पर्याय तो आत्मा में ही व्यापक होकर रहती है। ज्ञान, आत्मा के साथ तादात्म्य है किन्तु राग के साथ तादात्म्य नहीं। ऐसा होने पर भी अज्ञानी को निमित्तादि की दृष्टि होने से तृष्णा होती है, जिससे वह यही मानता है कि ज्ञान पर्याय पर के काम में प्रवेश कर गई है अथवा पर की दया पालने आदि भावों में ज्ञान प्रवेश करता है। जिसने पर द्रव्यों के साथ अथवा पर द्रव्य की पर्याय के होने में अपने ज्ञान का कर्तृत्व को माना उसने अपनी आत्मा को ज्ञान से कम माना है उसे आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप की खबर नहीं है।

ज्ञानपर्याय का अपने आत्मा के क्षेत्र से अधिक होकर राग अथवा पर के क्षेत्र में प्रवेश नहीं होता। अपने को जानते हुए पर को जानता है - ऐसा नहीं मानकर अज्ञानी मानता है कि ज्ञान का पर में प्रवेश हो गया है। उससे पूछते हैं कि यदि तेरी उक्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मान्यता सत्य हो तो तुझे छोटा और ज्ञान को बड़ा हो जाना चाहिये लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। अत: ज्ञान का पर में प्रवेश हुआ ही नहीं है यह मानना चाहिये।

यदि ज्ञान आत्मा के असंख्य प्रदेशी क्षेत्र से बड़ा होकर पर में चला जाए तो उसे आत्मा का आश्रय नहीं रहने से वह ज्ञान अचेतन हो जायगा। यदि आत्मा से आगे बढ़ जानेवाला श्रुतज्ञान, आत्मा के क्षेत्र से आगे बढ़कर उसके बाहर व्याप्त ज्ञान को अपने आश्रय भूत चेतन द्रव्य का सम्बंध नहीं रहने के कारण अचेतन होता हुआरूपादि गुण जैसा होने से वह जान ही नहीं सकेगा और वह जाननेरूप शक्ति से ही शून्य होगा।

यदि, केवलज्ञान लोकालोक में प्रवेश कर जाए तो केवलज्ञान से आत्मा छोटा हो जायगा और केवलज्ञान को आत्मा का आश्रय नहीं रहा तो ज्ञान को अचेतनपने का प्रसंग आता है। इसी तरह संसारदशा में भी ज्ञान अपने द्रव्य को छोड़कर राग तथा पर पदार्थों में प्रवेश कर जाए तो ज्ञान को अपने द्रव्य का आधार नहीं रहा जिससे ज्ञान को अचेतनपने का प्रसंग आता है।

यदि, ज्ञान राग में प्रवेश कर जाए तो जैसे राग अचेतन है; वैसे ही ज्ञान के भी अचेतन होने का प्रसंग आवेगा। आश्रयरूप जो स्वद्रव्य, उससे रहित ज्ञान अचेतन रहेगा। केवलज्ञान हो अथवा अल्पज्ञान हो - ज्ञान तो अपने द्रव्य में व्यापक रहता है किन्तु राग में व्यापक होकर नहीं रहता। इसके विपरीत अज्ञानी मानता है कि मेरा ज्ञान राग और पर पदार्थ में प्रवेश कर जाता है। जैसे पुद्गल के स्पर्श-रस-गंध-वर्ण चेतन के आश्रय बिना अचेतन है; वैसे ही ज्ञानपर्याय चेतन द्रव्य के आश्रय बिना अचेतन अंधी हो जायगी।

ज्ञान पर्याय तो आत्मा से उत्पन्न हुई है वह लोकालोक को जानती है इसलिये उसे सर्वगत कहा गया है किन्तु इससे ज्ञान पर्याय बड़ी हो गई हो और आत्मा छोटा रह गया हो - ऐसा नहीं है। यदि, ज्ञान पर्याय आत्मा में न रहे और पर में चली जाय तो उसके अचेतनपने का प्रसंग आयगा और वह जानने का काम ही नहीं कर सकेगी। अपनी स्व-पर प्रकाशक ज्ञानपर्याय का आश्रय चेतन है। यदि यह माना जाए कि चेतन - स्वभाववान को छोड़कर पर में काम करता है तो जैसे स्पर्शादि चेतन द्रव्य के आश्रय बिना अचेतन है; वैसे ही ज्ञान गुण भी द्रव्य के आश्रय बिना अचेतन होगा। चेतन द्रव्य का सम्बंध नहीं होता वे सभी अचेतन होते हुए रूपादि गुण जैसे होने से कुछ भी नहीं जान सकते।

आत्मा का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है किन्तु वह कभी भी पर में प्रवेश को प्राप्त नहीं होता। जो यह मानता है कि मैं पर पदार्थ की क्रिया के साथ सम्बंध वाला हूँ - तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को नहीं समझता और उसे धर्म नहीं होता।

अज्ञानी जीव कहता है कि - मैंने ६ माह तक रोटी नहीं खाया - यह तो तप है न?

भाई, पर को खाना अथवा नहीं खाना यह आत्मा का गुण नहीं है। तेरा स्वभाव तो ज्ञान है, स्व-पर प्रकाशक है। क्या, तेरा ज्ञान पर में प्रवेश करता है ? नहीं।अपने अबंधस्वभाव को छोड़कर पर में अटकने से तो तू बंधेगा। अग्नि का उष्ण गुण, अग्नि से बड़ा हो जाये - ऐसा नहीं होता। अग्नि चार अंगुली में रहे और अग्नि की उष्णता एक बालिश्त में रहे - ऐसा नहीं होता। अग्नि, अग्नि की पर्याय में व्यापक है। अग्निवस्तु की उष्णता बढ़ जाय तो क्या अग्नि को कम बताना है ? यदि अग्नि हीन (कम) हो जावे और उसकी उष्णता का क्षेत्र उससे अधिक हो जाय तो अग्नि के आश्रय बिना उष्णता नहीं रहती; उसी तरह ज्ञान पर्याय ज्ञाता द्रव्य का आश्रय छोड़कर पर का अथवा राग का काम करे तो ज्ञान नहीं रहता।

जिस तरह उष्णता को अग्नि का आधार नहीं हो तो उष्णता, उष्णता का काम नहीं करती। वैसे ही यहाँ ज्ञान प्रकाश बाहर में नहीं जाता। अर्थात् ज्ञान पर्याय, चेतन द्रव्य का आश्रय छोड़े तो अचेतन हो जाय और राग को जाननेवाला ज्ञान, राग से भिन्न नहीं रहा। आत्मा द्रव्य है, ज्ञान गुण है उसकी पर्याय स्व-पर को जानती है। पर को जानते हुए भी वह पर के साथ तादात्म्य नहीं होती अपितु स्व के साथ ही तादात्म्य है - ऐसा निर्णय करना ही धर्म है।

पूर्व पुण्य के कारण संयोग के मिलते ही अज्ञानी उसी में लिप्त हो जाता है। जैसे कुत्ते को रोटी का टुकड़ा डाला जाय तो वह उस पर झपटता है और पूँछ हिलाकर खुशी का संकेत करने लग जाता है। उसी तरह पाँच-पचास वर्ष थोड़े समय के लिये पुण्य के संयोग मिलने पर वहाँ अज्ञानी जीव कुत्ते की तरह खुश होता है। अनन्त काल से जीव तो पर पदार्थ के अभाव स्वरूप ही चला आ रहा है फिर भी स्वयं पर के अभाव स्वरूप असंग हूँ यह नहीं मानता।

अपना ज्ञान स्व-पर को जाननेवाला, स्व का आश्रय छोड़े बिना और पर का आश्रय किये बिना ही जानता है - ऐसे भान बिना मिथ्यात्व होता है। यहाँ कहते हैं कि यदि उष्णता, अग्नि का आश्रय छोड़े तो उष्णता, उष्णता का काम नहीं कर सकती। इसी तरह ज्ञान पर्याय भी अपना आश्रय छोड़कर पर का आश्रय करे तो ज्ञान, आत्मा के क्षेत्र से अधिक हो गया और आत्मा छोटा रह गया; किन्तु ऐसा नहीं होता। जैसे यदि अग्नि को छोड़कर उष्णता रहना भी चाहे तो उष्णता नहीं रह सकती; वैसे ही यदि ज्ञान पर में चला जाए तो ज्ञान और आत्मा का सम्बंध नहीं रहने से वह ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अचेतन हो जायगा। जैसे रूपादि गुण कुछ भी नहीं जानते; वैसे ही असंयोगी-अबंधस्वभावी ज्ञाता द्रव्य स्वयं को भूलकर बन्ध में पड़ा है; यदि ज्ञान पर्याय द्रव्य के क्षेत्र का आश्रय-आधार छोड़कर पर का आलंबन ले लेवे तो वह भी रूपादि गुण जैसी होने से नहीं जान सकेगी।

ज्ञान का गुणी आत्मा के साथ में तादात्म्यपना है किन्तु निमित्त अथवा राग के साथ ज्ञान का एकत्व नहीं है। अज्ञानी जीव इस तत्त्व को तो जानता नहीं और सांसारिक प्रोषध, प्रतिक्रमण आदि करने को कहता है। वह ज्ञान का, अपने में से छूटकर पर में जाना मानता है - ऐसा माननेवाले को व्यवहार सामायिक भी नहीं होती। ज्ञानस्वभाव में रहना ही वास्तव में सामायिक है, किन्तु बाहर की क्रिया में सामायिक नहीं है। अपनी ज्ञान पर्याय स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। अपना आत्मा ज्ञान पर्याय का आधार है।

किन्तु पर के कारण अथवा राग मंदता के आधार से ज्ञान पर्याय नहीं होती। ज्ञान, आत्माधीन होता है और आत्मा में ही व्याप्त रहता है किन्तु राग अथवा किसी निमित्त से ज्ञान पर्याय उत्पन्न नहीं होती और राग व पर में ज्ञान व्याप्त नहीं होता।

तुझे दुनिया को प्रसन्न करना है या अपना कल्याण करना है ? यदि ज्ञान पर्याय आत्मा को छोड़कर पर में चली जाए तो ज्ञान अचेतन हो जायगा। पर से भिन्नता और स्व से एकता ही गुण-गुणी की एकता है। उसकी पर्याय भी आत्मा के साथ में तादात्म्य है। ज्ञानपर्याय, राग के साथ तादात्म्य जाने तो अबंध स्वभावी आत्मा, बन्ध में पड़ जाता है। तुझे हित करना है अथवा नहीं ? आत्मा का ज्ञानस्वभाव क्या है और क्या काम करता है ? उसे यथार्थ समझना ही प्राथमिक क्रिया है क्योंकि समझे बिना कभी भी मिथ्यात्व और विपरीत अभिनिवेश नहीं छूटता।

यहाँ वेदांत मत के समक्ष दलील करते हैं कि कोई कहता है कि यदि आत्मा छोटा रह जाय और ज्ञान बड़ा हो जाय तो ज्ञान अचेतन हो जायगा; क्योंकि गुणी का आधार नहीं रहने पर ज्ञान अचेतन हो जाता है। यदि ज्ञान पर्याय से आत्मा, क्षेत्र की अपेक्षा बड़ा हो जाय तो आत्मा, ज्ञान बिना जानने का काम करेगा अथवा नहीं ?

अब यहाँ दूसरी शंका का निराकरण करते हैं। कोई कहता है कि आत्मा बड़ा रहे और ज्ञान छोटा हो गया है। ज्ञान कम क्षेत्र में रह जाय और आत्मा अधिक क्षेत्र में रहे तो आत्मा गुण से पृथक (रहित) हो जाने से वह अचेतन हो जायगा।

कोई कहता है कि हमारा आत्मा तो बड़ा रह गया और केवलज्ञान छोटा रह गया ऐसे आत्मा महात्मा हो गया, ज्ञान ऐसे काम करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उससे कहते हैं कि आत्मा ज्ञान पर्याय के बिना जानने का काम नहीं करता। गुण-गुणी, पर्याय को छोड़ दें और पर्याय का सम्बंध न रहे तो ज्ञान से आत्मा खाली होने से आत्मा जानने का काम नहीं करेगा; इसमें तो आत्मा बड़ा हो गया और पर्याय छोटी रह गई। यदि कोई ऐसा माने कि मैं आत्मा पूर्ण हूँ किन्तु पर्याय में स्व-पर को नहीं जानता। तो आत्मा ज्ञान पर्याय से खाली शून्य हो गया। उष्णता की पर्याय के बिना अग्नि जलने का काम नहीं करती।

आत्मा कारण परमात्मा है पूर्ण भगवान है - ऐसा तो कहे किन्तु कारण परमात्मा को कारणपने ग्रहण करनेरूप अपूर्व कार्य तेरी पर्याय में आया अथवा नहीं ? क्या कारण और कार्य भिन्न रह गया ? अन्य का आत्मा अनन्त गुणों का भंडार है - ऐसा तो कहे; किन्तु तेरी ज्ञानपर्याय काम करती है ? नहीं। यदि ऐसा हो तो अग्नि उष्णता के बिना ही जलने का काम नहीं करती, इसलिये तेरे मतानुसार तो आत्मा ज्ञान पर्याय के बिना अचेतन ही हो गया ? स्वभाव का आश्रय ले तो जागृत निर्मल पर्याय प्रगट हुए बिना नहीं रहे। क्या तेरी आत्मा पर्याय रहित है ? हमारा आत्मा कारण परमात्मा है - ऐसा कहता है किन्तु ज्ञानपर्याय आत्मा के साथ अभेद हुई अथवा नहीं ? यदि अभेद नहीं हुई और आत्मा अपनी पर्याय से भिन्न है - ऐसा मानते ही वह तो अचेतन घटपटादि के समान ज्ञान रहित ही हुआ - जान ही न सके। क्योंकि चैतन्य की पर्याय के बिना आत्मा जानने का काम नहीं करता। पर्याय से द्रव्य अभेद है और द्रव्य, पर्याय से अभेद है। आत्मा निमित्त और राग के बिना ही जानने का काम करता है किन्तु ज्ञान पर्याय के बिना जानने का काम नहीं करता। ज्ञानपर्याय के बिना तो आत्मा अचेतन हो जायगा।

यह तो भगवान सर्वज्ञ की कोर्ट (अदालत) है जिसमें कायदे से ही काम चलता है। जैसे घट-पट का ज्ञान-पर्याय के साथ सम्बंध नहीं है इसलिए घट-पट कुछ नहीं जानते; वैसे ही आत्मा का, ज्ञान पर्याय के साथ में सम्बंध नहीं है - ऐसा कोई माने तो फिर आत्मा भी कुछ भी न जाननेवाला ही होगा। इसलिये आत्मा को ज्ञानप्रमाण ही मानना योग्य है। यहीवास्तव में ज्ञान क्रिया है किन्तु अज्ञानी इसे नहीं मानता और जड़ की क्रिया को ही ज्ञानक्रिया मानता है। यहाँ कहते हैं कि ज्ञान पर्याय कार्य है और आत्मा कारण है दोनों अभेद हैं। ज्ञान पर को जानता है फिर भी ज्ञान पर से भेदरूप है और स्वयं ज्ञानपर्याय से अभेद हैं।

होशियारी (ज्ञान) के कारण ही तो व्यापार का काम होता है ?

नहीं ! क्योंकि ज्ञान के कारण पर में काम नहीं होता फिर भी ऐसा मानना कि -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होशियारी के कारण व्यापार का काम होता है वह मिथ्यात्व ही है।

गाथा २४-२५ के भावार्थ पर प्रवचन

यदि आत्मा का क्षेत्र बड़ा माने और ज्ञान पर्याय को छोटा माने अथवा आत्मा को बड़ा माने और यह कहे कि केवलज्ञान लोकालोक को नहीं जानता - तो यह बात असत्य है। क्योंकि ज्ञान क्षेत्र के बाहर वर्तता हुआ, ज्ञानशून्य आत्मा ज्ञान के बिना जानने का काम नहीं कर सकता। जैसे ज्ञानशून्य घड़ा, वस्त्र आदि पदार्थ जान नहीं सकते; वैसे ही ज्ञानशून्य आत्मा भी जान नहीं सकेगा। इसलिये गुण-गुणी अभेद हैं - ऐसा निर्णय करना चाहिए।

❁ ❁ ❁

हे जीव ! भव के भय का भेदन करनेवाले इन (जिनेन्द्र) भगवान के प्रति क्या तुझे भक्ति नहीं है ? - तो तू भवसमुद्र के मध्य में रहने वाले मगर के मुख में है।

- श्री नियमसार कलश

नराधिपतियों के अनेक विध महा वैभवों को सुनकर तथा देखकर, हे जड़मति, तू यहाँ व्यर्थ ही क्लेश क्यों प्राप्त करता है ! वे वैभव सचमुच पुण्य से प्राप्त होते हैं। वह पुण्योपार्जन की शक्ति जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा में है; यदि तुझे उन जिनपादपद्मों की भक्ति हो, तो वे बहुविध भोग तुझे अपने आप होंगे।

- श्री नियमसार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २६

अथात्मनोऽपि ज्ञानवत् सर्वगतत्त्वं न्यायायातमभिनन्दति -

सव्वगदो जिणवसहो सव्वे वि य तग्गया जगदि अट्ठा ।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा ।। २६ ।।

अब, ज्ञान की भांति आत्मा का भी सर्वगतत्त्व न्यायसिध्द है ऐसा कहते हैं :-

है सर्वगत जिनवर जगत् के अर्थ सब जिनगत सदा ।
इस ज्ञानमयता विषयता से सर्वगत उनको कहा ।।२६।।

गाथार्थः- जिनवर सर्वगत हैं और जगत के सर्व पदार्थ जिनवरगत (जिनवर में प्राप्त) हैं; क्योंकि जिन ज्ञानमय हैं और वे सब पदार्थ ज्ञान के विषय होनेसे जिन के विषय कहे गये हैं।

टीकाः- ज्ञान त्रिकाल के सर्व द्रव्य-पर्यायरूप प्रवर्तमान समस्त ज्ञेयाकारों को पहुँच जाने से (जानता होने से) सर्वगत कहा गया है; और ऐसे (सर्वगत) ज्ञानमय होकर रहने से भगवान भी सर्वगत ही हैं। इसप्रकार सर्व पदार्थ भी सर्वगत ज्ञान के विषय होने से, सर्वगत ज्ञान से अभिन्न उन भगवान के वे विषय हैं ऐसा (शास्त्र में) कहा है; इसलिये सर्व पदार्थ भगवानगत ही (भगवान में प्राप्त ही) हैं।

वहाँ (ऐसा समझना कि) - निश्चयनय से अनाकुलता लक्षण सुख का जो संवेदन उस सुखसंवेदन के अधिष्ठाता जितना ही आत्मा है और उस आत्मा के बराबर ही ज्ञान स्वतत्त्व है; उस निज-स्वरूप आत्म प्रमाण ज्ञान को छोड़े बिना, समस्त ज्ञेयाकारों के निकट गये बिना, भगवान (सर्व पदार्थों को) जानते हैं। निश्चयनय से ऐसा होने पर भी व्यवहारनय से यह कहा जाता है कि भगवान सर्वगत हैं। और नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों को आत्मस्थ (आत्मा में रहे हुए) देखकर ऐसा उपचार से कहा जाता है; कि सर्व पदार्थ आत्मगत (आत्मा में) हैं; परन्तु परमार्थतः उनका एक दूसरे में गमन नहीं होता,क्योंकि सर्वद्रव्य स्वरूपनिष्ठ (अपने-अपने स्वरूप में निश्चल अवस्थित) हैं।

यही क्रम ज्ञान में भी निश्चित करना चाहिये। (आत्मा और ज्ञेयों के सम्बंध में निश्चय-व्यवहार से कहा गया है, उसीप्रकार ज्ञान और ज्ञेयों के सम्बंध में भी समझना चाहिये) ॥२६॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा २६ पर प्रवचन

अब ज्ञान के समान आत्मा का भी सर्वगतत्त्व न्याय सिद्ध है - ऐसा कहते हैं:-

आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है। आत्मा के ज्ञान-स्वभाव के अवलम्बन से ही केवलज्ञान पर्याय प्रगट होती है। केवलज्ञान लोकालोक को जानता है, इसलिए केवलज्ञान लोकालोक में व्याप्त है - ऐसा कहा जाता है। आत्मा की ज्ञान पर्याय आत्मा से कम अथवा अधिक नहीं हो सकती। मेरी आत्मा वस्तु है ज्ञान गुण त्रिकाल है, उसके आश्रय से ही ज्ञानपर्याय होती है किन्तु निमित्त अथवा राग के आश्रय से नहीं होती। यदि केवलज्ञान पर्याय आत्मा से हीन अथवा अधिक हो तो गुणी रहित गुण अचेतन अथवा गुण रहित गुणी अचेतन हुआ; इसलिये केवलज्ञान आत्मा प्रमाण है यह केवलज्ञान समस्त ही पदार्थों को जानता है, इसलिये केवलज्ञान सर्वगत है।

अब, केवलज्ञान आत्मा प्रमाण है उसके आश्रय से ज्ञान पर्यायरूप हुआ ज्ञान पर्याय अथवा धर्म एक ही है। बाहरी क्रिया से धर्म मानने से तो उल्टा मिथ्यात्व का ही लाभ होता है।

कषाय = कष+आय। कष = संसार, आय = लाभ।

अर्थात् उससे संसार का ही लाभ होता है। केवलज्ञान लोकालोक को जानता है, जिससे कहा कि केवलज्ञान लोकालोक में व्याप्त होता है; इसलिये पर्याय को सर्वगत कहा है। उस पर्याय को धारण करनेवाला आत्मा है। पर्याय, द्रव्य के आश्रय से टिकती है और परिणमित होती है इसलिये आत्मा को सर्वगत कहते हैं। आत्मा ज्ञानप्रमाण है अर्थात् ज्ञान के प्रमाण में आत्मा है और आत्मा के प्रमाण में ज्ञान है - केवलज्ञान का ऐसा स्वरूप है। जो ऐसी प्रतीति करता है वह धर्म प्राप्त करता है।

जो यह सब जानने में आता है वह ज्ञान में जानने में आता है; किन्तु पर में, पर से अथवा पर के कारण जानने में नहीं आता। स्वयं ज्ञान न हो तो 'यह है' - ऐसा किसने जाना ? यह राग है ऐसा किसने जाना ? ज्ञान अग्रसर न हो तो जानेगा कौन ? यह आत्मा ज्ञानस्वभावी है, स्वयं के आश्रय से ही केवलज्ञान प्रगट होता है। केवलज्ञान पर्याय सर्वगत है, केवलज्ञान पर्याय आत्मप्रमाण है इसलिये आत्मा सर्वगत है।

पर पदार्थ और पुण्य-पाप से आत्मा भिन्न है। पुण्य-पाप को साथ में रखकर के केवलज्ञान नहीं होता। साधकदशा में राग आता है किन्तु उसके आधार से केवलज्ञान नहीं होता।

"अहो ! मैं मेरे ज्ञान से, मेरे को जानने से - पर को, पर में प्रवेश किये बिना ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जान लेता हूँ।'' केवलज्ञान लोकालोक में प्रवेश किये बिना ही स्व में रहकर जानता है। चैतन्य ज्ञानस्वभावी आत्मा है जो अपने से स्वयंभू होता है। शुभ-रागरूप व्यवहार विकल्प से सम्यग्दर्शन नहीं होता; जिसे ऐसी खबर नहीं होती उसे केवलज्ञान की प्रतीति नहीं है। जिसे मोक्ष तत्त्व की ही खबर नहीं है उसे जीव की भी खबर नहीं है।

नव तत्त्वों में मोक्ष तत्त्व और केवलज्ञान के स्वरूप को जानना चाहिए। आत्मा ज्ञायकभाव है। देह की क्रिया से पुण्य-पाप नहीं होता। पुण्य-पाप व क्रिया-कांड मेरे में नहीं है। निर्मल ज्ञानकांड मेरा स्वरूप है; जिसने यह सब अंतर में स्वीकार किया है उसी ने केवलज्ञान को स्वीकार किया है। ऐसे भान बिना अपने हित-अहित को नहीं जाना जा सकता। केवलज्ञान अथवा मोक्ष सुख, प्राप्त करना हो तो - मोक्ष हुआ है ऐसी प्रतीति के बिना मोक्ष नहीं होता। स्वभाव अमर्यादित होता है। ऐसे चैतन्य के भान पूर्वक पूर्ण एकाग्रता द्वारा केवलज्ञान प्रगट होता है।

आत्मा पूर्ण ज्ञानस्वभावी है जिससे आत्मा लोकालोक को जानता है इसलिये कहा जाता है कि केवलज्ञान पर्याय लोकालोक में व्याप्त है। इस अपेक्षा वे आत्मा लोकालोक में व्याप्त होने से सर्वगत है।

अब, ज्ञान की भांति आत्मा का भी सर्वगतत्त्व न्यायसिद्ध है - ऐसा कहते हैं

अर्थात् केवलज्ञान सर्वगत है इसलिये आत्मा भी सर्वगत है.

ज्ञान सबसे आगे (मुख्य) है। वही स्व-पर को जानता है। केवलज्ञान पर्याय तीनकाल के सर्व द्रव्य-पर्यायरूप समस्त ज्ञेय स्वरूप को ज्ञान में नाप (जान) लेती है - जानने के लिये पहुंच जाती है - ऐसा यहाँ कहा तो क्या ज्ञान वहाँ जाता होगा ? नहीं। स्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान प्रगट हुआ है। राग किया था क्या इसलिये ज्ञेयों में पहुंचा है ? नहीं।

ज्ञान गुण में से केवलज्ञान पर्याय प्रगट हुई है जो लोकालोक को जानती है इसलिये केवलज्ञान सर्वगत है। आत्मा का अवलम्बन लेकर केवलज्ञान प्रगट होता है - जो लोकालोक को जानता है। इसलिये अब कहते हैं कि - लोकालोक व्याप्त है - भगवान आत्मा की पर्याय, लोकालोक को पहुंच जाती है इस तरह आत्मा सर्वगत है। अर्थात् केवलज्ञान सर्वगत है इसलिये कहा कि आत्मा सर्वगत है।

प्रश्न :- यदि आत्मा सर्वगत है तो फिर पुरुषार्थ करना कहाँ रहा ?

समाधान:- आत्मा ज्ञानस्वभावी है - ऐसा जिसने स्वीकार किया हैं जैस, उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्णय होता है कि निमित्त और विकारीदशा मैं नहीं हूँ अपितु मैं तो सर्वज्ञ स्वभावी हूँ; उसके ऐसे निर्णय में ही सम्यक् (सीधा) पुरुषार्थ है। केवलज्ञान लोकालोक को पहुंच जाता है इसलिये आत्मा सर्वगत कहा है। केवलज्ञान का विषय भी लोकालोक है इसलिये आत्मा का विषय भी लोकालोक है।'

एक समय की केवलज्ञान पर्याय में अनन्त केवली जानने में आ गये हैं। ज्ञान के जो विषय थे वे आत्मा के विषय हैं।

केवलज्ञान का विषय लोकालोक है इसलिये आत्मा का विषय लोकालोक है - यहाँ ऐसा कहते हैं। आत्मा कौन है ? उसकी सामर्थ्य की प्रतीति के बिना व्रत-पूजा आदि सच्चे नहीं होते। वे धर्म के व्यवहार कारण कहलाते हैं।

जिस ज्ञान पर्याय का यह लोकालोक विषय है उस ज्ञान से आत्मा अभिन्न है इसलिये लोकालोक आत्मा का विषय है यह शास्त्र में कहा है। केवलज्ञान पर्याय लोकालोक में व्याप्त है इसलिये आत्मा लोकालोक में व्याप्त है। केवलज्ञान पर्याय का विषय लोकालोक है इसलिये आत्मा का विषय लोकालोक है। इसलिये सर्व पदार्थ भगवानगत ही हैं - ऐसा व्यवहार में कहा है।

जैसे आनन्द आत्म-प्रमाण है; वैसे ही निश्चय से ज्ञान भी आत्म प्रमाण है.

अब, यहाँ आनन्द की बात करते हैं। जितने क्षेत्र में आनन्द का अनुभव है उतने क्षेत्र में आत्मा है। आत्मा लोकालोक को जानता है इसलिये आत्मा को जो सर्वव्यापक कहा है वह व्यवहार से कहा है; क्योंकि ज्ञान तो अपने में ही रहता है। यह जो उग्र ज्ञान की पर्याय होती है वह पर के सामने देखने से नहीं होती, किन्तु अंतर स्वभाव की ओर देखने से होती है। भले ही ज्ञान पर्याय और लोकालोक को व्यापक कहा था, किन्तु वह सब व्यवहार था। निश्चय से तो कोई दूसरी ही बात है। निश्चय दृष्टि से तो - अनाकुलता लक्षण सुख का जो संवेदन, उस सुख संवेदन के अधिष्ठानरूप जितना ही आत्मा है; और उस आत्मा जितना ही ज्ञान स्व-तत्त्व है।

शरीर पैसे आदि में सुख नहीं है - यह बात न्याय से समझाते हैं। ज्ञान पर्याय और आत्मा के विषय को समान जानकर लोकालोक को व्यापक कहा यह व्यवहार है; किन्तु निश्चय स्वरूप तो कुछ और है। शरीर-मन-वाणी का लक्ष्य छोड़कर अतीन्द्रिय आत्मा का लक्ष्य करे। उसका क्षेत्र कितना है ? साधक को समझाते हैं कि शरीर-मन-वाणी पर है। इनके सामने देखने से आनन्द नहीं होता; अपितु शरीर-मन-वाणी तथा पुण्य-पाप का लक्ष्य छोड़कर आत्मा का लक्ष्य करे तो ही आनन्द

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रगट होता है। आनन्द का आधार आत्मा है वह असंख्य प्रदेश में है। आत्मा की ज्ञान पर्याय, इस पदार्थ को जानती है इसलिये उसका विषय कहा जिससे आत्मा को ज्ञान का विषय कहा। स्व-पर प्रकाशक, जानने की शक्ति की अपेक्षा से सर्वगत कहा। ज्ञान में दो भाग हैं। इसमें पर प्रकाशकपना है। पर को जानता है इसलिये पर में गया हो - ऐसा कहा था। पर में गया यह व्यवहार से कहा है, किन्तु **"निश्चय से तो स्व-पर प्रकाशक ज्ञान - स्व का है"**। पर का ज्ञान स्वयं का था, किन्तु पर का ज्ञान हुआ इसलिए ज्ञान पर में गया हो - ऐसा व्यवहार कहा था। आनन्द में ऐसे स्व-पर भेद नहीं होते। आनन्द पर के कारण नहीं होता; अपितु आनन्द का आधार-अधिष्ठाता आत्मा है - ऐसा सर्वप्रथम निर्णय कर।

हमने कहा है कि आत्मा की ज्ञान पर्याय स्व-पर प्रकाशक है, जो स्व तथा पर को जानती है इसलिये उसे पर में व्यापक कहा था। अपने में पर का अभाव है तथा पर में अपना अभाव है - इस बात को रखकर पर को जानते हैं - ऐसा कहा। इसलिए ज्ञान का विषय पर है और उसे सर्वगत कहा था, इसलिए व्यवहार विषय पर है; और सर्वगत कहा था इसलिए वह व्यवहार था।

अब,वास्तविक बात क्या है ? वह कहते हैं - ज्ञान स्व क्षेत्र में है इस तरह आनन्द भी स्व क्षेत्र में है निचलीदशा में ज्ञान के वेदन का क्षेत्र, स्व क्षेत्र प्रमाण है। यहाँ सुख की बात ली है। सुख के वेदन का आधार आत्मा है। जितने में सुख का वेदन होता है उतने में आत्मा है। बाह्य दृष्टि से सुख नहीं आता। आत्मा ज्ञान और आनन्द स्वरूप है; उसके अंतर्मुख झुकाव से आनन्द होता है; इस आनन्द पर्याय का आधार आत्मा है; इसलिये उसका क्षेत्र आत्मप्रमाण है।

अज्ञानी पर के ऊपर लक्ष्य करके राग द्वेष करता है - पर के ऊपर लक्ष्य किया तो ज्ञान हुआ ऐसा उसे भ्रम होता है। ऊपर देखे तो आम दिखाई देता है - ऐसा मानता है; जबकि स्व-पर प्रकाशक ज्ञान अपने कारण से परिणमता है। जैसे ज्ञेय हैं उनका ज्ञान होता है इससे अज्ञानी को भाषित होता है कि - पर के कारण ज्ञान होता है।

इस स्व-पर प्रकाशक ज्ञान का आधार - लोकालोक नहीं किन्तु स्व-पर प्रकाशक ज्ञान का आधार आत्मा है; इसे समझाने के लिये आनन्द का दृष्टांत देते हैं। अज्ञानी क्रिया-कांड करता है। 'अहो ! कष्टो महाकष्टो लाभों किंचित न विधाते'। अज्ञान पूर्वक क्रिया कांड में थोड़ा भी लाभ नहीं है। ज्ञानी होने के पश्चात् भी शुभराग आता है, किन्तु वे उसे ज्ञेयरूप हेयरूप ही जानते हैं किन्तु उस शुभराग से धर्म होता है - ऐसा वे कभी नहीं मानते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञानरूपी पुण्य में तो संसार है। पाप में तो संसार है; वह कषाय का वेदन है जो आत्मा के क्षेत्र प्रमाण है। किसी को बिच्छू ने डंक मारा तो वहाँ दु:ख का वेदन आत्मा के क्षेत्र प्रमाण में ही है। जिस पैर में डंक लगा है उसे काट भी दिया जाये तो भी वेदन आत्मा के क्षेत्र प्रमाण में ही है। संयोग में तो वेदन नहीं है किन्तु - संयोग के कारण भी वेदन नहीं है। जैसे घर कुटुम्ब आदि का विस्तार प्राप्त हुआ है; वैसे ही दु:ख, संयोग में विस्तार नहीं पाता। दु:ख संयोग में नहीं है और त्रिकाली ज्ञानस्वभाव में भी दु:ख नहीं है। संयोग मेरे हैं - ऐसी मिथ्या मान्यता में जीव दु:ख का अनुभव करता है और वह दु:ख की पर्याय आत्मा के क्षेत्र प्रमाण में है।

केवलज्ञान है ऐसी जिसे प्रतीति हुई है उसे संसार तरफ की रुचि छूट जाती है और उसे निमित्त तथा अल्पज्ञता की हेय बुद्धि और ध्रुव स्वभाव की बुद्धि होती ही है। वास्तव में स्व-पर प्रकाशक ज्ञान आत्मप्रमाण है अर्थात् स्व क्षेत्र में है; वैसे ही आनन्द का आधार भी आत्मा ही है। पुण्य-पाप, शरीर, धनादि आनन्द का आधार नहीं है। सचमुच तो सुख का वेदन करने का अधिष्ठाता आत्मा है। आत्मा नित्य असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुणों का धाम है; इसका आश्रय करने से ही अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है। पर के सामने देखने से ज्ञान होता है - ऐसा अज्ञानी को भ्रम होता है किन्तु ज्ञान स्वयं जानने के स्वभाववाला है। नित्य जाननार स्वभावी आत्मा है इसीलिए वह पर के आधार बिना अपने से ही स्व-पर को प्रकाशित करता है - स्वयं ही आधार है। इस तरह ज्ञान का आधार आत्मा है।

आत्मा स्व-पर प्रकाशक होने से वह पर में पहुँच जाता है - ऐसा जो कहा था वह तो व्यवहार का कथन था; यदि सचमुच आत्मा पर में पहुँच जाए तो पर - आत्मा का कार्य हो जाय; लेकिन ऐसा होता नहीं है, क्योंकि आत्मा अपने असंख्य प्रदेश में ही रहता है। आनन्द का वेदन स्व का है - पर का नहीं। आनन्द का आधार - आत्मा है। चक्रवर्ती को आनन्द का आधार छह खण्ड नहीं है। किसी को प्रतिकूल संयोग हो - प्रहार (मार) पड़ती हो फिर भी सम्यक्दृष्टि को आनन्द का आधार आत्मा है। इसलिये आनन्द का क्षेत्र आत्मा प्रमाण में है। ज्ञान और आनन्द का क्षेत्र, अपने असंख्यात प्रदेश हैं। यह ख्याल (समझ) में आना चाहिए।

जीव को धर्म करना है लेकिन वह धर्म की रीति (विधि) नहीं समझता। आत्मा के बराबर ही ज्ञान स्व-तत्त्व है। पहले जो उसे पर में व्यापक कहा था उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। ज्ञान और आनन्द आदि अनन्तगुण स्व-तत्त्व है। लोकालोक को जानने पर भी ज्ञान स्व-तत्त्व है, वह पर के कारण नहीं है और वह पर में नहीं जाता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

- ऐसे भान बिना त्यागी का वेश रखकर क्रिया-काण्ड में घुस (चला) जाता है और यह चलता है, यह नहीं चलता इसमें रुक जाता है।

आत्मा अपने स्वरूप को छोड़े बिना और पर में प्रवेश किये बिना ही पर को जानता है। अर्थात् आत्मप्रमाण कि जो निज स्वरूप है उसे छोड़े बिना - पर पदार्थ में प्रवेश किये बिना ही भगवान सर्व पदार्थों को जानते हैं। लोकालोक ज्ञेय हैं उसमें गये बिना ही अपने में रहकर वह जानता है। अपने ही अस्तित्त्व में रहा हुआ आत्मा, अपनी ही सामर्थ्य से जानता है। इसप्रकार भगवान अर्थात् आत्मा सर्व पदार्थों को जानता है।

आत्मा सर्व पदार्थों को जानता है इसलिए आत्मा व्यवहार से सर्वगत है.

निश्चयनय से ऐसा होने पर भी व्यवहारनय से सर्वगत है - ऐसा कहा जाता है। निश्चयनय से स्वयं अपने में रहकर जानता है, फिर भी व्यवहारनय से भगवान सर्वगत है - ऐसा कहा जाता है।

व्यवहारनय जो कथन करता है उसका अर्थ - "ऐसा नहीं है (अेम नथी)" यह होता है।

किन्तु स्व-पर प्रकाशक परिणमन अपने ज्ञान में ही है; उसमें ज्ञेय निमित्त होते हैं इसलिये भगवान सर्वगत है - ऐसा कहा जाता है। जीव ने कभी आत्म ऋद्धि की बात सुनी नहीं; यह तो स्वरूप संपदा की बात है। चैतन्य स्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है किन्तु शरीर-मन-वाणी उसकी संपदा नहीं है तथा पुण्य-पाप भी उसकी संपदा नहीं है।

अज्ञानी को शुभाशुभराग की ममतारूपी कोढ़ (कुष्ट-रोग) हुआ है। जिस तरह सफेद कोढ़ निकलने पर मनुष्य सुंदर नहीं कहलाता; उसी तरह शुभभाव से आत्मा शोभा नहीं पाता। पुण्य परिणाम चैतन्य ज्ञानशरीर को कोढ़ के समान है। स्वरुप तो ऐसे पुण्य-पाप दोष रहित, चिदानन्द है।

जितने पदार्थ हैं उन्हें आत्मा जानता है इसलिये पदार्थ आत्मगत हैं - ऐसा कहने में आता है। अर्थात् नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों को आत्मा में रहे हुए देखकर सर्व पदार्थ आत्मगत है ऐसा उपचार करने में आया है; परन्तु उनका एक दूसरे में (परस्पर) गमन (आना-जाना) नहीं होता; क्योंकि सभी द्रव्य अपने-अपने में स्वरूपनिष्ठ है। इसप्रकार भगवान आत्मा पर को जानता है इसलिये आत्मा को व्यवहारनय से सर्वगत कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अब, आत्मा में ज्ञेय जानने में आते हैं इसलिये सर्व पदार्थ आत्मगत हैं - ऐसा कहते हैं। नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकारों अर्थात् ज्ञान में हुई स्व-पर प्रकाशक स्वच्छ अवस्थारूप ज्ञेयाकार। इन ज्ञेयाकारों को ज्ञानाकार भी कहने में आता है। "क्योंकि ज्ञान ही इन ज्ञेयाकारोंरूप परिणमित हुआ है" और पर पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय उसके निमित्त हैं। जैसा ज्ञेय का स्वरूप है वैसा ज्ञान अपने कारण से परिणमता है, ज्ञान अपनी सामर्थ्यरूप परिणमता है। ज्ञेयाकार अपनी ज्ञान की अवस्था है। इन ज्ञान के ज्ञेयाकारों को आत्मा में देखकर, समस्त पर पदार्थ आत्मा में है - ऐसा उपचार किया गया है। यही बात आगे ३१वीं गाथा में दर्पण के दृष्टांत से समझाएंगे।

अब, पर पदार्थ आत्मा में हैं - ऐसा उपचार करते हैं। ज्ञान पर्याय अपनी सामर्थ्य से परिणमित होती है। ज्ञेयाकारों में ज्ञान स्व-पर प्रकाशकरूप परिणमता है, उसमें पर वस्तु निमित्त है; इसलिए पर पदार्थ ज्ञान में प्रवेश कर गये हैं - ऐसा कहा जाता है। जिस तरह आत्मा राग और पर का जाननेवाला है, किन्तु पर में प्रवेश नहीं करता; उसी तरह पर भी आत्मा में प्रवेश नहीं करते, किन्तु जैसे ज्ञेय हैं वैसा आत्मा जानता है इसलिये 'आत्मा को ज्ञेयगत' कहते हैं और ज्ञेय आत्मगत हुये कहलाते हैं - इस तरह उपचार करने में आया है।

सभी द्रव्य, निश्चय से अपने स्वरूप में रहते हैं.

परमार्थ से उनका एक-दूसरे में गमन नहीं होता। आत्मा पर को जानता है इसलिए आत्मा पर में नहीं जाता और पर को जानने पर भी पर पदार्थ आत्मा में नहीं आ जाते क्योंकि सर्व ही द्रव्य स्वरूपनिष्ठ हैं - अपने-अपने स्वरूप में निश्चल रहते हैं, पर्याय बाहर नहीं जाती।

यदि किसी को बिच्छू काट ले तो ज्ञान जानता है कि बिच्छू ने काटा है किन्तु ज्ञान बिच्छू को स्पर्श नहीं करता; उस समय ज्ञान की योग्यता में ऐसा ही ज्ञेय होता है। कोई भी पर पदार्थ अपनी पर्याय छोड़कर पर में नहीं जाता, पदार्थ अपनी पर्याय पर को नहीं सौंपता (देता)।

ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है यह सिद्ध करने के लिये यह बात ली गई है। आत्मा को सर्वगत कहकर कहा गया है कि - आत्मा सर्वगत उपचार से है निश्चय से तो वह आत्मगत (स्वगत) है। आनन्द के न्याय से भी आत्मा स्वगत है। बाहर के आश्रय से आनन्द नहीं है, आनन्द का क्षेत्र आत्मप्रमाण है इस न्याय से आत्मा को स्वगत कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यही क्रम ज्ञान में भी निश्चित करना। आत्मा और ज्ञेयों के विषय में जैसा निश्चय व्यवहार कहा है, वैसा ही ज्ञान और ज्ञेयों के विषय में भी समझना। ज्ञान पर को जानता तो है किन्तु पर में नहीं जाता और ज्ञान ज्ञेयाकाररूप होते हुए भी ज्ञेय ज्ञान में नहीं आते। आत्मा पर को जाने तो भी आत्मा पर में नहीं जाता और आत्मा ज्ञेयाकाररूप होता है तब भी ज्ञेय आत्मा में नहीं आते - ऐसी स्वतंत्रता सिद्ध की है।

❁ ❁ ❁

चमड़ा उतारकर जूते बनवा दें तथापि जिस उपकार का बदला न दिया जा सके ऐसा उपकार गुरु आदि का होता है। उसके बदले उनके उपकार का लोप करे वह तो अनन्त संसारी है।

किसके पास श्रवण किया जाये इसका भी जिसे विवेक नहीं है वह आत्मा को समझने के योग्य नहीं है-पात्र नहीं है। जिनके लौकिक न्याय नीति का भी ठिकाना नहीं है ऐसे जीव शास्त्रों का प्रवचन करें और उसे जो सुनने जाये वे श्रोता भी पात्र नहीं है।

- गुरुदेवश्री के वचनामृत, ९

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २७

अथात्मज्ञानयोरेकत्वान्यत्वं चिन्तयति -

णाणं अप्प त्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं।
तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं व अण्णं वा ॥२७॥

अब, आत्मा और ज्ञान के एकत्व-अन्यत्व का विचार करते हैं:-

है ज्ञान आत्मा जैन मत में ज्ञान आत्मा बिन नहीं।
है ज्ञान आत्मा ही तथा वह ज्ञान भी है अन्य भी ॥२७॥

गाथार्थ:- ज्ञान आत्मा है ऐसा जिनदेव का मत है। आत्मा के बिना (अन्य किसी द्रव्य में) ज्ञान नहीं होता, इसलिये ज्ञान आत्मा है; और आत्मा (ज्ञानगुण द्वारा) ज्ञान है अथवा (सुखादि अन्य गुण द्वारा) अन्य है।

टीका:- क्योंकि शेष समस्त चेतन तथा अचेतन वस्तुओं के साथ समवाय सम्बंध नहीं है, इसलिये जिसके साथ अनादि अनन्त स्वभावसिद्ध समवाय सम्बंध है ऐसे एक आत्मा का अति निकटतया (अभिन्न प्रदेशरूप से) अवलम्बन करके प्रवर्तमान होने से ज्ञान आत्मा के बिना अपना अस्तित्त्व नहीं रख सकता; इसलिये ज्ञान आत्मा ही है और आत्मा तो अनन्त धर्मों का अधिष्ठान (आधार) होने से ज्ञानधर्म के द्वारा ज्ञान है और अन्य धर्म के द्वारा अन्य भी है।

और फिर इसके अतिरिक्त (विशेष समझना कि) यहाँ अनेकान्त बलवान है। यदि यह माना जाये कि एकान्त से ज्ञान आत्मा है तो, (ज्ञानगुण आत्मद्रव्य हो जाने से) ज्ञान का अभाव हो जाएगा, (और ज्ञानगुण का अभाव होने से) आत्माके अचेतनता आ जाएगी अथवा विशेष गुण का अभाव होने से आत्मा का अभाव हो जायेगा। यदि यह माना जाये कि सर्वथा आत्मा ज्ञान है तो, (आत्मद्रव्य एक ज्ञानगुणरूप हो जाने पर ज्ञान का कोई आधारभूत द्रव्य नहीं रहने से) निराश्रयता के कारण ज्ञान का अभाव हो जाएगा अथवा (आत्मद्रव्य के एक ज्ञानगुणरूप हो जाने से) आत्मा की शेष पर्यायों का (सुख, वीर्यादि गुणों का) अभाव हो जाएगा और उनके साथ ही अविनाभावी सम्बंधवाले आत्मा का भी अभाव हो जाएगा। (क्योंकि सुख, वीर्य इत्यादि गुण न हों तो आत्मा भी नहीं हो सकता)।

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा २७ पर प्रवचन

अब, आत्मा और ज्ञान के एकत्व, अन्यत्व का विचार करते हैं।

आत्मा का अन्य आत्माओं तथा अचेतन पदार्थों के साथ सम्बंध नहीं है.

यह ज्ञानस्वभाव जो अंदर है वह आत्मा है। ज्ञानस्वभाव जानने का काम करता है। वह स्वभाव - आत्मा है। पर वस्तु उसमें नहीं है। राग-द्वेष क्षणिक हैं वह भी मूल आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा का स्वभाव निरंतर जानने का है। **'जाननहार ही आत्मा है।'** यह ज्ञान ही जानता है। ज्ञान का आत्मा के साथ नित्य तादात्म्य एकमेक सम्बंध है। इस ज्ञान का अन्य पर पदार्थों कि जो अनन्त आत्मा केवली, निगोदिया हैं उनके साथ में तादात्म्य स्वरूप नहीं है।

कोई कहता है कि ज्ञान बाहर से आता है, किन्तु जब प्रयोग किया जाता है तब ज्ञात होता है कि ज्ञान बाहर से नहीं आता। ज्ञानपर्यायरूप आत्मा के परिणमन से केवलज्ञान प्रगट होता है। इस ज्ञान का सम्बंध अन्य केवलियों के साथ नहीं है अपितु अंतर्मुखता के साथ है। इस ज्ञान का शरीर-मन-वाणी आदि अचेतन के साथ में समवाय सम्बंध नहीं है। इस तरह अंतर्मुख दृष्टि करो कि ज्ञान का आत्मा के साथ नित्य तादात्म्य सम्बंध है किन्तु ज्ञान का अनन्त आत्माओं, शरीर, वाणी आदि के साथ कुछ भी सम्बंध नहीं है।

ज्ञान और आत्मा का लक्षण आदि भेद से भेद है किन्तु प्रदेश भेद नहीं है। इस प्रकार ज्ञान है वही आत्मा है ऐसा वीतराग का अभिप्राय यह है। अनन्त केवली हुये उन्होंने केवलज्ञान से देखा है कि ज्ञान आत्मा है उसका उग्र परिणमन, शक्ति में से होता है।

कर्म मंद पड़े और राग की मंदता हो, उसके साथ ज्ञान का सम्बंध नहीं है। दूसरे लोग कहते हैं कि आत्मा और ज्ञान का सम्बंध बाहर से होता है - यह बात असत्य है; क्योंकि यदि - ऐसा माना जाए कि देव-गुरु-शास्त्र, आहार-पानी, हवा इत्यादि बाह्य वस्तु से ज्ञान आता है, तो ज्ञान का परमाणु के साथ सम्बंध हो जाएगा; किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि ज्ञान का आत्मा के साथ ही सम्बंध है; इसलिये ज्ञान का विकास आत्मा के साथ सम्बंध करने से होता है। शरीर, संहनन और काल के साथ ज्ञान तद्रूप नहीं है।

समवाय सम्बंध अर्थात् जहाँ गुण होते हैं वहाँ गुणी होता है। ज्ञान हो वहाँ आत्मा होता है और वहीं ज्ञानादि अनन्तगुण होते हैं। जहाँ गुण नहीं हो तो गुणी भी नहीं होता;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे ज्ञान नहीं हो तो वहाँ आत्मा भी नहीं होता और गुणी नहीं हो तो वहाँ गुण भी नहीं होते। जैसे आत्मा नहीं हो तो वहाँ ज्ञान भी नहीं होगा। इसप्रकार गुण-गुणी का अभिन्न प्रदेशरूप सम्बंध है यही समवाय सम्बंध है।

आत्मा जाननहार है। पुण्य-पाप के विकल्प आते हैं उनके साथ आत्मा का सम्बंध नहीं है।

धर्म अर्थात् ज्ञानस्वभाव का धर्मी के साथ तादात्म्य सम्बंध है। जिसे शान्ति और सुख चाहिये वह आत्मा के साथ सम्बंध रखे तो मिलता है; क्योंकि वह वहाँ है। यही सम्यग्दर्शन है - स्वतंत्रता है - सुख है।

पर के साथ अनित्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है और विकार के साथ अनित्य तादात्म्य सम्बंध है.

अब, आत्मा का किसके साथ त्रिकाल सम्बंध है - वह बताते हैं। ज्ञान का आत्मा के साथ अनादि अनन्त स्वभाव सिद्ध समवाय सम्बंध है। पहले केवलज्ञान की बात की थी और कहा था कि केवलज्ञान तीनलोक में प्रवेश नहीं करता, फिर भी जाने बिना नहीं रहता। केवलज्ञान पर में व्याप्त हो गया है - ऐसा कहा जाता है। आत्मा का विषय लोकालोक है - आत्मा लोकालोक में व्याप्त होता है - ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं - ज्ञेय ज्ञानाकार हुए हों और लोकालोक आत्माकार हुआ हो ऐसा यहाँ परस्पर सम्बंध बताकर, ज्ञान की परिपूर्ण स्वच्छता की महिमा बताई गई है कि केवलज्ञान ऐसा है कि जो लोकालोक के विषय को, विषय करता है और उस ज्ञान में लोकालोक आ जाता हैं - यह कथन व्यवहार से किया गया है।

ज्ञान किस तरह प्रगट होता है ?

ज्ञान ही आत्मा है आत्मा का पर के साथ सम्बंध बताया गया था, किन्तु ज्ञान का आत्मा के साथ त्रिकाल सम्बंध है। अनन्त आत्मा और परमाणु को अलग निकालकर, ज्ञान आत्मा के साथ अनादि अनन्त सम्बंध रखता है। स्त्री-पुत्रादि के साथ सम्बंध नहीं रखा जा सकता।

जबतक संसार में रहते हैं तबतक तो स्त्री-पुत्रादि के साथ सम्बंध है - यह बात तो सही है ना ?

नहीं। शरीर-मन-वाणी, स्त्री-पुत्रादि पर वस्तु के साथ तो एक समय का अनित्य तादत्म्य सम्बंध भी नहीं है। जीव राग करता है इसलिये सम्बंध की कल्पना करता है। शुभाशुभराग और भ्राँति के साथ आत्मा का एक समय का अनित्य तादात्म्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्बंध है, किन्तु अन्य पदार्थों के साथ तो एक समय मात्र का भी अनित्य तादात्म सम्बंध नहीं है। राग का तथा पर वस्तु का निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है अर्थात् पर के कारण पर पर्याय होती है और आत्मा में अपने कारण अपनी पर्याय होती है - ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध का अर्थ है। मैं शरीर हूँ, मन-वाणी हूँ, दया-दान-व्रतादि जितना ही मैं हूँ - ऐसे परिणाम के साथ एक समय का अनित्य तादात्म्य सम्बंध है।

ज्ञान का आत्मा के साथ नित्य तादात्म्य सम्बंध है, इसलिये उसकी रुचि कर और अन्य की रुचि छोड़.

अब दूसरे सम्बंध की बात करते हैं। ज्ञान और आत्मा के साथ नित्यतादात्म्य सम्बंध अर्थात् अनादि अनन्त सम्बंध है। अब, इन तीन सम्बंधों में कौन आदरणीय है उसका विचार करते हैं। भगवान आत्मा को शरीर-मन-वाणी के साथ अनित्य तादात्म्य सम्बंध भी नहीं है, किन्तु अनित्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। त्रिलोकीनाथ परमात्मा कहते हैं कि ज्ञान और आत्मा के साथ नित्य तादात्म्य सम्बंध है। शरीर-मन-वाणी कर्म के साथ अनित्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। पुण्य-पाप के विकार के साथ अनित्य तादात्म्य सम्बंध है। ज्ञान और आत्मा के साथ नित्य तादात्म्य सम्बंध है, जो अनादि अनन्त है।

अज्ञानी कृत्रिम निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध के साथ एकत्व किये हुये हैं, अथवा आगे चले तो अनित्य तादात्म्य सम्बंध जितना अपने को मानता है, जो भ्रम है। यहाँ कहते हैं कि ज्ञान और आत्मा के साथ नित्य तादात्म्य सम्बंध है; इसलिये ज्ञान अनित्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध में से नहीं आता; वैसे ही ज्ञान का अनित्य विकार के साथ - तादात्म्य सम्बंध नहीं है; इसलिये ज्ञान उसमें से नहीं आता। ज्ञान का आत्मा के साथ कायमी सम्बंध है इसलिये ज्ञान आत्मा में से आता है।

भगवान आत्मा और लोकालोक का अनित्य पृथक निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। विकार के साथ अनित्य तादात्म्य सम्बंध है। भगवान आत्मा और ज्ञान का नित्य तादात्म्य सम्बंध है। इसलिये अनित्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध की रुचि छोड़ और जो हिंसादि तथा दया-दान आदि के परिणाम हैं, इनके साथ अनित्य तादात्म्य सम्बंध है अत: उनकी भी रुचि छोड़; उनके आश्रय से भी कल्याण नहीं होता।

भगवान आत्मा का ज्ञान के साथ अनादि-अनन्त नित्य तादात्म्य सम्बंध है - ऐसी दृष्टि तादात्म्य सम्बंध के साथ नहीं करने से और अनित्य निमित्त-नैमित्तिक के साथ सम्बंध करने से जीव मिथ्यादृष्टि होता है। भगवान आत्मा वस्तु है जो आदि-अन्त से रहित है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा के बिना ज्ञान नहीं होता, इसलिये ज्ञान आत्मा ही है.

यहाँ सुखी होने का रास्ता बताया जाता है। आत्मा आनन्द स्वरूप है। ज्ञान का आत्मा के साथ तादात्म्यस्वरूप स्वभाव सम्बंध है - ऐसा देखते ही आनन्द आये बिना नहीं रहता। ज्ञान जितना ही आत्मा नहीं है, किन्तु ज्ञान के साथ आनन्द आदि अनन्त गुण भी है। ज्ञान असंख्य प्रदेशी आत्मा का अवलम्बन लेकर वर्तता है। ज्ञान को आत्मा का अवलम्बन है।

यह आनन्द की बात है। आनन्द कहो अथवा धर्म कहो अथवा समकित कहो अथवा अतीन्द्रिय आनन्द कहो अथवा सम्यग्दर्शन कहो एक ही बात है। ज्ञान का आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बंध है। वस्तु त्रिकाली है। ज्ञानस्वभाव भी त्रिकाली है। विकार के साथ नित्य तादात्म्य सम्बंध नहीं है। पर के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। ज्ञान का आत्मा के साथ अर्थात् विशेष का सामान्य के साथ तादात्म्य सम्बंध है। आत्मा के जो असंख्य प्रदेश हैं वे ही असंख्य प्रदेश ज्ञान के भी हैं। आचार्य ने गागर में सागर भर दिया है। भगवान आत्मा का ज्ञान आत्मा का अवलम्बन लेकर रहता है, लेकिन ज्ञान कभी भी निमित्त और राग का अवलम्बन लेकर नहीं रहता।

इस बात को उत्साह से ध्यान में लेनेवाला वीर्यवंत ही इस धर्म के लिये पात्र है। संसार में कोई नई बात आए अथवा लड़के की सगाई की बात आए तो वहाँ कितना उल्हास आता है। जबकि वहाँ तो कुछ भी सुख नहीं है क्योंकि अनित्य निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध में शान्ति का अंश भी नहीं होता। उपवास आदि राग में से भी शान्ति का अंश नहीं आता।

भगवान का ज्ञान आत्मा के साथ अवलम्बन लेकर है। आत्मा के बिना ज्ञान अपने अस्तित्त्व को कायम नहीं रख सकता। इसलिये ज्ञान आत्मा है। यह चैतन्य स्वभाव है। जो वस्तु है उसकी शुरुवात नहीं होती और नाश भी नहीं होता। जो है उसका नित्य स्वभाव होता है; इसलिये उसका ज्ञानस्वभाव है अत: ज्ञान आत्मा ही है, इसका अनेकान्त अब बाद में कहेंगे।

आत्मा अनादि अनन्त है इसका अवलम्बन लेकर ज्ञान रहता है इसलिये ज्ञान आत्मा है। ज्ञान बाहर से अथवा राग-द्वेष से अथवा अनुकूल प्रयोग से नहीं आता, किन्तु अंतर के प्रयोग द्वारा प्रगट होता है। ज्ञान लक्षण है - आत्मा लक्ष्य है। इस तरह ऐसा सिद्ध करके कहा है कि ज्ञान आत्मा है। सर्वप्रथम देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं कि ज्ञान आत्मा है। निमित्त तरीके होकर पर के साथ सम्बंध करे, तथा ज्ञान के लिये राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का प्रयोग करे तो ज्ञान प्रगट होता है - ऐसा कोई माने तो ज्ञान आत्मा के साथ सम्बंध नहीं रखता।

साधकदशा में शुभराग आता है यह बात सही है, किन्तु उस राग से और निमित्तों से ज्ञान होगा - ऐसा कहनेवाले सच्चे देव-गुरु-शास्त्र नहीं है। वे वस्तु को नहीं समझते। ज्ञान का आत्मा के साथ सम्बंध है; उसके साथ प्रयोग से मिलाये तो केवलज्ञान होगा। जिस तरह रोटी बनाने के पहले आटे को मिलाते हैं, उसमें कस है तो आता है। वह परमाणुओं का अपना स्वभाव है आटे का तवे के साथ सम्बंध नहीं है; वैसे ही ज्ञान और आत्मा है; उसका अंतर में प्रयोग करते ही मिलाप होता है। इसके बदले निमित्त और राग के साथ प्रयोग करने पर मिथ्यात्व होता है। इसलिये ज्ञान का आत्मा के साथ सम्बंध है ऐसा माने तो वहाँ एकता करने से केवलज्ञान होता है। इस तरह आत्मा अनन्त धर्मों का आधार है।

आत्मा अनन्त धर्मों का अधिष्ठान होने से ज्ञान धर्म द्वारा ज्ञान है और अन्य धर्म द्वारा अन्य भी है। आत्मा अनन्त धर्मों का आधार है। यहाँ ज्ञान-दर्शन आदि गुणों को धर्म कहा गया है। ज्ञान, आत्मा में एकाकार होते ही मात्र ज्ञान की पर्याय ही प्रगट होती है - ऐसा नहीं है। आत्मा में अनन्त गुण हैं अनन्त गुणों का निर्मल सम्बंध है जो प्रगट होता है। इसलिये ज्ञान का आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बंध है - ऐसा निश्चित करने पर दर्शन, चारित्र आदि पर्यायें प्रगट होती हैं।

यहाँ कहा है कि - ज्ञान को आत्मा कहा तो ज्ञान जितना ही आत्मा नहीं है, अपितु आत्मा तो सुख, चारित्र, श्रद्धा, दर्शन, वीर्यादि अनन्त गुणों का आधार है। आत्मा एक ज्ञान में नहीं समा जाता। स्वभाव तो स्वभाववान के साथ सम्बंध रखता है - ऐसा निश्चित करते ही आत्मा, मात्र ज्ञान की सम्यक् अवस्थारूप ही परिणमित हुआ है - ऐसा नहीं है; किन्तु अनन्त धर्मों की पर्याय के साथ परिणमित होता हुआ दिखाई देता है। आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदिरूप परिणमित होता है। आत्मा ज्ञान धर्म द्वारा ज्ञान है, आनन्द स्वभाव द्वारा आनन्द है इस तरह जितनी भी शक्तियाँ हैं वे सभी शक्तियाँ आनन्दमय है। ज्ञान का आनन्द आता है उसके साथ प्रभुत्त्व का आनन्द, स्वच्छता का आनन्द, दर्शन का आनन्द इस तरह अनन्त शक्तियों का आनन्द आता है। आत्मा ज्ञान है, दर्शन है, अस्तित्त्व है, प्रभुत्त्वपना भी है, स्वच्छता भी है, अकारणकार्यत्वपना भी है; इस तरह एक साथ अनन्त ही धर्म आत्मा में रहते हैं। द्रव्य-दृष्टि से ही स्वभाव और विभाव का, निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध टूट सकता है। इस तरह जो, स्वभाव की बात नहीं समझता उसे अनादि की चार गतियों में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रोधादि के प्रहार पड़ते हैं।

ज्ञानस्वभावी आत्मा की दृष्टि छोड़कर जो राग की दृष्टि में पड़ा है उसका रास्ता ही बहुत उल्टा है। लेंड़ीपीपर में जो तिखास है वह पत्थर में से नहीं आती। तिखास का लेड़ी पीपर के साथ तादात्म्य सम्बंध है और पत्थर के साथ पृथक निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। पहले विकार और स्वभाव के साथ अनित्य तादात्म्य सम्बंध कहा था वहाँ पर्याय को बताया था। अब, "स्वभाव की दृष्टि से देखा जाय तो स्वभाव का विकार के साथ में अत्यंत अभाव है;" इसलिये निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध टूट सकता है। किन्तु ज्ञान के साथ त्रिकाल सम्बंध होने से वह कभी नहीं टूटता। कोई व्यक्ति जबतक गाँव में रहता है तबतक उस गाँव में रहनेवाले लोगों के साथ विवाह आदि प्रसंग का व्यवहार होता है; किन्तु उस व्यक्ति के, शहर में रहने के लिए चले जाने पर, उस गाँव के व्यक्तियों के साथ सम्बंध टूट जाता है। उसी तरह आत्मा का पुण्य-पाप के साथ अनित्य तादात्म्य सम्बंध रहा था। पर से पृथक करने की बात की थी, किन्तु स्वभाव-दृष्टि से तो स्वभाव का विभाव के साथ - अत्यंत अभाव है।

जिनसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है, वह टूट सकता है। आत्मा अनन्त गुणों को धारण करनेवाला है। ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञान कहलाता है, प्रभुत्त्व धर्म द्वारा आत्मा - परमेश्वर कहलाता है, विभु धर्म द्वारा आत्मा विभु है, चारित्र धर्म द्वारा आत्मा चारित्र कहलाता है, श्रद्धा धर्म द्वारा आत्मा श्रद्धा कहलाता है। इस तरह आत्मा परमेश्वर है। यह मत सर्वज्ञ भगवान का है। ज्ञान धर्म द्वारा आत्मा ज्ञान है। प्रत्यक्ष अनुभव वेदन द्वारा आत्मा प्रकाशमय है। इस तरह अन्य धर्मों द्वारा आत्मा अन्य भी है।

ज्ञान आत्मा है ऐसा एकान्त माने तो आत्मा को अचेतनपने का तथा अभाव का प्रसंग आता है.

इसके अतिरिक्त इतना विशेष समझना कि - यहाँ अनेकान्त बलवान है। यदि एकान्त ज्ञानगुण को ही आत्मा माना जाय तो ज्ञान गुण आत्म द्रव्य हो जाने से ज्ञान का अभाव हो जायगा। ज्ञान ही आत्मा है। यह त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा कहा गया था किन्तु ज्ञान जितना ही आत्मा हो जाय तो एकान्त हो जाता है। ज्ञान ही आत्मद्रव्य है यदि ऐसा मानों तो ज्ञान गुण नहीं रहा गुण स्वयं ही गुणी अर्थात् द्रव्य हो जायगा।

यह अलौकिक न्याय है। दिव्य ध्वनि में से निकले हुए प्रवचनों का इसमें सार है। यहाँ अनेक धर्मों को सिद्ध करना यह हेतु बलवान है। ज्ञान ही आत्मा है और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा अनन्त गुणों का आधार है ऐसा कहकर ज्ञान द्वारा आत्मा की पहचान कराई गई थी। ज्ञान लक्षण आत्मा में व्याप्त होता है इसलिये ज्ञान वह आत्मा है यह कहा था, किन्तु ज्ञान वह आत्मा ऐसा सर्वथा नहीं - कथंचित् है। ज्ञान वह आत्मा कहा सो उसका स्वभाव के साथ तादात्म्य सम्बंध है और पर के साथ नित्य तादात्म्य सम्बंध नहीं है यह बताने के लिये उक्त कथन किया गया था; किन्तु एकान्त ज्ञान आत्मा है, यदि ऐसा माना जाए तो - ज्ञान गुण आत्म द्रव्य हो जाने से ज्ञान का अभाव हो जायेगा।

ज्ञान वह आत्मा यह अनेकान्तपने कहा गया था; किन्तु एकान्त ज्ञान ही आत्मा है यदि ऐसा एकान्त माने तो ज्ञानगुण, गुणी हो जाता है; वहाँ गुण ही नहीं रहा और ज्ञान स्वयं द्रव्य हो जाने से वह गुण नहीं रहा इसलिए ज्ञानगुण का अभाव हो जाता है।

ज्ञानस्वभाव है और आत्मा स्वभाववान है; यदि स्वभाव, स्वभाववान हो जाय तो स्वभाव अर्थात् गुण का अभाव हो जायगा। इस तरह ज्ञान का अभाव होने से आत्मा अचेतन हो जायगा और विशेषगुण का अभाव होने से आत्मा का ही अभाव होगा; इसलिए ज्ञान को धारण करनेवाले आत्मा का ही नाश हो जाता है। ज्ञान ही आत्मा है यह बात वेदांत आदि में कहीं मिले तो भी यह उन जैसी नहीं है। वहाँ बाहर से तो वैराग्य दिखाते हैं और कहते हैं कि - 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसी यह बात नहीं है।

इस तरह सच्ची वस्तु स्थिति को समझकर प्रतीति में लाओ। खोटे ध्यान के प्रयोग अथवा जंगल में जाने के प्रयोग सभी निष्फल हैं। यदि ज्ञान को स्वतंत्र गुण नहीं माना तो ज्ञान बिना आत्मा अचेतन हो गया। ऐसा मानने से तो द्रव्य अचेतन हुआ अथवा विशेष गुण का अभाव होने से आत्मा का अभाव होगा; अथवा इसमें द्रव्य का ही नाश हो जाता है। इसलिये ज्ञान ही आत्मा है - ऐसा एकान्त नहीं है अपितु इसमें तो आनन्द, श्रद्धा, चारित्र, वीर्य इत्यादि अनन्त गुण साथ-साथ आ जाते हैं।

इसप्रकार २७ वीं गाथा में निम्न बातें आई हैं :-

(१) यह आत्मा ज्ञान के बिना अस्तित्त्व को धारण नहीं करती। इसलिये जो आत्मा ज्ञान है वह ज्ञान अन्य आत्माओं और जड़ पदार्थों के साथ सम्बंध नहीं रखता अर्थात् राग और इन्द्रिय शरीरादि निमित्त के साथ ज्ञान का सम्बंध नहीं है अपितु ज्ञान आत्मा के साथ सम्बंध रखता है; इसलिये ज्ञान आत्मा है। अचेतन और अन्य चेतन द्रव्यों से ज्ञान बिलकुल भिन्न रहता है। ज्ञान, ज्ञानस्वभावी आत्मा के साथ अतिनिकट क्षेत्र में सदा एकमेक रहने से वह आत्मा के बिना नहीं रहता, इसलिये ज्ञान ही आत्मा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२) आत्मा अनन्त गुणों को धारण करनेवाला है इसलिये आत्मा ज्ञान गुण द्वारा ज्ञान है, दर्शन गुण द्वारा दर्शन है, चारित्र धर्म द्वारा आत्मा चारित्र है इत्यादि।

'एकान्त ज्ञान को ही सर्वथा आत्मा मानने से तीन दोष आते हैं वह बताते हैं:-'

(३) अब 'ज्ञान ही आत्मा है' ऐसा एकान्त माना जाय तो गुण, द्रव्य हो जाने से ज्ञान गुण का अस्तित्त्व नहीं रहेगा।

(४) गुण, गुणी होने से गुण का अभाव होता है। इसलिए आत्मा में ज्ञान नहीं रहा, इसलिए आत्मा को अचेतनपना आ जायगा।

(५) विशेषगुण का अभाव होने से अर्थात् यदि आत्मा में ज्ञान का विशेषगुण नहीं हो तो आत्मा का अभाव होगा। और विशेषगुण के अभाव होने से आत्मा का अभाव हो जायगा। इस तरह यह तीन दोष बताये हैं।

(६) आत्मा सर्वथा ज्ञान ही है ऐसा माना जावे तो गुणी, गुण हो जायगा और ज्ञान को द्रव्य का आधार नहीं रहने से निराश्रयपने के कारण, ज्ञान का अभाव होगा।

(७) यदि, आत्मा एकान्त ज्ञानरूप हो तो शेष गुणों अर्थात् दर्शन, चारित्र, वीर्य, सुख आदि गुणों का अभाव होता है।

(८) विशेष गुणों का अभाव होने पर, उनसे संबंधित आत्मा का नाश होता है। जहाँ सुख-वीर्यादि विशेषगुण न हों तो वहाँ आत्मा भी नहीं होता।

वीतराग मार्ग में यह वस्तु स्वरूप है। आत्मवस्तु ज्ञान के अतिरिक्त दूसरे गुणों के साथ भी सम्बंध रखती है। यह ज्ञान तत्त्व अधिकार है। ज्ञान ही आत्मा है अथवा आत्मा ही ज्ञान है - यह अपेक्षा से कहा गया था, किन्तु ऐसा एकान्त कथन नहीं है, अपितु एक साथ अनेक स्वभाव आत्मा में रहते हैं। आत्मा को ज्ञान जितना ही मानने से शेष अनन्त गुणों का अभाव होता है। सुख-वीर्यादि गुण नहीं हो तो आत्मा भी नहीं होता। इसलिये आत्मा ज्ञान ही है - ऐसा एकान्त नहीं है।

सर्वथा अर्थात् एकान्त आत्मा ज्ञान ही है - ऐसा कहा जाए तो गुणी ही गुण हो जाता है जिससे गुणी के आश्रय बिना ज्ञान का अभाव होता है। यदि, आत्मा एक ज्ञान गुणरूप ही हो तो इसमें शेष गुणों का नाश होता है। आत्मा को एक ज्ञानगुणरूप ही माना जाए तो शेष गुणों का अभाव हो जायगा। जबकि द्रव्य तो अनन्त गुणों का पिंड है यदि अनन्त गुण न हो तो आत्मा भी नहीं होता।

ज्ञान ही आत्मा है जो अन्य के साथ वर्तन नहीं करता। ज्ञान तेरे साथ असंख्य प्रदेश में है। आत्मा का ज्ञान गुण के साथ प्रदेश भेद नहीं है, अपितु अभिन्न प्रदेशी है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस अपेक्षा से ज्ञान ही आत्मा है यह कहा है।

पुनश्च, ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञान है, उसी तरह आनन्द द्वारा आत्मा आनन्द है। इसी तरह अन्य धर्म द्वारा आत्मा अन्य है। ज्ञान ही आत्मा है - ऐसी जो बात कही गई थी उसका विस्तार करते हैं। ज्ञान ही आत्मा है - यदि ऐसा सर्वथा कहोगे तो ज्ञान ही आत्मा हो जाने से ज्ञान का नाश हो गया और ज्ञान का नाश हो जाने से आत्मा अचेतन हो जायेगा। विशेष गुण के बिना, आत्मा का ही अभाव होता है।

ज्ञान, ज्ञान स्वरूप ही है यह बात सही है, किन्तु आत्मा ज्ञान स्वरूप ही है - ऐसा सर्वथा एकान्त नहीं है। जैसे, आत्मा द्रव्य से नित्य ही है यह बात सही है यह सम्यक् एकान्त है, किन्तु आत्मा नित्य ही है और किसी भी प्रकार से अनित्य नहीं है - ऐसा समझे तो एकान्त हो जाता है; वैसे ही ज्ञान, ज्ञान ही है यह सही है किन्तु आत्मा ज्ञान ही है - ऐसा सर्वथा एकान्त नहीं। ज्ञान लक्षण द्रव्य के साथ तादात्म्यपने है किन्तु एक ज्ञान जितना ही आत्मा है ऐसा नहीं है। ज्ञान द्वारा आत्मा, ज्ञान है किन्तु ज्ञान के साथ अनन्त गुण भी हैं।

यदि, आत्मा एक ज्ञानरूप ही माना जाये तो ज्ञान को द्रव्य का आश्रय नहीं रहने से ज्ञान का अभाव होगा। इसमें अनन्त गुणों का अभाव होगा और उससे अनन्त गुणों का आधार ऐसे आत्मा का भी अभाव होगा।

दया-दानादि के विकार के बिना आत्मा रह सकता है। क्योंकि क्षणिक विकार - स्वभाव के अवलम्बन से नाश को प्राप्त हो जाता है; इसलिये विकार और आत्मा के बीच अभाव है किन्तु ज्ञान बिना आत्मा नहीं रह सकता। ज्ञान और आत्मा के बीच एकत्व और अन्यत्व कैसा है - यह विचार करते हैं। ज्ञान लक्षण द्वारा ज्ञान ही आत्मा है - ऐसा एकत्व बताया गया था, किन्तु आत्मा सर्वथा ज्ञान जितना ही नहीं है - ऐसा कहकर अन्यत्व भी बताया गया है। जिसे ज्ञान और आत्मा का तादात्म्यपना भासित नहीं हुआ है, उसे पर का तथा राग का कर्तापना ही दिखाई देता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २८

अथ ज्ञानज्ञेययोः परस्परगमनं प्रतिहन्ति -

णाणी णाणसहावो हट्ठा णेयप्पगा हि णाणिस्स ।
रूवाणि व चक्खूणं णेवण्णोण्णेसु वट्टंति ॥२८॥

अब, ज्ञान और ज्ञेय के परस्पर गमन का निषेध करते हैं (अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय एक-दूसरे में प्रवेश नहीं करते ऐसा कहते हैं ।):-

ज्ञायक स्वभावी ज्ञानि ज्ञेयात्मक पदार्थ हैं ज्ञानि के ।
नहिं वर्तते ज्योंरूप नेत्र परस्पर अन्योन्य के ॥२८॥

गाथार्थः- आत्मा ज्ञानस्वभाव है और पदार्थ आत्मा के ज्ञेय स्वरूप हैं, जैसे किरूप (रूपी पदार्थ) नेत्रों का ज्ञेय है वैसे वे एक-दूसरे में नहीं वर्तते ।

टीकाः- आत्मा और पदार्थ स्वलक्षणभूत पृथकत्व के कारण एक दूसरे में नहीं वर्तते परन्तु उनके मात्र नेत्र औररूपी पदार्थ की भाँति ज्ञानज्ञेयस्वभाव-सम्बंध से होनेवाली एक दूसरे में प्रवृत्ति पाई जाती है । (प्रत्येक द्रव्य का लक्षण अन्य द्रव्यों से भिन्नत्व होने से आत्मा और पदार्थ एक दूसरे में नहीं वर्तते, किन्तु आत्मा का ज्ञानस्वभाव है और पदार्थों का ज्ञेय स्वभाव है, ऐसे ज्ञानज्ञेयस्वभावरूप सम्बंध के कारण ही मात्र उनका एक दूसरे में होना नेत्र औररूपी पदार्थों की भाँति उपचार से कहा जा सकता है ।) जैसे नेत्र और उनके विषयभूतरूंपी पदार्थ परस्पर प्रवेश किये बिना ही ज्ञेयाकारों को ग्रहण और समर्पण करने के स्वभाववाले हैं, उसीप्रकार आत्मा और पदार्थ एक दूसरे में प्रविष्ट हुए बिना ही समस्त ज्ञेयाकारों के ग्रहण और समर्पण करने के स्वभाववाले हैं । (जिसप्रकार आँख रूपी पदार्थों में प्रवेश नहीं करती और रूपी पदार्थ आँख में प्रवेश नहीं करते तो भी आँख रूपी पदार्थों के ज्ञेयाकारों के ग्रहण करने - जानने के स्वभाववाली है और रूपी पदार्थ स्वयं के ज्ञेयाकारों को समर्पित होने - जानने के स्वभाववाले हैं, उसीप्रकार आत्मा पदार्थों में प्रवेश नहीं करता और पदार्थ आत्मा में प्रवेश नहीं करते तथापि आत्मा पदार्थों के समस्त ज्ञेयाकारों को ग्रहण कर लेने - जान लेने के स्वभाववाला है और पदार्थ स्वयं के समस्त ज्ञेयाकारों को समर्पित हो जाने - ज्ञात हो जाने के स्वभाववाले हैं ।) ॥२८॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा २८ पर प्रवचन

अब, ज्ञान और ज्ञेय के परस्पर गमन का निषेध करते हैं, अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय एक-दूसरे में प्रवेश नहीं करते। ज्ञान, ज्ञेयों में व्याप्त होता है और ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं - इसलिये ज्ञान वहाँ, ज्ञेयों में गया हो ऐसा नहीं है; और ज्ञेय ज्ञान में जानने में आते हैं इसलिये ज्ञेय ज्ञान में आ गये हों - ऐसा भी नहीं है। इस न्याय को यथार्थ समझे तो रस (आनन्द) आता है।

ज्ञान की यथार्थ क्रिया अज्ञानी को ख्याल में भी नहीं आती। गुण के बिना गुणी नहीं होता और गुणी के बिना गुण नहीं होता - ऐसी समझ का उसे महात्म्य नहीं आता। अज्ञानी को तो बाहर की महिमा आती है। लक्षण द्वारा लक्ष्य को एकमेक किये बिना किस तरह चारित्र आयेगा ? भूमि बिना चारित्र की फसल कैसे होगी ? मैं संयोगों और विभावों में नहीं हूँ अपितु स्वभाव में हूँ - ऐसी दृष्टि और स्थिरता के बिना चारित्र नहीं होता। बाहर के पदार्थों की अवस्था को मैं - व्यवहार से भी नहीं कर सकता। मैं ऐसा विकल्प करूँ, सामायिक करूँ, ऐसा राग लाऊँ और राग करूँ - ऐसी रुचि मिथ्यात्व दृष्टि की है।

ज्ञान ही आत्मा है, ऐसा तादात्म्य सम्बंध है - ऐसा भान करके स्थिरता होती है वही सामायिक है। तू तो चैतन्य स्वभावी सूर्य है, तू क्या करे ? वाणी से कहने की बात नहीं। स्वभाव और स्वभाववान का तादात्म्यपना भाषित नहीं हुआ - उसे पुण्य का कर्तापना ही दिखाई देता है; वह मिथ्या-दृष्टि को ही पुष्ट करता है।

कोई कहता है कि बर्फ के कारण तो पानी ठंडा होता है ना ?

समाधान :- इसके कारण इसका यह परिणाम हुआ है - ऐसा कहते ही वहाँ दो पदार्थ सिद्ध हो जाते हैं; तो फिर वे दो पदार्थ एकपने काम करते हैं अथवा दोपने (अपने-अपने में) काम करते हैं ? सचमुच तो, दो पदार्थ दोपने काम करते हैं - ऐसा निर्णय करे तब ही विषमता की दृष्टि मिटेगी। अचेतन पदार्थ भी जड़त्व में, परमस्वरूप है; उसकी एक पर्याय को भी अनन्त केवलज्ञानी भगवान भी बदल नहीं सकते। ऐसा प्रत्येक ही पदार्थ ईश्वर है। अज्ञानी को मात्र भ्रम हुआ है कि मैं पर को करता हूँ। जहाँ हाथी भी असमर्थ है, वहाँ अन्य की मेहनत का क्या काम ? वर्तमान के दिग्गज बड़े-बड़े पंडितों की मान्यता में, मूल में ही भूल है; जबकि वीतराग का अभिप्राय यह है कि - ज्ञान ही आत्मा है और आत्मा ही ज्ञान है, जो अनन्त गुणों का पिंड है - ऐसा भगवान कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नई अवस्था बाहर के पदार्थों के कारण नहीं आती। ज्ञान ही आत्मा है, इस तरह आत्मा को पकड़ने पर (ग्रहण करने पर) दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीर्य, सुख आदि गुणों की निर्मल पर्याय प्रगट होती है - वही आत्मा है।

आत्मा जानने के स्वभाववाला है और पदार्थ आत्मा के ज्ञेय स्वरूप है - जानने लायक है; किन्तु ज्ञेय, ज्ञान के साथ रहनेवाले नहीं हैं।रूपी पदार्थ चक्षु इन्द्रिय के ज्ञेय हैं। नेत्र की जानने की शक्ति अपने ज्ञान में है। यह लाल मिर्च है - ऐसा देखने पर आँख लाल नहीं हो जाती और लाल मिर्च आँख में नहीं आ जाती। ज्ञेय में गये बिना ही ज्ञान जानता है। जैसा है वैसा जानता है, फिर भी ज्ञान ज्ञेय में नहीं जाता और ज्ञेय ज्ञान में नहीं आते।

ज्ञान लोकालोक को जानता है इसलिए उसे सर्वज्ञ कहा और उसके विषय लोकालोक है; इसलिए ज्ञान में लोकालोक आ जाते हैं यह कहा और इसी तरह आत्मा सर्व पदार्थ को जानता है, इसलिए आत्मा को सर्वगत कहा और उसके विषय लोकालोक है इसलिए लोकालोक के ज्ञेय आत्मा में आ गये है यह कहा - ऐसा जो व्यवहार का कथन था उसका अब, निषेध करते हैं।

आत्मा और पर पदार्थों के लक्षण भिन्न-भिन्न है इसलिये वे एक-दूसरे में प्रवेश नहीं करते। आत्मा का लक्षण आत्मा में है और अन्य पदार्थों के लक्षण उनमें हैं। केवली भगवान का लक्षण केवली में है और वे इन अन्य आत्माओं से पृथक हैं। केवली, निगोदिया और जड़ पदार्थ अनन्त हैं। अन्य आत्माएं और जड़ का लक्षण इस आत्मा से पृथक है। इसप्रकार उनमें लक्षण का भिन्नपना होने से उनका एक-दूसरे में प्रवर्तन नहीं होता। शरीर-मन-वाणी और कर्म - जड़ अचेतन हैं उसका लक्षण पृथक हैं। प्रत्येक आत्मा ज्ञान से लक्षित होता है इसी तरह अन्य पदार्थ भी सभी अपने लक्षण से लक्षित हैं।

'एक ओर राम और एक ओर ग्राम' इसी तरह एक तरफ आत्मा है और दूसरी तरफ अनन्त आत्मायें और अनन्त जड़ पदार्थ पृथक लक्षणवाले पदार्थ ज्ञान में जानने में आते हैं, किन्तु उन्हें लाऊं, छोंडू अथवा रखूं यह मेरा लक्षण नहीं है। पर पदार्थों को लाने का अथवा छोड़ने का भाव तो मिथ्या भ्राँति है। अनन्त परमात्मा, सम्मेद शिखर तीर्थक्षेत्र आदि तेरे से सदा ही पृथक हैं।

एक आत्मा का लक्षण अन्य आत्माओं के लक्षण से सदैव भिन्न है। इस आत्मा का लक्षण स्वयं का ज्ञान है - यह अपना ज्ञान अन्य आत्माओं का लक्षण नहीं है। इसी तरह प्रत्येक परमाणु का लक्षण भिन्न-भिन्न है। लक्षण से लक्ष्य को पहचाना जा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सकता है। प्रत्येक परमाणु का लक्षण पृथक है। एक परमाणु का लक्षण दूसरे परमाणुओं में नहीं जाता इसी तरह एक केवली का लक्षण दूसरे केवली में नहीं जाता। कोई किसी अन्य के साथ सम्बंध नहीं रखता। इसी तरह अपना आत्मा भी अपने लक्षण से परिणमित होता है। शरीर-मन-वाणी आदि का लक्षण भी पृथक है। धन का आना अथवा जाना वह धन का लक्षण है। व्यापारी का लक्षण भिन्न है और ग्राहकों का लक्षण पृथक है, जिनका किसी पर के साथ सम्बंध नहीं है, वे एक-दूसरे में नहीं वर्तते।

कुन्दकुन्द आचार्य की शैली तीर्थंकर जैसी है और अमृतचंद्राचार्य की शैली गणधर जैसी। उन्होंने तो शास्त्रों में बारह अंग और चौदह पूर्व का रहस्य भर दिया है। कहते हैं कि पुण्य-पाप, दया-दानादि विकल्पों का लक्षण भिन्न है और आत्मा का लक्षण भिन्न है; वे सभी ज्ञान के ज्ञेय हैं। अज्ञानी जीव अज्ञान पूर्वक की गई क्रिया का अभिमान करता है। आहार छूटने पर मैंने आहार छोड़ा ऐसा मानकर वह अभिमान करता है; जबकि आहारादि तो उस समय स्वयं नहीं आने के लक्षणवाला था। वास्तव में तो उपवास के राग के कारण भी आहारादि का अटकनेरूप परिणमन नहीं हुआ है।

ज्ञान जाननेवाला है और ज्ञेय जानने लायक है - ऐसा सम्बंध देखकर वे एक-दूसरे में वर्तते हैं - ऐसा उपचार से कहा जाता है। नेत्र औररूप के समान। आत्मा ज्ञान है और वे सभी ज्ञेय हैं - ऐसे सम्बंध से वे एक-दूसरे में वर्तते हैं यह कहा है। यहाँ मात्र कहकर उसे हल्का बताते हैं। आत्मा के ज्ञान का तथा शरीर-मन-वाणी का ज्ञान-ज्ञेय सम्बंध है। पिता-पुत्र का ज्ञान-ज्ञेय सम्बंध है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है जो जानने के स्वभाववाला है इस सम्बंध से वे एक दूसरे में वर्तते हैं - ऐसा कहने में आता है। नेत्र औररूप के समान।

अन्य द्रव्यों से भिन्नपना प्रत्येक द्रव्य का लक्षण होने से आत्मा और अन्य पदार्थ एक-दूसरे में वर्तन नहीं करते; परंतु आत्मा का ज्ञानस्वभाव है और पदार्थों का ज्ञेय स्वभाव है - ऐसा ज्ञान-ज्ञेय स्वभावरूप सम्बंध के कारण ही वे एक दूसरे में वर्तते हैं ऐसा उपचार से कहा जा सकता है। नेत्र औररूपी पदार्थों की तरह।

नेत्र अग्नि को जानती है जैसे किन्तु अग्नि नेत्र में प्रवेश नहीं करती अग्नि को जानने पर आँख अग्निरूप नहीं हुई है और अग्नि आँखरूप नहीं हुई है। वैसे ही ज्ञान में ज्ञेय जानने में आते हैं इसलिए ज्ञेय ज्ञान में आते हैं - ऐसा कहने में आता है किन्तु कोई भी पदार्थ एक दूसरे में प्रवेश नहीं करते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान में कुछ भी जानना, शेष नहीं रहता.

यह ज्ञान का अधिकार है; इसमें आत्मा, ज्ञान और ज्ञेय की सामर्थ्य बताते हैं। ज्ञान पर्याय लोकालोक को जानती है इसलिए ज्ञान लोकालोक में प्रवेश नहीं करता, फिर भी लोकालोक ज्ञान में जानने में आये बिना नहीं रहता। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है और ज्ञान पूर्णता को प्राप्त हुआ है इसलिये जानने से कुछ भी बाकी (शेष) नहीं रहता।

इस ज्ञान का स्वभाव जानने का है। संयोग, राग, अराग, स्व-पर सभी को एक साथ जानने का है। साधक को स्वसन्मुख हुआ ज्ञान अपने को जानते हुए पर को जानता है, वही धार्मिक क्रिया है। आत्मा धर्मी है - ज्ञान धर्म है। जानने की क्रिया करे वह मोक्ष मार्ग की क्रिया है। आत्मा के साथ ज्ञान तादात्म्य सम्बंध रखता है। वह स्वभाव तथा उसका पूर्ण अंश, बाहर से नहीं आता। ज्ञान, निमित्त तथा पर का अवलम्बन नहीं करते हुये और अपने असंख्य प्रदेश का अवलम्बन करते हुये, पूर्णता को प्राप्त करता है। इस ज्ञान में कुछ भी बाकी नहीं रहता।

ज्ञान का जानने का स्वभाव है - निमित्त तथा रागादि को जानने का स्वभाव है.

जैसे नेत्र और उसके विषयभूत रूपीद्रव्य परस्पर प्रवेश के बिना भी ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने में और अर्पित होने के स्वभाववाले हैं - ऐसा मूलभूत स्वरूप का अलौकिक वर्णन है। आँख पदार्थ में प्रवेश नहीं करती और पदार्थ आँख में नहीं आते। जिस तरह आँख बरफ अग्नि आदि को जानने के स्वभाववाली है। उसी तरह आत्मा और पदार्थ एक दूसरे में गये बिना भी समस्त ज्ञेयों के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने के और अर्पण करने के स्वभाववाला है। जिस समय, जिस द्रव्य को जो विकार होता है, दूसरे समय दूसरा होता है, वह विकार ज्ञेय है - ज्ञान में जानने लायक है।

ज्ञेय एक साथ ज्ञान में अर्पण के स्वभाववाला है। इस समय सुनने का विकल्प है, इसके बाद दुकान का विकल्प आ जाये; ये सभी विकल्प क्रमबद्धआते हैं और स्वयं परिणमते हैं। वह परिणमन वैसा ही होना था - ऐसा ज्ञानी जानते हैं, इस परिणमन में क्रम होता है। उसीतरह केवलज्ञान में जानने लायक है। केवलज्ञान जाननेवाला है और पदार्थ अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय, विकारी और अविकारीदशा सभी जानने योग्य हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञेयों में परिणमन क्रम से होता है किन्तु सम्पूर्ण लोकालोक एक समय में अक्रम केवलज्ञान में निमित्त होता है.

सभी कुछ, केवलज्ञान में ज्ञात होने के स्वभाववाला है और केवलज्ञान जानने के स्वभाववाला है। विकार क्रम-क्रम से परिणमित होते हैं; केवलज्ञान उन सभी को अक्रम जानने के स्वभाववाला है, यह केवलज्ञान का स्वभाव है। केवलज्ञान अक्रम जानता है। लोकालोक में एक समय में निमित्त होने की योग्यता है।

सम्पूर्ण लोकालोक के द्रव्य-गुण-पर्याय एक समय में केवलज्ञान में निमित्त हैं। केवलज्ञान जानने के स्वभाववाला है और पदार्थ जनाने के स्वभाववाले हैं। यह बात स्वीकार करे तो केवलज्ञान की बात यथार्थ स्वीकार हुई है। ज्ञेयों में क्रम-क्रम से परिणमन होता है। किन्तु सभी ज्ञेयों की एक समय में अक्रम निमित्त होने की योग्यता है। सम्पूर्ण लोकालोक एक समय में निमित्त होता है और केवलज्ञान एक समय में जानता है। केवलज्ञान की पूर्णपर्याय में निमित्त एक समय में अक्रम है। उसी तरह सामने के पदार्थ निमित्त एक समय में अक्रम है। भले ही पदार्थों का प्रवाहक्रम (परिणमन) क्रम से होता है, किन्तु सभी पदार्थ एक साथ अक्रम निमित्त होने की योग्यता अथवा जनाने की योग्यता रखते हैं।

जिस तरह आँखरूपी पदार्थों में प्रवेश नहीं करती औररूपी पदार्थ आँख में प्रवेश नहीं करते, फिर भी आँखरूपी पदार्थों के ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के - जानने के स्वभाववाली है औररूपी पदार्थ अपने ज्ञेयाकारों को अर्पण करने के - जनाने के स्वभाववाले हैं; उसी तरह आत्मा पदार्थों में प्रवेश नहीं करता और पदार्थ भी आत्मा में प्रवेश नहीं करते, फिर भी आत्मा पदार्थों के समस्त ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के जानने के स्वभाववाला है और पदार्थ अपने समस्त ज्ञेयाकारों को अर्पण करने के - जनाने के स्वभाववाले हैं - ऐसा आत्मा नहीं जाने तो उसने आत्मा को नहीं जाना। जो आत्मा को नहीं जानता उसे पुण्य-पाप आदि तत्त्वों का भी ज्ञान नहीं है। इसे समझे बिना बाहर में अनन्त भव गये। ज्ञेयों में क्रम से परिणमन होते हुये भी वे सभी एक समय में अक्रम जनाने की योग्यता रखते हैं और ज्ञान एक समय में अक्रम जानने की योग्यता रखता है। यह अधिकार ज्ञान का है - केवलज्ञान सभी कुछ जानता है।

श्रोता:- यदि केवलज्ञान ने सभी कुछ जान लिया है तो हमें कुछ भी करना नहीं रह जाता।

समाधान:- जिसने केवलज्ञान की सत्ता का निर्णय किया है उसे पूर्ण स्वभाव का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्णय हुआ है। उसे निमित्त की पृथकता, विभाव की विपरीतता और स्वभाव की सामर्थ्यता का भी निर्णय हो जाता है। जैसे निमित्त और राग से भिन्न केवलज्ञान पूर्ण है; वैसे ही मेरा ज्ञान भी निमित्त और राग से भिन्न है व शक्ति से पूर्ण है। ऐसा निर्णय करके पूर्ण करने का प्रयोग करता है। ऐसा निर्णय किया उसमें स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ आ ही जाता है और विभाव की रुचि छूट ही जाती है। स्वयं सभी को जानने का स्वभाव है और सभी पदार्थ जनाने के स्वभाववाले हैं - ऐसा जाने और स्वभाव की रुचि न हो तो उसने केवलज्ञान और सर्वज्ञता को जाना ही नहीं।

रागादि ज्ञान का कार्य नहीं है, किन्तु रागादि जनाने योग्य हैं और ज्ञान जाननेवाला है.

निचलीदशा में राग में मिले बिना और धन के लेन-देन के अभिमान बिना ज्ञान जानता है। आत्मा आनंदवाला है। पैसे के काल में आनन्द नहीं। वाणी विकल्प से मैं भिन्न स्वभाववाला हूँ। ज्ञान, ज्ञान में रहते हुये राग में नहीं रहता; ज्ञान स्वतंत्ररूप से काम करते हुये आनन्द का काम करता है। अज्ञानी जीव पर में आनन्द मानता है; कल्पना से उनमें सुख मानता है जो दुःख है। स्वभाव का सुख ही वास्तविक सुख है।

पैसा चले जानेपर विकल्प उठे तो वह ज्ञान में जनाने योग्य है और ज्ञान जाननेवाला है। पैसा लेने-देने की क्रिया आत्मा में नहीं होती। बाहर में सुख नहीं है। जबकि जगत इसी में नाच रहा है (मग्न है)। उस नाच को ज्ञाता रहकर जाने। वे ज्ञेय मेरे ज्ञान में जानने में आये ऐसा स्वभाव है किन्तु वे ज्ञेय मेरे से ऊंचे अथवा नीचे हैं - ऐसा स्वभाव नहीं है।

ज्ञेयों को जानने का मेरा स्वभाव है,किन्तु मेरे ज्ञान का स्वभाव, उन ज्ञेयों को आगे-पीछे करने का नहीं है। मेरा तो जानने का स्वभाव है। ज्ञेय, ज्ञान के निमित्त होते हैं और ज्ञान ज्ञेय को निमित्त होता है; वे उनके कारण आते-जाते हैं। ज्ञेय, ज्ञान के कारण आने-जाने के स्वभाववाले नहीं है। ज्ञान ने जाना इसलिये ज्ञेय आये हों अथवा ज्ञेय आगे-पीछे हुये हों - ऐसा नहीं है।

राग हुआ उसे ज्ञान जानता है, किन्तु राग मेरा कार्य है ऐसा जाने यह ज्ञान का स्वभाव नहीं है। राग, ज्ञान का कार्य है ऐसा जनाना यह राग का स्वभाव नहीं है। राग, रागपने ज्ञेय है ऐसा जनाना यह राग का स्वभाव है।

आत्मा लोकालोक को जानने की अपेक्षा प्रभु है किन्तु उसको बदलने के लिये पागल (असमर्थ) है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थों का स्वभाव जैसा प्रमेय होनेरूप है वैसा ज्ञान जानता है। ज्ञान का स्वभाव प्रमाणरूप परिणमन करने का है और ज्ञेय का स्वभाव उसमें जनाने का है। दोनों ही ईश्वर है - पंगु नहीं। आत्मा पर की क्रिया करने के लिये पागल है। ऐसा परमात्म प्रकाश ग्रंथ में कहा है कि जानने की अपेक्षा आत्मा ही प्रमेय है। ज्ञान लोकालोक के ज्ञेयों को जानने की अपेक्षा - प्रभु है किन्तु लोकालोक के ज्ञेयों को पलटने की अपेक्षा से पागल (असमर्थ) है।

राग-द्वेष, शरीर-मन-वाणी, स्त्री, कुटुम्ब आदि जनाने के स्वभाववाले हैं किन्तु वे ज्ञान से परिणमन करने के स्वभाववाले नहीं है। ज्ञान उसे जानने के स्वभाववाला है। पानी छानने के लिए आत्मा पागल है। आत्मा है तो गलना ऊपर-नीचे हुआ - ऐसा मानने में चैतन्य की हिंसा होती है; इसमें तो मिथ्यात्व का अनन्त पाप है।

आत्मा का स्वभाव जानने का है, ज्ञेयों का स्वभाव जनाने का है ऐसा होने पर भी मैंने शुभराग को किया और उससे पर की अवस्था हुई है ऐसा माने वह तो भ्राँति है। अर्थात् विकल्प से पर वस्तु आई है ऐसा माने तो भ्राँति है। आत्मा जाननहार है जाननेवाला है और शुभराग तथा ज्ञेय जानने योग्य है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

कोई कहता है कि तुम्हारे पास ब्याज के रुपये बाकी है दूसरा जवाब देता है कि मूल रकम दिये बिना ब्याज कैसा ? उसी तरह ज्ञान रकम और ज्ञेय रकम क्या है उसकी अज्ञानी को खबर ही नहीं है।

मैं ज्ञान का व्यापारी हूँ किन्तु राग तथा ज्ञेय की भावना करनेवाला नहीं। जानने का स्वभाव मेरी मूल मुद्दे की रकम है किन्तु राग तथा ज्ञेयों को आगे पीछे करने की आत्मा की शक्ति नहीं है। आत्मा जाननेवाला है यह मुद्दे की रकम है ऐसा नहीं जानकर मैं राग का काम करता हूँ - ऐसा माने तो उसकी मूल रकम ही चली गई और माथे मिथ्यात्व का ब्याज चढ़ता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा २९

अथार्थेष्ववृत्तस्यापि ज्ञानिनस्तद्वृत्तिसाधकं शक्तिवैचित्र्यमुद्योतयति -

ण पविट्टो णाविट्टो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू।
जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं ॥२९॥

अब, आत्मा पदार्थों में प्रवृत्त नहीं होता तथापि जिससे (जिस शक्तिवैचित्र्य से) उसका पदार्थों में प्रवृत्त होना सिद्ध होता है उस शक्ति वैचित्र्य को उद्योत करते हैं :-

नहिं अप्रविष्ट-प्रविष्ट अक्षातीत ज्ञानी ज्ञेय में ।
निश्चित सभी को जाने देखे नेत्र जैसेरूप में ॥२९॥

गाथार्थः- जैसे चक्षुरूप को (ज्ञेयों मे अप्रविष्ट रहकर तथा अप्रविष्ट न रहकर जानती-देखती है) उसीप्रकार आत्मा इन्द्रियातीत होता हुआ अशेष जगत को (समस्त लोकालोक को) ज्ञयों में अप्रविष्ट रहकर तथा अप्रविष्ट न रहकर निरंतर जानता-देखता है।

टीकाः- जिसप्रकार चक्षु-रूपी द्रव्यों को स्वप्रदेशों के द्वारा अस्पर्श करता हुआ अप्रविष्ट रहकर (जानता-देखता है) तथा ज्ञेय आकारों को आत्मसात् (निजरूप) करता हुआ अप्रविष्ट न रहकर जानता-देखता है, उसीप्रकार आत्मा भी, इन्द्रियातीतता के कारण प्राप्यकारिता की विचारगोचरता से दूर होता हुआ ज्ञेयभूत समस्त वस्तुओं को स्वप्रदेशों से अस्पर्श करता है, इसलिये अप्रविष्ट रहकर (जानता-देखता है) तथा शक्तिवैचित्र्य के कारण वस्तु में वर्तते समस्त ज्ञेयाकारों को मानों मूल में से उखाड़कर ग्रास कर लेने से अप्रविष्ट न रहकर जानता-देखता है। इसप्रकार इस विचित्र शक्तिवाले आत्मा के पदार्थों में अप्रवेश की भाँति प्रवेश भी सिद्ध होता है।

भावार्थः- यद्यपि आँख अपने प्रदेशों सेरूपी पदार्थों को स्पर्श नहीं करती इसलिये वह निश्चय से ज्ञेयों में अप्रविष्ट है तथापि वहरूपी पदार्थों को जानती-देखती है इसलिए व्यवहार से यह कहा जाता है कि मेरी आँख बहुत से पदार्थों में जा पहुँचती है। इसीप्रकार यद्यपि केवलज्ञान प्राप्त आत्मा अपने प्रदेशों के द्वारा ज्ञेय पदार्थों को स्पर्श नहीं करता इसलिये वह निश्चय से तो ज्ञेयों में अप्रविष्ट है तथापि ज्ञायक-दर्शक शक्ति की किसी परम अद्भुत विचित्रताके कारण (निश्चयसे दूर रहकर भी) वह समस्त ज्ञेयाकारों को जानता-देखता है, इसलिये व्यवहार से यह

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहा जाता है कि आत्मा सर्व द्रव्य-पर्यायों में प्रविष्ट हो जाता है। इसप्रकार व्यवहार से ज्ञेय पदार्थों में आत्मा का प्रवेश सिद्ध होता है।

* * *

गाथा २९ पर प्रवचन

उत्थानिका पर प्रवचन -

अब, निश्चय-व्यवहार दोनों की बात करते हैं। आत्मा सम- स्वभावी सूर्य है। अब आत्मा पदार्थों में प्रवर्त नहीं होता तथापि जिससे (जिस शक्ति वैचित्र्य से) उसका पदार्थों में प्रवृत्त होना सिद्ध होता है उस शक्ति वैचित्र्य का उद्योत करते हैं। आत्मा में स्व-पर प्रकाशक शक्ति है। वह पर में प्रवृत्त नहीं होता, तथापि पदार्थों में आत्मा का प्रवृत्त होना सिद्ध होता है। उस शक्ति को यहाँ दर्शाते हैं।

गाथा २९ के गाथार्थ और टीका पर प्रवचन

जिस तरह चक्षु - अग्नि, बर्फ, सर्प, बिच्छू, कोयला, सोना मिट्टी में प्रवेश किये बिना ही जानती-देखती है; अर्थात् अग्नि को अग्निरूप जानती है, बर्फ को बर्फरूप जानती है, सर्प को सर्परूप जानती है; उन्हें चक्षु (आँख), ज्ञेय आकारों को बर्फ, अग्नि आदि को अपनेरूप करता है, वे बराबर जानने में आते हैं।

वे कैसे जानने में आते हैं ?

ऐसा लगता है मानों कि - बर्फ, अग्नि आदि आँख में प्रवेश कर गये हों अर्थात् कि जैसे ज्ञेय हैं वैसी आँख परिणमी है; इसलिए कहा कि आँख, पर पदार्थों में प्रवेश किये बिना नहीं रहती।

शंका :- तो क्या आँखरूपी पदार्थ में प्रवेश करती है ?

समाधान :- आँख पर पदार्थ में प्रवेश नहीं करती इसलिये अप्रवेशी है और जैसे ज्ञेय हैं वैसा जानती है इसलिये उसे प्रवेशी कहा है आँख सर्प को सर्परूप जानती है; जैसे पदार्थ हैं वैसा जानती है इसलिये आँख उसमें प्रविष्ट है - ऐसा कहते हैं। इस तरह उनका परस्पर सम्बंध बताते हैं। इसलिए व्यवहार से कहा कि वह प्रवेश किये बिना नहीं रहती।वास्तव में तो अंदर प्रवेश नहीं हुआ है यही निश्चय है और अंदर प्रविष्ट हुई है यह व्यवहार है।

ज्ञान पर पदार्थों में प्रविष्ट हुये बिना ही ज्ञेयों को जानता है.

इसी तरह आत्मा भी इन्द्रियातीतपने के कारण प्राप्यकारिता की विचारगोचरता से भी दूर होता हुआ, ज्ञेयभूत समस्त वस्तुओं को स्वप्रदेशों से स्पर्श नहीं करता होने से,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अप्रविष्ट रहकर उन्हें जानता-देखता है। प्राप्यकारिता अर्थात् ज्ञेय विषयों को स्पर्श करके ही कार्य कर सकता है - जान सकता है। उन इन्द्रियातीत हुये आत्मा में प्राप्यकरिता के विचार का भी अवकाश नहीं है। अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के अन्दर पहुँचे तब ही जाने ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। ज्ञान ज्ञेय के पास जाए तब ज्ञान जाने ऐसा अवकाश नहीं है और ज्ञान ज्ञेय को प्राप्त होकर जाने - ऐसा भी स्वभाव नहीं है; वह इन्द्रियातीत होकर जानता है। लोकालोक के जितने भी पदार्थ हैं उन सभी को स्पर्श नहीं करता ; उन समस्त पदार्थों में प्रविष्ट हुये बिना ही यह ज्ञान जाने - ऐसा इसका स्वच्छ स्वभाव है - यह निश्चय है।

अब, व्यवहार बताते हैं। आत्मा स्व-पर प्रकाशक शक्ति से विचित्र है। आत्मा के सिवाय अन्य में स्व-पर प्रकाशक शक्ति नहीं होती। पर के ग्रहण और त्याग का स्वभाव आत्मा का नहीं है, अपितु मात्र पर को जानने का स्वभाव है।

स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातै वचन भेद भ्रम भारी।
ज्ञेय शक्ति द्विविधा परकाशी, निजरूपा पररूपा भासी ॥

'स्व और पर दो ज्ञेय हैं, किन्तु ज्ञान एक ही है' ज्ञान जानने का कार्य करता है; किन्तु अज्ञानी भ्रम से मानता है कि पर से ज्ञान होता है, अथवा मैं पर को ही जानता हूँ; अथवा मैं राग को करूँ और पर को करूँ - यह तो भ्राँति है।

ज्ञान का तो मात्र स्व-पर को जानने का स्वभाव है - यही उसका कार्य है; इसलिये आत्मा का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है। ज्ञान ने समस्त ज्ञेयाकारों को मानो कि उन्हें मूल में से ही उखाड़ कर ग्रसित कर लिया (निगल गया) है; ऐसा लगता है जैसे कि ग्रास छोटा हैं और मुँह बड़ा है। मूल में से उखाड़ डाला है अर्थात् कि कोई भी ज्ञेय जानने में बाकी नहीं रहता। लोकालोक में कुछ भी बाकी नहीं रहा, सभी कुछ ज्ञान में आ गया है।

श्री परमात्मप्रकाश शास्त्र में दृष्टांत दिया है कि - जैसे चाँदनी (मंडप के ऊपर लगने वाला कपड़ा) - मंडप लगा हो वहाँ तक जाती है, किन्तु यदि मंडप के बांस कम पड़ जावें तो, उससे चाँदनी की शक्ति कम हो गई है - ऐसा नहीं है। वैसे ही केवलज्ञान की शक्ति तीनलोक के मंडप को जान लेती है। उसने लोकालोक को तो जान लिया है और अन्य ज्ञेय नहीं है इसलिए केवलज्ञान की शक्ति समाप्त नहीं हो गई है; किन्तु केवलज्ञान की शक्ति उससे भी अनन्त गुणी अधिक है। लोकालोक तो केवलज्ञानरूपी आकाश में एक नक्षत्र समान है। जैसे एक नक्षत्र लोकालोक में बिंदु है, वैसे ही लोकालोक केवलज्ञान में नक्षत्र समान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो स्वभाव होता है वह स्व से परिपूर्ण, प्रत्येक समय विद्यमान है.

इस तरह केवलज्ञान का स्वरूप वचनातीत है जिसे भगवान भी नहीं कह सके अर्थात् वह ज्ञान गम्य है किन्तु वाणी गम्य नहीं है।

पूर्ण स्वभाव के आश्रय से ज्ञान की जो पूर्ण पर्याय प्रगट हुई वह ज्ञान कैसा है ? तो कहते हैं कि लोकालोक केवलज्ञान में नक्षत्र समान स्पष्ट जानने में आता है। सभी पुद्गल द्रव्य सूक्ष्म परिणमन करके आकाश के एक प्रदेश में आवे तो आकाश के एक प्रदेश में सभी को एक साथ अवगाहन देने की ताकत (शक्ति) है।

सभी जीव-पुद्गल पदार्थ एक साथ गमन पूर्वक स्थिर रहें तो सभी को स्थिति में एक समय में निमित्त होने की ताकत अधर्म द्रव्य में है।

यदि सभी पुद्गल द्रव्य कालाणु के प्रदेश में आ जाये तो उन सभी को एक साथ एक समय में परिणमन में निमित्त हो जाये ऐसी सामर्थ्य प्रत्येक कालाणु में है।

एक परमाणु चौदह राजू लोक एक समय में गति कर सकता है एक परमाणु में एक गुणा सफेद में से अनन्त गुणा सफेद होने की शक्ति है। अनन्त गुण काले से वह अनन्त गुण सफेद हो जाता है;

उसी तरह अनन्त लोकालोक हों तो उन सभी को एक समय में जानने की ताकत केवलज्ञान की है। इसलिये ऐसा कैसे ? यह प्रश्न स्वभाव में नहीं होता। निमित्त अथवा पर पदार्थ हो तो स्वभाव होता है - यह बात नहीं रहती। ज्ञानस्वभाव पर्याय में पूर्णरूप प्रगट हुआ है।

केवलज्ञान लोकालोक को ग्रसित कर जाता (जान लेता) है इसलिए आत्मा लोकालोक में प्रविष्ट होता है ऐसा व्यवहार से कहा जाता है.

राग और निमित्त बिना, पूर्ण ज्ञानस्वभाव के साथ जो पर्याय होती है वह सम्यग्दर्शन है। यहाँ केवलज्ञान का निर्णय करने की बात करते हैं। यह आत्मा पूर्ण होने की शक्तिवाला है। लोकालोक के समान अनन्त लोकालोक को भी जानने की शक्तिवाला ज्ञान है। इस तरह ज्ञान को कहाँ रोकना है ? निमित्त और राग में रोकना है ? सामान्य स्वभाव में ज्ञान को रोककर निर्विकल्प प्रतीति का अनुभव ही सम्यग्दर्शन है। ज्ञान ज्ञेयों को मूल में से उखाड़ लेता है और ग्रसित कर जाता है।

जैसे सर्प को मोर, पूँछ से पकड़ता है; पूँछ पकड़ने से सर्प ढीला हो जाता है और मोर सर्प को पूरा निगल जाता है। मोर की पकड़ को निर्भयतावाली देखकर सर्प का गला एकदम ढीला हो जाता है; वैसे ही केवलज्ञान की पर्याय में सम्पूर्ण लोकालोक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रविष्ट हो गया है। मूल में से पकड़कर सम्पूर्ण लोकालोक ज्ञान में प्रविष्ट हो गया है; कोई भी अंश शेष नहीं रहा। जैसे ग्रास छोटा है और मुंह बड़ा हुआ है; वैसे ही लोकालोक छोटा हो गया है और केवलज्ञान शक्ति से बड़ा है। लोकालोक के ज्ञेय का मूल - मानों कि उखाड़कर अंदर हो गया है - केवलज्ञान के पेट में प्रवेश कर गया है; अत: पर पदार्थ परिपूर्ण जानने में आ रहा है। इसलिए आत्मा ज्ञेयों में प्रवेश को प्राप्त होकर जानता-देखता है - ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। इस तरह स्व-पर प्रकाशक शक्ति प्रगट हुई है अर्थात् कुछ भी जानने से शेष नहीं रहा।

शंका :- ज्ञेयों का मूल ही उखाड़ दिया है अर्थात् क्षेत्र कहाँ से शुरू हुआ है अथवा काल की शुरूआत तो हुई होगी ?

समाधान :- नहीं। शुरूआत नहीं किन्तु ज्ञेयों को जैसे वे हैं, वैसा केवलज्ञान जानता है। नवतत्त्वों में मोक्ष पर्याय की - केवलज्ञान की प्रतीति कराते हैं।

यहाँ इस सिद्धांत को सिद्ध करना है कि ज्ञान में ज्ञेय प्रविष्ट नहीं होते फिर भी ज्ञेय जानने में आ जाते हैं; इसलिये ज्ञेय, ज्ञान में प्रविष्ट हो गये हैं - ऐसा कहा जाता है और ज्ञान ज्ञेयों को जानता है इसलिये ज्ञान, ज्ञेयों में प्रविष्ट हो गया है - ऐसा कहा जाता है।

इस बात को दृष्टांत से समझाते हैं। जिसप्रकार आँख अपने प्रदेशों द्वारारूपी पदार्थों को स्पर्श नहीं करती होने से निश्चय से तो वह ज्ञेयों में अप्रविष्ट ही है। जिस तरह आँख अग्नि बर्फ आदि में प्रवेश नहीं करती फिर भी उन रूपी पदार्थों को आँख जानती है इसलिए यह कहा जाता है कि मेरी आँख बहुत पदार्थों में फिरती है। उसी प्रकार ज्ञान और ज्ञेयों का निकट सम्बंध है अर्थात् ज्ञेय जनाय बिना नहीं रहते और ज्ञान जाने बिना नहीं रहता। उसीप्रकार केवलज्ञानी आत्मा का केवलज्ञान लोकालोक के पदार्थों को स्पर्श नहीं करता। निश्चय से तो वह ज्ञेयों में प्रवेश नहीं करता; फिर भी जानने-देखने का स्वभाव पर्याय में परिणमित हुआ है - ऐसा स्वभाव है। समस्त ज्ञेयाकारों को जानता-देखता होने से व्यवहार से कहा जाता है कि आत्मा का पर द्रव्य पर्यायों में प्रवेश हो गया है। इस तरह व्यवहार से, ज्ञेय पदार्थों में आत्मा का प्रवेश सिद्ध होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३०

अथैवं ज्ञानमर्थेषु वर्तत इति संभावयति -

रयणमिह इन्दणीलं दुद्धज्झसियं जहा सभासाए।
अभिभूय तं पि दुद्धं वट्टदि तह णाणमट्ठेसु ॥३०॥

अब, यहाँ इसप्रकार (दृष्टांतपूर्वक) यह स्पष्ट करते हैं कि ज्ञान पदार्थों में प्रवृत्त होता है :-

ज्यों दूध में रह इन्द्रनील रतन उसे स्वप्रभा से ।
अभिभूत कर वर्ते वहीं त्यों अर्थ होते ज्ञान से ॥३०॥

गाथार्थः- जैसे इस जगत में दूध में पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न अपनी प्रभा के द्वारा उस दूध में व्याप्त होकर वर्तता है, उसीप्रकार ज्ञान (अर्थात् ज्ञातृद्रव्य) पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है।

टीकाः- जैसे दूध में पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न अपने प्रभा समूह से दूध में व्याप्त होकर वर्तता हुआ दिखाई देता है, उसीप्रकार संवेदन (ज्ञान) भी आत्मा से अभिन्न होने से कर्ता-अंश से आत्मता को प्राप्त होता हुआ ज्ञानरूप कारण-अंश के द्वारा कारणभूत पदार्थों के कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों में व्याप्त हुआ वर्तता है, इसलिये कार्य में कारण का (ज्ञेयाकारों में पदार्थों का) उपचार करके यह कहने में विरोध नहीं आता कि ज्ञान, पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता हैं।

भावार्थः- जैसे दूध से भरे हुए पात्र में पड़ा हुआ इन्द्रनील रत्न (नीलमणि) सारे दूध को (अपनी प्रभा से नीलवर्ण कर देता है इसलिये व्यवहार से रत्न और रत्न की प्रभा सारे दूध में) व्याप्त कही जाती है, इसीप्रकार ज्ञेयों से भरे हुए विश्व में रहनेवाला आत्मा समस्त ज्ञेयों को (लोकालोक को) अपनी ज्ञानप्रभा के द्वारा प्रकाशित करता है अर्थात् जानता है इसलिये व्यवहार से आत्मा का ज्ञान और आत्मा सर्वव्यापी कहलाता है। (यद्यपि निश्चय से वे अपने असंख्य प्रदेशों में ही रहते हैं, ज्ञेयों में प्रविष्ट नहीं होते)।

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ३० पर प्रवचन

अब, इस तरह नीचे बताये अनुसार ज्ञान, पदार्थों में वर्तता है इसे दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं; यहाँ आत्मा और ज्ञान दोनों लेना है। आत्मा पदार्थों को जानता है इसलिये आत्मा और ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होता है - ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

कितने ही लोगों को लगता है कि एक ही तो बात है ? परंतु ऐसा नहीं है, इसलिये सब स्पष्टीकरण करते हैं। दृष्टांत देकर समझाते हैं कि जैसे दूध में रहा हुआ इन्द्रनीलरत्न अपनी प्रभा के समूह द्वारा दूध में व्याप्त होकर वर्तता दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि नीलमणिरत्न सम्पूर्ण दूध में बैठ (प्रविष्ट हो) गया हो - सम्पूर्ण दूध को नीला कर दिया हो; वैसे ही संवेदन ज्ञान भी आत्मा से अभिन्न होने से, कर्त्ता अंश द्वारा आत्मपने को प्राप्त होता हुआ, ज्ञानरूप करण अंश द्वारा कारण भूत पदार्थों के कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों में व्याप्त होकर वर्तता है।

ज्ञान कहने से आत्मा है यह समझना। प्रमाण दृष्टि से संवेदन अर्थात् ज्ञान कहने पर अनन्त गुण पर्यायों का पिण्ड समझाते हैं। उसमें यदि कर्त्ता, करण आदि अंश भेद किये जावें तो कर्ता अंश वह तो अखण्ड आत्म द्रव्य है और करण अंश वह ज्ञान गुण है। संवेदन ज्ञान कहकर सम्पूर्ण आत्मा लिया गया है - संवेदन ज्ञान से एकमेक है।

आत्मा कर्ता अंश द्वारा और ज्ञानरूप करण अंश द्वारा कारणभूत पदार्थों के कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों में व्याप्त होकर वर्तता है। पदार्थ कारण है और उनके ज्ञेयाकार द्रव्य-गुण-पर्याय कार्य है। आत्मा कर्ता अंश द्वारा और ज्ञानरूपी करण अंश द्वारा सामने स्थित पदार्थों में वर्तन करते हुए वर्तता है। इसलिये कार्य में करण का उपचार करके ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है - ऐसा कहना विरोध को प्राप्त नहीं होता।

ज्ञान सभी द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप्त होता है - ऐसा उपचार किया गया है। ज्ञान ज्ञेयों में आ गया है ऐसा कहा जाता है। ज्ञान पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रविष्ट हो गया है। ज्ञान में सभी पदार्थ जानने में आते हैं, उस कार्य को ज्ञान ने जाना इसलिए ज्ञान पर में गया हैं - ऐसा कहा जाता है अथवा ये ज्ञेय ज्ञान में प्रवेश कर गये हैं - ऐसा कहा जाता है। ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है सम्पूर्ण आत्मा पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है।

वास्तव में आत्मा का पदार्थों में प्रवेश नहीं होता; किन्तु ऐसा उपचार किया गया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। ज्ञेय तो ज्ञेय ही हैं ज्ञान उसमें प्रविष्ट नहीं होता। ज्ञान में सभी ज्ञेय जानने में आते हैं इसलिए ज्ञान ज्ञेयों में प्रविष्ट होता है ऐसा कहा जाता है; इस तरह यहाँ व्यवहार सिद्ध किया है। आत्मा के ज्ञान में पर पदार्थ निमित्त कारण हैं, यह सिद्ध करते हैं। पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञान में जानने में आ गये हैं इसलिये आत्मा पर में प्रविष्ट हुआ है - ऐसा कहा जाता है।

ज्ञान पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है इसलिए ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होता है - ऐसा उपचार करने में आया है। आत्मा, ज्ञान और ज्ञेय का कैसा सम्बंध है वह यहाँ बताते हैं। ज्ञान जानता है और ज्ञेय जानने लायक है - ऐसा सम्बंध है, दूसरा कोई संबध नहीं है। जिस तरह दूध में रहा हुआ इन्द्रनीलरत्न अपनी प्रभा समूह द्वारा दूध में व्याप्त होकर वर्तता हुआ दिखाई देता है - उपचार से दूध में पसरता हुआ दिखाई देता है; उसी तरह भगवान अखण्ड आत्मा, ज्ञान से अभिन्न होने से कर्ता अंश द्वारा आत्मपने को प्राप्त होता हुआ और ज्ञान साधन के भेद द्वारा कारण भूत पदार्थों के कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों में व्याप्त होकर वर्तता है।

आत्मा और ज्ञान अभेद है फिर भी दो भेद करते हैं। कर्ता और साधन ये दो भेद किये गये हैं। यह ज्ञान करण अंश द्वारा और आत्मा कर्ता द्वारा, पदार्थ जिसके कारण हैं ऐसा द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप्त होता है। पदार्थ कारण है द्रव्य-गुण-पर्याय कार्य हैं, किन्तु वह आत्मा का कार्य नहीं - ज्ञान का कर्म नहीं है।

शरीर-मन-वाणी आदि पदार्थ, द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण है, और द्रव्य-गुण-पर्याय उनका कार्य है। इस तरह ज्ञान और आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप्त होता है - ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध बताते हैं, इसलिए कार्य में कारण का उपचार करके ज्ञान पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तता है ऐसा कहने में कोई विरोध नहीं आता।

आत्मा का ज्ञान, कार्य में व्याप्त होता है यह उपचार है। पदार्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय कार्य हैं उसमें ज्ञान व्याप्त होता है यह व्यवहार है। उस कार्य में व्याप्त होनेवाला ज्ञान उनके कारण पदार्थ में व्याप्त होता है - ऐसा उपचार करते हैं।

ज्ञान पदार्थों में वर्तता है ऐसा मूल गाथा में है। ज्ञान ज्ञेयाकारों में होने से - ऐसा कहने में आता है। खाना बनाते समय ध्यान रखा था या नहीं ? ऐसा पूछते हैं। यदि ध्यान रखे तो यह बात समझ में आये। ऐसे ही भगवान आत्मा स्वयं कर्ता द्वारा और ज्ञान साधन द्वारा ज्ञेयाकारों में व्याप्त होता है। आत्मा अपने ज्ञान साधन द्वारा ज्ञेयाकारों में व्याप्त होता है, आत्मा अपने ज्ञान साधन द्वारा उन ज्ञेयाकारों में वर्तता है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु ज्ञेयाकारों का कारण पदार्थ है इसलिये कार्य में कारण का उपचार करके ज्ञान और आत्मा, पदार्थों में व्याप्त होकर वर्तते हैं ऐसा कहने में विरोध नहीं है।

भावार्थः- जैसे दूध से भरे हुये पात्र में पड़ा हुआ इन्द्रनीलरत्न (नीलमणि) सारे दूध को अपनी प्रभा से नीलवर्ण कर देता है; इसलिये व्यवहार से रत्न की प्रभा आदि समस्त दूध में व्याप्त कही जाती है। इसीप्रकार आत्मा और ज्ञान दोनों, ज्ञेयाकारों में वर्तते हैं यह उपचार है। ज्ञेयों से भरे हुये विश्व में रहा हुआ आत्मा, समस्त लोकालोक को अपनी ज्ञान प्रभा द्वारा प्रकाशित करता है अर्थात् जानता है इसलिये व्यवहार से आत्मा का ज्ञान और आत्मा सर्वव्यापी कहलाता है; यद्यपि निश्चय से तो आत्मा और ज्ञान अपने असंख्य प्रदेशों में ही रहते हैं - ज्ञेयों में प्रविष्ट नहीं होते।

इस गाथा में ज्ञान पदार्थ में व्याप्त होता है यह व्यवहार से - उपचार से कहा है। ज्ञान में ज्ञेय जानने में आ जाते हैं इसलिये ज्ञान ज्ञेयों में प्रविष्ट होता है - ऐसा दिखाई देता है यह कहा गया है। ज्ञान ज्ञेयाकारों में फैलता है यह उपचार है। ज्ञेयाकारों का कारण पदार्थ है इसलिए ज्ञान, पदार्थ में फैलता है यह उपचार का कथन है।

ज्ञानस्वभावी आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव द्वारा पदार्थों में एकमेक है - जैसा ज्ञान है वैसे ज्ञेयाकार हैं और जैसे ज्ञेयाकार हैं वैसा ज्ञान है, यह यहाँ बताना है।

मेरा जीव वस्त्र में चला गया है - ऐसा उपचार से कहने में आता है। उसका ज्ञान उसका लक्ष्य कर रहा है अर्थात् बर्तन आदि के भेद में ज्ञान रुक गया है। ज्ञेयाकारों में ज्ञान व्याप्त होता है इसलिये ज्ञान पदार्थों में व्याप्त है - ऐसा कहा जाता है। विशेष में ज्ञान व्याप्त हुआ है इसलिये विशेष का कारण, सामान्य में व्याप्त हुआ है - यह आगे व्यक्त करते हैं।

पंच परमगुरु जे भये, जे होंगे जग मांहि ।
ते अनुभव परसाद तैं, यामें धोखो नांहि ॥

- श्री ज्ञान दर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३१

अथैवमर्था ज्ञाने वर्तन्त इति संभावयति -

जदि ते ण संति अट्ठा णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं।
सव्वगयंवा णाणं कहं ण णाणट्ठिया अट्ठा ॥३१॥

अब, ऐसा व्यक्त करते हैं कि इसप्रकार पदार्थ ज्ञान में वर्तते हैं :-

यदि अर्थ हैं न ज्ञान में तो ज्ञान सबगत है नहीं ।
पर सर्वगत है ज्ञान तो वे ज्ञान स्थित क्यों नहीं ॥३१॥

गाथार्थः- यदि वे पदार्थ ज्ञान में न हों तो ज्ञान सर्वगत नहीं हो सकता और यदि ज्ञान सर्वगत है तो ज्ञान स्थित कैसे नहीं हैं ? (अर्थात् अवश्य है)

टीकाः- यदि समस्त स्व-ज्ञेयाकारों के समर्पण द्वारा (ज्ञान में) अवतरित होते हुए समस्त पदार्थ ज्ञान में प्रतिभासित न हों तो वह ज्ञान सर्वगत नहीं माना जाता। और यदि वह (ज्ञान) सर्वगत माना जाये, तो फिर (पदार्थ) साक्षात् ज्ञान दर्पण भूमिका में अवतरित बिम्ब की भाँति अपने-अपने ज्ञेयाकारों के कारण (होने से) और परम्परा से प्रतिबिम्ब के समान ज्ञेयाकारों के कारण होने से पदार्थ कैसे ज्ञानस्थित निश्चित नहीं होते ? (अवश्य ही ज्ञानस्थित निश्चित होते हैं)

भावार्थः- दर्पण में मयूर, मंदिर, सूर्य, वृक्ष इत्यादि के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। वहाँ निश्चय से तो प्रतिबिम्ब दर्पण की ही अवस्थायें हैं, तथापि दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर कार्य में कारण का उपचार करके व्यवहार से यह कहा जाता है कि मयूरादि दर्पण में है। इसीप्रकार ज्ञान दर्पण में भी सर्व पदार्थों के समस्त ज्ञेयाकारों के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। अर्थात् पदार्थों के ज्ञेयाकारों के निमित्त से ज्ञान में ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकार होते हैं (क्योंकि यदि ऐसा न हो तो ज्ञान सर्व पदार्थों को नहीं जान सकेगा)। वहाँ निश्चय से ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकार ज्ञान की ही अवस्थायें हैं, पदार्थों के ज्ञेयाकार कहीं ज्ञान में प्रविष्ट नहीं हैं। निश्चय से ऐसा होने पर भी व्यवहार से देखा जाये तो, ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकारों के कारण - पदार्थों के ज्ञेयाकार हैं, और उनके कारण - पदार्थ हैं - इसप्रकार परम्परा से ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकारों के कारण पदार्थ हैं; इसलिये उन (ज्ञान की अवस्थारूप) ज्ञेयाकारों को ज्ञान में देखकर, कार्य में कारण का उपचार करके व्यवहार से ऐसा कहा जा सकता है कि पदार्थ ज्ञान में हैं।

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ३१ पर प्रवचन

अब, ऐसा व्यक्त करते हैं कि - इसप्रकार पदार्थ ज्ञान में वर्तते हैं। इस गाथा में भी ज्ञान शब्द से अनन्त गुण पर्यायों का पिण्डरूप ज्ञातृ द्रव्य समझना। ज्ञान में समस्त ही पदार्थ आए हैं इसलिये आत्मा में भी सभी पदार्थ आ जाते हैं।

पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञान में जानने में आते हैं इसलिये पदार्थों को ज्ञान का परम्परा कारण कहा है.

यदि समस्त स्व-ज्ञेयाकारों का समर्पण द्वारा (ज्ञान में) उतरते हुए सर्व पदार्थ, ज्ञान में प्रतिभाषित नहीं हो तो वह ज्ञान सर्वगत नहीं माना जा सकता। लोकालोक के ज्ञेय ज्ञान में और आत्मा में उतरे हैं। ज्ञेयाकारों का अर्थ द्रव्य-गुण-पर्याय समझना। सर्व पदार्थ आत्मा में और ज्ञान में प्रतिभाषित नहीं हों तो ज्ञान अथवा आत्मा को सर्वगत नहीं माना जा सकता। यदि ज्ञान को सर्वगत माना जाए तो फिर पदार्थ साक्षात् ज्ञान दर्पण भूमिका में, उतरे हुये बिम्ब समान, अपने-अपने ज्ञेयाकारों का कारण होने से और परम्परा से प्रतिबिम्ब समान ज्ञेयाकारों का कारण होने से किस तरह ज्ञानस्थित निश्चित नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य ही ज्ञानस्थित निश्चित होता है।

जैसे मयूर (मोर) बिम्ब है, और दर्पण में दिखाई देता है वह प्रतिबिम्ब है; वैसे ही लोकालोक के ज्ञेयाकार बिम्ब हैं, और ज्ञान में जो दिखते हैं वे ज्ञेयाकार प्रतिबिम्ब हैं। पदार्थ अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्यायों में साक्षात् कारण है। लोकालोक के पदार्थ अपने द्रव्य-गुण-पर्यायों में साक्षात् कारण हैं। वे पदार्थ ज्ञान में जानने में आए इसलिये वे पदार्थ परम्परा से ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकारों (ज्ञानाकारों) के कारण हैं। आत्मा की ज्ञानपर्याय में पदार्थ परम्परा कारण हैं; इसलिये पदार्थ अवश्य ज्ञान स्थित है।

पदार्थ अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण है। द्रव्य-गुण-पर्याय प्रतिबिम्ब का परम्परा से कारण है। जगत के पदार्थ उनके द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय कार्य है और पदार्थ कारण है। धन, रोटी के द्रव्य-गुण-पर्याय कारूपी कार्य उनका है वे पदार्थ कारण है और द्रव्य-गुण-पर्याय उनका कार्य है। उन द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्मा ने जाना - ज्ञान उसरूप परिणमित हो गया है इसलिए वे पदार्थ ज्ञान में परम्परा कारण हैं। पदार्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननेवाला स्वयं है। ज्ञान पर से नहीं जानता किन्तु पदार्थ जानने में आते हैं - इसलिए उसे परम्परा कारण कहते हैं। इस आत्मा के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुएँ भी अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से परिणमित होती है इसलिए वे अपने कार्य का कारण है, किन्तु उन द्रव्य-गुण-पर्याय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को आत्मा जानता है, इसलिये पदार्थ परम्परा कारण है।

इस लकड़ी में सामान्य अंश गुण है तथा विशेष अंश व्यतिरेक है। ज्ञान उनके द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है; इसलिये ज्ञान पर्याय के कार्य में पदार्थ कारण कहने में आते हैं,वास्तव में ज्ञान के कार्य का कारण आत्मा स्वयं है। सामने के द्रव्य में सामान्य पदार्थ, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय के कार्य का उपादान कारण है।

अब, आत्मा अपने ज्ञान से जानता है उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय निमित्त होने से उस पदार्थ को कारण कहने में आता है। यह लकड़ी दर्पण में जानने में आए वहाँ लकड़ी के द्रव्य-गुण-पर्याय जानने में आते हैं। लकड़ी, द्रव्य-गुण-पर्याय का कारण है। ज्ञान की पर्याय द्रव्य-गुण-पर्याय को जानती है। ज्ञान में इनका निमित्त कारण तो पदार्थ के द्रव्य-गुण-पर्याय हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय का कारण सम्पूर्ण पदार्थ होने से पदार्थ को निमित्त कहते हैं। पदार्थ के जितने भेद पड़ते हैं उनका कारण सामान्य पदार्थ है। ज्ञान, सामान्य और व्यतिरेक - पर्याय ऐसे भेद को अपनी ताकत (शक्ति) से जानता है इसलिए उनको कारण कहने में आता है।

सम्पूर्ण लोकालोक बिम्ब है और आत्मा का ज्ञान प्रतिबिम्ब है। पदार्थ उनके द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण है और ज्ञान पर्याय में परम्परा कारण है; इसलिये पदार्थ ज्ञानस्थित है - ऐसा निश्चित होता है। द्रव्य-गुण-पर्याय बिम्ब है उनका कारण पदार्थ है। पदार्थ कारण है और द्रव्य-गुण-पर्याय कार्य है। प्रतिबिम्ब तो ज्ञान की पर्याय है। प्रतिबिम्ब का कारण तो भेदरूप द्रव्य-गुण-पर्याय है। द्रव्य-गुण-पर्याय का कारण सम्पूर्ण पदार्थ होने से पदार्थ को द्रव्य-गुण, परम्परा कारण सम्पूर्ण पदार्थ लिया है।

जैसे दर्पण की पर्याय प्रतिबिम्ब है और जो भेद के प्रकार दिखाई देते हैं वे बिम्ब है। आत्मा वस्तु है इसका ज्ञान गुण है, जिसकी वर्तमानदशा में सामने की वस्तु का भेद बिम्ब है ज्ञान पर्याय प्रतिबिम्ब है।

धन का आना अथवा जाना आत्मा का कार्य नहीं है। यह है ऐसा कहने पर उसके भेद का कारण वह पदार्थ है आत्मा के कारण का वह कार्य नहीं है। सामने की वस्तु में जो भेद पड़ते हैं उस द्रव्य-गुण-पर्याय का कारण सम्पूर्ण वस्तु है उसका भेद ही उसका कार्य है किन्तु वह आत्मा का कार्य नहीं है। ज्ञान में वह बराबर जानने में आता है। द्रव्य सामान्यरूप, गुण अर्थात् शक्तिरूप और पर्याय अंश आदि को ज्ञान स्वयं से जानता है किन्तु [illegible] भेद जानने में आते हैं इसलिये उन पदार्थों को ज्ञान में परम्परा कारण कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थ ज्ञान में परम्परा कारण होने से पदार्थ ज्ञान में स्थित है - ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। सम्पूर्ण विश्व के पदार्थों के स्व-ज्ञेयाकारों अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान में समर्पण हुआ है। यदि वे पदार्थ ज्ञान में प्रतिभाषित नहीं हों तो ज्ञान को सर्वगत् नहीं माना जा सकेगा। यदि ज्ञान समस्त पदार्थों को जानता है तो पदार्थ ज्ञान में आ जाते हैं। इसलिए पदार्थ ज्ञान में स्थित हैं इसमें विरोध नहीं है। ज्ञान बराबर जानता है इसलिए वे पदार्थ ज्ञान में आ गये हैं - ऐसा कहा जाता है।

पदार्थ बिम्ब समान है वे अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के कारण हैं। ज्ञान को दर्शन की उपमा दी जाये तो पदार्थों के ज्ञेयाकार बिम्ब समान है और ज्ञान में हुई ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकारों का साक्षात् कारण पदार्थ है और प्रतिबिम्ब समान ज्ञेयाकारों के ज्ञानाकार का - पदार्थ परम्परा कारण है। पदार्थ साक्षात् स्व-ज्ञेयाकारों के कारण हैं अर्थात् पदार्थ स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के साक्षात् कारण हैं और परम्परा से ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकारों (ज्ञानाकारों) का कारण है। प्रतिबिम्बरूप ज्ञानाकार की पर्याय में द्रव्य-गुण-पर्याय सीधा निमित्त है और प्रतिबिम्बरूप ज्ञानाकार की पर्याय में पदार्थ परम्परा निमित्त है। ज्ञान की पर्याय होती है उसमें पदार्थ परम्परा निमित्त है इसलिये पदार्थ किसी भी प्रकार से ज्ञान में स्थित नहीं है ? अवश्य ज्ञान स्थित निश्चित होते हैं। ज्ञान अपने से जानता है जिसमें ज्ञेय निमित्त है इसलिए ज्ञेय ज्ञान में आ गये हैं - ऐसा कहा जाता है।

भावार्थ पर प्रवचन

जिसप्रकार दर्पण में मयूर, मंदिर, सूर्य, वृक्ष आदि का प्रतिबिम्ब पड़ता है वहाँ निश्चय से तो प्रतिबिम्ब दर्पण की अवस्था है, अग्नि की अवस्था दर्पण में प्रविष्ट नहीं हुई - अग्नि की अवस्था अग्नि में हैं। फिर भी दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर कार्य में कारण का उपचार करते हैं। मयूरादि दर्पण में प्रविष्ट है ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। इसीप्रकार ज्ञान दर्पण में भी सर्व पदार्थों के समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। ज्ञेयाकारों का विशेषपना प्रतिबिम्ब पड़ता है अर्थात् पदार्थों के ज्ञेयाकारों के निमित्त से **"ज्ञान में ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकार होते हैं क्योंकि यदि ऐसा न हो तो ज्ञान सर्व पदार्थों को नहीं जान सकता। वहाँ निश्चय से, ज्ञान में होनेवाले ज्ञेयाकार - ज्ञान की ही अवस्था है।"**

मयूर आदि दर्पण में दिखाई देते हैं वह तो दर्पण की अवस्था है। पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञान में नहीं आए हैं; निश्चय से ऐसा होने पर भी व्यवहार से देखा जाए तो ज्ञान में हुई ज्ञान की अवस्था का कारण पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय हैं उनका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण पदार्थ है। इस तरह परम्परा से ज्ञान में हुए ज्ञेयाकारों का कारण पदार्थ है; इसलिये उस ज्ञान की अवस्थारूप ज्ञेयाकारों को अथवा ज्ञानाकारों को ज्ञान में देखकर, कार्य में कारण का उपचार करके पदार्थ ज्ञान में है - ऐसा व्यवहार से कहा जा सकता है। ज्ञान पर्याय में ज्ञेयाकार आ गये हैं - ऐसा भी कहा जाता हैं।

तेरा ज्ञान पर पदार्थ के भेद तथा अभेद को जानने में समर्थ है। पर पदार्थ अपने भेद तथा अभेद स्वभाव को जनावने में समर्थ है। किन्तु तेरा ज्ञान उन्हें लावे अथवा छोड़े ऐसा सम्बंध नहीं है। वे तेरे ज्ञान में आवे ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। दुकान सम्बंधी ज्ञान अपने में हुआ है अर्थात् सम्पूर्ण दुकान ज्ञान में प्रविष्ट हो गई है - ऐसा कहा जाता है। यदि दुकान व्यवहार से ज्ञान में उतरी न हो तो उसका विचार नहीं चलना चाहिए और अन्य विचार चलना चाहिए।

अत: आत्मा पदार्थों को ग्रहण करे अथवा छोड़े अथवा पदार्थों से ज्ञान होता है - ऐसा तो है ही नहीं। जैसा पदार्थ है वैसा ज्ञान करता है इसलिये निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध से कहा है कि आत्मा पदार्थों में व्याप्त हैं और पदार्थ आत्मा में अथवा ज्ञान में वर्तते हैं - ऐसा व्यवहार से कहा है; फिर भी निश्चय से पर के ग्रहण-त्याग बिना तथा पररूप परिणमित हुये बिना सर्व को देखता-जानता होने से उसे (ज्ञान व आत्मा को) पदार्थों के साथ अत्यंत भिन्नता है - ऐसा दिखाते हैं।

❁ ❁ ❁

जिनेन्द्र की मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्र तुल्य वीतराग भाववाही होती है। उसकी पूजा-भक्ति आदि सब है। स्वरूप में जब स्थिर न रह सके तब अशुभ से बचने के लिए, ऐसे शुभ भाव आये बिना नहीं रहते।

- अनन्त उपकार मूर्ति पूज्य कानजी स्वामी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३२

अथैवं ज्ञानिनाऽर्थैः सहान्योन्यवृत्तिमत्त्वेऽपि परग्रहणमोक्षण-परिणमनाभावेन सर्वं पश्यताऽध्यवस्यतश्चात्यन्तविविक्तत्वं भावयति -

गेण्हदि णेव ण मुंचदि ण परं परिणमदि केवली भगवं।
पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं ॥३२॥

अब, इसप्रकार (व्यवहार से) आत्मा की पदार्थों के साथ एक दूसरे में प्रवृत्ति होने पर भी, (निश्चय से) वह पर का ग्रहण-त्याग किये बिना तथा पररूप परिणमित हुए बिना सबको देखता-जानता है इसलिये उसे (पदार्थों के साथ) अत्यंत भिन्नता है:-

जो अन्य को न ग्रहण करते छोड़ते ना बदलते ।
वे केवली सब ओर से सब जानते वा देखते ॥३२॥

गाथार्थः- केवली भगवान पर को ग्रहण नहीं करते, छोड़ते नहीं, पररूप परिणमित नहीं होते; वे निरवशेषरूप से सबको (सम्पूर्ण आत्मा को, सर्व ज्ञेयों को) सर्व ओरसे (सर्व आत्मप्रदेशों से) देखते जानते हैं।

टीकाः- यह आत्मा, स्वभाव से ही परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का तथा परद्रव्यरूप से परिणमित होने का (उसके) अभाव होने से, स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूप से परिणमित होकर निष्कंप निकलनेवाली ज्योतिवाला उत्तम मणि जैसा होकर रहता हुआ, (१) जिसके सर्व ओर से (सर्व आत्मप्रदेशों से) दर्शनज्ञानशक्ति स्फुरित है ऐसा होता हुआ, निःशेषरूप से परिपूर्ण आत्मा को आत्मा से आत्मा में संचेतता-जानता-अनुभव करता है, अथवा (२) एकसाथ ही सर्व पदार्थों के समूह का साक्षात्कार करने के कारण ज्ञप्तिपरिवर्तन का अभाव होने से जिसके ग्रहणत्याग क्रिया विरामको प्राप्त हुई है ऐसा होता हुआ, पहले से ही समस्त ज्ञेयाकाररूप परिणमित होने से फिर पररूप से - आकारान्तररूप से नहीं परिणमित होता हुआ सर्व प्रकार से अशेष विश्वको, (मात्र) देखता-जानता है। इसप्रकार (पूर्वोक्त दोनों प्रकार से) उसका (आत्मा का पदार्थों से) अत्यंत भिन्नत्व ही हैं।

भावार्थः- केवली भगवान सर्व आत्मप्रदेशों से अपने को ही अनुभव करते रहते हैं; इसप्रकार वे परद्रव्यों से सर्वथा भिन्न हैं। अथवा, केवलीभगवान को सर्व पदार्थों का युगपत् ज्ञान होता है इसलिये उनका ज्ञान एक ज्ञेय में से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में नहीं बदलता तथा उन्हें कुछ भी जानना शेष नहीं रहता इसलिये उनका ज्ञान किसी विशेष ज्ञेयाकार को जानने के प्रति भी नहीं जाता; इसप्रकार भी वे पर से सर्वथा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्न हैं। (यदि जाननक्रिया बदलती हो तभी उसे विकल्प पर - निमित्तक रागद्वेष हो सकते हैं और तभी इतना परद्रव्य के साथ का सम्बंध कहलाता है। किन्तु केवलीभगवान की ज्ञप्ति का परिवर्तन नहीं होता इसलिये वे पर से अत्यंत भिन्न हैं) इसप्रकार केवलज्ञान प्राप्त आत्मा पर से अत्यंत भिन्न होने से और प्रत्येक आत्मा स्वभाव से केवली भगवान जैसा ही होने से यह सिद्ध हुआ कि निश्चय से प्रत्येक आत्मा पर से भिन्न है ॥३२॥

* * *

गाथा ३२ पर प्रवचन

अब, इसप्रकार (व्यवहार से) आत्मा की पदार्थों के साथ एक दूसरे में प्रवृत्ति होने पर भी, (निश्चय से) वह पर का ग्रहण-त्याग किये बिना तथा पररूप परिणमित हुये बिना सबको देखता-जानता है, इसलिए उसे (पदार्थों के साथ) अत्यंत भिन्नता है ऐसा बतलाते हैं।

जैसे आत्मा का स्वभाव पर को ग्रहण-त्याग का नहीं है; वैसे ही पर द्रव्यरूप परिणमित होने का भी स्वभाव नहीं है.

पहले, आत्मा तथा उसका ज्ञान पर में प्रविष्ट होता है तथा पर के द्रव्य-गुण-पर्याय आत्मा में प्रविष्ट होते हैं ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध की बात की थी। किन्तु वास्तव में आत्मा का स्वभाव लोकालोकरूपी पर पदार्थों के ग्रहण त्याग का नहीं है। यहाँ यह बात केवली की हैं। केवली लोकालोक को ग्रहण नहीं करते। ज्ञान पर ज्ञेयाकाररूप नहीं होता। आत्मा का स्वभाव पर के ग्रहण-त्याग का नहीं है तथा पर द्रव्यरूप होने का भी नहीं है। त्याग-उपादान शून्यत्व शक्ति त्रिकाल हैं - पर के ग्रहण-त्याग रहित त्रिकाल है। पर वस्तु का स्वभावरूप रहना, ऐसी शक्ति त्रिकाल है।

यहाँ व्यक्तता की बात है। कोई वस्तु को ग्रहण-त्याग करे ऐसा स्वभाव नहीं है। पूर्व गाथा में निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध का व्यवहार किया था। लोकालोक को ज्ञान ग्रहण नहीं करता अर्थात् लोकालोक ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते। ज्ञानस्वभाव और लोकालोक स्वभाव अनादि अनन्त भिन्न हैं। केवली का ज्ञान लोकालोक को ग्रहण नहीं करता और छोड़ता भी नहीं।

कोई कहे कि लोकालोक का जानना, ज्ञान ने ग्रहण किया है उसे छोड़ दो तो यह बात झूठ है; क्योंकि "ज्ञान लोकालोक का नहीं" किन्तु अपना है। यह तो ज्ञान और लोकालोक की स्वतंत्रता बताई है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शंका :- कोई कहता है कि हमारे क्रमबद्ध में उनके ही विचार आयें तो ?

समाधान :- ज्ञान को सीधे अथवा उल्टे रास्ते ले जाना अपने आधीन हैं। क्रमबद्ध होता है ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि स्वभाव तरफ है। "क्रमबद्ध के निर्णय करनेवाले की दृष्टि स्वभाव सन्मुख होती है किन्तु पर्याय तरफ नहीं होती।" क्रमबद्ध का विश्वास आए तो वह ज्ञाता-दृष्टा ही रहता है। क्रमबद्ध का विश्वास नहीं होने पर भी भले ही इसके विश्वास की बात मुंह से कहे तो वह किस काम का ?

केवलज्ञानरूप परिणमित हुआ आत्मा अपने को जानता है और अनुभवता हैं.

यहाँ कहते हैं कि पर का परिणमन पर में है। केवलज्ञान आत्मा के आधार से परिणमित होता है। वह स्वतत्त्वभूत है। जैसे मणि की ज्योति कांपती नहीं, वैसे ही यह आत्मा स्वतत्त्वभूत केवलज्ञानरूप परिणमित होकर निष्कंप निकलनेवाली ज्योतिवाला उत्तम मणि जैसा होकर रहता है। वह पर का ग्रहण-त्याग नहीं करता स्वद्रव्यरूप रहता है - पर तत्त्वरूप नहीं परिणमता किन्तु केवलज्ञानरूप से परिणमता है। स्वयं कर्ता होकर केवज्ञानरूप से परिणमता है। केवलज्ञान ज्योति स्थिररूप रहती है।

और वह कैसा हुआ है ?

असंख्य प्रदेश में ज्ञाता-दृष्टा शक्ति अंतर में हैं, इसमें से व्यक्तदशा हुई है। यहाँ शक्ति अर्थात् त्रिकाली की बात नहीं, अपितु केवलदर्शन और केवलज्ञान पर्याय की बात है। वह पर का ग्रहण-त्याग नहीं करता - स्व से कभी पृथक नहीं होता - पररूप नहीं परिणमता और स्वयमेव परिणमता है, स्वयं कर्ता होकर कर्मरूप होता है। इस तरह परिपूर्ण आत्मा को, आत्मा से, आत्मा में जानता है - अनुभवता है। यह केवलज्ञान की बात है। असंख्य प्रदेशों में चैतन्य-सूर्य प्रगट हुआ है। **"ज्ञान स्वयं अपने को जानता है और अनुभवता है - यह निश्चय है किन्तु वह लोकालोक को जानता है और देखता है यह कहना तो व्यवहार है।"**

भगवान को एक ज्ञेय के बाद दूसरे ज्ञेय को जाननेरूप ज्ञप्ति क्रिया का परिवर्तन नहीं होता। वे एक ही साथ समस्त लोकालोक के पदार्थों को जानते हैं। जिसे इस केवलज्ञान की बात स्वीकार हुई है, उसे ज्ञानगुण के आश्रय से केवलज्ञान प्रगट होता है - यह बात स्वीकार हो सकती है। स्वयं ज्ञानगुण में से केवलज्ञान प्रगट होते ही केवली भगवान सर्व पदार्थों को जानते हैं।

केवली को क्षयोपशम ज्ञान का अभाव है; वे एक ही साथ सभी को जानते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खण्ड-खण्ड जानने में ज्ञान में परिवर्तन होता है और राग आता है किन्तु केवली को यह नहीं होता। एक ज्ञेय का जानना फिर दूसरे को जानना अथवा एक को जानकर छोड़ना और उसके बाद दूसरे को जानना - ऐसी ज्ञप्ति क्रिया का परिवर्तन करना अर्थात् ज्ञान में एक ज्ञेय को ग्रहण करना और दूसरे को छोड़ना यह ग्रहण-त्याग है ऐसी ग्रहण-त्याग की क्रिया है। ऐसी क्रिया का केवली भगवान को अभाव हुआ है। निचली (अल्प) दशा में भी ज्ञान परवस्तु का ग्रहण-त्याग नहीं करता, किन्तु एक को जानकर छोड़ना, फिर दूसरे को जानकर छोड़ना यह निचलीदशा में होता है किन्तु ऐसा केवली भगवान को नहीं होता। ऐसी ग्रहण-त्याग की क्रिया का उनके अभाव है क्योंकि वहाँ एक ही साथ सभी पदार्थ जानने में आते हैं।

जगत की पर्याय जब भविष्य में होगी तब केवली भगवान उसे जानेंगे - ऐसा नहीं है। भविष्य की पर्यायें केवलज्ञान में जानने में (अभी) आई हैं - ऐसा निर्णय जिसने स्वभाव सन्मुख होकर किया है उसका भविष्य निश्चित ही अच्छा है।

अज्ञानी कहता है कि - भविष्य मेरी जो भी पर्याय होगी वह तो केवलज्ञानी (भगवान) के हाथ में रही मेरे हाथ में नहीं रही।

जीवों की भविष्य की पर्याय जब आयेगी तब जानेंगे - ऐसी क्रम से जानने की ज्ञप्ति क्रिया का केवलज्ञान में अभाव है - केवलज्ञान एक समय में सभी कुछ जानता है - ऐसा निर्णय करनेवाला जीव स्वभाव सन्मुख होता है - उसका भविष्य उसके हाथ में है।

केवली भगवान पहले से ही सर्व पदार्थों को अक्रम जानते हैं। भगवान में लोकालोक को एक समय में जानने की ताकत - राग और निमित्त के बिना है।

शंका :- कोई कहे कि - केवलज्ञान अनन्त पदार्थों और अनन्त केवलियों को जानता है इसलिये केवलज्ञान में बहुत खेद होता होगा ?

समाधान :- नहीं। क्योंकि ज्ञप्ति परिवर्तन में खेद और क्रम होता है, किन्तु पूर्ण जाननेवाले को खेद और भेद (खण्ड-खण्ड ज्ञान) नहीं होता; अपितु जबसे केवलज्ञान हुआ है उसी समय से तीनकाल तीनलोक के पदार्थों का ज्ञान हो गया है। जीव और पुद्गल की अवस्था के ज्ञानरूप से केवलज्ञान परिणमित हुआ वहाँ ज्ञप्ति का भेद नहीं है। वे वर्तमान को पहले जाने फिर इसके बाद भविष्य को जाने - ऐसा नहीं होता।

आत्मा अपने द्रव्य स्वभाव की कारणता ग्रहण करके केवलज्ञानरूप से परिणमित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है; उस समय वे भव्य-अभव्य, छद्मस्थ की अपूर्ण पर्याय व केवली की पूर्ण पर्याय इन सभी को जानते हैं; जानने में कुछ भी शेष नहीं रहता। वहाँ अन्य आकाररूप से परिणमित नहीं होता। वे सर्व प्रकार से अशेषरूप से विश्व को मात्र देखते-जानते हैं अन्य कुछ नहीं करते।

प्रश्नः- अपूर्णदशा में जीव क्या करता है ?

समाधानः- (१) अपूर्णदशा में भी जीव पर का ग्रहण-त्याग नहीं करता मात्र विपरीतज्ञान मात्र मानता है कि मैं पर का ग्रहण-त्याग करता हूँ ऐसा अज्ञान से खेद सहित ज्ञप्तिपरिवर्तन को प्राप्त होता है।

(२) सम्यक्ज्ञान होते ही मैं पर का ग्रहण-त्याग करता हूँ ऐसा नहीं मानता। इसलिये ज्ञान मिथ्या नहीं किन्तु अपूर्ण हैं इसलिये एक के बाद एक जानता है। इसप्रकार ज्ञान में परिवर्तन होता है। इस तरह वह ज्ञान सहित परिवर्तन पाता है।

(३) भगवान को पूर्णदशा होने पर ग्रहण-त्याग क्रिया का परिवर्तन नहीं है। पूर्णदशा में अन्य आकार नहीं। मात्र केवली भगवान अक्रमपने जानते-देखते हैं। वहाँ खण्ड-खण्डपना अथवा परिवर्तन नहीं है। इस तरह पूर्वोक्त दोनों ही प्रकार से आत्मा का पदार्थों से अत्यंत भिन्नपना ही है

केवली भगवान को पूर्ण ज्ञान है और वे सब जानते हैं इसलिये किसी भी पदार्थ को जानने के लिये उनका ज्ञान नहीं झुकता.

यहाँ केवली भगवान की बात की है। उसीप्रकार सभी का ज्ञानस्वभाव शक्तिरूप से समझ लेना। केवली भगवान सर्व आत्म प्रदेशों से अपने को ही अनुभवते हैं। केवलीभगवान लोकालोक को जानते हैं किन्तु निश्चय से अथवा परमार्थ से वह अपना ही अनुभव है। लोकालोक को जानते हैं, वह पर द्रव्य से भिन्न रहकर जानते हैं। केवली भगवान को सर्व पदार्थों का युगपद् ज्ञान एक समय में होता है। इसलिये उनका ज्ञान एक ज्ञेय को जानकर दूसरे ज्ञेय में परिवर्तित नहीं होता। एक अनन्त को पहले समय में जाने दूसरे अनन्त को उसके बाद जाने ऐसा परिवर्तन केवलज्ञान में नहीं होता।

किसी ज्ञेयाकार को जानने के प्रति झुकाव आकर्षण नहीं है, परज्ञेय जानने के लिए बाकी नहीं रहा कि उसी तरफ झुकाव हो, वह खण्ड-खण्ड झुकाव नहीं - पर से भिन्न है। एक ज्ञेय से दूसरे ज्ञेय की तरफ जानने की अवस्था का झुकाव उसे यहाँ परिवर्तन कहा है। यहाँ ज्ञान के परिणमन की बात नहीं अपितु एक ज्ञेय के बाद दूसरे ज्ञेय को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाननेरूप परिवर्तन नहीं है यह कहा है। ज्ञान अल्प हो तो परिवर्तन होता है और ज्ञेय जानने से बाकी हो तो ज्ञेयों की तरफ झुकाव करना रहता है किन्तु केवलज्ञानी को यह नहीं होता। मिथ्यादृष्टि के ज्ञान में परिवर्तन होता है किन्तु उसकी दृष्टि परज्ञेयाकारों में ही रहती है। धर्मी का ज्ञान भी परिवर्तन करता है किन्तु उसकी दृष्टि पर ज्ञेयाकारों में नहीं अपितु ज्ञानस्वभाव में है। किन्तु उसका ज्ञान अपूर्ण है और ज्ञेय जानने में बाकी है इसलिए उसका ज्ञान ज्ञेयों की तरफ झुकाव करता है।

मिथ्यादृष्टि का एकान्त राग और पर की तरफ झुकाव है। केवली भगवान को ज्ञान पूर्ण हो गया है इसलिये ज्ञान परिवर्तन नहीं करता और कोई ज्ञेयाकार जानने से बाकी नहीं रहता इसलिए ज्ञेयाकारों की तरफ झुकाव नहीं है। केवलज्ञान पूर्णरूप से हुआ है इसलिए उसमें परिवर्तन नहीं होता अर्थात् वह एक को जानने के बाद दूसरे को जाने - ऐसा परिवर्तन उसमें नहीं है। साधक को अभी परिवर्तन होता है ज्ञप्तिक्रिया पलटती है फिर भी साधक को उसकी रुचि नहीं होती। पूर्ण स्वभाव की रुचि है इसलिए सम्यग्ज्ञान है। अज्ञानी को पर की ही रुचि है इसलिए मिथ्याज्ञान है। पूर्ण केवलदशा होने पर ज्ञान परिवर्तित नहीं होता अर्थात् उन्हें एक के बाद एक जानना बाकी नहीं रहता।

नियमसार गाथा १७१ में कहा है कि - जीव ही ज्ञान है और ज्ञान ही जीव है वहाँ अभेदता बताना चाहते हैं वहाँ उपयोग सिद्ध करना है और यहाँ पिछली गाथा में कहा है कि आत्मा को ज्ञान अकेला रहे तो दोष आता है। परम भाव आत्मा, ज्ञान ही है फिर भी उसी समय दूसरे अनन्त गुण भी हैं यह समझ लेना चाहिए। भिन्न-भिन्न कथन अपेक्षा से समझना चाहिए।

निचली (अपूर्ण) दशा में राग-द्वेष सहित ज्ञान परिवर्तित होता है किन्तु ऐसा भगवान को नहीं होता.

यहाँ केवलज्ञान नये जाननेरूप परिवर्तित नहीं होता। कोई भी ज्ञेय जानने में बाकी नहीं रहता इसलिए केवलज्ञान में ज्ञप्ति क्रिया नहीं है। ज्ञान कम करे और कम ज्ञेयों को जाने तो बीच में राग-द्वेष हुए बिना नहीं रहते। छद्मस्थ को पर पदार्थ को जानने की शक्ति अल्प है इसलिए एक के बाद एक जानने पर वहाँ राग-द्वेष सहित परिवर्तन होता है।

केवली को परिवर्तन नहीं होता। जानने की ज्ञान पर्याय नये ज्ञेयों को जानने के लिए अपने में ज्ञान पर्याय को अधिक करना। इस तरह पर की ओर के झुकाव को बदलकर राग-द्वेष रहित नहीं हुआ जा सकता। अर्थात् पर द्रव्य के साथ सम्बंध कहा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाता है परन्तु केवली को यह नहीं होता इसलिए भगवान का ज्ञान पर द्रव्य से भिन्न है। छद्मस्थ जीव का ज्ञान पर से तो भिन्न है किन्तु उसमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध रहता है। अपूर्णदशा में राग होता है उसमें कर्म निमित्त है और राग नैमित्तिक है। इस तरह राग मिश्रित विचार छद्मस्थ को होता है।

सम्यक्दृष्टि को स्वभाव सन्मुख दृष्टि होने पर भी ज्ञान में अपूर्णता है इसलिये पर की ओर झुकाव करता है, किन्तु वह स्वभाव की मुख्यता रखता है - झुकाव गौण है। केवली भगवान को ऐसा नहीं होता क्योंकि केवलज्ञान पूर्णरूप से ज्ञेयों को जानता है इसलिए अपूर्णदशा जैसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध वहाँ नहीं होता। वे पर से अत्यंत भिन्न है। इस तरह केवलज्ञान प्राप्त आत्मा पर से अत्यंत भिन्न है। निश्चय से सभी आत्मायें पर से भिन्न हैं। "इस तरह प्रत्येक आत्मा स्वभाव से केवली भगवान जैसा ही होने से निश्चय से प्रत्येक ही आत्मा पर से भिन्न है - ऐसा सिद्ध हुआ।"

सम्यक्दृष्टि को, सभी ज्ञेयों को जाननेवाला हूँ ऐसा प्रतीति में आया है, राग को लानेवाला अथवा छोड़नेवाला मैं नहीं हूँ - ऐसा भान है किन्तु अपूर्णदशा में कर्म के निमित्त से राग-द्वेष वाली नैमित्तिकदशा में ज्ञान परिवर्तित होता है। केवली को ऐसा नहीं होता। केवली भगवान के समान ही अपूर्णदशा में भी आत्मा का स्वभाव जानने का है - पूर्ण जानना है किन्तु राग करना अथवा पर के ग्रहण-त्याग का उसका स्वभाव नहीं है। पर नैमित्तिक राग आता है वह अपना दोष है। अल्प जानता है, राग आता है और ज्ञान परिवर्तित होता है। किंन्तु स्वभाव तो - जानने का ही है।

वास्तव में प्रत्येक आत्मा पर से भिन्न है। अपूर्णदशा में ज्ञान की अल्पदशा है अर्थात् कम पदार्थों को जानता है पर नैमित्तिक राग-द्वेषवाला सम्बंध अपूर्णदशा में है किन्तु पूर्णदशा में ऐसा परिवर्तन नहीं होता - ऐसा सम्यग्ज्ञान हुए बिना सामायिक नहीं होती। चौथे गुणस्थान की विधि की भी खबर नहीं है। भान बिना सामायिक प्रोषधोपवास बहुत किया है किन्तु उससे धर्म नहीं हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३३

अथ केवलज्ञानिश्रुतज्ञानिनोरविशेषदर्शनेन विशेषाकांक्षाक्षोभं क्षपयति -

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा ॥३३॥

अब, केवलज्ञानी को और श्रुतज्ञानी को अविशेषरूप से दिखाकर विशेष आकांक्षा के क्षोभ का क्षय करते हैं (अर्थात् केवलज्ञानी में और श्रुतज्ञानी में अन्तर नहीं है ऐसा बतलाकर विशेष जानने की इच्छा के क्षोभ को नष्ट करते हैं) :-

जो जानते श्रुतज्ञान से ज्ञायक स्वभावी स्वयं को ।
है लोकज्योतिकर ऋषी श्रुतकेवली कहें उन्हीं को ॥३३॥

गाथार्थः- जोवास्तव में श्रुतज्ञान के द्वारा स्वभाव से ज्ञायक (अर्थात् ज्ञायक स्वभाव) आत्मा को जानता है उसे लोक के प्रकाशक ऋषीश्वरगण श्रुतकेवली कहते हैं।

टीकाः- जैसे भगवान, युगपत् परिणमन करते हुए समस्त चैतन्यविशेषयुक्त केवलज्ञान के द्वारा, अनादिनिधन - निष्कारण - असाधारण - स्वसंवेद्यमान चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है तथा जो चेतकस्वभाव से एकत्व होने से केवल (अकेला, शुद्ध, अखंड) है ऐसे आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण केवली हैं; उसीप्रकार हम भी, क्रमशः परिणमित होते हुए कितने ही चैतन्यविशेषों से युक्त श्रुतज्ञान के द्वारा, अनादिनिधन-निष्कारण-असाधारण-स्वसंवेद्यमान-चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है तथा जो चेतक स्वभाव के द्वारा एकत्व होने से केवल (अकेला) है ऐसे आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण श्रुतकेवली हैं। (इसलिये) विशेष आकांक्षा के क्षोभ से बस हो, (हम तो) स्वरूपनिश्चल ही रहते हैं।

भावार्थः- भगवान समस्त पदार्थों को जानते हैं, मात्र इसलिये ही वे केवली नहीं कहलाते, किन्तु केवल अर्थात् शुद्ध आत्मा को जानने-अनुभव करने से केवली कहलाते हैं। केवल (-शुद्ध) आत्मा के जानने-अनुभव करनेवाला श्रुतज्ञानी भी श्रुतकेवली कहलाता है। केवली और श्रुतकेवली में इतना मात्र अन्तर है कि - जिसमें चैतन्य के समस्त विशेष एक ही साथ परिणमित होते हैं ऐसे केवलज्ञान के द्वारा केवली केवल आत्मा को अनुभव करते हैं और जिसमें चैतन्य के कुछ विशेष क्रमशः परिणमित होते हैं ऐसे श्रुतज्ञान के द्वारा श्रुतकेवली केवल आत्मा का अनुभव

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करते हैं; अर्थात् केवली सूर्य के समान केवलज्ञान के द्वारा आत्मा को देखते और अनुभव करते हैं तथा श्रुतकेवली दीपक के समान श्रुतज्ञान के स्वरूपस्थिरता की तारतम्यतारूप भेद ही मुख्य है, कम-बढ़ (पदार्थ) जाननेरूप भेद अत्यंत गौण है। इसलिये अधिक जानने की इच्छा का क्षोभ छोड़कर स्वरूप में ही निश्चल रहना योग्य है। यही केवलज्ञान-प्राप्तिका उपाय है।

* * *

गाथा ३३ पर प्रवचन

अब केवलज्ञानी और श्रुतज्ञानी अर्थात् सम्यक्दृष्टि सामान्यरूप से समान है उनमें अन्तर नहीं है - यह दर्शाते हैं। राग-द्वेष की अस्थिरता को गौण करो तो सम्यक्दृष्टि और केवलज्ञानी में अन्तर नहीं इस गाथा में मुनि की बात है किन्तु यहाँ सम्यक्दृष्टि भी ले (समझ) लेना। अविशेष अर्थात् अन्तर नहीं है। यह बताकर विशेष जानने की इच्छा के क्षोभ को नष्ट करते हैं अर्थात् पंचमकाल के मुनि श्री कुन्दकुन्दाचार्य तथा श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि - हम श्रुतकेवली हैं जबकि उन्हें तो एक अंग का भी ज्ञान नहीं है फिर भी उन्होंने श्रुत केवली क्यों कहा ?

समाधान - भाई आत्मा को जान लिया है इसलिये श्रुतकेवली कहा है। देखो, ज्ञानस्वभाव का भान होने पर समकिती और केवली में अंतर नहीं होता। अल्प अंतर होता है उसको गौण किया है। हमें पूर्णज्ञान नहीं ऐसी इच्छा का नाश करते हैं। पुस्तक, पाना, शास्त्रादि के बहुत कम ज्ञान को निकाल दिया है। आत्मा को जाना उसमें सभी कुछ आ गया - ऐसा कहते हैं।

चौथे, पाँचवें और छटवें गुणस्थानवाले सभी को श्रुतकेवली कहा है। श्रुतज्ञान अर्थात् भाव श्रुतज्ञान। जैसे ज्ञान की पर्याय निमित्त और राग को नहीं लाती; वैसे ही उन्हें छोड़ती भी नहीं। ज्ञानस्वभाव जानता है। त्रिकाली ज्ञानस्वभाव को वर्तमान ज्ञान से ग्रहण किया उसे लोक के प्रकाशक ऋषिश्वर श्रुतकेवली कहते हैं समयसार गाथा ९ में जो बात है वही यहाँ कहते हैं। पंचमकाल के समकिती तथा मुनि को यहाँ केवली भगवान के समान बतलाते हैं।

यहाँ ज्ञानस्वभाव सिद्ध करना है। तेरा स्वभाव ज्ञान है, राग को ग्रहण करना अथवा छोड़ना यह तो है ही नहीं। ऐसी क्रिया करूँ और ऐसा राग लाऊँ ऐसा माननेवाला कर्ता बुद्धि में उलझ गया है; उसे स्वभाव सन्मुखता की खबर नहीं है। यहाँ श्रुतकेवली तथा भगवान में जानने की अपेक्षा अंतर नहीं है यह बात कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव सन्मुख दृष्टिवंत को स्वभाव में स्थिरता हुई है, उसे राग कम होकर केवलज्ञान प्रगट होगा। ज्ञान पर्याय स्वभाव सन्मुख होकर अभेद होती है। मुनि को आर्तध्यान होते हुये भी वे श्रुतकेवली हैं। राग का आना वह क्रमबद्ध का काल है अर्थात् अल्प राग-द्वेष आता है किन्तु ज्ञातापना नहीं छूटता। जानना-देखना ही (वे अपना स्वभाव) मानते हैं। क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाला ज्ञाता रहता है किसी में परिवर्तन (फेरफार) नहीं करता। जो ज्ञाता है वह तो भगवान जैसा है।

जैसे केवली केवलज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं;
वैसे ही श्रुतज्ञानी भी श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं.

भगवान युगपद् परिणमते समस्त चैतन्य विशेषोंवाले केवलज्ञान द्वारा अनादिनिधन, निष्काम, असाधारण, संवेद्यमान, चैतन्यसामान्य जिनकी महिमा है तथा चेतक स्वभाव द्वारा एकपना होने से जो केवली हैं ऐसे आत्मा को आत्मा से आत्मा में अनुभव करने के कारण केवली हैं। केवली भगवान को पूर्ण ज्ञानदशा प्रगट हुई है केवलज्ञान में समस्त चैतन्यदशा प्रगट हुई है - कुछ भी बाकी नहीं रहा।

यहाँ भगवान का दृष्टांत देते हैं - केवलज्ञान की पर्याय पूर्ण प्रगट हुई है। कुछ भी जानना बाकी नहीं रहा। आत्मा अनादि अनन्त है, किसी का कारण नहीं तथा जो दूसरे किसी द्रव्य में नहीं - ऐसा और अपने से अनुभव में आता हुआ चैतन्य सामान्य जिसकी महिमा है, सामान्य द्रव्य त्रिकाल एकरूप है। चेतक स्वभाव अपने दर्शन-ज्ञान द्वारा एकपना होने से, केवल अर्थात् अकेले राग रहित, पुण्य रहित और शुद्ध अखण्ड आत्मा को केवलज्ञान द्वारा स्वयं जानता है और अनुभवता है।

आत्मा दूसरे में नहीं मिलता। ऐसे अखंड आत्मा को आत्मा से, आत्मा में अनुभव करने के कारण केवली हैं। लोकालोक को जानते हैं इसलिये उन्हें केवली नहीं कहा, किन्तु स्वयं को पूर्ण अनुभव करते हैं इसलिये केवली कहा है। अपने, परिणमित होते केवलज्ञान द्वारा अपने सामान्य स्वभाव को - आत्मा को, आत्मा से, अनुभव करने के कारण केवली हैं। इसीप्रकार मुनिराज कहते हैं कि हम भी क्रम से परिणमित होनेवाले कितने ही चैतन्य विशेषोंवाले श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं इसलिये श्रुतकेवली हैं।

शंका :- यहाँ बारह अंग का ज्ञान नहीं होने पर भी श्रुतकेवली किस तरह कहा ?

समाधान :- बारह अंग वह तो व्यवहार है। यहाँ निश्चय श्रुतकेवली की बात है। हम साधक है इसलिये ज्ञान में क्रमशः जानना होता है। केवली को युगपद् पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ है, हमें भी कितनी ही ज्ञान पर्याय प्रगट हुई है और चैतन्य कितने ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विशेषोंवाला है। अपूर्णज्ञान में अल्प पदार्थों को जानते हैं; उस-उस समय जिस-जिस भूमिका के योग्य हो उस राग और निमित्त को जानते हैं।

अपूर्णदशा में ज्ञानपर्याय सामान्य स्वभाव के साथ पूर्ण अभेद नहीं है - ज्ञानपर्याय अपूर्ण है अर्थात् क्रम-क्रम से परिणमित होती है। जहाँ पूर्णज्ञान हो गया हो वहाँ क्रम-क्रम से परिणमन नहीं होता। अपूर्णदशा में क्रम-क्रम से परिणमन होता है इसलिये कहा कि - कितने ही चैतन्य विशेषोंवाला। और पूर्णदशा में अक्रम परिणमन है इसलिये उसे समस्त चैतन्य विशेषोंवाला कहा।

ज्ञान जानता है - राग का अंश आये और निमित्त हो उन्हें ज्ञान जानता है। राग की अस्थिरता को गौण करो तो जानना रह गया है। अपूर्णता रागद्वेष की अस्थिरता में रखेंगे जो जानने में नहीं है। (अपूर्ण)दशा में श्रुतज्ञान द्वारा जानते हैं इसका कारण त्रिकाल द्रव्य स्वभाव है। अनादि-निधन, निजकारण, असाधारण, स्वसंवेद्यमान चैतन्यसामान्य जिसकी महिमा है तथा चेतक स्वभाव द्वारा एकपना होने से जो केवल निर्मल है ऐसे आत्मा को, आत्मा से, आत्मा में अनुभव करने के कारण अपूर्णदशा में भी वे श्रुतकेवली हैं। जानने-देखने का स्वभाव त्रिकाली स्वभाव के साथ एकत्व रखता है। राग-द्वेष योग्यता प्रमाण होते हुए भी आत्मा का अनुभव केवली की जाति का है।

आचार्य कहते हैं कि - चेतक स्वभाव त्रिकाल है ऐसे आत्मा को, आत्मा से, आत्मा में श्रुतज्ञान द्वारा अनुभव करते हैं इसलिये हम श्रुतकेवली हैं। आत्मा सामान्य एकरूप है - पर्याय में क्रम है और कितने ही चैतन्य विशेष हैं किन्तु राग-द्वेष तथा अपूर्णता को गौण करें तो समान ही है। केवलज्ञानी तथा श्रुतज्ञानी की पर्याय में जानने की अपेक्षा समानता है।

मुनिराज कहते हैं कि हमारा आत्मा अट्ठाइस मूलगुण पालने के भाव से रहित है। जिस तरह केवलज्ञान पर्याय सामान्य में एकाकार है; वैसे ही - श्रुतज्ञान की पर्याय भी सामान्य में एकाकार है। यह मुनि की बात है इसी तरह पाँचवें गुणस्थान को भी समझना। राग होता है किन्तु ज्ञान सामान्य स्वभाव के साथ एकमेक है। अल्पज्ञता को गौण करते हैं। ज्ञान के वेदन को कैसे प्रगट करें इसकी खबर लोगों को नहीं होती।

मुनि कहते हैं कि हम श्रुतकेवली हैं यहाँ रागद्वेष की गौणता करके ज्ञान की पर्याय की अपूर्णता को भी गौण कर दिया है। यह बात शान्ति से सुनना चाहिये। चैतन्य दीप अर्थात् असाधारण सामान्य स्वभाव की तरफ झुककर-क्रमिक परिणमित होनेवाले श्रुतज्ञान द्वारा-आत्मा को अनुभवते हैं। बीच में व्यवहार आता है किन्तु व्यवहार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वारा आत्मा को नहीं अनुभवते।

मुनि को अट्ठाईस मूलगुण पालने का भाव आता है किन्तु उसके द्वारा आत्मा का अनुभव नहीं होता। वस्तु सामान्य स्वरूप अनादि-अनन्त है इसका पूर्णज्ञान हो गया है। अपूर्णदशा में भले ही अल्प परिणमन है - उससे अनुभवन करते हैं किन्तु निमित्त द्वारा आत्मा को नहीं अनुभवते, वैसे ही राग द्वारा भी आत्मा को नहीं अनुभवते अपितु कितने ही चैतन्य विशेषोंवाले श्रुतज्ञान द्वारा अनुभव होता है।

निमित्तों को मिलायें और लायें तो कर्ता-बुद्धि है। इन निमित्तों को मिलाने पर अच्छा होगा यह तो कर्ता बुद्धि है निर्दोष आहार सहज मिल जाता है, यदि नहीं मिले तो स्थिर हो जाते हैं। विकल्प हो अथवा न हो फिर भी श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं। पूर्णज्ञान पर्याय द्वारा त्रिकाली आत्मा का अनुभवन करके, अपूर्णज्ञान (श्रुतज्ञान) पर्याय द्वारा त्रिकाली आत्मा को अनुभव करना इन दोनों में समानता बताई है। इसलिये विशेष आकांक्षा के क्षोभ से बस होओ।

मैं केवलज्ञान लाऊं ऐसी इच्छा नहीं है। मिथ्यात्व तो नहीं, किन्तु अस्थिरता को नहीं लाना है। इस तरह जानने-देखने में जो पड़ा है उसकी इच्छा टूट जाएगी और केवलज्ञान हो जायेगा। आत्मभान होनेके पश्चात् आत्माको अनुभवना ही मुनिपना है। इसके बाद भी इच्छा से बस होओ। हमारा स्वरूप निश्चल ही रहता है। शुभ-राग आदि की क्रिया ज्ञान में - पर प्रकाशकपने रहती है इसका नाम श्रुतज्ञान है।

श्रुतज्ञानी अकेले निर्मेल आत्मा को अनुभवते हैं - इसलिये वे श्रुतकेवली हैं.

श्रुतज्ञानी और केवलज्ञानी वस्तु को जानने की अपेक्षा से समान है। यह मुख्यरूप से वर्णन है। चैतन्य स्वभाव को धारण करनेवाला आत्मा है। एक समय में आत्मा, ज्ञानवस्तु है; उसे पूर्ण ज्ञानपर्याय द्वारा कितने ही चैतन्य विशेषों द्वारा वस्तु को जानते हैं। अधिक-कम जानने की बात मुख्य नहीं - जानने में समानता है। आत्मा चेतक स्वभाव, दया-दानादि की वृत्ति से एकमेकता रखनेवाला नहीं है। श्रुतज्ञानी कितने ही चैतन्य विशेषोंवाले श्रुतज्ञान द्वारा वस्तु को जानते हैं और पूर्णज्ञानी समस्त ही चैतन्य विशेषोंवाले केवलज्ञान द्वारा वस्तु को जानते हैं - दोनों में अंतर नहीं है।

यह सम्यग्दर्शन की लीला की महिमा है। केवलज्ञानी को युगपद् परिणमते सभी चैतन्य विशेष प्रगट हो गये हैं। उसके द्वारा केवल आत्मा को जानकर स्थिर है। श्रुतज्ञानी भी एकमेकता रहित केवली आत्मा को क्रमशः परिणमते कितने ही चैतन्य विशेषोंवाले श्रुतज्ञान द्वारा जानते हैं; उसमें राग और निमित्त का आश्रय नहीं होता इस तरह दोनों के जानने में अंतर नहीं है। क्रमबद्धपना में भी यह है। प्रत्येक समय स्व-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर में क्रमबद्ध होता है ऐसा निर्णय करनेवाला ज्ञाता-दृष्टा होता है राग और निमित्त व्यवहार ज्ञान में जाता है।

केवली भगवान केवल-आत्मा को अनुभवते हैं और श्रुतज्ञानी भी केवल आत्मा को अनुभवते हैं.

''भगवान सर्वज्ञ का ज्ञान सर्व पदार्थों को जानता है इसलिये उन्हें केवली नहीं कहा अपितु केवली केवलज्ञान द्वारा शुद्धात्मा को जानते हैं इसलिये उन्हें केवली कहा जाता है।'' मात्र ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव स्वभाववान को जानता है। केवली आत्मा को राग और पुण्य रहित मात्र चेतक स्वरूप आत्मा को अनुभवते हैं इसलिये वे केवली कहलाते हैं।

साधकदशा में सम्यग्दर्शन होने के बाद भी केवल शुद्ध आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प रहित एकमेकता रहित आत्मा अनुभवते हैं। अकेले निर्मल शुद्ध और अखंड यह सभी एकार्थवाची हैं। आत्मा शुद्ध स्वरूप है। उसको अनुभव करनेवाला श्रुतज्ञानी कहलाता है। यहाँ कम-अधिक जानने की बात नहीं अपितु वस्तु जानने-देखने की अपेक्षा से श्रुतकेवली कहा है। सर्वज्ञ परमात्मा पूर्णज्ञान पर्याय द्वारा पूर्ण स्वरूप को अक्रम पूर्ण विशेष द्वारा जानते हैं।

चौथे गुणस्थान से सम्यक्दृष्टि को कितने ही चैतन्य विशेष प्रगट हुए हैं उसके द्वारा वे चेतक आत्मा को अनुभवते हैं। वे केवल आत्मा को अनुभवते हैं इसलिये उन्हें श्रुतकेवली कहते हैं व्रत, पूजा, दया-दानादि के विकल्प पुण्य है धर्म नहीं। धर्मी आत्मा का धर्म चेतक स्वभाव में है। स्वभाव के आश्रय से श्रुतज्ञान निर्मल प्रगट हुआ है उसके द्वारा स्वभाव को अनुभव करना ही धर्म है वे श्रुतकेवली है।

एक समय का तेरा चेतक स्वभाव है उसको धारन करने वाला तू चेतन है किन्तु पुण्य के विकल्प द्वारा अथवा दया-दानादि के राग द्वारा चेतन नहीं। अन्तर त्रिकाल स्वभाव भरा हुआ है उसे श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा जाने वह श्रुतकेवली है। चौथे गुणस्थान से श्रुतकेवली कहलाते हैं। लोक, दया-दानादि में धर्म मानते हैं किन्तु वह अपूर्व नहीं है। यहाँ अपने ज्ञान द्वारा आत्मा को ग्रहण करनेवाले भावश्रुत की बात है। भावश्रुत और द्रव्य श्रुत की उपाधि नहीं; द्रव्य श्रुत की बात नहीं भाव श्रुत की बात है।

आत्मा चैतन्य ज्ञान ज्योति है, उसका भान होकर जो श्रुतज्ञान प्रगट हुआ उसके द्वारा वे आत्मा को अनुभवते हैं। केवली भगवान केवलज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं। इस तरह केवली और श्रुतकेवलियों में समानता है। चौथे गुणस्थानवाले को भी आत्मा का भान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य-पाप विभाव है पर वस्तु भिन्न है मैं चैतन्य आत्मा हूँ ऐसा भान होने से वे श्रुतकेवली हैं। पर से रहित अकेला, मेल रहित निर्मेल, अशुद्धता रहित शुद्ध, खण्ड रहित अखंड आत्मा को अनुभवते हैं इसलिये वे केवली है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान दर्शन है - ऐसे स्वभाव को श्रुतज्ञान द्वारा जाने उनको श्रुतकेवली कहते हैं। बहुत मंदिर बनाते हों उससे श्रुतकेवली नहीं कहे जाते। दया-दानादि के परिणाम से श्रुतकेवली नहीं। समयसार गाथा ६ में भी कहा है कि 'मैं प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, मैं ज्ञायक-भाव हूँ' - ऐसी दृष्टि की प्रधानता से कथन किया था यहाँ ज्ञान अधिकार है इसलिये ज्ञान से कथन करते हैं। केवली भगवान एकमात्र आत्मा को अनुभवते हैं श्रुतज्ञानी भी एकमात्र आत्मा को अनुभवने से श्रुतकेवली हैं।

धर्मात्मा ज्ञाता-दृष्टा स्वभावरूप मुद्दे की रकम को हाथ में रखते हैं.

केवली भगवान एकता को अनुभवते हैं इसलिये केवली हैं। पूर्ण स्वभाव द्वारा आत्मा को जानना अथवा अपूर्ण पर्याय द्वारा आत्मा को जानना उन दोनों में अंतर नहीं है इसलिये ही श्रुतज्ञानी को श्रुतकेवली कहते हैं। घर में रखे हुए पचास करोड़ के हीरे की खबर हो किन्तु किसी छोटी चीज की खबर न हो वह तो सभी परिभ्रमण की ममता की वस्तुएँ हैं। उसने तो ममता को पकड़ा था, जबकि यह आत्मा की मुद्दे की रकम तो परिभ्रमण को दूर करने की बात है।

चैतन्यरत्न ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी है यही मुद्दे की रकम है भले राग हो और पर्याय भी अल्प हो इसका सवाल नहीं। ज्ञान पर्याय स्वभाव सन्मुख होकर आत्मा को अनुभवती है। धर्मात्मा को बाहर में उपयोग हो तब भी आत्मा का ज्ञान लब्धरूप होता है। इस तरह मुद्दे की रकम हाथ में रखी है। अज्ञानी मुद्दे की रकम रखड़ने के (परिभ्रमण) हाथ में रखता है। ज्ञानी मुद्दे की रकम मोक्ष में जाने के लिये हाथ में रखते हैं।

अधिक जानने की इच्छा छोड़कर स्वरूप में निश्चल रहना यही केवलज्ञान का उपाय है.

केवली भगवान युगपद् परिणमते समस्त चैतन्य विशेषों केवलज्ञान द्वारा अक्रमरूप से जानते हैं और समस्त विशेष एक साथ परिणमते हैं। उनको पूर्ण अवस्था प्रगट हो गई है। वे केवल आत्मा को जानते हैं। अपूर्णदशा में क्रमशः परिणमन है। कितने ही विशेष क्रमरूप परिणमते हैं ऐसे श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं। अर्थात् केवली सूर्य समान केवलज्ञान द्वारा आत्मा को देखते हैं - अनुभवते हैं और श्रुतकेवली दीपक के समान श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को देखते-अनुभवते हैं पदार्थ जैसे के वैसे हैं। इस तरह केवली में और श्रुतकेवली में स्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तारतम्यरूप भेद ही मुख्य है। भगवान को स्थिरता पूर्ण हुई है और श्रुतज्ञानी स्वरूप में निश्चल रहते हैं। तारतम्यतारूप भेद ही मुख्य है।

निचलीदशा में स्वरूप स्थिरता है यह कहते हैं। कम अथवा अधिक जानने की बात अत्यंत गौण है। एक समय का स्वभाववान आत्मा है। एक समय का चेतक स्वभाव है इसके अवलम्बन से श्रुतज्ञान पर्याय है, इसप्रकार तीन बात करते हैं। मूल गाथा में वस्तु चेतन है, जानना-देखना स्वभाव है, जानने की पर्याय श्रुतज्ञान है - श्रुतज्ञान द्वारा एकमेकता रहित (अमिलित) वस्तु देखना वह जानने की अपेक्षा से समानता है। केवली भगवान बहुत जानते हैं और श्रुतज्ञानी कम जानते हैं यह बात यहाँ नहीं ली गई है। भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को जानते हैं इसलिये उन्हें श्रुतकेवली कहते हैं।

इस आत्मा को जब देखो तभी यह चेतक स्वभावी पदार्थ है; पर पदार्थ कम अथवा अधिक जानने में आवे यह बात गौण है। जो ज्ञान पर्याय वस्तु को जानती है वह ज्ञान पर्याय विशेष आकांक्षा नहीं रखती। स्थिर होते ही निश्चित ही केवलज्ञान होगा। इस तरह केवली में और श्रुतकेवली में स्वरूप स्थिरता की तारतम्यतारूप भेद ही मुख्य है। कम अथवा अधिक पदार्थ जाननेरूप भेद-गौण है।

चैतन्य स्वभाव से भरा हुआ आत्मा जाना है इसलिये इसमें सभी कुछ आ गया है; अत: बहुत जानने की इच्छा को छोड़ दे। ज्ञान कम है उसे बढ़ाऊँ ऐसी अस्थिरता की इच्छा छोड़कर ज्ञानस्वरूप में स्थिर रहे यही योग्यता है और यही केवलज्ञान प्राप्ति का उपाय है इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

संयोग और राग-द्वेष बदल जाते हैं किन्तु जाननार
स्वभाव कायम (ऐसे का ऐसा) रहता है.

जो शान्ति व धैर्य से पात्र होकर समझना चाहता है - उसी के लिये यह बात है। यह देह तो एक दिन धू-धू कर जल जायगी जो स्वयं उसी (देह) के कारण आती है, रहती है और चली जाती है; "इसकी चिंता करने से इसमें थोड़ा भी परिवर्तन नहीं होता"। शुभाशुभराग विकार है। किसी बड़े आदमी का शरीर छूटता हो तब वहाँ हजारों लोग उपस्थित होने पर भी कोई कुछ भी नहीं कर सकता। भगवान को याद करने की बात भी कहे - पर कहाँ भगवान ?

राग रहित स्वभाव की रुचि करना ही मार्ग है.

आत्मा के श्रेय (हित) और समाधि-मरण के लिये यही एक रास्ता है कि - ज्ञान की वर्तमानदशा को कायमी (ध्रुव) स्वभाव में झुकाकर अनुभव करना ही सच्चा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपाय है। बहुत शास्त्रों को जाने वह कोई केवलज्ञान की प्राप्ति का उपाय नहीं है। निमित्त और राग के महात्म्य को उखाड़ फेंककर, चैतन्य सत्ता जो पूर्ण है उसका ख्याल - महात्म्य करे वही समाधि-मरण है। मरने के बाद दो-पाँच हजाररुपये का दान करे भी तो वह किस काम का ? मरनेवाले अज्ञानी जीव का पुरुषार्थ तो कुछ और ही काम कर रहा है; उसका तो शरीर पर ही लक्ष्य रहता है। शरीर का जाननेवाला कौन है ? संयोग और राग-द्वेष तो बदल जाते हैं। जानने का स्वभाव रखनेवाला कायमतत्त्व ही शरण्य है। ज्ञानी ने श्रुतज्ञान द्वारा भगवान आत्मा को जाना है इसलिये केवली तथा श्रुतज्ञानी में अंतर नहीं है। पूर्णज्ञान आत्मा का ज्ञान करता है और अपूर्णज्ञान भी आत्मा को जानता है।

संयोग को बदलने की तेरे में ताकत ही नहीं है, मात्र दृष्टि को बदलना है.

तीर्थंकरों ने भी इसी विधि से केवलज्ञान प्राप्त किया है। तीर्थंकर महावीर ने बारह वर्ष तप किया और क्षुधा-तृषा आदि परीषह सहन किया हैं इसलिये उन्हें केवलज्ञान प्रगट हुआ है यह बात असत्य है। संयोग ऊपर रहे लक्ष्य को उठाकर स्वभाव में उपयोग को लगाना यह परीषहजय है। बाहर में चाहे जितना भी उपसर्ग हो किन्तु उसकी बात नहीं है। यह गाथा बहुत ऊँची है समयसार की ९वीं गाथा के समान है। शरीर में कष्ट हो अथवा न हो, वह तो संयोग के काल में संयोग में गया। संयोग को बदलने की तेरी ताकत नहीं मात्र दृष्टि बदल। स्वभाव की दृष्टि कर तो सम्पूर्ण आत्मा है। ज्ञान कम है किन्तु उसका विषय सम्पूर्ण है इसलिये केवली के साथ समानता की गई है; यही विधि है - इसे जाने, तो प्रयत्न करे। इसलिये बहुत जानने की आकुलता छोड़कर स्वरूप में ही निश्चल रहना योग्य है - यही केवलज्ञान प्राप्ति का उपाय है।

शंका :- श्रुतज्ञानी को श्रुतकेवली कहा है - श्रुतज्ञानी कहा है इसलिये श्रुतज्ञान में भगवान की वाणी की उपाधि होगी ?

समाधान :- नहीं। ज्ञान के श्रुत उपाधिकृत भेद को दूर करता है। वाणी श्रुतज्ञान नहीं है। सुनने का राग होता है वह भी श्रुतज्ञान नहीं है। श्रुतज्ञान भी ज्ञान ही है। श्रुतरूप उपाधि के कारण से ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं पड़ता। श्रुतकेवली को निमित्त तथा राग की उपाधि नहीं है। यहाँ पुस्तक तथा राग को श्रुतज्ञान नहीं कहा। श्रुत का अर्थ भगवान की वाणी अथवा पुस्तक को नहीं लेना। क्योंकि वह तो पुद्गल की पर्याय है। यहाँ तो आत्मा के ज्ञान की बात चलती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३४

अथ ज्ञानस्य श्रुतोपाधिभेदमुदस्यति -

सुत्तं जिणावदिट्ठं पोग्गलदव्वप्पगेहिं वयणेहिं ।
तं जाणणा हि णाणं सुत्तस्स य जाणणा भणिया ॥३४॥

अब, ज्ञान के श्रुत-उपाधिकृत भेद को दूर करते हैं (अर्थात् ऐसा बतलाते हैं कि श्रुतज्ञान भी ज्ञान ही है, श्रुतरूप उपाधि के कारण ज्ञान में कोई भेद नहीं होता) :-

है सूत्र जिन उपदिष्ट पुद्गल द्रव्यमय जिन वचन से ।
जो जानकारी ज्ञान है वा सूत्र-ज्ञप्ति कहें उसे ॥३४॥

गाथार्थः- सूत्र अर्थात् पुद्गलद्रव्यात्मक वचनों के द्वारा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट वह उसकी ज्ञप्ति ज्ञान है और उसे सूत्र की ज्ञप्ति कहा गया है।

टीकाः- प्रथम तो श्रुत ही सूत्र है; और वह सूत्र भगवान अर्हंत-सर्वज्ञ के द्वारा स्वयं जानकर उपदिष्ट स्यात्कार चिह्नयुक्त, पौद्गलिक शब्दब्रह्म है। उसकी ज्ञप्ति (शब्दब्रह्म को जाननेवालीज्ञातृक्रिया) सो ज्ञान है; श्रुत (सूत्र) तो उसका (ज्ञान का) कारण होने से ज्ञान केरूप में उपचार से ही कहा जाता है। (जैसे कि अन्न को प्राण कहा जाता है)। ऐसा होने से यह फलित हुआ कि सूत्र की ज्ञप्ति सो श्रुतज्ञान है। अब यदि सूत्र तो उपाधि होने से उसका आदर न किया जाये तो ज्ञप्ति ही शेष रह जाती है। ('सूत्र की ज्ञप्ति' कहने पर निश्चय से ज्ञप्ति कहीं पौद्गलिक सूत्र की नहीं, किन्तु आत्मा की है; सूत्र ज्ञप्ति का स्वरूपभूत नहीं, किन्तु विशेष वस्तु अर्थात् उपाधि है; क्योंकि सूत्र न हो तो वहाँ भी ज्ञप्ति तो होती ही है। यदि सूत्र को न गिना जाय तो ज्ञप्ति ही शेष रहती है।) और वह (ज्ञप्ति) केवली और श्रुतकेवली के आत्मानुभवन में समान ही है। इसलिये ज्ञान में श्रुतउपाधिकृत भेद नहीं हैं।

* * *

गाथा ३४ पर प्रवचन

अब, ज्ञान के श्रुत-उपाधिकृत भेद को दूर करते है (अर्थात् ऐसा बताते हैं कि श्रुतज्ञान भी ज्ञान ही है श्रुतरूप उपाधि के कारण ज्ञान में कोई भेद नहीं होता) -

आत्मा ज्ञानस्वभावी होने से (इस ग्रन्थ में) ज्ञान अधिकार को पहले लिया है। ज्ञानस्वभाव आत्मा में दृष्टि का विषय और वैसे ही क्रमबद्ध पर्याय का नियम आ जाता है। 'ज्ञान ही आत्मा है' इसका विस्तार और आगे करेंगे। सूत्र अर्थात् पुद्गल

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यात्मक वचनों द्वारा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट जो है उसकी ज्ञप्ति ही ज्ञान है। श्रुत शब्द सुनकर भ्रमित नहीं होना। भगवान की वाणी सुनकर उसका आश्रय करे वह ज्ञान है। वाणी की उपाधि श्रुत ज्ञान में नहीं है।

आत्मा का ज्ञान होने में भगवान की वाणी ही निमित्त होती है। प्रथम तो श्रुत अर्थात् सूत्र है। सूत्र अर्थात् भगवान सर्वज्ञ के द्वारा, स्वयं जानकर उपदिष्ट, स्यात्कार जिसका चिन्ह है, ऐसा पौद्गलिक शब्दब्रह्म है। भगवान द्वारा उपदिष्ट - यह निमित्त का कथन है।

भगवान की वाणी कैसी है ?

आत्मा द्रव्य अपेक्षा से नित्य है - पर्याय अपेक्षा से अनित्य है इस तरह कथंचित् कथन करती है। पूर्ण आत्मा को जानने में भगवान की वाणी ही निमित्त होती है इसलिये उसे शब्द ब्रह्म कहते हैं। अज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं हो सकती। इस तरह यहाँ निमित्त का विवेक बताया है।

अज्ञानी जीव को बाहर की वस्तुओं का रस पड़ा है जबकि वह तो नाशवान है। दिव्यध्वनि नाशवान है - अनित्य है, अध्रुव है। पुस्तक, वाणी, मंदिर सभी नाशवान हैं जो प्रवाहरूप परिणमते पदार्थ हैं। शब्दब्रह्म नाशवान है।

सूत्र का लक्ष्य छोड़े तो श्रुतज्ञान होगा इसलिये सूत्र उपाधि है

शब्द को जाननेवाली जानन क्रिया - वह ज्ञान है। भगवान की वाणी में आया कि आत्मा ज्ञान स्वभावी है। इस तरह ज्ञान पर्याय में जानना। ज्ञान क्रिया में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ जाता है। शब्दब्रह्म अथवा पुस्तक कुछ नहीं जानते। स्वभाव सन्मुख होकर जानने में आया कि आत्मा को ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी कहते हैं। इस तरह आत्मा के आश्रय से जानन क्रिया हुई उसमें सूत्र के शब्द प्रविष्ट नहीं होते। उसमें सूत्र के शब्दों की उपाधि नहीं है, शब्द निमित्त हैं जिसे यहाँ उपाधि कहते हैं उसे उपाधिकृत भेद कहा है।

सूत्र की तरफ का लक्ष्य छोड़ो तो जानने-देखने की क्रिया ही शेष रहती है.

भगवान की वाणी ज्ञान में निमित्त होने से उसे उपचार से ज्ञान कहा जाता है। जैसे अन्न को प्राण कहते हैं, किन्तु यदि आयु न हो तो रोटी खिलाने पर भी मरण हो जाता है। यदि अन्न प्राण हो तो वह जीवित ही रहे। उसीप्रकार यदि ज्ञान करे तो वाणी निमित्त कहलाती है। इसलिये उपचार से वाणी को ज्ञान कहा जाता है। ऐसा होने से भगवान की वाणी में आए हुए स्वरूप का ज्ञान करना ही श्रुतज्ञान है; वह तो मात्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानने में निमित्त है। निमित्त का लक्ष्य छोड़े तो ज्ञान ज्ञान में से होता है।

वाणी से ज्ञान नहीं होता। यदि वाणी से ज्ञान हो तो सभी को होना चाहिए। जो जीव ज्ञान करता है उसे वाणी के वैभव का आरोप आता है। वाणी का आशय ग्रहण कर ज्ञान में परिणमन करता है, वही श्रुतज्ञान है। प्रथम सूत्र को कारण कहा पश्चात् उसे उपाधि कहा फिर उसका आदर न किया जावे तो - मात्र शक्ति ही शेष रहती है। सूत्र के शब्द की तरफ का लक्ष्य छूट जाये और स्वभाव की तरफ झुके तो ज्ञान होता है। यहाँ श्रुत शब्द कहा इसलिये सूत्र के कारण ज्ञान होता है ऐसा नहीं समझना, क्योंकि शब्दों के कारण ज्ञान होता है यह उपचार है। इस उपाधि का लक्ष्य छोड़े तो जानने की क्रिया ही शेष रहती है।

(१) त्रिलोकी नाथ तीर्थंकर की वाणी के सिवाय अन्य कोई दूसरा निमित्त नहीं होता। अन्यमत की ही नहीं अपितु जैन के नाम से जो कल्पित शास्त्र की रचना हुई है - वह भी (आत्मज्ञान में) निमित्त नहीं होता।

(२) अब, उस निमित्त को उपाधि कहा है क्योंकि उसका लक्ष्य छोड़ने से ही श्रुतज्ञान होता है।

(३) उनका आदर छोड़कर स्वभाव में ठहरनेरूप जानन -क्रिया रही वह श्रुतज्ञान है। इसे ही धर्म कहते हैं।

इस जानने की क्रिया को ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अथवा सामायिक, उपवास, प्रतिक्रमण कहते हैं। प्रथम सूत्र की तरफ लक्ष्य गया था किन्तु उसका भी आदर छोड़कर स्वभाव में ठहरते ही अरूपी श्रुतज्ञान हुआ यह ज्ञप्ति-क्रिया है। भगवान की वाणी ज्ञान नहीं है, उसे निमित्त बनाया।

नियमसार में सम्यग्दर्शन में जिनसूत्र को निमित्त कहा था और यहाँ सम्यग्ज्ञान में जिनवाणी को निमित्त कहते हैं। निमित्त और उपाधि का आदर छोड़कर स्वभाव में ठहरता है उसे श्रुतज्ञान होता है। यहाँ निमित्त का ज्ञान कराया है किन्तु निमित्त का आदर छुड़ाया है। निमित्त के लक्ष्य से जो राग मंदता हुई वह श्रुतज्ञान नहीं है। मेरी ज्ञान पर्याय मेरे में होती है ऐसा आत्मा भाषित हो तो सूत्र का आदर छूट जाता है। सूत्र की ज्ञप्ति कहने पर वहाँ कहीं निश्चय से ज्ञप्ति, पौद्गलिक सूत्र की नहीं - आत्मा की है। सूत्र - जानने की क्रिया का स्वरूपभूत नहीं है, बढ़ी हुई वस्तु अथवा उपाधि है। जैसे छठवीं अंगुली निकम्मी होती है, वैसे ही वाणी उपाधि है। सूत्र का आदर नहीं होता - स्वभाव का आदर होता है वहाँ भी ज्ञान क्रिया होती है। यदि सूत्र को न गिना जाए तो जानने की ही क्रिया दिखाई देती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वाणी का लक्ष्य छोड़े तो श्रुतज्ञान होता है इसलिये ज्ञान में श्रुत उपाधिकृत भेद नहीं है.

आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यातवें भाग में ज्ञानस्वभावी वस्तु है । उस ज्ञानस्वभावी आत्मा को भावश्रुतज्ञान द्वारा अनुभवते हैं और केवली भगवान केवलज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं इसलिये दोनों में ध्येय एक ही है - अंतर नहीं। चौथे गुण स्थानवाले जीव त्रिकाल ज्ञायक स्वभाव का अवलम्बन लेकर पुण्य-पाप का आश्रय छोड़कर क्रमश: कितने ही चैतन्य विशेषोंवाले श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं, और तेरहवें गुणस्थानवाले भगवान भी अक्रम सर्वचैतन्य विशेषोंवाले केवलज्ञान द्वारा आत्मा को अनुभवते हैं - अत: दोनों को एक समान गिना है।

प्रारम्भ में धर्मी अर्थात् पहली शुरूआत वाले धर्मी सम्यक्दृष्टि जीव किसे कहना ?

एक समयमें आत्मा पूर्ण ज्ञानस्वभावी है। भाव श्रुतज्ञान द्वारा (पुण्य-पाप द्वारा नहीं) आत्मा का अनुभव करे और केवलज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करे किन्तु उनमें अंतर नहीं है। पर्याय थोड़ा-बहुत (कम-अधिक) जानने का काम करती है वह बात गौण है।

अब, पूर्णानन्द आत्मा को श्रुतज्ञान द्वारा अनुभवते हैं ऐसा कहा। केवली भगवान केवलज्ञान द्वारा अनुभवते हैं इसलिये उन्हें श्रुत की उपाधि नहीं है।

शंका :- जब अल्पदशावाले श्रुतज्ञान द्वारा अनुभवते हैं तो क्या उसे भी श्रुत की उपाधि नहीं है ?

समाधान :- नहीं। ज्ञान को उपाधि नहीं है। भगवान की वाणी उपाधि है। वाणी का आदर न किया जाए तो जानने की क्रिया शेष रहती है। राग की क्रिया वस्तुस्वरूप नहीं। पर की क्रिया आत्मा में नहीं मात्र जानने की क्रिया रह जाती हैं। वीतराग की वाणी कहती है कि तेरा जानपना रह जाता है। केवली भगवान को भी ज्ञप्ति रहती है। इसलिये दोनों में समानता है।

चौथे, पाँचवें गुण स्थानवालों को और छटवें गुण स्थानवाले मुनि तथा केवली भगवान में अंतर नहीं है। ये सभी आत्म अनुभवन में समतुल्य ही हैं। केवली सभी पदार्थों को जानते हैं इसमें कोई विशेषता नहीं है। एक समय में आत्मा ज्ञान का कंद है। उसे दया-दानादि नहीं है। पुण्य-पाप की उपाधि को निकाल दिया है किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग की वाणी जो सम्यग्ज्ञान में निमित्त है उसे भी निकालकर मात्र जानना ही रहता है।

एक समय में चैतन्य ज्योति है, उसकी अंतर्मुखदृष्टि करके भाव-श्रुतज्ञान होता है - वह राग से नहीं जानता। जैसे बीच में देव-शास्त्र-गुरु का राग आता है, अणुव्रत और महाव्रत का राग आता है किन्तु उसके द्वारा आत्मा को नहीं जानता; वैसे ही भगवान की वाणी के कारण भी नहीं जानता अपितु आत्मा के आश्रय से जानता है। इसलिये भगवान में तथा चौथे गुणस्थानवाले धर्मात्मा में जानने में अंतर नहीं है। यह धर्म की बात है।

पहले, सत्य सुनकर - हाँ तो कह। अज्ञानी विपरीत मान्यता रखते हुए सदा उल्टा ही चिंतन किया करता है।

३३ वीं गाथा में कहा था कि - अज्ञानी कितने ही चैतन्यविशेषों द्वारा श्रुतज्ञान से जानता है तो फिर श्रुत की उपाधि होगी ?

नहीं ! भगवान की वाणी का आदर करने में नहीं आता फिर भी सम्यग्ज्ञान होता है। आत्मा की जानन क्रिया अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की क्रिया है इसलिये आत्म अनुभव में चौथे गुणस्थानवाले और केवली भगवान में अन्तर नहीं है। इसलिये ज्ञानपर्याय ज्ञातास्वभाव की ओर झुककर जानती है; अत: ज्ञान में वाणी के उपाधिकृत भेद नहीं है। जिस तरह केवलज्ञान को शब्दों के निमित्त की उपाधि नहीं है; उसी तरह श्रुतज्ञानी को भी शब्दों के उपाधिकृत भेद नहीं है - ऐसा वीतराग मार्ग है।

एक समय में भगवान ने तीनलोक को जानकर जो स्वरूप कहा है यह उसी स्वरूप की बात चलती है और यही विधि है - ऐसा निर्णय करके स्वरूप का अनुभव कर। केवलज्ञानी, अक्रम सर्व चैतन्यविशेषोंवाले केवलज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करते हैं और श्रुतज्ञानी कितने ही चैतन्यविशेषोंवाले श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करते हैं - दोनों को श्रुत उपाधि भेद नहीं है इसलिये दोनों ही समान हैं।

लोग तो दया, दान, व्रत में धर्म मानते हैं जबकि वह धर्म नहीं अपितु राग की पर्याय है। व्यवहार विकल्प के आधार से अथवा भगवान की वाणी के आधार से कभी भी (कुछ भी) धर्म नहीं होता। आत्मा चैतन्यबिम्ब वस्तु है उसके स्वभाव सन्मुख होकर जाना है इसलिये उनमें अन्तर नहीं है।

शंका :- श्रुतज्ञान चौथे गुणस्थान में है और केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान में है तो उसमें तो अन्तर होगा ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान:- नहीं। दोनों ही ज्ञान में श्रुत उपाधिकृत भेद नहीं है। ३२वीं गाथा में कहा था कि जैसे केवली भगवान को पर के ग्रहण-त्याग का स्वभाव नहीं है; वैसे ही आत्मा का भी पर को ग्रहण-त्याग का स्वभाव नहीं है। ''निश्चय से आत्मा को जानते हैं''। पर को जानते हैं यह बात गौण कर दिया है। अपूर्णदशा में श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को जानते हैं और ऊपर (केवली) केवलज्ञान द्वारा आत्मा को जानते हैं।

नीचे श्रुतज्ञान में श्रुतकृत उपाधि भेद नहीं। धन आदि संयोगों का मिलना होशियारी के आधीन नहीं है अपितु पूर्व पुण्य के कारण पैसा मिलता है; किन्तु अज्ञानी - मेरे कारण पैसा मिलता है - ऐसा मानकर अभिमान की पुष्टि करता है।

शंका :- क्या आत्मा परद्रव्य और आहार आदि का ग्रहण अथवा त्याग कर सकता है ?

समाधान :- नहीं। अज्ञानी भी परद्रव्य का ग्रहण अथवा त्याग नहीं करता। अज्ञानी मानता है कि - मैंने ही पर की व्यवस्था की है। जैसे पर द्रव्य का ग्रहण-त्याग केवली भगववान को नहीं होता; वैसे ही अपूर्णदशा में भी श्रुतज्ञानी को परद्रव्य का ग्रहण-त्याग नहीं है।

अब, श्रुतज्ञानी श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को जानते हैं, उसमें 'श्रुत' कहा है इसलिये उन्हें उपाधि होगी ?

नहीं। वीतराग की वाणी थी तो श्रुतज्ञान हुआ अथवा उसके कारण केवलज्ञान हुआ होगा - ऐसा नहीं है। वाणी का आदर छोड़कर स्वभाव का ज्ञान हुआ वही जानने की क्रिया होती है, इसलिये श्रुतज्ञान में उपाधि भेद नहीं है।

शंका :- कोई कहता है कि - क्या वीतराग मार्ग में हरितकाय नहीं खाना इत्यादि बात नहीं आती ?

समाधान:- भाई ! पर के ग्रहण-त्याग करने के भाव में अज्ञानी अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को मार डाला है - चैतन्य के जीवन को नष्ट कर दिया है। दया-दानादि से धर्म माननेवाले ने तो आत्मा का नाश किया ही है किन्तु वाणी के कारण श्रुतज्ञान हुआ ऐसा माननेवाला भी चैतन्य के जीवत्व का नाश करता है। इसलिये भाई ! सच्ची समझ करो कि - वाणी के कारण ज्ञान हुआ है - ऐसा श्रुतज्ञान का अर्थ नहीं है। पुण्य-पाप के कारण अथवा वाणी के कारण आत्मा नहीं जानता - ऐसा यहाँ कहा है।

शंका :- आत्मा श्रुतज्ञान से जानता है इसलिये आत्मा और ज्ञान इतना तो भेद होगा ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान :- नहीं। अब, आत्मा कर्त्ता है और वह ज्ञान करण द्वारा जानता है - ऐसे कर्त्तृत्व-करणत्वकृत भेद दूर करते हैं। परमार्थ से अभेद आत्मा में आत्मा जानन क्रिया का करता है और भावश्रुत ज्ञान साधन है - ऐसा व्यवहार से भेद किया गया है; फिर भी आत्मा और ज्ञान भिन्न नहीं होने से अभेदनय से आत्मा ही ज्ञान है।

शंका :- वीतरागी वाणी साधन नहीं, पुण्य भी साधन नहीं किन्तु ज्ञान साधन है - ऐसा तो स्वीकार करो ?

समाधान :- नहीं। आत्मा और ज्ञान भिन्न नहीं होने से अभेदनय से आत्मा ही ज्ञान है यह समझाते हैं; धर्म की शुरुआत ही इस तरह होती है। धर्म अर्थात् ज्ञानस्वभाव। ज्ञानस्वभाव को धारण करनेवाला आत्मा है। निमित्त और राग में धर्म नहीं है।

शंका :- लोग कहते हैं कि - इसमें हमारे करने के लिये क्या रहा ?

समाधान :- भाई ! ज्ञान आत्मा के आश्रय से होता है वही क्रिया है - दूसरी कोई क्रिया नहीं है। क्रिया अर्थात् पर्यायें। निमित्त की क्रिया निमित्त में है। पुण्य-पापरूप विकार की क्रिया वह धर्म नहीं है अपितु आत्मा के आश्रय से जो निर्विकारी पर्याय होती है वही धर्म है।

श्रोता- पूर्व गाथा में तो आया था कि ज्ञेय ज्ञान में आते हैं ?

नहीं। ज्ञेयों का प्रवेश ज्ञान में रद्द (निषिद्ध) है और ज्ञान का ज्ञेयों में प्रवेश रद्द किया है। पहले ज्ञेय-ज्ञायक सम्बंध बताया था किन्तुवास्तव में, ज्ञान में ज्ञेय नहीं होता और ज्ञेय में ज्ञान नहीं होता। इसके बाद कहा कि केवली और श्रुतकेवली परद्रव्य का ग्रहण-त्याग नहीं करते। इसके बाद बताया था कि श्रुतज्ञान में श्रुत की उपाधि नहीं है। अब, आगे की गाथा में आत्मा ज्ञान द्वारा जानता है - ऐसे गुण-गुणी के भेद को भी दूर करते हैं।

गुण अनन्त के रस सबै, अनुभव रस के मांहि।
यातै अनुभौ सारिखौ, और दूसरो नांहि ॥

- श्री ज्ञान दर्पण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३५

अथात्मज्ञानयोः कर्तृकरणताकृतं भेदमपनुदति -

जो जाणदि सो णाणं ण हवदि णाणेण जाणगो आदा।
णाणं परिणमदि सयं अट्ठा णाणट्ठिया सव्वे ॥३५॥

अब, आत्मा और ज्ञान का कर्तृत्व-करणत्व कृत भेद दूर करते हैं (अर्थात् परमार्थतः अभेद आत्मा में, 'आत्मा ज्ञातृक्रिया का कर्ता है और ज्ञान करण है' ऐसा व्यवहार से भेद किया जाता है, तथापि आत्मा और ज्ञान भिन्न नहीं है इसलिए अभेद नय से 'आत्मा ही ज्ञान है' ऐसा समझाते हैं) :-

जो जानता वह ज्ञान, ज्ञानी ज्ञान से ज्ञायक नहीं ।
है स्वयं परिणत ज्ञानमय है ज्ञानगत सब अर्थ भी ॥३५॥

गाथार्थ :- जो जानता है सो ज्ञान है (अर्थात् जो ज्ञायक है वही ज्ञान है), ज्ञान के द्वारा आत्मा ज्ञायक है - ऐसा नहीं है। स्वयं ही ज्ञानरूप परिणमित होता है और सर्व पदार्थ ज्ञान स्थित है।

टीका :- आत्मा अपृथग्भूत कर्तृत्व और करणत्वकी शक्तिरूप पारमैश्वर्यवान होने से जो स्वयमेव जानता है (अर्थात् जो ज्ञायक है) वही ज्ञान है; जैसे जिसमें साधकतम उष्णत्व शक्ति अन्तर्लीन है, ऐसी स्वतंत्र अग्नि की दहनक्रिया की प्रसिद्धि होने से उष्णता कही जाती है। परन्तु ऐसा नहीं है कि जैसे पृथग्वर्ती हँसियेसे देवदत्त काटनेवाला कहलाता है उसीप्रकार (पृथग्वर्ती) ज्ञान से आत्मा जाननेवाला (-ज्ञायक) है। यदि ऐसा हो तो दोनों के अचेतनता आ जायेगी और दो अचेतनों का संयोग होने पर भी ज्ञप्ति उत्पन्न नहीं होगी। आत्मा और ज्ञान के पृथग्वर्ती होने पर भी यदि आत्मा के ज्ञप्ति होना माना जाये तो परज्ञान के द्वारा पर को ज्ञप्ति हो जायेगी और इसप्रकार राख इत्यादि के भी ज्ञप्ति का उद्भव निरंकुश हो जायेगा। ('आत्मा और ज्ञान पृथक् हैं किन्तु ज्ञान आत्मा के साथ युक्त हो जाता है, इसलिए आत्मा जानने का कार्य करता है' यदि ऐसा माना जाये तो जैसे ज्ञान आत्मा के साथ युक्त होता है , उसीप्रकार राख, घड़ा, स्तम्भ इत्यादि समस्त पदार्थों के साथ युक्त हो जाये और उससे वे सब पदार्थ भी जानने का कार्य करने लगे; किन्तु ऐसा तो नहीं होता, इसलिए आत्मा और ज्ञान पृथक् नहीं है।) और, अपने से अभिन्न ऐसे समस्त ज्ञेयाकाररूप परिणमित जो ज्ञान है उसरूप स्वयं परिणमित होनेवाले को, कार्यभूत समस्त ज्ञेयाकारों के

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारणभूत समस्त पदार्थ ज्ञानवर्ती ही कथंचित् है। (इसलिए) ज्ञाता और ज्ञान के विभाग की क्लिष्ट कल्पना से क्या प्रयोजन है ? ॥३५॥

* * *

गाथा ३५ पर प्रवचन

आत्मा कर्त्ता और ज्ञान करण - ऐसा भेद भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है.

यहाँ ज्ञान-धर्म की बात है; ज्ञान आत्मा का धर्म है जो त्रिकाल भरा हुआ है - ऐसा जानना ही ज्ञान-धर्म है। आत्मा अपृथकभूत कर्तृत्व और करणत्व की शक्तिरूप परमेश्वर्यवाला होने से जो स्वयमेंव ही जानता है; अर्थात् जो ज्ञायक है वही ज्ञान है। सम्यक्श्रुतज्ञान में चौथे गुणस्थान में आत्मा कर्त्ता और ज्ञान करण ऐसे भेद नहीं है। आत्मा स्वयं ही ज्ञानरूप परिणमता है।

प्रश्नः- श्रुत और राग को तो निकाल दिया किन्तु आत्मा-ज्ञानी और ज्ञान ये भेद तो है न ?

समाधानः- नहीं।

प्रश्नः- ज्ञान ने आत्मा को जाना अर्थात् भेद है ?

समाधानः- नहीं। ज्ञान के साधन द्वारा आत्मा को जानते हैं - इसे भी निकाल दिया है। निमित्त और व्यवहार साधन तो दूर ही रह गये, किन्तु आत्मा स्वयं कर्त्ता और ज्ञान साधन ऐसा भेद भी नहीं है। निमित्त और पुण्य के परिणाम साधन इस बात को तो पहले ही निकाल दिया था। निमित्त और राग से दूर, श्रुत उपाधि से दूर और कर्त्ता और करण के भेद से भी उसे दूर बताया है।

आत्मा स्वयं कर्त्ता और स्वयं करण ऐसे अभेद स्वरूप से परमेश्वर है। कर्त्ता और करण के भेद की परमेश्वरता नहीं है। आत्मा ज्ञान है तथा वह ज्ञान द्वारा जानता है - ऐसा भेद आत्मा में नहीं है। आत्मा कर्त्ता और ज्ञान कर्म ऐसा भेद भी नहीं रहता। आत्मा स्वयमेव जानता है। स्वयं ज्ञानरूप से परिणमता है।

आत्मा ज्ञान द्वारा जानता है ऐसा भेद सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के विषय में नहीं है। साधक जीव की साध्यदशा प्राप्त करने के लिये कैसीदशा होती है उसकी बात चलती है। आत्मा से पृथक नहीं ऐसे कर्तृत्व और करणत्व की शक्तिरूप परमेश्वर्यतावाला होने से स्वयमेंव जानता है; वही ज्ञान पृथक हो और इस पृथक ज्ञान द्वारा आत्मा को जानता हो - ऐसा भेद नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे अग्नि उष्णता कहलाती है; वैसे ही आत्मा स्वयं ही ज्ञान है। आत्मा और ज्ञान अभेद हैं.

जैसे अग्नि का उत्कृष्ट साधन-उष्णताशक्ति अग्नि में अन्तर्लीन है - ऐसी स्वतंत्र अग्नि के दहन क्रिया की प्रसिद्धि होने से अग्नि, उष्णता कही जाती है। अग्नि कर्त्ता और उष्णता साधन है - ऐसा भेद भी नहीं है। अग्नि उष्णस्वरूप है। स्वतंत्र अग्नि जलाने की क्रिया करती होने से, अग्नि की उष्णता कही जाती है; वैसे ही आत्मा जानता है; ज्ञान द्वारा जानता है - ऐसा भेद श्रुतज्ञान में नहीं है। जैसे अग्नि स्वयं ही उष्ण है; वैसे ही आत्मा ही ज्ञान है; अन्य कोई भेद नहीं है। जैसे अग्नि को उष्णता कहा जाता है; वैसे ही आत्मा ज्ञान है। जैसे अग्नि उष्णता द्वारा जलाती है - ऐसा नहीं है; वैसे ही आत्मा ज्ञान द्वारा जानता है - ऐसा भी नहीं है किन्तु स्वयं ही ज्ञानरूप से परिणमता है, गुण-गुणी भेद नहीं है - अभेद है। आत्मा श्रुतज्ञान द्वारा जानता है ऐसा भेद नहीं है। आत्मा ज्ञानरूप परिणमित हो गया है। जैसे अग्नि को उष्णता कहते हैं, अग्नि और उष्णता पृथक नहीं है; वैसे ही आत्मा और ज्ञान पृथक नहीं है।

ज्ञान और आत्मा पृथक मानने से दोनों को अचेतनपने का प्रसंग आयेगा; परन्तु ऐसा नहीं है। जैसे पृथग्वर्ती हँसिये से देवदत्त काटनेवाला कहलाता है; वैसे ही पृथक ज्ञान द्वारा आत्मा जाननेवाला कहलाता हो - ऐसा नहीं है। ज्ञान और आत्मा ऐसा भेद नहीं है। यदि, ज्ञान और आत्मा पृथक हो जाये अर्थात् आत्मा कर्त्ता और ज्ञान करण पृथक रहे तो दोनों ही अचेतन हो जाते हैं।

जैसे अग्नि बिना, उष्णता नहीं रहती; वैसे ही ज्ञान बिना आत्मा नहीं रहता और आत्मा बिना, ज्ञान नहीं रहता। जैसे निमित्त और ज्ञान पृथक है; वैसे ही ज्ञान और आत्मा पृथक नहीं है। आत्मा स्वयं ज्ञानरूप परिणमता है। जैसे हँसिये द्वारा देवदत्त काटनेवाला कहलाता है; वैसे ही पृथग्ज्ञान द्वारा आत्मा जानता हो तो - आत्मा और ज्ञान दोनों ही अचेतन हुये। आत्मारहित ज्ञान, अचेतन हुआ और ज्ञानरहित आत्मा भी अचेतन हुआ। दो अचेतन के संयोग होने पर जानने की क्रिया नहीं होती।

यह, धर्म की बात चलती है। दया-दानादि में धर्म नहीं है। आत्मा स्वयं ज्ञानरूप परिणमता है। यदि, आत्मा और ज्ञान पृथक हो जाये तो दोनों ही अचेतन हो जायेंगे और दो अचेतन मिलाने पर, ज्ञानरूपदशा नहीं होती। यहाँ ज्ञप्ति क्रिया बताई है। आत्मा ज्ञाता है और ज्ञान साधन है - ऐसे भेद में लाभ मानने से मिथ्यात्व होता है - यह बताना है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ज्ञान और आत्मा पृथक् मानने से जड़ पदार्थ जानने का काम करेगें -' आत्मा पृथक रहे और ज्ञान पृथक रहे तो परज्ञान द्वारा परको ज्ञप्ति हो जायेगी। खम्बे को भी ज्ञान का प्रसंग रहे। यदि ज्ञान आत्मा के साथ अभेद न हो तो ज्ञान दूसरे में लगकर दूसरे को दूसरा ज्ञान करेगा। यह आत्मा का ज्ञान पृथक है और पृथक का ज्ञान करे तो ज्ञान खम्बे का हो जायेगा।

आत्मा और ज्ञान पृथक माना जाये और ज्ञान पृथक रहकर जानने की क्रिया करे - ऐसा माना जाये तो पुस्तक को भी जानने की क्रिया होने लगेगी; किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। ज्ञान आत्मा में अभेद है। गुण-गुणी भेद से सम्यग्दर्शन नहीं होता अपितु अभेद से सम्यग्दर्शन होता है।

यह चौथे गुणस्थान की बात चलती है। आत्मा और ज्ञान पृथकवृत्ति मानकर जानने का काम करे तो खम्बे इत्यादि को भी जानने की क्रिया होगी, किन्तु ऐसा नहीं होता। आत्मा और ज्ञान पृथक रहे तो निमित्त और पुण्य पृथक है, तो ज्ञानपर्याय निमित्त और पुण्य के साथ मिलकर जानने का काम करेगी किन्तु ऐसा नहीं होता।

यह तो केवली भगवान द्वारा कहे गये धर्म की बात चलती है। गुण-गुणी अभेद रहे तो ज्ञान प्रगट होता है। गुण और गुणी पृथक मानने में आए तो जड़ में जानने का धर्म होगा। जबतक ज्ञान का आत्मा के साथ अभेदरूप परिणमन न हो तबतक धर्म नहीं होता। यदि ज्ञान और आत्मा पृथक रहकर जानने का काम करे तो राग ज्ञाता हो जायेगा अर्थात् जड़ चेतन बन जायगा।

एक-एक गाथा वस्तु स्वरूप बताकर केवलज्ञान को सिद्ध करती है। गुण-गुणी के अभेद बिना जानने की क्रिया हो जाय तो वह गुण जड़ में पहुंच जायगा और जड़ में ही ज्ञप्ति होगी और कोई मर्यादा ही नहीं रहेगी। शंख, घड़ी, पुस्तक और लकड़ी में भी जानने की क्रिया होने लगेगी; उसी तरह दाल-भात-रोटी में भी जानने की क्रिया होने लगेगी। यदि आत्मा और ज्ञान का अभेदरूप परिणमन न हो और भेदरूप परिणमन होता हो तो राग और जड़ पदार्थों में भी जानने की क्रिया होने लगेगी और उसे भी केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। किसी के धन से दूसरा धनवान हो जाये ऐसा नहीं होता। आत्मा और ज्ञान को पृथक माना जाय तो ज्ञान राख मे पहुंच जायेगा और राख इत्यादि पदार्थ भी जानने लगेंगे।

आत्मा और राग पृथक है किन्तु ज्ञान आत्मा के साथ जुड़ने से आत्मा जानने का कार्य करता है यदि ऐसा माना जाये तो जैसे ज्ञान आत्मा के साथ जुड़ता है; वैसे ही राख, घड़ा, इत्यादि सर्व पदार्थों के साथ जुड़ने से वे पदार्थ भी जानने का कार्य करना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता । इसलिये आत्मा और ज्ञान पृथक नहीं है । श्रुतज्ञानपर्याय आत्मा के साथ अभेद हुई उसमें भेद नहीं है - यही धर्म है । उसे प्रारम्भिक धर्मी कहते हैं ।

आत्मा और ज्ञान पृथक रहकर काम करे और जानने की क्रिया से धर्म हो तो ज्ञान बर्तन में जाकर जानने का काम करेगा और छैनी आदि औजारों में भी ज्ञान होने लगेगा; इसलिये जो विकल्प उठते हैं वह धर्म नहीं है । सांसारिक कार्यों में अज्ञानी अभिमान करता है ।

यहाँ कहते हैं कि स्वभाववान ज्ञानरूप परिणमित होकर, अभिन्न परिणमन हुआ है अथवा स्वभाव और स्वभाववान पृथक रहे हैं ? यदि पृथक रहकर काम करें तो ज्ञान छैनी में२५९२५८गाथा - ३५ पहुंचकर जानने की क्रिया करेगा किन्तु ऐसा कभी नहीं होता । निमित्त और राग से ज्ञानपर्याय पृथक् रहकर स्वभाव के साथ अभेद होती है तो सम्यग्ज्ञान होता है वह धर्म है ।

निमित्त और राग की सहायता के बिना ही आत्मा स्वयं, अपने ज्ञानरूप से परिणमित होता है.

आत्मा की ज्ञानपर्याय होती है । वह ज्ञानपर्याय परवस्तु का ग्रहण-त्याग नहीं करती । मिथ्यादृष्टि भले ही ऐसा माने, किन्तु वह भी परवस्तु का ग्रहण-त्याग नहीं करता । ज्ञानस्वभाव सन्मुख होकर सम्यक्दृष्टि का ज्ञान, श्रुतज्ञान हुआ है । वह ज्ञान वाणी के कारण नहीं होता । ज्ञानदृष्टि स्वभाव में से हुई है किन्तु निमित्त से नहीं हुई और निमित्त का लक्ष्य होने पर राग से ज्ञान नहीं होता । सूत्रशब्द पर है इसलिए उससे हटे तो ज्ञान होता है । इसलिये निमित्त के आदर की जरूरत नहीं है । जैसे सम्यग्ज्ञान अथवा धर्मपर्याय में पर का ग्रहण-त्याग नहीं है; वैसे ही राग से ज्ञानपर्याय नहीं होती । श्रुत का आदर छोड़कर स्वभाव सन्मुख हुआ ज्ञानभाव - श्रुतज्ञान होता है ।

अब, पूछते हैं कि - ज्ञान और आत्मा एक है अथवा पृथक् है ? यदि ज्ञान आत्मा साथ में-अभेद होकर काम न करे और पृथक् काम करते हों तो ज्ञान, राख इत्यादि के साथ में भी काम करने लग जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं होता । ज्ञान आत्मा के साथ अभेद होकर काम करता है इसलिए ज्ञान और आत्मा अभेद हैं । यदि ज्ञान, आत्मा से पृथक् काम करे तो ज्ञान आत्मा के बिना अचेतन होगा और आत्मा भी ज्ञान के बिना अचेतन होगा किन्तु ऐसा नहीं होता; इसलिए ज्ञानपर्याय, स्वभाव को प्राप्त करके काम करती है, किन्तु निमित्त को पाकर ज्ञान काम नहीं करता ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानपर्याय आत्मा के अवलम्बन से होती है। ज्ञेयाकाररूप परिणमता है - अपने ज्ञान में जो ज्ञेयाकार होते हैं उसरूप स्वयं अपने कारण से परिणमता है किन्तु शास्त्र निमित्त है इसलिए परिणमता है - ऐसा नहीं है। अपनी ज्ञानपर्याय स्वयं अपने से परिणमती है। स्वज्ञेय तथा परज्ञेय के आकार अपने में, अपने कारण हुये हैं किन्तु शास्त्र के कारण अथवा राग के कारण ज्ञानाकार नहीं हुये हैं। इसप्रकार आत्मा स्वयं, राग के अवलम्बन बिना ही परिणमता है।

जैसा निमित्त और राग है वैसा ज्ञान जानता है,
इसलिये सर्वपदार्थ ज्ञानवर्ती हैं - ऐसा कथंचित् है.

ज्ञान होते समय पदार्थ और राग निमित्त हैं यह तो व्यवहार से बात करते हैं। यदि ज्ञान राग के अवम्बन से परिणमित होता हो तो ज्ञान और आत्मा पृथक हो जायेंगे और ज्ञान राग का तथा निमित्त का हो जायेगा अत: यह (जानना) मिथ्याज्ञान है। श्रुतज्ञान में स्व तथा पर ज्ञेयाकार जानने में आ जाते हैं। वह ज्ञान अपने आकाररूप होता है। जैसा निमित्त और राग है वैसा ज्ञान जानता है।

समयसार गाथा १२ में कहा है कि - व्यवहारनय उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है उसी बात को यहाँ दूसरे ढंग से करते हैं। आत्मा अपनी ज्ञान पर्याय से परिणमित होता हुआ निमित्त और राग का ज्ञान करता है। जिसप्रकार का राग और निमित्त है वैसा ज्ञान करता है। उस सम्बंधी ज्ञान अपने से हुआ है; इसलिये पदार्थ अपने में है ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। ज्ञान अपने कारण से परिणमता है- ज्ञाता स्वयं परिणमता है फिर भी परद्रव्यों का ज्ञान हुये बिना नहीं रहता; इसलिए पर पदार्थ (ज्ञान में) आ गये हैं ऐसा कहा जाता है।

देखो ! यह वस्तु ज्ञाता, स्वयं अभिन्न होकर ज्ञानरूप परिणमित होती है किन्तु निमित्त और राग के कारण नहीं। उस समय जो राग और निमित्त वर्तता है, उसका ज्ञान अपने में वर्तता है इसलिए पर पदार्थ ज्ञान में आ गये हैं - ऐसा व्यवहार करने में आया है। वहाँ तो एक मात्र स्व-पर प्रकाशक ज्ञान काम कर रहा है। व्यवहार का त्याग कालक्रम में आया है और वैसा ही ज्ञान, अपने कारण से क्रम में परिणमित हुआ है। इसी तरह निमित्त भी अपने कालक्रम में परिणमता है।

इस तरह ज्ञान अपने कारण से परिणमित होता हुआ निमित्त और राग को जान लेता है, इसलिए निमित्त और राग ज्ञान में आ गये हैं-प्रविष्ट हो गये हैं - ऐसा कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वपदार्थ ज्ञानवर्ती हैं - ऐसा कथंचित् है। स्वावलम्बी ज्ञान परिणमित होता हुआ समस्त ज्ञेयाकाररूप परिणमित होने से कोई भी परपदार्थ ज्ञान में प्रविष्ट नहीं हुये हैं, किन्तु उस सम्बंधी ज्ञान, स्वयं के कारण हुआ है इसलिए सर्व पदार्थ ज्ञानवर्ती हैं - ऐसा कथंचित् कहते हैं। पूर्व की गाथा में श्रुतउपाधिकृत भेद निकाल दिया था। अब कहते हैं कि ज्ञाता और ज्ञान के विभाग की क्लिष्ट कल्पना से - क्या प्रयोजन है ? ज्ञान पर्याय पर का ग्रहण-त्याग करे यह तो मिथ्याभाव है, इसी तरह ज्ञानपर्याय शास्त्र से अथवा पर से प्रगट होती है यह भी मिथ्याभाव है।

ज्ञानपर्याय और ज्ञाता का विभाग करना यह क्लिष्ट कल्पना है; उससे तेरी आत्मा को क्या लाभ है ? ज्ञाता और ज्ञान पर्याय - इन दो को लक्ष्य में लेने से विकल्प होता है और विकल्प में लाभ मानने से मिथ्यात्व होता है। इस तरह आगे-आगे और भी स्पष्टीकरण करते हैं।

शंका :- यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि - ज्ञानपर्याय प्रत्येक समय परिणमित होती है और अपने को जानती है - ऐसा किस तरह होगा ?

समाधान :- आत्मा ज्ञाता है और उसकी ज्ञानपर्याय, परका ग्रहण-त्याग नहीं करती और वह निमित्त से नहीं होती। जैसे श्रुतउपाधिकृत भेद नहीं है; वैसे ही कर्त्ता-करण भेद को भी निकाल दिया है। इस तरह यहाँ ज्ञाता और ज्ञान के भेद को निकाला है।

अब, समय-समय ज्ञानपर्याय नई-नई होती है और वह ज्ञानपर्याय उसे जानती हुई होती है; इसका आशय यह है कि वह स्वज्ञेय को जानती है। समय-समय नया ज्ञान होता है। ज्ञाता स्वयं ज्ञानरूप से होता है वह ज्ञान नया-नया होता है और उसे जानता है, इस तरह दो क्रिया एक समय में किस तरह संभवित है ? आत्मा का अवलम्बन लेता हुआ ज्ञान, जैसे-जैसे निमित्त होते हैं उनके जाननेरूप ज्ञान, अपने कारण से हुआ है। नये ज्ञेय हो, नया राग हो, किसी को आर्त्तध्यान हो, किसी को शुक्ल-लेश्या हो - ऐसे नये-नये निमित्त होने से उनको जानता हुआ तो ज्ञान प्रगट होता है, किन्तु वह अपने को जाननेरूप किस तरह परिणमित होगा ? प्रत्येक समय स्वयं परिणमे और स्वयं जाने वह किस तरह है ? अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय क्या है वह आगे छत्तीसवीं गाथा में व्यक्त करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३६

अथ किं ज्ञानं किं ज्ञेयमिति व्यनक्ति -

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिहा समक्खादं।
दव्वं ति पुणो आदा परं च परिणामसंबद्धं ॥३६॥

अब यह व्यक्त करते हैं कि ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है :-

है जीव इससे ज्ञानमय है ज्ञेय द्रव्य त्रिधा कथित ।
परिणाम सद्भावी सभी हैं आत्मा वा अन्य सत् ॥३७॥

गाथार्थ :- इसलिये जीव ज्ञान है और ज्ञेय तीन प्रकार से वर्णित (त्रिकालस्पर्शी) द्रव्य है । (वह ज्ञेयभूत) द्रव्य अर्थात् आत्मा, (स्वात्मा) और पर जो कि परिणामवाले हैं ।

टीका :- (पूर्वोक्त प्रकार) ज्ञानरूप से स्वयं परिणमित होकर स्वतंत्रतया ही जानता है इसलिए जीव ही ज्ञान है, क्योंकि अन्य द्रव्य इसप्रकार (ज्ञानरूप) परिणमित होने तथा जानने में असमर्थ हैं । और ज्ञेय, वर्तचुकी, वर्तरही और वर्तनेवाली ऐसी विचित्र पर्यायों की परम्परा के प्रकार से त्रिविध कालकोटि को स्पर्श करता होने से अनादि-अनन्त ऐसा द्रव्य है। (आत्मा ही ज्ञान है और ज्ञेय समस्त द्रव्य हैं) वह ज्ञेयभूत द्रव्य आत्मा और पर (-स्व और पर) ऐसे दो भेद से दो प्रकार का है। ज्ञान स्व पर ज्ञायक है, इसलिए ज्ञेय की ऐसी द्विविधता मानी जाती है।

प्रश्न :- अपने में क्रिया के हो सकने का विरोध है, इसलिए आत्मा के स्वज्ञायकता कैसे घटित होती है ?

उत्तर :- कौन सी क्रिया है और किसप्रकार का विरोध है ? जो यहाँ (प्रश्न में)विरोधी क्रिया कही गई है वह या तो उत्पत्तिरूप होगी या ज्ञप्तिरूप होगी। प्रथम, उत्पत्तिरूप क्रिया तो ' कहीं स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती ' इस आगम कथन से विरुद्ध ही है परन्तु ज्ञप्तिरूप क्रिया में विरोध नहीं आता, क्योंकि वह, प्रकाशन क्रिया की भांति, उत्पत्ति क्रिया से विरुद्ध प्रकार से (भिन्न प्रकार से) होती है। जैसे जो प्रकाश्यभूत पर को प्रकाशित करता है ऐसे प्रकाशक दीपक को स्वप्रकाश्य को प्रकाशित करने के सम्बन्ध में अन्य प्रकाशक की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसके स्वयमेव प्रकाशन क्रिया की प्राप्ति है; उसीप्रकार जो ज्ञेयभूत पर को जानता है ऐसे ज्ञायक आत्मा को स्वज्ञेय के जानने के सम्बन्ध में अन्य ज्ञायक की

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि स्वयमेव ज्ञान-क्रिया की प्राप्ति है। (इसलिए सिद्ध हुआ कि ज्ञान स्व को भी जान सकता है।)

प्रश्न :- आत्मा को द्रव्यों की ज्ञानरूपता और द्रव्यों को आत्माकी ज्ञेयरूपता कैसे (किसप्रकार घटित) है ?

उत्तर :- वे परिणामवाले होने से - आत्मा और द्रव्य परिणामयुक्त हैं, इसलिए आत्मा के, द्रव्य जिसका आलम्बन हैं ऐसे ज्ञानरूप से (परिणति), और द्रव्योंके, ज्ञानका अवलम्बन लेकर ज्ञेयाकाररूप से परिणति अबाधितरूप से तपती है-प्रतापवंत वर्तती है। (आत्मा और द्रव्य समय-समय पर परिणमन किया करते हैं, वे कूटस्थ नहीं है; इसलिए आत्मा ज्ञानस्वभावसे और द्रव्य ज्ञेय-स्वभावसे परिणमन करता है, इसप्रकार ज्ञानस्वभाव में परिणमित आत्मा ज्ञान के आलम्बनभूत द्रव्यों को जानता है और ज्ञेय-स्वभावसे परिणमित द्रव्य ज्ञेय के आलम्बनभूत ज्ञान में-आत्मा में-ज्ञात होते हैं) ॥३६॥

* * *

गाथा ३६ पर प्रवचन

इसलिये जीव ज्ञान है और ज्ञेय, तीन प्रकार से वर्णित त्रिकाल स्पर्शित द्रव्य है। समय-समय का ज्ञान व्यवहार और निमित्त को जानता है, किन्तु वह स्वयं नया-नया परिणमता है और स्वयं को जानता है यह व्यक्त करते हैं -

आत्मा स्वयं को तथा पर को जानता है, किन्तु रागादि स्वयं को तथा पर को नहीं जानते। पहले कहे अनुसार आत्मा ज्ञानरूप से स्वयं परिणमित होकर स्वतंत्रपने जानता है अर्थात् आत्मा ज्ञाता होकर स्वतंत्रपने स्वयं ही जानता है, किन्तु निमित्त और राग के कारण नहीं जानता। चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में जिस-जिसप्रकार का राग होता है उसे स्वयं अपने आधार से जानता हुआ परिणमता है; इसलिये जीव ही ज्ञान है। आत्मा स्वयं ज्ञाता है - स्वयं परिणमित होकर ज्ञाता है। आत्मा साधन और ज्ञान साध्य ऐसा भेद भी यहाँ निकाल दिया है और कहा है कि - आत्मा स्वयं ही ज्ञान है।

निमित्त, व्यवहार अथवा राग - ज्ञानरूप से परिणमित होने में अथवा जानने में असमर्थ हैं। रागादि ज्ञानरूप से परिणमित नहीं होता तथा राग स्व को तथा पर को नहीं जानता; अर्थात् राग स्वयं को नहीं जानता और राग ज्ञाता को भी नहीं जानता।

व्यवहार, दया, दान, भक्ति के विकल्प तो अंधे हैं, जो स्वयं को नहीं जानते और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान को भी नहीं जानते। आत्मद्रव्य स्वयं ही ज्ञानरूप से परिणमता है और स्वयं ही जानता है।

ज्ञेयों की तीनोंकाल की पर्यायें क्रमबद्ध से निश्चित हैं और ज्ञान भी ऐसा ही निश्चित जानता है.

ज्ञान जो वर्त चुकी, वर्त रही और वर्तनेवाली ऐसी विचित्र पर्यायों की परम्परा के प्रकार से त्रिविध कालकोटि को स्पर्श करता होने से, अनादि-अनन्त ऐसा द्रव्य है। दूसरे पदार्थ तथा राग भी ज्ञेय हैं जो केवलज्ञान में तथा श्रुतज्ञान में जानने में आते हैं। जो पर्यायपने वर्त चुका है, वर्त रहा है और वर्तेगा ऐसे विचित्र पर्यायों की परम्परा है। समय-समय जो विचित्र पर्याय हो रही है अर्थात् किसी को राग तीव्र है किसी को मंद है, किसी को केवलज्ञान हुआ है इस तरह पर्यायों की परम्परा कही है।

पर्याय एक के बाद एक - क्रमबद्ध होती है किन्तु यहाँ विचित्र पर्याय की परम्परा ली गई है अर्थात् किसी समय विकारी और किसी समय अविकारी पर्याय होती है; वैसे ही परमाणु की पर्याय भी लेना, जो विकारी और अविकारी पर्याय की परम्परा कही गई है। पर्यायें जो एक के बाद एक - क्रमबद्ध होती है उनको जानना वह केवलज्ञान का विषय है। ज्ञेयों में परम्परा क्रम और निमित्त का परम्परा क्रम बदल नहीं जाता।

कितने ही जीव कहते हैं कि अमुक प्रकार की पर्याय ही होगी - ऐसा निश्चित नहीं है तो यह बात असत्य है। श्रुतज्ञान हो अथवा केवलज्ञान हो तो भी उनमें पदार्थों की पर्यायें ज्ञेय हैं। ज्ञेय जैसा वर्तन कर रहा था, वर्त रहा है और वर्तेगा - वैसा ज्ञान जानता है। पदार्थ निश्चित है और ज्ञान भी निश्चित है। केवलज्ञान पूर्ण जानता है श्रुतज्ञान पूर्ण परोक्ष जानता है। जैसे ज्ञेय की अवस्था एक के बाद एक परम्परा होती है; वैसे ही ज्ञान की अवस्था की भी एक के बाद एक परम्परा होती है। और जैसी ज्ञान की पर्याय एक के बाद एक परम्परा होती है; वैसे ही ज्ञेय परम्परा परिणमित होती है। इस तरह ज्ञेय त्रिकाल अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य को स्पर्शता है। इस तरह तीनकाल की पर्यायों का पिण्ड वह द्रव्य है।

यहाँ परम्परा का क्या अर्थ है ?

कोई कहता है कि एक के बाद एक होना ऐसा परम्परा का अर्थ करना किन्तु अमुक पर्याय ही होगी - ऐसा परम्परा का अर्थ नहीं लेना तो उसकी यह बात असत्य है। क्योंकि द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ही सत् हैं। प्रत्येक पर्याय चाहे वह विकारी हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अथवा अविकारी सभी सत् है। पर्याय को जिस समय, जिस विधि से, जहाँ होना है वही होगी तथा उस विधि से और उस समय वह सत् है इसमें फेरफार (कुछ भी अदल-बदल) नहीं होता वह नियत ही है। ऐसा इस नियम का अर्थ है।

द्रव्य निश्चित, गुण नियत, पर्याय नियत, विकार और अविकार नियत है ऐसा किसने जाना ?

ज्ञानस्वभाव ने जाना कि इसमें कुछ भी फेरफार करना नहीं है - ऐसा जाने वह श्रुतज्ञान है।

आत्मा स्व-पर प्रकाशक है इसलिये ज्ञेयों में स्वज्ञेय और पर ज्ञेय - ऐसा माना जाता है.

आत्मा का ज्ञान है और ज्ञेय समस्त द्रव्य हैं। आत्मा और पर (स्व-पर) इस तरह ज्ञेय दो प्रकार के हैं। जहाँ-जहाँ जो ज्ञान प्रगट हुआ वह ज्ञान स्वयं को जानता हुआ प्रगट होता है - यह बात सिद्ध करना है। दो प्रकार के ज्ञेय हैं। ज्ञान स्व-पर का जाननेवाला होने से ज्ञेय का ऐसा द्विविधपना जानने में आता है।

यदि ज्ञान स्व-पर प्रकाशक नहीं हो तो - ज्ञेय द्विविध नहीं होगे। आत्मा की ज्ञान पर्याय प्रगट होती है वह स्व-पर प्रकाशक है। स्व-पर आए हैं इसलिये स्वज्ञेय और परज्ञेय दो आए हैं। यह बात सूक्ष्म है। दया-दानादि, व्रत तथा उपवास करने की बात कही जाय तो वह बात अज्ञानी को जल्दी समझ में आती है। व्रत लेनेवालों की भीड़ दिखाई देती है किन्तु भाई ! ज्ञान के बिना व्रत कैसे हो सकते हैं ? यह तो सभी अज्ञान के सामने जलना है।

द्रव्य स्वयं वर्ते हैं, वर्त रहे हैं और वर्तेंगे। आत्मा और अन्य द्रव्य क्रमबद्ध परिणमते हैं। आत्मा को स्व-पर प्रकाशकपना होनेसे ज्ञेय के दो विभाग है। स्व-पर पदार्थ अनादि से जगत में वर्तते हैं।

शंका :- नया-नया ज्ञान हो और नये परज्ञेय हों तो वह अच्छा है, किन्तु नया-नया ज्ञान होता है वह स्वयं को जाने - ऐसा कैसे हो सकता है ? जैसे किसी को यदि नाचना हो तो दूसरे के कंधे के ऊपर तो नाच सकता है, किन्तु कोई स्वयं अपने ही ऊपर खड़े होकर किस तरह नाचेगा ? वैसे ही ज्ञान स्वयं नया-नया परिणमित हो और उस समय स्वयं को जानता हुआ किस तरह प्रगट होगा ? ऐसा कोई प्रश्न करता है यह तो अपने में क्रिया हो सकने का ही विरोध होने से - आत्मा का स्व ज्ञायकपना किस तरह घटित होता है ? स्वयं ज्ञान क्रिया उत्पन्न करे और स्वयं को जाने - यह किस तरह है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान :- ज्ञान पर्याय में से ज्ञान पर्याय की उत्पत्ति होती है इस बात में विरोध है किन्तु ज्ञान पर्याय स्वयं को जाने - इसमें विरोध नहीं है। किस क्रिया के विरोध का निषेध करते हैं ? और किसप्रकार का विरोध है ? इसे तू कुछ नहीं समझता। क्रिया जो कि यहाँ प्रथम विरोधी कहने में आयी है वह कहीं तो उत्पत्तिरूप होती है अथवा कहीं तो जाननेरूप होती है। पर्याय में से पर्याय होती है यह विरोध बराबर है। प्रथम, उत्पत्तिरूप क्रिया तो 'कोई स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती'- ऐसे आगम कथन से विरुद्ध है।

एक समय के परिणमन की क्रिया में से दूसरे समय की परिणमन क्रिया हो जाये ऐसा नहीं होता। ज्ञान पर्याय ग्रहण-त्याग रहित और श्रुत-उपाधि रहित है, किन्तु पर्याय में से पर्याय नहीं होती। ज्ञायक परिणमता है ऐसा कहा है, किन्तु पर्याय परिणमती है ऐसा नहीं कहा। यदि पर्याय में से पर्याय हो तो विरोध आयेगा। ज्ञान, स्वभाव का परिणमन ज्ञान से ही करता है; इस तरह जैसे ज्ञेय होते हैं वैसा ज्ञान करता है इसलिये वे ज्ञेय इसमें आ गये हैं ऐसा कहा जाता है।

अब परिणमन का तेरा विरोध कैसा है ? निमित्त और राग के कारण परिणमन नहीं है। परिणमन के कारण परिणमन है - ऐसा तो हमने नहीं कहा। ज्ञायक स्वयं ज्ञानरूप परिणमता है। धर्मपर्याय निमित्त और राग में से उत्पन्न नहीं होती। यदि धर्मपर्याय, धर्मपर्याय में से उत्पन्न हो तो विरोध है।

ज्ञायक ज्ञानरूप से परिणमता है। ज्ञानपर्याय दूसरे को उत्पन्न करे तो विरोध है; वैसे ही ज्ञानपर्याय दूसरे से उत्पन्न होती है वह भी निकाल दिया है और ज्ञान पर्याय ज्ञान पर्याय में से उत्पन्न होती है - यह भी हमने नहीं कहा, अपितु द्रव्य स्वयं नये-नये श्रुतज्ञान पर्यायरूप परिणमता है। द्रव्य स्वयं परिणमता है यह ज्ञान स्वयं को जानता हुआ परिणमता है। आत्मा ज्ञायकरूप से परिणमता है। पर्याय में से पर्याय होने का विरोध है किन्तु ज्ञान अपने को जानता हुआ प्रगट हो इसमें विरोध नहीं है। यदि वह अपने को जानता हुआ नहीं प्रगटे तो स्वज्ञेय नहीं रहेगा अर्थात् स्व को जानता हुआ नहीं प्रगटे तो वह ज्ञान नहीं कहलाय।

कितने ही लोग कहते हैं कि - हमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ है इसकी हमें खबर नहीं होती तो यह बात असत्य है। समय-समय होनेवाली ज्ञानपर्याय स्व को जानती हुई प्रगट होती है। आत्मा श्रुतज्ञानरूप से परिणमता है; यदि उस परिणमन में से परिणमन माना जाये तो विरोध आता है। स्वयं अपने को नहीं जाने - ऐसा माने तो विरोध आता है। जैसे कोई कहे कि मैं अंधा हूँ इसलिए मैं मेरे को तो नहीं जानता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु मैं दूसरों को देखता हूँ - तो यह बात असत्य (झूठी) है; वैसे ही ज्ञान स्वयं को तो नहीं जाने और दूसरों को जाने तो यह बात भी असत्य (खोटी) है। अत: नया प्रगट हुआ ज्ञान, स्वयं अपने को नहीं जाने तो इसमें विरोध है।

समय-समय की ज्ञान पर्याय स्व को जानती हुई प्रगट होती है.

जिस तरह दीपक दूसरे को बताता है, किन्तु स्वयं को नहीं बताता यदि ऐसा कोई कहे तो यह बात असत्य है। दीपक स्वयं अपने को तथा पर को प्रकाशित करता है। एक समय की प्रकाशक्रिया में से, दूसरे समय की प्रकाशक्रिया प्रगट नहीं होती किन्तु जिस समय प्रकाश होता है उस समय उसे प्रकाशित करता है।

उसी तरह ज्ञानपर्याय में से ज्ञान पर्याय उत्पन्न नहीं होती - यह बात बराबर (सही) है, किन्तु स्व को जानती है इसलिये ज्ञान की क्रिया, उत्पत्ति क्रिया से विरुद्ध प्रकार से वर्तती है। नया-नया ज्ञान होता है और सामने नये-नये पदार्थ बदलते हैं, इसलिये अज्ञानी को भ्रम होता है कि नये-नये पदार्थ बदलते हैं इसलिये ज्ञान हुआ है - ऐसा ही वह मानता है; जबकि यह बात असत्य है।

यहाँ तो यह कहना है कि - ज्ञान पर्याय में से ज्ञान पर्याय होती है - ऐसी उत्पत्ति क्रिया नहीं हो सकती, किन्तु ज्ञान पर्याय अपने को जाने इसमें विरोध नहीं है। ज्ञान पर्याय के परिणमन में से परिणमन नहीं आता यह बताया है, किन्तु परिणमन के समय नहीं जाने तो वह स्वयं अंधी हुई।

अपनी ज्ञानपर्याय स्वयं अपने को जानती है। समय-समय की श्रुतज्ञान पर्याय आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई है; वह स्व-पर प्रकाशक है। जैसी नयी-नयी पर्यायें बुद्धिगत हुई वह स्व को जानती है। 'स्व को जाने' वह अविरोध है, किन्तु यदि वह स्व को न जाने तो इसमें विरोध है। एक समय की क्रिया में से नई क्रिया नहीं होती किन्तु नहीं जाने तो वह ज्ञान कैसा ? इसलिये वह स्व को जानती है। उत्पत्ति क्रिया से ज्ञप्तिक्रिया का वर्तन विरुद्ध है।

जैसे प्रकाशित होने योग्य पदार्थों को दीपक प्रकाशित करता है ऐसा प्रकाश दीपक को स्व-प्रकाश्य को प्रकाशित करने के लिये किसी अन्य प्रकाश की जरूरत नहीं होती। एक व्यक्ति कहता है कि जिस समय मुझे क्रोध आया था उस समय मुझे खबर नहीं पड़ी, किन्तु बाद में मुझे ध्यान आया; तो उससे कहते हैं कि जिस समय दोष (क्रोध) करे उस समय ज्ञान न करे तो ज्ञान का पर प्रकाशन स्वभाव कहाँ गया ? और यदि ज्ञान का स्वयं का जानना प्रगट न हो तो ज्ञान स्व प्रकाशक नहीं रहता। इसलिये अपने-स्व प्रकाशक के लिये दूसरे किसी पदार्थ की जरूरत नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान शक्ति आत्मा में भरी है उसमें से सम्यग्ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है.

यह जो आत्मा है वह ज्ञानस्वभावी वस्तु है। शक्कर मिठास स्वभावी है, लेंडीपीपर तिखास स्वभावी वस्तु है; उसमें से चौंसठ पुटी तिखास प्रगट होती है। चौंसठ पुटी अर्थात् चौंसठ पैसा अर्थात् पूर्ण। पीपर के दाने में पूर्ण तिखास भरी है। जो अंतर में विद्यमान है वह तिखास आती है, किन्तु पत्थर में से वह नहीं आती। जैसे लेंड़ीपीपर के दाने-दाने में तिखास भरी पड़ी है। अंतर में विद्यमान है उसकी प्राप्ति होती है। जो अव्यक्त है वह व्यक्त होती है। चौंसठपुटी प्रगट होती है किन्तु कोई उसे पैंसठ पुटी नहीं कर सकता और त्रेसठ पुटी नहीं रखता। अंदर में है वह प्राप्त होता है। संयोग अथवा पत्थर के कारण तिखास नहीं प्रगटती, किन्तु अपने कारण से प्राप्त होती है।

इसी तरह यह आत्मा भी चौंसठ अर्थात् पूर्ण ज्ञानशक्ति है उसकी वर्तमानदशा में अल्पज्ञता है - देह से भिन्न वस्तु है। वर्तमानदशा में पुण्य-पाप, अल्पज्ञता भले हो किन्तु वह उसका मूल स्वरूप नहीं है। अंतर शक्ति - पूर्ण ज्ञान की शक्ति है। केवलज्ञान शक्ति ध्रुव सामर्थ्यरूप विद्यमान है, इसके अवलम्बन से ज्ञान होता है किन्तु वाणी के कारण ज्ञान नहीं होता किन्तु अंतरस्वभाव से ज्ञान होता है - जो प्रगट होते-होते पूर्ण ज्ञान होता है।

जीवन मुक्तदशा अंतर ज्ञानघन स्वभाव है उसका अवलम्बन लेने से ज्ञान प्रगट होता है किन्तु गुरु अथवा शास्त्र के कारण ज्ञान प्रगट नहीं होता, इसी तरह शुभराग के कारण भी ज्ञान प्रगट नहीं होता, अपितु अंतर में एकाग्रता होने पर नई ज्ञान पर्याय प्रगट होती है।

प्रश्नः- समय-समय नई-नई ज्ञान अवस्था स्वयं होती है और स्वयं को जानती है ? अर्थात् अब, जो ज्ञान अवस्था प्रगट होती है वह अपने को जानती है अथवा नहीं ?

समाधान :- अवस्था अर्थात् वर्तमान अंश। लेंडीपीपर में से एक पुटी तिखास आई उसकी लेंड़ीपीपर को खबर नहीं है। आत्मा में सामर्थ्यपना है उसका भान करके, पर के अवलम्बन बिना निर्मल पर्याय प्रगट हो वही धर्म है। और वही ज्ञान शान्ति लेता हुआ आता है किन्तु पुण्य-पाप, दया-दानादि के कारण धर्म नहीं होता। आत्मा के स्वभाव का अवलम्बन लेकर जो ज्ञान पर्याय प्रगट हुई है वह अंतर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में था तो प्रगट हुआ है।

अब, यह प्रश्न उठता है कि - अनन्त काल में नहीं हुई ऐसी जो ज्ञानदशा हुई है उसे जाने अथवा नहीं जाने ?

प्रश्नः- अपने में क्रिया के हो सकने का विरोध होने से - आत्मा को स्व-ज्ञायकपना किस तरह घटित होता है ? आत्मा ज्ञानस्वभावी है उसमें एकता होना ही धर्म है किन्तु दया-दानादि धर्म नहीं धर्म का साधन नहीं। अंतर स्वभाव के आधार से जो नयी ज्ञान पर्याय होती है अब वह स्वयं होती है और स्वयं को जानती है - ऐसा विरोध आता है। स्वयं हो और स्वयं जाने ऐसा दोपना कैसे घटित होगा ? ज्ञान की जो नई अवस्था होती है वह उसे ही कैसे जाने ? आत्मा की प्रगटदशा में पूर्ण केवलज्ञान नहीं है - अंदर केवलज्ञान शक्ति है उसका विश्वास करके जो ज्ञान प्रगट होता है वही जाने - स्वयं को जानने में आने का काम करे ? इस तरह वह एक समय में दो काम किस तरह करेगा ? 'क्रिया के होने का विरोध' क्रिया अर्थात् सामान्य जो हुई वह उसे जाने अथवा जो हुई उसे कोई दूसरा जाने ? ऐसा यहाँ शिष्य का प्रश्न है।

ज्ञान पर्याय में से ज्ञान पर्याय की उत्पत्ति होना यह तो आगम से विरुद्ध है.

उत्तरः- स्पष्ट करने के लिये भी गुरु शिष्य से प्रश्न करते हैं कि - कौन सी क्रिया है और किसप्रकार का विरोध है ? जो यहाँ (प्रश्न में) विरोधी क्रिया कही गई है वह या तो उत्पत्तिरूप (नई-नई अवस्थारूप) होगी या ज्ञप्तिरूप होगी। जैसे लेंड़ीपीपर में से ६३ पुटी तिखास का अभाव होकर ६४ पुटी तिखास होती है; वैसे ही आत्मा में पूर्व अवस्था का अभाव होकर नई अवस्था होती है इसलिये पूर्व पर्याय में से नई पर्याय नहीं होती। ६३ पुटी तिखास में से ६४ पुटी तिखास नहीं आती। ६३ पुटी तिखास का अभाव होकर ६४ पुटी तिखास, द्रव्य में से आती है; वैसे ही आत्मा में पहलीदशा में जो ज्ञान होता है उस अवस्था में से नया ज्ञान होने का विरोध है।

सोने के कुण्डल में से कड़ा नहीं होता किन्तु कुण्डल का अभाव होकर कड़ा होता है। अतः पर्याय में से पर्याय नहीं होती। इसी तरह आत्मा की नई-नई ज्ञान अवस्था होती है। उसमें से (पूर्व अवस्था से) नई-नई अवस्था नहीं होती, अपितु ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से ज्ञान पर्याय प्रगट होती है। यहाँ ज्ञान की बात करते हैं, बाद में आनन्द की बात लेंगे। ज्ञान की पूर्णदशा होने पर आनन्द पूर्ण होता है।

अब जो ज्ञान पर्याय हुई वह अपने में से होती है - ऐसा नहीं होता जैसे कुण्डल में से कुण्डल बने ऐसा नहीं होता। अवस्था में से अवस्था होती है इसका शास्त्र में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विरोध करते हैं। त्रिकाल स्वभाव के आधार से ज्ञान पर्याय हुई उसमें से नई अवस्था हुई हो - ऐसा नहीं होता। ६३ पुटी में ६३ पुटी तिखास नहीं आती किन्तु ६३ पुटी तिखास, स्वभाव में से आती है। ज्ञान पर्याय हुई है वह अपनी पर्याय में से हुई हो - ऐसा नहीं हो सकता।

जो ज्ञान पर्याय हुई है वह अपने को जानती हुई प्रगट हुई है - इसमें विरोध नहीं हैं.

परन्तु जो ज्ञान पर्याय स्वयं हुई है वह - स्वयं को जानती हुई प्रगट हुई है - इसमें विरोध नहीं आता। पर्याय, स्वयं (पर्याय) से होती है - इसमें विरोध है किन्तु (ज्ञान पर्याय) अपने को जानती हुई प्रगट होती है - इसमें विरोध नहीं है। पर्याय में से पर्याय नहीं होती। ६३ पुटी तिखास ६३ पुटी तिखास में से नहीं आती उसी तरह ज्ञानस्वभाव के आधार से जो ज्ञान प्रगट होता है, उस पर्याय में से पर्याय प्रगट नहीं होती; किन्तु जिस समय होने का काल है उस समय जानने का विरोध नहीं है। जो ज्ञान पर्याय हुई है वह स्वयं को नहीं जानती हो - ऐसा नहीं होता; यह तो धर्म कहलाता है।

भगवान आत्मा तो चैतन्य ज्योति है। शुभाशुभभाव व्रत, दान विकल्प हैं-विकार हैं और शरीर-मन-वाणी पर है तो फिर उनसे धर्म किस तरह होगा ? पूर्ण चिदानन्द स्वभाव के आधार से जो नई-नई अवस्था होती है वही धर्म है। उसकी पूर्ण अवस्था केवलज्ञान है। जीव का अनन्तकाल रखड़ने में चला गया; दूसरे का वेदन किया किन्तु अपना वेदन कभी किया नहीं।

यदि आत्मा पर का कर सकता हो तो स्त्री-पुत्र को रोग आने ही न दे। जबकि इच्छा होने पर भी रोग घटता दिखाई नहीं देता। अत: सिद्ध हुआ कि - इच्छा से पर में कुछ भी काम नहीं होता। इच्छा रहित आत्मा के आधार से ज्ञान पर्याय प्रगट होती है। उस ज्ञान पर्याय में से पर्याय नहीं आती किन्तु वह जानती हुई प्रगट होती है। इसमें विरोध नहीं है। स्वभाव के अवलम्बन से जो अपूर्णदशा प्रगट होती है वह धर्म है और पूर्णदशा प्रगट होती है वह धर्म का फल है।

अपने को सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है इसकी खबर नहीं होती - ऐसा माननेवाले को ज्ञानस्वभाव की खबर नहीं है। जब ज्ञान पर्याय प्रगट होती है तो वह स्वयं को नहीं जाने तो ज्ञान अंधा हो जायेगा। जो नई-नई ज्ञान की अवस्था होती है, वह लकड़ी को तो जाने, किन्तु स्व को नहीं जाने तो ज्ञान अंधा ठहरेगा। इसलिये आत्मा के आश्रय से प्रगट होनेवाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान और केवलज्ञान वह तो स्व को जानता हुआ प्रगट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है। नई-नई अवस्था प्रगट होती हो वह अपने को जानती हुई प्रगट होती है। उसका समय एक ही है - वही उसका स्वरूप है।

कोई कहता है कि - हमारे में ज्ञान हुआ है अथवा नहीं इसकी हमें खबर नहीं पड़ती। स्व के आश्रय से प्रगट होनेवाली ज्ञान अवस्था - होनेरूप क्रिया और जाननेरूप क्रिया ऐसी दो क्रिया करती है। ज्ञानस्वभाव के आश्रय से जो पर्याय प्रगट हुई है उस पर्याय में से पर्याय नहीं आती किन्तु वह स्वयं को जानती हुई प्रगट होती है। पर को तो जाने और स्वयं को न जाने ऐसा नहीं होता।

जिस तरह प्रकाश की पर्याय में से प्रकाश की पर्याय नहीं आती; वैसे ही ज्ञान पर्याय में से ज्ञान पर्याय नहीं आती.

जैसे दीपक दूसरे को प्रकाशित करता है, वैसे ही वह स्वयं को प्रकाशित करता है; जैसे दीपक की ज्योति बदलती जाती है; वैसे ही अपने को प्रकाशित करते जाती है और दूसरे को प्रकाशित करते जाती है। प्रकाश क्रिया की पर्याय में से प्रकाश क्रिया नहीं होती अर्थात् वह उत्पत्ति क्रिया से विरुद्ध है। ज्ञान पर्याय ज्ञान पर्याय में से होती है इसका विरोध है किन्तु होती है उसे जाने उसमें विरोध नहीं है। इस तरह यह न्याय की बात कहते हैं। न्याय में 'नी' धातु है ज्ञान पर्याय अंतर धसती जाती है - वह न्याय है।

दीपक की प्रकाश पर्याय अपनी पर्याय में से हुई है इसका विरोध है किन्तु वह अपने को प्रकाशित करती है यह तो यथार्थ है। वैसे ही ज्ञान पर्याय जो प्रगट हुई है वह पर्याय में से प्रगट हुई है उसका विरोध है किन्तु वह स्वयं को जानती हुई प्रगट हुई है - इसमें विरोध नहीं है।

बाहर में अथवा निमित्त व शुभराग में धर्म नहीं है। धर्म तो धर्म स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। धर्म में से धर्म नहीं आता। धर्म पर्याय अपने को जाने वह उत्पत्ति क्रिया से विरुद्ध वर्तती है।

जिस तरह दीपक स्व को प्रकाशित करता है; वैसे ही ज्ञान पर्याय स्व को जानती है इसके लिये उसे दूसरे ज्ञान की जरूरत नहीं है.

दीपक दूसरे को प्रकाशित करता है वैसे वह स्वयं को प्रकाशित करता है। अपने को प्रकाशित करने में किसी दूसरे की जरूरत नहीं होती क्योंकि उसे स्वयमेव प्रकाशन क्रिया की प्राप्ति है। प्रकाशक क्रिया स्वयं को प्रकाशित करती है। आत्मा ज्ञाता है पर पदार्थ ज्ञेय हैं। जैसे दीपक कोयले आदि को प्रकाशित करता है, वैसे ही दीपक स्वयं को प्रकाशित करता है। उसी तरह जैसे आत्मा शरीर-मन-वाणी को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानता है, वैसे ही ज्ञान, ज्ञान को जानता है। उसे स्वयं को जानने के लिये अन्य ज्ञायक की जरूरत नहीं होती।

निमित्त और राग से ज्ञान जानने में नहीं आता; इसलिये ज्ञानस्वभाव सन्मुख हो। जैसे दीपक अपनी अवस्था को बताता है, वैसे ही ज्ञानस्वभाव सन्मुख ज्ञानदशा अपनी नई अवस्था को जानती हुई प्रगट होती है। जो ज्ञान प्रगट होता है वह स्व को जानता है और पर को पररूप जानता है; इस तरह वह स्व-पर प्रकाशक है।

आत्मा कूटस्थ नहीं है, अवस्था होती है। जो नई अवस्था हुई है वह अपने में से स्वयं नहीं होती किन्तु जो अवस्था होती है वह स्वयं को नहीं जाने ऐसा नहीं होता। जो ज्ञान पर्याय प्रगट होती है। उसे दूसरे की जरूरत पड़े तो दूसरे को तीसरे की जरूरत पड़ेगी, इस तरह अनवस्था दोष की समाप्ति ही नहीं होगी।

जो ज्ञान पर्याय अपनी पर्याय में से नहीं आती किन्तु स्वभाव में से आती है वह ज्ञान स्वयं को जानता हुआ प्रगट होता है। ज्ञान को ज्ञेय की जरूरत नहीं होती। ज्ञान अवस्था प्रगट होती है उसको जानने के लिये दूसरी अवस्था की जरूरत पड़े तो कहीं भी यह क्रम रुकेगा नहीं इसलिये ऐसा नहीं होता।

आत्मा को स्वयमेव ज्ञान क्रिया की प्राप्ति है स्व को जानने की क्रियारूप से काम कर रहा है इस तरह सिद्ध हुआ कि ज्ञान स्व को भी जानता है अथवा ज्ञान अंधा नहीं है। स्वभाव के आधार से प्रगट होनेवाले ज्ञान को जानने के लिये दूसरे की जरूरत पड़े अथवा दूसरे ज्ञान की जरूरत पड़े-ऐसा नहीं होता। कोई भी पर्याय स्वयं अपने में से प्रगट नहीं होती।

चौंसठ पुटी तिखास पर्याय में से उत्पन्न नहीं होती अपितु द्रव्य में से उत्पन्न होती है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो द्रव्यरूप आधार बिना ही पर्याय उत्पन्न हो जायेगी अर्थात् पानी के बिना ही लहरे होगी यह तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है क्योंकि तरंग (लहर) में से तरंग नहीं होती और पानी बिना तरंग नहीं होती; वैसे ही आत्मा की ज्ञान पर्याय में से ज्ञान पर्याय उत्पन्न नहीं होती और आत्मा बिना ज्ञान पर्याय नहीं होती।

उसे द्रव्य नाम दिया गया है जिसका अर्थ है - 'द्रवति इति द्रव्यं'। चेतन द्रव्य के लक्ष्य से द्रवे तो सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र और शान्ति को द्रवे और निमित्त अथवा पुण्य-पाप का आधार लेकर द्रवे तो विकार और अधर्म होगा। वस्तु स्वरूप क्या है ? उसे ख्याल में लिये बिना प्रयोग कहाँ करोगे ? अनादि से अज्ञानी जीव उल्टा ही प्रयोग कर रहा है। दया-दानादि से धर्म मानकर उल्टा ही प्रयोग कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहा है। जबकि ज्ञानानन्द के आश्रय से ही धर्म होता है - ऐसे प्रयोग की उसे खबर ही नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि - तरंग में से तरंग उत्पन्न नहीं होती और पानी बिना ही तरंग हो जाये यह तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है ही। पर्याय अर्थात् समस्त प्रकार से परिणमन होकर लाभ होना वह पर्याय है। ज्ञान पर्याय भी स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती आत्म द्रव्य में से ज्ञान पर्याय उत्पन्न हो यह यथार्थ है। ज्ञान पर्याय स्वयं, स्वयं से जानने में नहीं आती यह बात यथार्थ नहीं है। हमें तो व्रत-तप करना चाहिये, सादा जीवन बिताना चाहिए किन्तु धर्म होता है अथवा नहीं इसकी हमें खबर नहीं पड़ती। जबकि धर्म हो और धर्म की खबर न पड़े - ऐसा कभी नहीं होता।

प्रश्न:- कार्य के लिये दूसरे की जरूरत पड़ती है न ? जैसे लेंड़ीपीपर की तिखास निकालने के लिये खल्लरादि की जरूरत पड़ती है ?

समाधान:- एक रजकण दूसरे को कभी छूता भी नहीं है। यह जो दो अंगुली हैं वे दोनों पृथक रहकर के काम करती है। यदि, वे पृथक रहकर काम नहीं करें तो दो अंगुली नहीं रहती। जब दो पृथक रहकर के काम करती है तो दोनों पृथक स्वतंत्र ही हैं।

खल्लर, दस्ता और लेंड़ीपीपर इन तीनों की क्रियायें तीन है इसलिये वे एक दूसरे में कुछ भी नहीं करते। यदि तीन होकर एक क्रिया करें तो वे तीन पदार्थ नहीं रहते। अज्ञानी को भ्रम होता है। संयोग से स्वभाव होता है यह बात असत्य है; क्योंकि स्वभाव, स्वभाव से होता है - शरीर-मन-वाणी से नहीं। विभाव और स्वभाव दोनों भिन्न-भिन्न हैं तो फिर विभाव से स्वभाव का कार्य हो जाये - ऐसा कैसे हो सकता है।

लोग कहते हैं कि इस कैंची को दस व्यक्ति उठाते हैं। अब, दस व्यक्ति दस रहकर के काम करते हैं अथवा सभी एक होकर के करते हैं ? यदि दस मिलकर के काम करें तो वे दस व्यक्ति नहीं रहते और दस व्यक्ति पृथक रहकर के काम करें तो एक कैंची नही उठाई, इसलिये दस व्यक्ति से कैंची नहीं उठी है अपितु कैंची, कैंची के कारण से उठी है। यह बात जगत की मान्यता से उल्टी है।

तेरी ज्ञान पर्याय निमित्त और विकार से नहीं होती व्यवहार और निश्चय भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। विकार का कार्य अशान्ति है - निश्चय का कार्य शान्ति है - दोनों पृथक हैं। अत: स्वभाव के आश्रय से प्रगट होनेवाला ज्ञान जानने का काम करता है वह अंधा नहीं है। दो पदार्थ दोपने हैं अथवा एकपने हैं। यदि वर्तमानपने दो हैं तो दोनो भिन्न काम करते हैं, किन्तु अज्ञानी संयोग देखकर भ्रम में पड़ता है; जबकि प्रत्येक पदार्थ अपने से काम करते हैं - अन्य वस्तुएं तो संयोग मात्र हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्व को स्व रूप (स्वपने) और पर को पर रूप जानना - ऐसा भेदज्ञान वह धर्म है

यहाँ कहते हैं कि जैसे ज्ञानपर्याय राग से तथा पर से प्रगट नहीं होती; वैसे ही भेद के आश्रय से अथवा पर्याय में से भी पर्याय प्रगट नहीं होती। ज्ञान पर्याय स्वयं को नहीं जाने ऐसा नहीं होता। आत्म द्रव्य में से उत्पन्न होनेवाली ज्ञान पर्याय स्वयं, स्वयं से ही जानने में आती है। इस तरह ज्ञान पर्याय स्वयं को जानती हुई प्रगट होती है।

यह तो लोकोत्तर विषय है। जैसे दीपकरूप आधार में से उत्पन्न होनेवाला प्रकाश स्व-पर को प्रकाशित करता है; वैसे ही आत्मा के आधार से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान, स्व-पर को जानता है। शरीर-मन-वाणी को पररूप जानता है और स्व को स्वरूप जानता है - दोनों ज्ञानरूप एक ही हैं। स्व को स्व की तरह जानना और पर को पररूप से जानना यह भेदज्ञान धर्म है। जो विकल्प उठते हैं वे धर्म नहीं हैं। इस ज्ञान के साथ स्वयं अपने को जानता है स्वयं अपनी ज्ञान पर्याय को जाने बिना पर को किस तरह जाने ? इसलिये अपना जानपना प्रगट होता है - यह अविरोध है।

प्रश्न:- द्रव्य कायम-ध्रुव रहता है और ज्ञानपर्याय नयी-नयी होती है इस तरह आत्मा को ज्ञानरूप और द्रव्यों को ज्ञेयरूप (पना) किस तरह घटित होता है ?

उत्तर:- मूल गाथा में परिणाम सम्बद्ध शब्द है - उसकी टीका अर्थात् स्पष्टीकरण करते हैं। आत्मा और (अन्य) द्रव्य परिणामवाले हैं। यदि पदार्थ नहीं हों तो वह नया नहीं होता, और जो होता है वह सर्वथा नाश को प्राप्त नहीं होता किन्तु रूपाँतरण होता है। प्रत्येक ही पदार्थ कायम रहकर परिणमन करता है, उसका सर्वथा नाश नहीं होता, वैसे ही वह सर्वथा नया भी नहीं होता।

ज्ञान का भी बदलने का स्वभाव है और ज्ञेयों का भी बदलने का स्वभाव है। जैसे ज्ञेय बदलते हैं वैसा ज्ञान, जानकर बदलता है। जैसा ज्ञान में जानने में आता है वैसे ज्ञेय बदल जाते हैं - ऐसा उनका परिणाम स्वभाव है।

यह ज्ञान तत्त्व है। ज्ञान का स्वभाव क्या है ? उसका कथन है। ज्ञानस्वभाव शक्तिरूप से पूर्ण है। इसके अवलम्बन से प्रगट हुई सर्वज्ञ की पर्याय पूर्णत: ज्ञान से भरी हुई है। शक्तिरूप से पूर्ण स्वभाव और प्रगटरूप से पूर्ण स्वभाव होना - ऐसा ज्ञानस्वभाव है। ज्ञान समय-समय पर बदलता है और ज्ञेय (भी) समय-समय पर बदलते हैं इस तरह ज्ञान में ज्ञेय निमित्त है और ज्ञेय में ज्ञान निमित्त है। यह मेल किस तरह से है ? आत्मा का अनन्त द्रव्यों से ज्ञानरूप परिणमित होना और द्रव्यों का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् ज्ञेयों का आत्मा के भागरूपपना किस तरह घटित होता है अर्थात् उनमें किस तरह मेल खाता है ? पदार्थ समय-समय पर पृथक-पृथक होते हैं और केवलज्ञान समय - समय में बदलता है इसप्रकार का मेल किस तरह है ?

उत्तर :- रागादि को ज्ञान निमित्त है और ज्ञान को रागादि निमित्त है। केवलज्ञान तथा अन्य ज्ञान समय-समय में बदलता है और पदार्थ भी समय-समय में बदलते हैं। ज्ञान और कोई भी ज्ञेय, परिणाम रहित नहीं होता - सभी परिणामवाले हैं। ज्ञान को, ज्ञेयभूत द्रव्य आलंबन अथवा निमित्त हैं। ज्ञान ज्ञेय को न जाने तो ज्ञान की शक्ति क्या ? यहाँ निचलीदशा में अनन्त जीवों के जो२६७२६६गाथा - ३६२६७२६६गाथा - ३६ रागरूप परिणाम हैं वे उस समय राग सम्बंधी के ज्ञानरूप से परिणमना ज्ञान में होता है। दूसरे समय राग कम हो तो ज्ञान भी यही जानता हुआ परिणमता है; उनमें ज्ञेय-ज्ञायक, निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। ज्ञान में वे द्रव्य जिस तरह परिणमित हो रहे हैं वे निमित्त है। जिस द्रव्य की और जिस गुण की विकारी अथवा अविकारीदशा जैसी है वैसी है। इस तरह द्रव्य-गुण-पर्यायरूप ज्ञेय, ज्ञान में निमित्त है।

जैसे ज्ञेय परिणमित होते हैं वैसे ज्ञेयों को जानता हुआ ज्ञान अपने कारण से परिणमित होता है। ज्ञेयों के परिणमन में केवलज्ञान निमित्त है। जैसा ज्ञान में परिणमन होता है वैसा ज्ञेयों में परिणमन होता है। ज्ञेय, ज्ञेय के कारण से परिणमते हैं, उसमें केवलज्ञान निमित्त है। केवलज्ञान, केवलज्ञान के कारण से परिणमता है; उसमें ज्ञेय निमित्त हैं। इस तरह वे परस्पर निमित्त है। जिस तरह केवलज्ञान में ज्ञान परिणमित हो रहा है वैसा ही यहाँ छह द्रव्यों का परिणमन होता है।

ज्ञेय अपने कारण से विकाररूप अथवा अविकाररूप परिणमते हैं। इसमें ज्ञान निमित्त है और ज्ञान, ज्ञेय को निमित्त है। यहाँ विकार के परिणमन में ज्ञान (को) निमित्त कहा। कर्म का उदय है वह उसका परिणमन है - इसमें ज्ञान निमित्त है। कर्म के उदय का परिणमन है वह ज्ञान को निमित्त है। यहाँ विकार में कर्म को निमित्त नहीं लिया। अपनी पूर्ण ज्ञानपर्याय प्रगट हुई वह ज्ञेय में निमित्त है और ज्ञेय ज्ञान को निमित्त है। अब सम्पूर्ण जगत में ज्ञान को निमित्त कहा और रागरूप परिणति को केवलज्ञान का निमित्त कहा।

प्रश्नः- क्या लेंड़ीपीपर की तिखास खलर-दस्ते के कारण प्रगट हुई है ?

समाधानः- खलरदस्ता और पीपर तीनों, तीन रहे हैं अथवा वे एकमेक होकर काम करते हैं ? यदि तीनों एक होकर काम करते हैं तो तीन नहीं रहते और तीन पृथक रहकर काम करते हैं तो एक दूसरे का क्या किया ? इस जगत में अनन्त पदार्थ हैं वे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्त संख्या रहकर काम करते हैं। पर्याय कार्य है। अनन्त द्रव्य के अनन्त कार्य हैं। अनन्त द्रव्य, अनन्त रहकर के कार्य करते हैं अथवा एक होकर के काम करते हैं? अनन्त, एक होकर के काम करें तो वे अनन्त नहीं रहते और अनन्त पृथक-पृथक काम करते हैं तो एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कार्य नहीं करता।

अज्ञानी संयोग देखता है; खल्लर आया तो पीपर में तिखास आई ऐसा वह मानता है। इसलिये संयोग से समाधान मानता है। ऐसी दृष्टिवाला जीव विकार से ज्ञान मानता है, किन्तु मैं ज्ञाता स्वभावी हूँ - ऐसा जाने तो वह ज्ञान राग और निमित्त का पृथक कार्य जाने। तीन वस्तु तीन रहकर के काम करती हैं अथवा मिलकर के करती है ?

राग-व्यवहार और स्वभाव निश्चित है दोनों पृथक हैं तो उनके कार्य भी पृथक हैं। इसलिये निमित्त से राग नहीं होता और राग से ज्ञान नहीं होता। विकार का जो समय है वह भी निश्चित है। उस समय निमित्त देखकर, यह निमित्त था तो कार्य हुआ - ऐसा अज्ञानी मानता है किन्तु स्वभाव को वह नहीं देखता। निमित्त, राग और स्वभाव का पृथक निर्णय करे तो भ्राँति की उत्पत्ति नहीं होती। निमित्त,निमित्त से है; राग, राग से है और ज्ञानस्वभाव, ज्ञानस्वभाव से है - ऐसा निर्णय करे तो भ्राँति उत्पन्न नहीं होती। यह बात सूक्ष्म है - अज्ञानी को कठिन लगती है।

ज्ञानस्वभाव का निर्णय करते ही राग और संयोग की दृष्टि छूट जाती है। केवलज्ञान में सभी ज्ञेय निमित्त हैं और ज्ञेय में ज्ञान निमित्त है - ऐसा यहाँ कहते हैं। विकार परिणति होती है उसे केवलज्ञान निमित्त है। कर्म का उदय, विकार-अविकारी पर्याय और अन्य केवलियों को केवलज्ञान निमित्त है।

अनन्त ज्ञेय, अनन्तरूप परिणमते हैं। विचित्र पर्यायों की परम्परा के प्रकार द्वारा त्रिविध कालकोटि को स्पर्शित होने से अनादि अनन्त ऐसा द्रव्य है। जिसप्रकार से जो पर्याय होनेवाली है उसका स्पर्श करके द्रव्य रहता है। वे ज्ञेय ज्ञान में निमित्त है।

यहाँ एक ज्ञेय दूसरे ज्ञेय को निमित्त है यह बात यहाँ नहीं लेना है अपितु ज्ञान पर्याय में ज्ञेय निमित्त हैं और ज्ञान ज्ञेयों को निमित्त है यह कहते हैं। विकार और कर्म का उदय केवलज्ञान में निमित्त है ऐसा ज्ञानस्वभाव सामर्थ्य का निर्णय करने गये तो निमित्त और राग की दृष्टि छूटकर स्वभावदृष्टि होती है।

इस ज्ञानतत्त्व की एक-एक गाथा ऊँची है। एक परमाणु को दूसरा परमाणु निमित्त है अथवा एक परमाणु को आत्मा निमित्त है यह बात यहाँ नहीं लेना है। भले ही अनुकूल निमित्त हो किन्तु वे सभी ज्ञान में निमित्त है और ज्ञान ज्ञेयों में निमित्त है। इस तरह स्वभाव का निर्णय, राग और निमित्त के आधार से नहीं होता किन्तु निमित्त और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग से रहित ज्ञानस्वभाव के आधार से निर्णय होता है।

सर्वज्ञ का ज्ञान सर्वज्ञपने परिणमित होता है और पूर्ण ज्ञेय, पूर्णरूप से सभी निमित्त हैं; और अल्पज्ञ का ज्ञान अल्पज्ञपने परिणमित होता है और उस ज्ञान के थोड़े ज्ञेय निमित्त हैं; प्रतीति में सभी ज्ञेय तरीके वर्तते हैं और निमित्त तरफ का अस्थिरता का झुकाव वर्तता है; उतने ज्ञेय श्रुतज्ञान में निमित्त हैं। इस तरह ज्ञान और ज्ञेय का स्वतंत्र परिणमन हुआ करता है।

सभी द्रव्य अपनी-अपनी पृथक-पृथक अवस्थारूप से परिणमित होकर प्रतापवन्त वर्तते हैं; उन्हें केवलज्ञान निमित्त है। संयोग का भी अपना स्वभाव है। संयोगी वस्तु स्वयं की स्वाभाविक वस्तु है। इस स्वभाव की अपेक्षा से वह वस्तु संयोग है किन्तु निमित्त का उपादान तरीके उसका उपादान स्वभाव है अर्थात् दो स्वभाव रह गये। ज्ञान पर्याय में दो स्वभाव ज्ञेयरूप रह गये। इस तरह ज्ञेयस्वभाव की सामर्थ्य है।

यदि, ज्ञान ज्ञेयों को न जाने तो ज्ञान का सामर्थ्यपना क्या रहा और ज्ञेय जानने में न आवें तो ज्ञेयों का सामर्थ्यपना क्या रहा ? इस बात को छोड़कर अज्ञानी भ्राँति करके, पर पदार्थों, राग और ज्ञान को एक मानता है। केवलज्ञानी, साधक अथवा मिथ्यादृष्टि पर का ग्रहण-त्याग नहीं कर सकता, किन्तु मिथ्यादृष्टि एक-दूसरे में मिलावट करता है। आत्मा की ज्ञानरूप परिणति में (अन्य) द्रव्य निमित्त हैं। ज्ञानरूप परिणति स्वयं से होती है उसमें द्रव्य निमित्त है। ज्ञान को निमित्त करके आत्मा की अवस्था मिथ्यात्वरूप, अविकाररूप, केवलज्ञानरूप से अबाधितपने होती है; केवलज्ञान उसे निमित्त है।

विकार सर्वज्ञ की अपेक्षा से और स्वयं की अपेक्षा से नियत ही है.

जो वर्तमान पर्याय है वह व्यय होने पर वह पर्याय भूतकाल की हो गई और जो भविष्य की थी वह पर्याय वर्तमान होती है - ऐसा केवलज्ञान जानता है। ज्ञान तो सभी निश्चित है। ज्ञान सर्व का पता लेता है किन्तु अनन्त आत्मा में एक के बाद एक कोई निश्चित क्रमबद्ध विकार होता है ऐसी शक्ति है।

शंका :- केवलज्ञान तो ज्ञेयों को बराबर जानता है इस अपेक्षा से विकार उसमें निमित्त हुआ किन्तु उस जीव में वह किस तरह नियत है ? ऐसा कोई प्रश्न करता है -

समाधान:- भाई ! जो विकार होनेवाला है उसमें ज्ञान निमित्त है और जो विकार होनेवाला होता है वही होता है; दूसरे समय में जो विकार होनेवाला होता है वह भी निश्चित है। ज्ञान और विकार क्रमबद्ध है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वज्ञ की आत्मा ने विकार जाना है इसलिये सर्वज्ञ की अपेक्षा से वह निश्चित है, किन्तु इस जीव में यही विकार होगा यह निश्चित नहीं है - ऐसा कोई कहे तो यह बात असत्य है। क्योंकि दोनों ही निश्चित हैं। यदि निश्चित न हो तो ज्ञान का नाश होता है। ज्ञान के कारण से ज्ञेय नहीं है; ज्ञेय अपने स्वभाव से है ज्ञेय अपने कारण से क्रमबद्ध परिणमित होता है और ज्ञान अपने कारण से क्रमबद्ध परिणमित होता है।

विकार सर्वज्ञ की अपेक्षा से निश्चित है और विकार अपनी अपेक्षा से अनियत है, क्योंकि अमुक विकार के बाद अमुक ही विकार होगा ऐसा कोई गुण नहीं है अर्थात् विकार क्रमबद्ध होता है ऐसा गुण नहीं है - ऐसा अज्ञानी कहता है; जबकि यह बात असत्य है - यह तो मूल में ही भूल है।

ज्ञेय का स्वभाव ज्ञान के कारण से नहीं है। आत्मा के ज्ञान में जो ज्ञेय है उस ज्ञेय का स्वभाव ऐसा है कि जिस समय जो राग अथवा द्वेष होनेवाला है वही होता है - ऐसा ज्ञेय का भी क्रमबद्ध स्वभाव है; ऐसा निर्णय ज्ञानतत्त्व में होता है। मैं ज्ञान तत्त्व हूँ ऐसा निर्णय होने पर भ्राँति की उत्पत्ति नहीं होती। क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय वह ज्ञानस्वभाव का निर्णय है। जो दृष्टि निमित्त और राग के ऊपर है, वह दृष्टि छूटकर ज्ञानस्वभाव ऊपर होगी। इसमें निमित्त को लाने की, करने की तथा राग को करने की बुद्धि छूट जाती है। क्रमशः राग घटकर केवली होगा।

अज्ञानी को भी क्रमबद्ध परिणमन है किन्तु उसे क्रमबद्ध की खबर नहीं है। जिस समय, जिसे जो राग होना है वह होगा ही - ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि राग और निमित्त से हटकर स्वभाव ऊपर आयेगी वही पुरुषार्थ है। ज्ञान स्वभाव का निर्णय करने में अनन्त पुरुषार्थ है। इस निर्णय में पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि व कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है और ज्ञानबुद्धि होती है। इस तरह निमित्त राग और स्वभाव की पृथकता अथवा भेदज्ञान होता है। अज्ञानी को ज्ञानस्वभाव स्वीकार नहीं होता उसे तो इन निमित्तों को लाना है और राग करना है; यह सब पर्याय बुद्धि है। (प्र.प्र.पृ.२५०)

विकार, विकार से है; वह विकार केवलज्ञान में निमित्त है और केवलज्ञान विकार में निमित्त है - ऐसा निर्णय करनेवाला ज्ञानस्वभाव की तरफ झुकता है। छद्मस्थ जीव को ज्ञेयों का निर्णय होने पर 'मैं ज्ञाता हूँ' ऐसा निर्णय होता है। अमुक राग शेष रहता है वह ज्ञाता के ज्ञेयपने रहता है। ज्ञेय, केवलज्ञान का अवलम्बन लेकर परिणमित होते हैं। ज्ञानस्वभाव पूर्ण है और उसकी पूर्ण पर्याय किसी को नहीं बदलती - ऐसा निर्णय करनेवाले को पर को बदलने की और विभाव की रुचि नहीं रहती अपितु स्वभाव की रुचि रहती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं ज्ञाता है जगत के पदार्थ ज्ञेय हैं इसके सिवाय दूसरा कोई सम्बंध नहीं.

अज्ञानी जीव यह समझे बिना व्यवहार अंगीकार करते हैं; व्यवहार करते-करते धर्म होगा ऐसा वे मानते हैं। इस तरह निमित्त और राग से लाभ होगा ऐसी शुरुआत की है; किन्तु वह ज्ञानस्वभाव से निर्णय नहीं करता। ऐसा करो तो कहीं मंदता होगी। इसलिये व्यवहार से धर्म होगा ऐसा मानकर व्रतों को अंगीकार करता है।

आत्मा चैतन्य मूर्ति है, जाननहार-देखनहार है। एक तरफ ज्ञाता है जो ज्ञेयों का जाननेवाला है और ज्ञेय जानने योग्य है, मात्र इतनी बात है; किन्तु अज्ञानी ज्ञेयों में फेरफार करना चाहता है। ज्ञेयों में फेरफार हो तो मुझे सुख होगा ऐसी उसे भ्राँति है। ज्ञेयों को बदलना माने तो वह ज्ञाता का ज्ञेय नहीं रहा किन्तु (उसने वहाँ) कर्ता-कर्म मान लिया है, जबकि यह तो भ्राँति है। यह ज्ञेय हैं और मैं ज्ञाता हूँ - तब वह ज्ञाता का ज्ञेय रहता है, किन्तु मैं इसका करूँ यह तो भ्राँति है।

ज्ञेय जिस समय बदलते हैं उस समय ज्ञान स्वयं के कारण बदलता है - ऐसा वह ज्ञेय स्वभाव और ज्ञानस्वभाव दोनों को नहीं समझता और उन्हें बदलना चाहता है जबकि यह तो भ्राँति है। पदार्थ नये नहीं होते किन्तु कायम रहकर केरूपान्तरित होते हैं, उसे केवलज्ञान जानता है। पुराने कर्म का उदय राग में निमित्त है और राग नये कर्म में निमित्त है - यह बात यहाँ नहीं ली है। पुराने कर्म का उदय, राग और नये कर्म का बन्ध सभी केवलज्ञान में निमित्त हैं।

बीच की भूल निकाल कर आत्मा का ध्रुव स्वभाव क्या है ? (वह समझ) शरीर-मन-वाणी का संयोग होता है वह तेरा स्वभाव नहीं है। जो विकार बदलता है वह भी तेरा स्वरूप नहीं है, अपितु ज्ञान तेरा स्वभाव है। जो स्वभाव होता है वह अधूरा नहीं होता। पूर्ण ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से केवलज्ञान प्रगट होता है उसमें लोकालोक निमित्त होता है। ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि-ज्ञातादृष्टि स्वभाव ऊपर जाती है और ऐसा निर्णय करना ही धर्म है। बीच में निमित्त और राग आता है वह धर्म नहीं है।

जितने जानने लायक पदार्थों की अवस्था होती है, उसमें सर्वज्ञ का ज्ञान निमित्त है। ऐसे निमित्त की संयोगता का ज्ञान, विभाव की विपरीतता का ज्ञान और स्वभाव की सामर्थ्य का ज्ञान होने पर सत्य ज्ञान होता है। ज्ञान का अवलम्बन लेकर ज्ञेय अबाधितपने परिणमित होते हैं।

भविष्य की जो पर्याय होनेवाली है वह केवलज्ञानी के ज्ञान में आ जाती है। उस ज्ञान में ज्ञेय निमित्त है। इस तरह केवली भगवान ने देखा है और मैं ज्ञानस्वभावी हूँ -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे ज्ञान तत्त्व का निर्णय सम्यग्दर्शन है। पूर्ण शुद्धदशा का कारण - चारित्र है। चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन की भूमिका में जो लीनता होती है वह चारित्र है। आत्मज्ञान बिना, चारित्र नहीं होता और चारित्र बिना, मुक्ति नहीं होती। अत: चारित्र ही धर्म है। इसी चारित्र से सर्वज्ञ हुए हैं। केवलज्ञान कैसा है - वह बात करते हैं।

ज्ञान पर को आगे पीछे करे अथवा पर पदार्थ ज्ञान से आगे पीछे हो जाये - ऐसा स्वभाव नहीं है। सर्वज्ञ, सर्वज्ञपने परिणमित हो रहे हैं और ज्ञेय, ज्ञेयरूप से परिणमित हो रहे हैं - वे अबाधितपने तपते (परिणमते) हैं। चैतन्य की पूर्णदशा - सर्वज्ञता है।

भविष्य में जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वह निश्चित है - ऐसा निर्णय करने पर मैं ज्ञाता हूँ - सर्वज्ञ पूर्णत: ज्ञाता हैं और मैं अल्प ज्ञाता हूँ - निमित्त को मिलाने (जुटाने)वाला नहीं - उनकी भावना करनेवाला नहीं हूँ। वैसे ही ज्ञेय, ज्ञान से एकत्रित हो जावें - ऐसा ज्ञेयों का स्वभाव नहीं है। यह लकड़ी ज्ञान से आगे-पीछे हो जाये ऐसा लकड़ी का स्वभाव नहीं है। उसे ज्ञेय तरीके (रूप से) जानना - ऐसा स्वभाव है। जीव में इच्छा होती है वह ज्ञेय है, लकड़ी भी ज्ञेय है।

प्रश्न :- ज्ञेयों का क्या स्वभाव है ?

उत्तर :- वे ज्ञान में ज्ञेय तरीके निमित्त हैं। ज्ञेयों को लाने का स्वभाव ज्ञान का नहीं है। ज्ञान से ज्ञेय नजदीक आ जावें - ऐसा ज्ञेयों का स्वभाव नहीं है। ज्ञान का जानने का स्वभाव है और ज्ञेयों का जानने में आने का स्वभाव है, इसके सिवाय बीच में जो कुछ मिलावट होती है वह काटकर निकाल देने जैसी है। जैसे छटवी उँगली बढ़ी हुई हो तो काट कर निकाल देने जैसी है। वैसे ही अज्ञान से उत्पन्न की गई भ्रमणा निकाल देने जैसी है।

केवलज्ञान स्वयं समय-समय बदलता है और लोकालोक भी समय-समय बदलता है.

यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार है। ज्ञानतत्त्व अर्थात् ज्ञानरूप भाव है। आत्मा ज्ञान भाव स्वरूप है। आत्मा जानने-देखने का काम करता है। संयोग होते हैं, उन्हें स्व-प्रकाशक में रहकर के पर-प्रकाशक तरीके जानता है। ऐसी दृष्टिपूर्वक, सही स्वरूप समझना वह धर्म है। आत्मा भाववान है - ज्ञान भाव है; इसका भेद निकाल दें तो ज्ञायक आत्मा है।

आत्मा प्रतिक्षण बदलता है, ज्ञेय भी प्रतिक्षण बदलते हैं दोनों का बदलने का स्वभाव है। आत्मा और द्रव्य समय-समय परिणाम किया करते हैं। त्रिलोकीनाथ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का ज्ञान समय-समय बदलता है। लोकालोक भी बदलता है - वह कूटस्थ नहीं है। जैसे पानी में तरंग उठती है; वैसे ही आत्मा भी कायम-ध्रुव द्रव्य रहकर के बदलता है। आत्मा ज्ञानस्वभावी रकम है। जो अपने ज्ञानस्वभाव की रकम रखता है। उसमें पर पदार्थ जानने में आ जाते हैं।

आत्म-व्यापार किसे कहते हैं ?

मेरी रकम ज्ञानस्वभाव है; उसकी अवस्था बदलती है। पर पदार्थों की अवस्था आत्मा नहीं बदलता। आत्मा ज्ञानस्वभावरूप होता है और द्रव्य ज्ञेयस्वभावरूप बदलते हैं। आत्मा उनका कर्ता नहीं है और द्रव्य का परिणमन उसका कार्य नहीं है। यहाँ सर्वज्ञ की बात है किन्तु निचली सभीदशाओं में भी यही नियम लागू होता है।

यहाँ कहते हैं कि अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय कर; जो निमित्त और राग आते हैं उन्हें जाने, किन्तु वह रकम रखकर जाने। द्रव्य समय-समय परिणमित होते हैं, और ज्ञान भी समय-समय परिणमित होता है। केवलज्ञान का परिणमन लोकालोक के कारण नहीं है और लोकालोक का परिणमन केवलज्ञान के कारण नहीं है। केवलज्ञान भी परिणमता है।

यदि परिणमन न हो तो वस्तु का नाश हो जाय। अपने ज्ञानस्वभाव को रखकर के लोकालोक को जानते हैं उसमें तन्मय नहीं होते; इसलिये व्यवहार से जानते हैं ऐसा कहा है, किन्तु लोकालोक सम्बंधी ज्ञान स्वयं से हुआ है। इस तरह ज्ञानस्वभाव से हुआ आत्मा, ज्ञान के निमित्तभूत द्रव्यों को जानता है। ज्ञेय स्वभाव से परिणमते द्रव्य, ज्ञेय के आलम्बनभूत ज्ञान में - आत्मा में जानने में आते हैं।

ज्ञेयों का आलंबन ज्ञान है और ज्ञेय, ज्ञान के आलंबन है। यहाँ आलंबन अर्थात् निमित्त समझना। जैसा ज्ञेयों का स्वभाव निश्चित है वैसा ज्ञान जानता है किन्तु ज्ञान ने जाना है इसलिये ज्ञेय में नियत परिणमन होता है - ऐसा नहीं है। ज्ञेय में क्रमबद्ध निश्चित परिणमन स्वयं के कारण से होता है।

प्रश्नः- यदि ऐसा है तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

समाधानः- सर्वज्ञ जाननार है वैसा ही मैं भी जाननार हूँ जो अवस्था होनेवाली है उसका होना क्रमबद्ध है। सर्वज्ञ, साधक और मिथ्यादृष्टि सभी को क्रमबद्ध परिणमन है - ऐसा निर्णय होने पर जिसे ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव की प्रतीति हुई है उसे क्रमशः राग घट जायेगा यही क्रमबद्ध के निर्णय में पुरुषार्थ है।

अज्ञानी मानता है कि निमित्त आये तो उपादान में विलक्षणता होती है। अग्नि आये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो कपड़ा जल जाता है - ऐसा वह कहता है किन्तु वह खोटी (असत्य) बात है। कपड़े के स्पर्श गुण की ठण्डी पर्याय का व्यय होकर गरम अवस्था होती है, वह स्वयं कपड़े के कारण से है - अग्नि के कारण कपड़े की गरम अवस्था नहीं होती।

प्रश्नः- तो क्या कपड़ा अग्नि के बिना ही जलता है ?

समाधानः- कपड़े की जलने की अवस्था और अग्नि दोनों निश्चित है। यहाँ केवलज्ञान की बात है। किन्तु निचलीदशा में भी यही नियम समझना। निचलीदशा मे अल्पज्ञपने जाने और सर्वज्ञपने जाने इतना ही अंतर है।

केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है और लोकालोक केवलज्ञान को निमित्त है। केवलज्ञान की पर्याय स्वयं से परिणमित होती है और लोकालोक की पर्याय भी स्वयं (लोकालोक से) परिणमित होती है।

प्रश्नः- (कोई कहता है कि -) बर्फ के कारण तो पानी ठंडा होता है ना।

समाधानः- नहीं। परमाणु स्वयं के कारण ठंडी अवस्थारूप होते हैं - उसमें बर्फ निमित्त कहलाता है। परमाणु परतंत्र नहीं है। प्रत्येक परमाणु वर्तमान पर्याय से परिणमित होते हैं; उसमें दूसरी वस्तु निमित्त है - ऐसा नहीं माननेवाला राग से स्वभाव - मानता है। इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। यह लकड़ी हाथ से ऊँची होती है- ऐसा अज्ञानी कहता है। यह लकड़ी जिस समय स्वयं से ऊँची होनेवाली होगी (क्या) यह केवलज्ञानी के ज्ञान में नहीं था ? वह तो निश्चित ही है। अतः उस लकड़ी का वैसा ही स्वभाव है। किन्तु अज्ञानी स्वभाव से नहीं देखता।

केवलज्ञान को लोकालोक अनुकूल है और लोकालोक को केवलज्ञान अनुकूल है। लोकालोक स्वयं से परिणमित होता है, उसमें केवलज्ञान निमित्त है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है, वह जानने की क्रिया करता है। निचली अर्थात् चौथी, पाँचवी और छटवीं भूमिका (गुणस्थान) में ज्ञानस्वभाव के ज्ञान के परिणाम में राग निमित्त है और रागादि को ज्ञान निमित्त है। ज्ञेय, ज्ञेय में है और ज्ञान, ज्ञान में है। दया-दान, व्रत-तप का जो विकल्प आता है उसका आत्मा ज्ञाता है। ज्ञान राग को जानता है। ज्ञान में राग निमित्त है व राग को ज्ञान निमित्त है। इसप्रकार ज्ञेयों को ज्ञान निमित्त है वह यहाँ कहते हैं।

राग चारित्र गुण की पर्याय है और ज्ञान, ज्ञान गुण की पर्याय है। एक गुण की पर्याय को दूसरे गुण की पर्याय निमित्त है। राग को ज्ञान अनुकूल है और लोकालोक केवलज्ञान को अनुकूल है। यह धर्म है। वीतराग का मार्ग वीतरागी ज्ञान में है। ज्ञान, ज्ञान में रहकर - ज्ञान राग को जानता है - यह वीतरागी ज्ञान है। मैंने पर की दया की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

- ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। साथ ही पर की दया के राग से - लाभ माननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। मेरा स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है उसके आश्रय से ज्ञान प्रगट होने पर, राग को जानता है।

भूत और भविष्य की पर्यायें वर्तमानवत् केवलज्ञान में वर्तती है.

जैसा केवलज्ञान में जाना गया है; वैसे ही जगत के पदार्थों की अवस्था होती है - वह पदार्थ के कारण से होती है। भगवान ने भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल की अवस्था को जाना है। अनन्त द्रव्यों की भूतकाल की अवस्था क्रमबद्ध हो गई है और भविष्य की अवस्था क्रमबद्ध होगी वह तात्कालिक (वर्तमानवत्) पर्यायों के समान पृथकपने केवलज्ञान में वर्तती हैं। उनमें कुछ भी मिलावट नहीं होती।

जिस समय जो जीव चौथे गुणस्थान को प्राप्त करेगा अथवा जो जीव छठवें गुणस्थान को प्राप्त करेगा उन सभी को पृथकपने जानते हैं। पहले समय की अवस्था दूसरे समय नहीं होती। इस जीव की भविष्य की पहले समय, दूसरे समय आदि अनन्त समय की पर्यायें तथा भूतकाल की क्रमबद्ध पर्यायें तात्कालिक के समान पृथकपने केवलज्ञान में वर्तती है - ऐसा पृथक-पृथक ज्ञान जानता है; इसलिये उसका नाम साकार है। परमाणु और सिद्ध आदि सभी की भूत और भविष्य की पर्यायें पृथकपने ज्ञान में वर्तती है।

प्रश्नः- यदि ऐसा है तो फिर हमें क्या करना रहा ?

समाधानः- केवलज्ञान जगत में है - ऐसी सत्ता की स्वीकारता में ज्ञानस्वभाव की प्रतीति आती है वही पुरुषार्थ है। यह गाथा अलौकिक है। एक-एक गाथा में केवलज्ञान और चौदह पूर्व का रहस्य समाहित कर (भर) दिया है।

तीनकाल व तीनलोक के द्रव्यों की जो अवस्था जिस समय जैसी होनेवाली है उन सभी को केवली पृथक-पृथक जानते हैं। तीनकाल में भूत व भविष्य भी आ जाते हैं। जिसे जितना विकार अथवा अविकार होनेवाला है वह जानते हैं। विकार करनेवाले अनन्त जीव हैं मिथ्यादृष्टि की बड़ी संख्या है; उन्हें जिस समय जैसा विकार होता है, दूसरे समय दूसरा विकार होता है उसे ज्ञान जान लेता है। केवलज्ञान नियत है और विकार भी नियत है। कोई कहता है कि विकार की पर्यायें अनियत है - तो यह बात असत्य है।

अज्ञानी जीव की दृष्टि ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव ऊपर नहीं जाती। पर पदार्थ में क्रमबद्ध अवस्था है। पहले समय में जो राग आनेवाला होता है वही आता है दूसरे समय में जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वेष आनेवाला होता है वही द्वेष आता है - ऐसा निर्णय करनेवाला ज्ञाता दृष्टा स्वभाव की ओर झुकता है।

प्रश्नः- भूत और वर्तमान का ज्ञान तो होता है किन्तु भविष्य का ज्ञान किस तरह हो सकता है ?

समाधानः- कल रविवार है और परसों सोमवार है यह बात निश्चित है। नियत को जाननेवाला हूँ, राग को जाननेवाला हूँ - यह साधकदशा है।

❁ ❁ ❁

जिस जीव का जिस काल में जन्म-मरण उपलक्षण से दुःख-सुख, रोग दारिद्र आदि होना सर्वज्ञ देव ने जाना है वह उसी अनुसार नियम से होने का है और उसी प्रमाण से होने योग्य है; उस प्राणी को उसी देश में उसी विधान से नियम से होता है उसे इन्द्र, जिनेन्द्र-तीर्थंकरदेव कोई भी नहीं रोक सकते।

- श्री स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३७

अथातिवाहितानागतानामपि द्रव्यपर्यायाणां तादात्विकवत् पृथक्त्वेन ज्ञाने वृत्तिमुद्योतयति-

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं ।
वट्टन्ते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं ॥३७॥

अब ऐसा उद्योत (प्रगट) करते हैं कि द्रव्यों की अतीत और अनागत पर्यायें भी तात्कालिक पर्यायों की भांति पृथकरूप से ज्ञानमें वर्तती है :-

सद्भूत नासद्भूत भी तत्काल पर्ययवत् सभी ।
सविशेष वर्ते ज्ञान में पर्याय द्रव्यों की सभी ॥३७॥

गाथार्थः- उन (जीवादि) द्रव्य-जातियों की समस्त विघमान और अविद्यमान पर्यायें तात्कालिक (वर्तमान) पर्यायों की भाँति, विशिष्टता-पूर्वक (अपने-अपने, भिन्न-भिन्न स्वरूपमें) ज्ञान में वर्तती हैं।

टीकाः- (जीवादिक) समस्त द्रव्यजातियों की पर्यायों की उत्पत्ति की मर्यादा तीनोंकाल की मर्यादा जितनी होने से (वे तीनोंकाल में उत्पन्न हुआ करती हैं इसलिये), उनकी (उन समस्त द्रव्य-जातियोंकी), क्रमपूर्वक तपती हुई स्वरूप-सम्पदावाली (-एक के बाद दूसरी प्रगट होनेवाली), विद्यमानता और अविद्यमानता को प्राप्त जो जितनी पर्यायें है, वे सब तात्कालिक (वर्तमानकालीन) पर्यायों की भाँति, अत्यंत मिश्रित होने पर भी सब पर्यायों के विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात हों इसप्रकार, एक क्षण में ही, ज्ञान मंदिर में स्थिति को प्राप्त होती है। यह (तीनो काल की पर्यायों का वर्तमान पर्यायों की भाँति ज्ञान में ज्ञात होना) अयुक्त नहीं हैं, क्योंकि-

(१) उसका दृष्टके साथ (जगत में जो दिखाई देता है - अनुभव में आता है उसके साथ) अविरोध है। (जगतमें) दिखाई देता है कि छद्मस्थ के भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुए ज्ञान उसके आकार का अवलम्बन करता है उसीप्रकार भूत और भविष्यत वस्तु का चिंतवन करते हुए (भी) ज्ञान उसके आकार का अवलम्बन करता है।

(२) और ज्ञान चित्रपट के समान है। जैसे चित्रपट में अतीत, अनागत और वर्तमान वस्तुओं के आलेख्याकार साक्षात् एक क्षण में ही भासित होते हैं; उसीप्रकार ज्ञानरूपी भित्ति में (ज्ञानभूमिका में, ज्ञानपटमें) भी अतीत, अनागत और वर्तमान

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायों के ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षण में ही भासित होते हैं।

(३) और सर्व ज्ञेयाकारों की तात्कालिकता (वर्तमानता,साम्प्रदायिकता) अविरुद्ध है। जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओं के आलेख्याकार वर्तमान ही हैं, उसीप्रकार अतीत और अनागत पर्यायों के ज्ञेयाकार वर्तमान ही हैं।

भावार्थः- केवलज्ञान समस्त द्रव्योंकी तीनोंकाल की पर्यायों को युगपद् जानता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायों को वर्तमान कालमें कैसे जान सकता है ? उसका समाधान है कि - जगतमें भी देखा जाता है कि अल्पज्ञ जीव का ज्ञान भी नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओं का चिंतवन कर सकता है, अनुमान के द्वारा जान सकता है, तदाकार हो सकता है; तब फिर पूर्ण ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायों को क्यों न जान सकेगा ? ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह चित्रपट की भाँति अतीत और अनागत पर्यायों को भी जान सकती है। और आलेख्यत्वशक्ति की भाँति, द्रव्यों की ज्ञेयत्वशक्ति ऐसी है कि उनकी अतीत और अनागत पर्यायें भी ज्ञानमें ज्ञेयरूप होती हैं - ज्ञात होती हैं। इसप्रकार आत्मा की अद्भुत ज्ञानशक्ति और द्रव्यों की अद्भुत ज्ञेयत्वशक्ति के कारण केवलज्ञान में समस्त द्रव्यों की तीनों काल की पर्यायों का एक ही समय में भासित होना अविरुद्ध है ॥३७॥

गाथा ३७ पर प्रवचन

केवलज्ञान एक समय में तीनलोक, तीनकाल को जानता है। उनके जानने में भूल नहीं है और ज्ञेयों में इसलिए विरुद्ध फेरफार नहीं होता - ऐसा केवलज्ञान का निर्णय करने में पुरुषार्थ है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य को चारित्रदशा तो थी ही, किन्तु उनकी क्षयोपशमदशा भी बहुत थी। उस समय ऐसी ही गाथा के परमाणुओं की अवस्था होनेवाली थी। उस समय ऐसा ही विकल्प होनेवाला था और उस समय ज्ञान का क्षयोपशम भी ऐसा ही था।

अनन्त द्रव्यों में तीनों काल पर्याय उत्पन्न हुआ करती है.

भगवान ने छह द्रव्यों अर्थात् अनन्त आत्मा, अनन्तानंत पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक और असंख्य कालाणु ज्ञान में देखे हैं। जाति अपेक्षा से छह द्रव्य हैं, उनकी संख्या अनन्त हैं। आत्मा अनन्त हैं उनसे अनन्तगुणा अधिक परमाणु की संख्या है। छह द्रव्यों की एक जाति नहीं क्योंकि उनमें कोई चेतन है और कोई अचेतन, कोई रूपी है और कोई अरूपी। उन सभी की अवस्था भूतकाल में हुई थी. वर्तमान में हो रही है और भविष्य में होगी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जितने तीनकाल के समय हैं उतनी द्रव्य के प्रत्येक गुण की तीनकाल की पर्यायें हैं। एक गुण की एक समय में एक पर्याय होती है। इस तरह ही काल की पर्याय को गिनो तो वे तीनकाल के समय जितनी पर्यायें हैं। एक समय में अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें है। इसलिये तीनकाल में अनन्तगुणी पर्याय होती है; किन्तु यह बात यहाँ नहीं लेना है। यहाँ संख्या की बात नहीं लेना है। जितना काल है उतने काल पर्याय उत्पन्न हुआ करती है - ऐसा यहाँ कहा है।

तीनों ही काल पर्यायें उत्पन्न हुआ करती है। द्रव्य क्रमपूर्वक तपती (प्रगट होनेवाली) संपदावाला है। उसमें एक समय में एक पर्याय होती है जो क्रमपूर्वक तपती है - अपने समय में प्रतापवन्त वर्तती है। वह पर्याय अपना प्रभुत्त्व रखती है। उस समय की पर्यायें स्वयं से स्वरूप की संपदा है - लक्ष्मी है। इसमें विकारी और अविकारी दोनों पयायें आ जाती है। पर्याय क्रम पूर्वक होती है वह उसकी शोभा है - पर्याय क्रमपूर्वक होती है वह उसकी सम्पदा है। विकार एक के बाद एक होता है। इस तरह ज्ञेयों में क्रमबद्ध परिणमन होता है, यह ज्ञेय का स्वभाव है। विकार अथवा अविकार सभी क्रमबद्ध है।

बाहर में कुछ भी करने का नहीं है - ज्ञानस्वभावी आत्मा का महात्मय आना और निमित्त और राग का महात्मय छूट जाना यह उसका फल है। चरणानुयोग में जो कथन है वह व्यवहार अथवा निमित्त बताने के लिये है। कर्म की स्थिति रस घट जाती है वह सभी कर्म के क्रम का ज्ञान कराता है। कर्म में क्रमपूर्वक तपती स्वरूप संपदा है। एक-एक परमाणु में अवस्था तपती (प्रगट होती) है।

सभी पर्यायें एक साथ केवलज्ञान में जानने में आने पर भी प्रत्येक अपने लक्षण से भिन्न-भिन्न स्पष्ट जानने में आती है.

भूत और भविष्य की अविद्यमान पर्यायें हैं। वर्तमान पर्याय विद्यमान है। ऐसे क्रमपूर्वक तपती स्वरूप संपदावाली जितनी भी पर्यायें हैं - वें सभी तात्कालिक-वर्तमान कालीन पर्यायों के समान अत्यंत मिश्रित होने पर भी सब पर्यायों के विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात होते हैं। इस जीव को दो भव में मोक्ष जाना है उसे भगवान तात्कालिकवत् जानते हैं।

अनन्तकाल की भूत पर्यायें और भविष्य की पर्यायें वे सभी अविद्यमान पर्यायें विद्यमानवत् केवलज्ञान में भाषित होती हैं। उन सभी द्रव्यों की सभी पर्यायें एक साथ जानने पर भी, प्रत्येक पर्याय का विशिष्ट स्वरूप, प्रदेश, काल, आकार आदि विशेषताएँ स्पष्ट ज्ञात होती हैं। उनमें संकर-व्यतिकर (मिलजाना-बदलना) नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता। कोई पर्याय दूसरी पर्याय में मिल जाये और उसका अभाव हो जाय ऐसा ज्ञान में ज्ञात नहीं होता।

इस तरह सर्वज्ञ का निर्णय कराते हैं सर्वज्ञ का निर्णय करनेवाला मोक्षमार्गी होता है। यह राग का स्वरूप है और यह अनन्तानुबंधी राग का स्वरूप है - ऐसा जिस राग का जो लक्षण है और अविकारदशा का लक्षण है वह सभी केवलज्ञान में स्पष्ट ज्ञात होता है। केवलज्ञान की अद्भुतता और अचिन्त्यता है। केवलज्ञान में एक समय के काल में विकारी और अविकारीदशा ज्ञात होती है, किन्तु दोनों भावों के लक्षण भिन्न-भिन्न ज्ञात होते हैं। और जो अविकारीदशा है उनके पृथक-पृथक भाव, अथवा लक्षण भिन्न-भिन्न केवलज्ञान में ज्ञात होते हैं किन्तु केवलज्ञान में उन भावों की मिलावट ज्ञात नहीं होती।

ज्ञानस्वभाव की अद्भुतता धर्म है और विकार आदि की अद्भुतता संसार है.

जैसा विस्मयकारी स्वरूप है वैसा ही आत्मा ज्ञानस्वभावी है। वह ज्ञानस्वभाव अंतर में पूर्ण है उसमें एकाग्र होकर सर्ववेत्तापना प्रगट होता है, उन्हें सभी पदार्थ ज्ञात होते हैं। सभी पदार्थ समय-समय पर परिवर्तित होते हैं। जगत की वस्तुएँ जितनी संख्या में है वह नयी उत्पन्न नहीं होती जो है वह कम नहीं होती। जो है वह कायम रहकर बदलता है, यदि बदले नहीं तो कार्य नहीं होगा। अनन्त पदार्थ हैं वे प्रतिक्षण परिणमित होते हैं। अनन्त आत्माओं में कोई भी जीव द्रव्य ज्ञाता है; यह बात गाथा ४८ में कहेंगे।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। जानना-देखना उसका स्वभाव है, पुण्य-पाप विकार है, शरीर-मन-वाणी पर है। हँसने का, कमाने का भाव तो पाप की लगन है और दया-दानादि पुण्य की लगन है - यह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है; वस्तु अनादि अनन्त है। ज्ञान त्रिकाल शक्ति है जो पूर्ण है; उस पूर्ण में एकाग्र होने पर ज्ञान प्रगट होता है। निमित्त, विकार और अल्पज्ञता का आदर तथा अद्भुतता संसार है।

आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है यह कहा इसके बाद आनन्द की बात करेंगे। पुण्य-पाप उत्पन्न होता है वह विभाव है। स्वभाव पूर्ण है, प्रगटदशा में अल्पज्ञता है। जिसे निमित्त विकार और अल्पज्ञता की अद्भुतता लगती है उसे स्वभाव की अद्भुतता नहीं लगती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक समय भी धर्म करे तो मुक्ति हुए बिना नहीं रहती। धर्म, ज्ञानस्वभाव है; वह पूर्ण भरा हुआ है। जैसे लेंड़ीपीपर में चौंसठ पुटी तिखास है, चौंसठ पैसा अर्थात् सोलह आना अर्थात् पूर्णरूपया है। आत्मा में ज्ञानशक्ति पूर्ण है उसको भूलकर, अज्ञानी निमित्त, विकार और अल्पज्ञता की अशुद्धता में अटकता है। पर तरफ की विपरीत श्रद्धा, अल्पज्ञान, अल्पवीर्य तरफ नजर है। पूर्ण ज्ञानस्वभाव आनन्दरूप है उसकी अद्भुतता तो नहीं लगती किन्तु पर में आश्चर्यता लगती है - वही संसार और भ्राँति है।

त्रिकालवेत्ता सर्व को जाननेवाले हैं किन्तु किसी को करनेवाले नहीं.

अहो ! मेरा स्वभाव पूर्ण है। जो पर्याय बाहर में झुकती है उसे अंतर में झुकाते हैं। मैं पूर्ण शुद्ध हूँ ऐसा स्व-संवेदन ज्ञान से स्व को वर्तते (अनुभवते) हैं। स्वरूप में एकाग्र होने पर शक्ति में जो पूर्णज्ञान है वह पर्याय में भी पूर्ण प्रगट होता है।

जो त्रिकालवेत्ता है उन्होंने तीनकाल का क्या जाना ?

तीनकाल कहते ही सामने की वस्तुओं की भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्यकाल की पर्यायों को जाने तो वे त्रिकालवेत्ता कहलाते हैं और जो जाननेवाले होते हैं वे बनानेवाले नहीं होते। त्रिकाल को जाना अर्थात् उसे जाना यह आया किन्तु मैंने उसे बनाया यह बात इसमें नहीं आती।

जो आत्मा पूर्ण पर्याय प्रगट करती है वह त्रिकाल वेत्ता है। अंदर शक्ति में से तीनकाल का ज्ञान प्रगट किया है अर्थात् मैं ज्ञान हूँ और वे मेरे ज्ञान के ज्ञेय हैं - ऐसा जाना, किन्तु मैं कर्ता हूँ और वे मेरा कार्य है यह बात इसमें नहीं रहती। त्रिकालवेत्ता अर्थात् वे किसी भी काल में - तीनोंकाल को जाननेवाले पुरुष हैं। उन्होंने भूतकाल का जाना है। यह वस्तु पहले नहीं थी - ऐसा नहीं है अपितु सामनेवाली वस्तु तीनोंकाल रहनेवाली है। कोई वस्तु (जानने से) शेष नहीं रहती; स्वयं तीनकाल रहनेवाला है।

त्रिकालवेत्ता का निर्णय करनेवाला ऐसा जानता है कि इस जगत में पदार्थ तीनों ही काल ध्रुव रहकर बदलते रहते हैं। उनको जाननेवाले त्रिकाल ज्ञानी है। इस तरह तीनकाल के पदार्थ वर्त रहे थे, वर्तते हैं, और वर्तेंगे इसका ज्ञान सर्वज्ञ को है। ऐसा सभी केवलज्ञान में जानने में आ गया है ऐसे ज्ञानस्वभावी परमात्मा तीनकाल-तीनलोक को जाननेवाले हैं। ज्ञान-धाम का महात्म्य आया है कि - अहो ! मैं आत्मा हूँ मेरी तीनोंकाल कीदशा केवलज्ञान में जानने में आई है। जिसे ऐसे ज्ञानस्वभाव की अद्भुतता और आश्चर्यता आती है, उसे निमित्त और विकार की अद्भुतता नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आती (लगती)। स्वभाव की अद्भुतता आना (लगना) वह धर्म है।

'ज्ञानस्वभाव की अद्भुतता - बहुलता आश्चर्यता हुई वह धर्म है -' जगत जड़ की क्रिया में धर्म मानता है। जड़ की क्रिया को भगवान ने जाना है। पदार्थ ज्ञात हो-ज्ञात हो-ज्ञात हो ऐसा उनका स्वभाव है और ज्ञान जाने-जाने-जाने ऐसा स्वभाव है। ज्ञान पदार्थों को आगे-पीछे करे ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है और ज्ञेय, ज्ञान से आगे पीछे हो जाय ऐसा ज्ञेय का स्वभाव नहीं है। पहले निमित्त, विकार और संयोगों की अद्भुतता लगती थी अब, ज्ञान की अद्भुतता लगती है कि - अहो! सर्वज्ञता अन्तर शक्ति में से आती है। जिसे अपने ज्ञानस्वभाव की अधिकता-बहुलता-आश्चर्यता-आश्रयता आती है उसे सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यक् अर्थात् सत्। त्रिकाल जैसा स्वरूप है वैसा प्रतीति में आना वह सम्यग्दर्शन है। भगवान तीनकाल को जाननेवाले हैं। जो पदार्थ बदलकर परिणमित हो गये हैं, परिणमित हो रहे हैं और परिणमित होंगे वह सभी ज्ञान में आ गया है इसलिये पदार्थ अनादि-अनन्त वर्तते हैं; उनको जाननेवाले हो गये हैं, वर्तमान में सर्वज्ञ हैं और भविष्य में भी सर्वज्ञ होंगे। यदि, ज्ञान पूर्णज्ञेयों को नहीं जाने तो ज्ञान का ज्ञानपना नहीं रहता और ज्ञेय ज्ञान में ज्ञात नहीं हो तो ज्ञेयों का ज्ञेयत्व नहीं रहता।

आत्मा सर्वज्ञ है - सर्व को जाननेवाला है किन्तु किसी को लानेवाला अथवा किसी पर दया करनेवाला नहीं है। इस जगत में सर्वज्ञ जीव हैं वे ऐसा बताते हैं कि - तेरे अन्तर में प्रभुत्त्व शक्ति है - ऐसा ज्ञान और रमणता कर तो तेरे में सर्वज्ञपद प्रगट होगा। ऐसा निर्णय करे तो सर्वज्ञ देव की व्यवहार से मेंहर (कृपा-दया) कही जाती है। जैसे कोई बालक नहीं-नहीं कहकर (जोर से रोता है) उस समय यदि, उसे अच्छी लगे वह चीज भी दो फिर भी उसका रोना बन्द नहीं होता; वैसे ही अज्ञानी को अच्छा लगे वैसा स्वरूप कहें तो भी (वह कहता है कि) हम तो भिखारी है-गरीब है - ऐसा अनादि का अज्ञानी जीव-दीनता का अनुभव करता है।

आत्मा का केवलज्ञान सरहुकम है वह तीनकाल-तीनलोक को जानता है। सर्वज्ञ होने से पहले, पूर्व में ऐसा विकल्प उठा था कि मैं जगत के जीवों को धर्म प्राप्त कराऊंगा। मेरा स्वभाव सर्वज्ञ है - ऐसा आंशिक अनुभव हुआ है और पूर्ण व्यक्त होने पर सर्वज्ञ होऊंगा। सर्वज्ञ होने के पहले शुभराग आता है उससे तीर्थंकर नाम कर्म बन्ध जाता है। मैं ज्ञान में पूर्ण होंऊ तो सम्पूर्ण दुनिया को धर्म प्राप्त कराऊँ - ऐसा शुभराग स्वभाव में नहीं है - ऐसे दृष्टिवंत को किसी समय शुभराग आवे तो तीर्थंकर नामकर्म बन्ध जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अशुभ और शुभराग रहित मेरा आत्मा ज्ञान है - ऐसा निर्णय करनेवाले को पर में मिलावट करने का अवकाश नहीं रहता। इस जगत के जितने भी पदार्थ हैं उनका वर्तमान उनसे होता है। यदि उनकी वर्तमान अवस्था तेरे से हो तो द्रव्य का नाश हो जायगा किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। अत: ज्ञान की अद्भुतता और आश्चर्यता लाओ कि - अहो ! त्रिकाल ज्ञानस्वभाव मेंरा है। जैसे प्रत्येक लेड़ीपीपर में चौंसठ पुटी शक्ति है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा ज्ञान से पूर्ण है; तेरी ही जाति का आत्मा पूर्णदशा को प्राप्त किया है - तो तू भी ऐसा ही है। ऐसी तुझे ज्ञान की महिमा आना चाहिये; इसके बदले राग की महिमा आय यह तो अज्ञान है।

भगवान को जैसा दिखा होगा वैसा होगा ऐसा कहकर कोई कहे कि - मुझे जैसा विकार होनेवाला होगा, वह होगा तो उसकी दृष्टि तो विकार ऊपर गई है जबकि ज्ञान के ऊपर उसकी दृष्टि जाना चाहिये तथा राग और निमित्त से उसे हट जाना चाहिये, तभी उसने सर्वज्ञ की महिमा की है - ऐसा कहा जायगा।

टीका पर प्रवचन :- जीवादि सभी पदार्थ ध्रुव रहकर अवस्था में क्रमपूर्वक परिणमित हो रहे हैं। जीव आदि में पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी ले लेना (समझना)। जीव और जड़ पृथक है। शरीर कभी आत्मा नहीं होता। सभी द्रव्यों की वर्तमान अवस्था होती है। उन सभी चेतन और जड़ पदार्थों की प्रतिक्षण अवस्था होती है, उसकी मर्यादा तीनोंकाल में होती है। सभी पदार्थ तीनों ही काल परिणमित हो रहे हैं।

सोना कायम रहकर कड़ा आदिरूप बदलता है। यदि बदले नहीं तो कार्य न हो और यदि सोना कायम न रहे तो कारण ही न रहे; इसलिये पदार्थ कायम रहकर के बदलते हैं। भूतकाल में जो अवस्था हो गई है, वर्तमान में हो रही है और भविष्य में होगी वे सभी अवस्थाएँ क्रमपूर्वक होती हैं। भ्राँति के समय सम्यक् स्वसंवेदन अवस्था नहीं होती और राग के समय केवलज्ञान नहीं होता।

जैसे मोती के हार में एक मोती के बाद दूसरा मोती होता है। एक सौ पाँच नम्बर का मोती एक सौ पाँच नम्बर का ही होता है; वैसे ही तीनकाल के उत्पत्ति काल में प्रत्येक अवस्था क्रमपूर्वक होती है। वह पर्याय पदार्थ की लक्ष्मी है। उस पर्याय की दूसरे से उत्पत्ति नहीं होती। जैसे इस आत्मा का जानपना जड़ की सम्पदा नहीं है; वैसे ही वह केवलज्ञानी की सम्पदा नहीं है। केवलज्ञानी की सम्पदा केवलज्ञानी में है।

वस्तु कायम (ध्रुव) रहती है किन्तु अवस्था क्रमश: होती है। गोरस एक साथ होता है किन्तु दूध, दही, छाछ, मक्खन अवस्था क्रम से आती है। एक समय में वस्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्पूर्ण रहती है किन्तु सभी अवस्था एक समय में नहीं आती और पहली अवस्था हुई है उसमें से दूसरी अवस्था नहीं होती; वैसे ही पर पदार्थ के कारण दूसरीदशा नहीं होती। क्रमपूर्वक तपती (प्रगट होनेवाली) स्वरूप सम्पदावाले पदार्थ हैं।

सर्वज्ञ के ज्ञान में भूत और भविष्य की अवस्था वर्तमानवत् भाषित होती है.

लेड़ीपीपर में जब बासठ पुटी तिखास प्रगट हुई है उस समय इक्सठ पुटी तिखास तथा चौंसठपुटी तिखास अविद्यमान है और बासठ पुटी तिखास विद्यमान है। आत्मा सत् अर्थात् कायम रहनेवाला है; उसमें ज्ञान और आनन्द है इसमें एकाग्रता होने पर सभी पदार्थों को जानने का ज्ञान प्रगट होता है - ऐसा तेरा स्वभाव है; इसतरह अपनी महिमा लाओ।

जीव में जो राग होता है वह क्रमबद्ध होता है; वह कर्म के कारण नहीं होता। विकार और अविकार पर्याय स्वरूप सम्पदा है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप क्रमपूर्वक तपती स्वरूप सम्पदावाला है। जगत के पदार्थों में तत्त्व कायम है, वर्तमान पर्याय प्रगट है, भूत और भविष्य की पर्यायें अप्रगट हैं। वे सभी पर्यायें अर्थात् हालत अथवा दशा है; वे सभी सर्वज्ञ के ज्ञान में वर्तमान कालीन पर्यायों के समान ज्ञात होती है। यह जीव पचास वर्ष पहले नरक में था और अमुक समय पश्चात् केवलज्ञानी होगा ये सभी पर्यायें तात्कालिकवत् दिखाई देती हैं।

कल सोमवार है यह ख्याल में आता है। छोटी लड़की पानी पीने के लिये गिलास लेती है; पहले प्यास लगी थी इस तरह प्यास का ज्ञान है, वह वर्तमान में पानी लेने जाती है - ऐसा ज्ञान है और भविष्य में प्यास मिटेगी ऐसा भी ज्ञान है। इस तरह तीनकाल का ज्ञान आंशिक वर्तता है। पुनश्च, यह मकान चालीस वर्ष पहले बना है और आगे पचास वर्ष तक चलेगा ऐसा ख्याल (ज्ञान) में आता है। इस तरह पर का तो अनुमान करता है, किन्तु अपना अनुमान नहीं करता। भूतकाल में अल्पज्ञ था, वर्तमान में अल्पज्ञ हूँ किन्तु मेरा स्वभाव सर्वज्ञ है उसके आश्रय से सर्वज्ञ होऊंगा ऐसा निर्णय करना चाहिये।

जीव शान्ति चाहते हैं वह कहाँ से आती है ? बाहर में शान्ति नहीं है अपितु अंदर में शान्ति है इसमें एकाग्र होने पर शक्ति प्रगट होती है और केवलज्ञान प्रगट होता है। पचास वर्ष पहले भरे बाजार में होनेवाली कोई घटना ज्ञान में तैरती है (याद आती है) ऐसा लोग कहते हैं; उसी तरह सर्वज्ञ के ज्ञान में भूतकाल की अवस्थाएँ तथा भविष्य की अवस्थाएँ वर्तमान के समान दिखाई देती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तीनोंकाल की पर्यायें भिन्न-भिन्न केवलज्ञान महल में जानने में आ जाती है.

सर्वज्ञ के ज्ञान में एक समय में सभी अवस्थाएँ आ गई हैं। सभी अवस्थाएँ स्पष्ट ज्ञात होती हैं। भूतकाल की अवस्था, वर्तमान अवस्था और भविष्य की अवस्था भिन्न-भिन्न ज्ञात होती है। प्रत्येक पर्याय का लक्षण भिन्न-भिन्न ज्ञात होता है। केवलज्ञान में सभी पर्यायों की मिलावट नहीं होती। जो अवस्था हो चुकी है, हो रही है और होगी उसे वे भिन्न-भिन्न जानते हैं; केवलज्ञान एक समय में सभी कुछ जानता है इसलिए उसे मिश्रित कहा है किन्तु प्रत्येक का लक्षण भिन्न-भिन्न ज्ञात होता है।

जीव का विकार असंख्य प्रदेश में रहता है। उसका समय और उसका लक्षण ज्ञान में स्पष्ट ज्ञात होता है। एकदशा, दूसरीदशा में नहीं मिल जाती। त्रिकाल वेत्ता के ज्ञान में सभी अवस्थाएँ - जो हो चुकी हैं, हो रही हैं अथवा होगी वे सभी जानने में आ गई। इस जीव को राग हुआ है, इस जीव को भ्राँति हुई है, इस जीव को केवल ज्ञान हुआ, इस परमाणु की ऐसी अवस्था है, इसके बाद दूसरी होगी, यह शरीर छूटेगा और इसके बाद अमुक अवस्था होगी - ऐसा केवलज्ञान में ज्ञात होता है। इसतरह यहाँ ज्ञानस्वभाव का महात्म्य कराते हैं।

ज्ञानस्वभाव की अद्भुतता और महिमा आने पर निमित्त पैसा और राग की महिमा उड़ जाती है। आत्मा ज्ञाता है अन्य (दूसरे) ज्ञेय हैं। वे ज्ञेय मेरे हैं और मैं उनका हूँ - ऐसा अज्ञानी मानता है। ज्ञानस्वभाव परिपूर्ण है। आत्मा का अवलोकन कर - तेरी शक्ति की पहचान कर तो निमित्त और राग की महिमा उड़ जायेगी।

किसी एक भी वस्तु की अवस्था को आत्मा नहीं कर सकता, किन्तु सभी को जान सकता है। 'मैं ज्ञान-दर्शन का पिण्ड हूँ' - राग होता है वह ज्ञान का ज्ञेय है। आत्मा का अवलोकन स्व-अवलोकन है। जड़ पदार्थ की अवस्था जो हो चुकी है, हो रही है और होगी उसे ज्ञान जानता है - उसकी अज्ञानी को महिमा नहीं आती। जैसे व्यापारी को जहाँ से माल का पोषान खाता (लाभ दिखता) है वहाँ से माल खरीदता है; वैसे ही सर्वज्ञ का माल कहाँ से मिलेगा ? सर्वज्ञ अर्थात् पूर्णज्ञाता और पूर्णआनन्द स्वरूप आत्मा। जहाँ ज्ञान और आनन्द पूर्ण होता है वह मुक्ति है। वह कहाँ से मिलती है ? अंतर स्वभाव में से माल मिलता है, किन्तु निमित्त और राग में से माल नहीं मिलता।

केवलज्ञान में सभी विकार और अविकार पृथक लक्षणों से पृथक- पृथक ज्ञात होते हैं। सभी पदार्थ ज्ञान महल में स्थिति प्राप्त करते हैं। पूर्ण व्यक्तदशा होने पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्त पदार्थ ज्ञान महल में प्रविष्ट हो जाते हैं। तीनकाल की पर्याय आत्मा के महल में प्रविष्ट हो गई है। अज्ञानी जीव अपने (मिट्टी के) महल में बैठकर वहाँ आनन्द मानता है जबकि वहाँ तो राग-द्वेष की अग्नि है। यदि, आत्ममहल में प्रवेश करे तो सुखी होता है।

मैं केवलज्ञानी का नन्दन (पुत्र) हूँ। मैं केवलज्ञान प्रगट करने लायक हूँ - ऐसा निर्णय करने पर केवलज्ञान प्राप्त करता है। जो चैतन्यबिम्ब था, वह चैतन्य फटकर केवलज्ञान होता है किन्तु राग में से परमात्मा नहीं होता। अन्दर ध्रुव ज्ञानस्वभाव विद्यमान है, उसमें से केवलज्ञान प्रगट होता है जो कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।

आत्मा की पूर्णदशा होने पर तीनकाल की पर्यायें वर्तमानवत् ज्ञात होती है। जैसे किसी महल में पचास मनुष्य प्रवेश करें तो वहाँ प्रत्येक के सोने की, भोजन की व्यवस्था पृथक-पृथक होती है, वैसे ही ज्ञान में निमित्त और राग पृथक-पृथक ज्ञात होते हैं। उसमें निमित्त और राग का अवलम्बन छोड़ना और स्वभाव का अवलम्बन करना।

तीनकाल कीदशा का- वर्तमान पर्याय के समान ज्ञान में ज्ञात होना अयुक्त नहीं है। पहले यह आटा थी, अभी गोला है (लोई है) इसके बाद रोटी पककर के पेट में जायेगी ऐसा ज्ञान में ख्याल आता है। तुअर की दाल इस पानी से चुड़ेगी और इस पानी से नहीं चुड़ेगी ऐसा ख्याल में आता है। यह पहले दाल थी, वर्तमान में यह है और भविष्य में यह होगी ऐसा ख्याल में आता है। केवलज्ञानी को तीनोंकाल का पूरा-पूरा ख्याल में आता है। ऐसे ज्ञानस्वभाव का महात्म्य आने पर, निमित्त और राग की महिमा उड़ जाती है।

दिव्य शक्ति पूर्ण प्रगट हुई है उन देव के दिव्यज्ञान में सभी कुछ ज्ञात होता है.

यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है। यह आत्मा भगवान है। उसका परम भाव ज्ञानभाव है; जो शक्ति से पूर्ण है। शक्ति के अवलम्बन से केवलज्ञान होता है - वह पूर्ण पर्याय है उसका मोक्षतत्त्व में अथवा देवतत्त्व में समावेश होता है। आत्मा का परम स्वभाव ज्ञान है। जो स्वभाव होता है वह अपूर्ण नहीं होता। स्वभाव आदि-अन्त रहित है। अपूर्णता और विकार स्वभाव में नहीं होते। आत्मा ज्ञान है ऐसा भान करके ज्ञान में एकाग्रता होती है वह धार्मिक क्रिया है।

ज्ञान अवस्था जब पूर्ण अवस्थारूप होती है तब उसे देवतत्त्व अथवा मोक्षतत्त्व कहते हैं। मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान स्वरूप देव अर्थात् दिव्य शक्ति प्राप्त जीव। जिन्हें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिव्य शक्ति पूर्ण खिल गई है - वे देव हैं। उनके ज्ञान में तीनकाल-तीनलोक के समस्त पदार्थ वर्तमानवत् दिखाई देते हैं। जिन्हें दिव्य शक्ति में से दिव्य शक्ति प्रगट हुई है - वे देव हैं। देव की पहचान वह मोक्षतत्त्व की पहचान है।

मोक्ष ज्ञायकतत्त्व के आधार से होता है। जो यह ज्ञायक की पूर्ण अवस्था प्रगट हुई है उसमें सभी अनन्त पर्यायें क्रमबद्ध ज्ञात हो जाती है। यह जीव इस भव में मोक्ष प्राप्त करेगा वह ज्ञान में ज्ञात होता है। भूतकाल की अनादि सांत पर्यायें वर्तमान पर्याय और भविष्य की सादि-अनन्त पर्यायें केवलज्ञान में स्थिति प्राप्त करती है। कुछ भी जाने बिना बाकी नहीं रहता।

अरिहंत के स्वरूप को जाननेवाले को अपने ज्ञानस्वभाव की महिमा आयी है इसलिये उसे भव नहीं होता.

इस जीव की भविष्य की पर्याय यह होगी- ऐसा केवलज्ञान में ज्ञात होता है। ज्ञेय का परिणमन ऐसा ही हो रहा है। केवलज्ञान मोक्षतत्त्व है। देव का निर्णय कहो - केवलज्ञान कहो अथवा मोक्षतत्त्व कहो एक ही बात है। देव के केवलज्ञान में जैसा जानने में आया है वैसा ही होनेवाला है - ऐसा निर्णय करनेवाले की विकार और निमित्त की रुचि छूट जाती है और स्वभाव का भरोसा (विश्वास) आता है। इसे सम्यक्त्व और धर्म कहते हैं।

केवलज्ञान पर्याय में तीनकाल-तीनलोक की पर्यायें ज्ञात हो जाती है। यह ज्ञान पूर्ण है यह बात उसे स्वीकार होती है। परमात्मा अरिहंत पूर्ण ज्ञानदशावाले विराजते हैं ऐसा विश्वास हो उसे ख्याल आता है कि मेरा आत्मा भी ज्ञानस्वभावी है, उसमें से ज्ञान प्रगट होगा। उसे पर्यायबुद्धि छूट जाती है और स्वभावबुद्धि होती है। अज्ञानी बाहर से धर्म करना चाहता है।

जो अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने - द्रव्य अर्थात् शक्तिवान तत्त्व, गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् प्रगट अंश इसप्रकार अर्हन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है उसे ख्याल आता है कि - मेंरा आत्मा भी ऐसा ही है। जिसने अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना है उसने अपने आत्मा को जाना है। अरिहंत के द्रव्य-गुण और मेरे द्रव्य-गुण समान हैं, पर्याय में अन्तर है। अरिहंत को पूर्ण पर्याय है और मुझे अल्प पर्याय है; जो स्वभाव के आश्रय से पूर्ण होगी - ऐसा उसे विश्वास आता है।

अल्पज्ञ पर्याय में निर्णय होता है, किन्तु अल्पज्ञ पर्याय के आश्रय से निर्णय नहीं होता। मेरा स्वभाव सर्वज्ञ है। उसके आश्रय से धर्म होता है। यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की विधि है। सर्वज्ञ इस तरह केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं और ऐसा ही उपदेश

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिया है। शक्तिरूप पूर्ण और व्यक्तिरूप पूर्ण पर्यायें भगवान को कैसे होती है, उसकी तूने रुचि नहीं की, इसलिये परिभ्रमण करता है। भगवान कहते हैं कि हमारे ज्ञान में आया है उस दिन तुझे मुक्ति होगी। ऐसे ज्ञान की जिसे प्रतीति आती है, उसे अनन्त भव नहीं होते।

केवलज्ञान पूर्ण है- ऐसी प्रतीति करनेवाले को अपने ज्ञानस्वभाव का महात्म्य आया है उसे शरीर-मन-वाणी, पुण्य-पाप और अल्पपर्याय का महात्म्य नहीं आता। उसे ही सम्यग्दर्शन होता है। हमने इसी विधि से द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना है; उसी विधि से तुम भी जानो तो सम्यग्दर्शन होगा और तुम इसी विधि से कर्मों का नाश करोगे। हमारी और तुम्हारी विधि एक ही है। सर्वज्ञ कहते हैं ऐसा पुरुषार्थ करे उसे मोक्ष नहीं हो - ऐसा नहीं होता। शरीर-मन-वाणी जड़ तत्त्व है चैतन्य ज्ञायक तत्त्व है; उसीके अवलम्बन से मोक्ष पर्याय होती है। इस विधि के सिवाय दूसरी कोई भी अन्य विधि अपनावे तो धर्म नहीं होता।

तीनकाल की अवस्था को जानना धर्म है, किन्तु उनको करना आत्मा का धर्म नहीं है.

उसकी दृष्टि के साथ में, जगत में जो दिखाई देता है - अनुभव में आता है उसके साथ अविरोध है। ज्ञान में घड़े का चिन्तवन करते हैं तो ज्ञान वैसा ही होता है। यह घड़ा मिट्टीरूप था ऐसे व्यतीत वस्तु और घड़ा फूट जायेगा ऐसी अनागत वस्तु का चिंतवन होता है। कुम्हार को ख्याल है कि इस मिट्टी में से घड़ा बनेगा और वह फूटेगा - ऐसा ज्ञान पहले से हो गया है, किन्तु वह मानता है कि मेरे से घड़ा हुआ है। इसी तरह बाई को ख्याल है कि यह गेहूं का आटा था सो यह भूतकाल का ख्याल आया (ज्ञान हुआ), वर्तमान में यह लोईरूप है और भविष्य में रोटी बनेगी - ऐसा तीनकाल का ज्ञान करते हैं। आटे में से रोटी होगी ऐसा पहले से ख्याल (ज्ञान) है।

ज्ञेय नये-नये परिणमित होते हैं और ज्ञान भी नया-नया परिणमित होता है। ज्ञान का परिणमन ऐसा है और उन ज्ञेयों का परिणमन भी ऐसा है; (इसे देखकर) अज्ञानी मानता है कि मेरे कारण ज्ञेय की अवस्था हुई है। मैंने पाँच हजार मन मेथी लाई है - ऐसा विचार करके भूतकाल का विचार आता है और भविष्य में इस भाव से बिकेगी; इस तरह जीव जाननार-जाननार है। जाननेरूप ज्ञान में भूत, वर्तमान और भविष्य का चिंतन आया है; फिर भी अज्ञानी मानता है कि मैंने मेथी लाया हूँ छद्मस्थ के ज्ञान की पर्याय में भी तीनकाल का मर्यादित् ज्ञान हो गया है; वैसे ही केवलज्ञान की पर्याय में अनन्त भूतकाल, वर्तमानकाल और अनन्त भविष्यकाल का ज्ञान आ गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निचलीदशा में मर्यादित ज्ञान है। अज्ञानी को भ्रम होता है कि मेरे कारण अनाज आता है। ज्ञानस्वभाव के असंख्य समय का उपयोग - भूत भविष्य का ज्ञान करता है। यह केरी (आम) कच्ची थी वह ज्ञान में हैं, घास में पकेगी और उसका रस होगा उसके बाद रोटी के साथ खायेंगे ऐसा सभी चिन्तवन ज्ञान में आता है, पहले से ही ख्याल में आ जाता है। भोजन में से लोहा हड्डी विष्टा आदि होगी ऐसा ज्ञान में आता है - छद्मस्थ को भी ज्ञान में आता है।

जैसे वर्तमान वस्तु का चिन्तवन करते हुये ज्ञान, उसके आकार का अवलम्बन करता है उसीप्रकार व्यतीत (भूत) और अनागत (भविष्यत) वस्तु का चिन्तवन करते हुये भी ज्ञान उसके आकार का अवलम्बन करता है। जैसे पुट्ठा चढ़ाने का कागज पहले सीधा था वर्तमान में मुड़ा हुआ है और भविष्य में ऐसा रहेगा, इस तरह छद्मस्थ को वर्तमान में ख्याल में आता है। वैसे ही जब भूत, भविष्य की अवस्था का ज्ञान है तो फिर केवल ज्ञानी के ज्ञान में सभी ज्ञात हो जाय - इसमें आश्चर्य नहीं है।

कुम्हार मिट्टी लाता है, वहाँ अरूपी आकाश विद्यमान है किन्तु आकाश के प्रदेशों को कोई नहीं लाता; क्योंकि आकाश का क्षेत्रान्तर नहीं होता। इसी तरह धर्म, अधर्म का भी क्षेत्रान्तर नहीं होगा। मिट्टी का क्षेत्रांतर होगा क्योंकि मिट्टी का ऐसा स्वभाव है, किन्तु अज्ञानी मानता है कि मेरे कारण मिट्टी आयी है। जबकि यह तो अज्ञान भाव है। उसी तरह केवलज्ञान में तीनकाल की वस्तु का ज्ञान आता है। उसका दृष्ट के साथ विरोध नहीं है।

जो रोटी बनती है वह बाई के कारण नहीं बनती। ज्ञान जानता है कि उसकी भूत, वर्तमान और भविष्य की अवस्था को ज्ञान ने जाना है किन्तु उस अवस्था को ज्ञान ने किया नहीं है; वैसे ही केवलज्ञान में तीनकाल-तीनलोक ज्ञात होते हैं। शरीर की पर्याय जैसी हो चुकी है, हो रही है और होगी - वैसा ज्ञान चिन्तवन करता है, किन्तु ज्ञान किसी की अवस्था को नहीं करता। साफ बोलने की इच्छा होने पर भी तोतली बोली निकलती है; वहाँ तोतली बोलने की अवस्था है - ऐसा ज्ञान जानता है; किन्तु ज्ञान माने कि मेरे कारण भाषा होती है - ऐसा माननेवाला मूर्ख है।

जो पृथक-पृथक पदार्थ हैं उन्हें, पृथक-पृथक जानना वह सच्चा भेद ज्ञान है। सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ ज्ञान पूर्ण स्वभावरूप हुआ है,उनके ज्ञान में तीनकाल, तीनलोक के समस्त ही पदार्थ ज्ञात हो जाते हैं। ज्ञान में कुछ भी बाकी नहीं रहता। इस तरह सर्वज्ञ की दिव्यशक्ति की, मोक्षतत्त्व की बात का विश्वास हो उसे सम्यग्दर्शन हुये बिना नहीं रहता। यही धर्म है किन्तु बाहर में धर्म नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञेयों की तीनों काल की पर्यायें ज्ञान में साक्षात् एक समय में ही भाषित होती हैं.

ज्ञान चित्रपट समान है जैसे चित्रपट में अतीत, अनागत और वर्तमान वस्तुओं का आलेख्याकार साक्षात् एक ही क्षण में भाषित होता है। भूतकाल के तीर्थंकर चित्रित हुये हों, वर्तमान तीर्थंकर चित्रित हुये हों और भविष्य के तीर्थंकर चित्रित हुये हों - इसे देखकर सभी एक क्षण में ही भाषित होते हैं। ये तीर्थंकर हो गये हैं और भविष्य में होंगे इस तरह सभी का ज्ञान साक्षात् भाषित होता है। अष्टापद ऊपर सभी का ज्ञान साक्षात् भाषित होता है। तीन चौबीसी के बिम्ब है ज्ञान तीनों को जानता है। भूतकाल के तीर्थकरों का ज्ञान भूत में चला गया हो ऐसा नहीं है और भविष्य के तीर्थंकरों का ज्ञान भविष्य में होगा - ऐसा भी नहीं है, अपितु ज्ञान एक समय में सभी को जानता है; वैसे ही ज्ञानरूपी भीत (दर्पण) में अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायों के ज्ञेयाकार साक्षात् एक समय में ही भाषित होते हैं।

सर्वज्ञ के ज्ञान में जैसे भूत, भविष्य और वर्तमान साक्षात् भाषित होते हैं; वैसा ही ज्ञेयों में परिणमन होता है, किन्तु उनमें पराधीनता नहीं अपितु स्वतंत्रता होती है अर्थात् ज्ञेय के कारण ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के कारण ज्ञेय नहीं होते। जैसे-जैसे चित्र होते हैं वैसा चिंतवन (ज्ञान) आ जाता है। कपड़ा पहले सूतरूप में था, इसके बाद कपड़ा हुआ फिर उसके वस्त्र बनेंगे यह सभी ज्ञान में आता है किन्तु वह ज्ञान के कार्यरूप नहीं आता - ज्ञान का कार्य तो जानना है।

मेरा कार्य जानना-देखना है। बाहर का कार्य मेरा नहीं है। राग-द्वेष भी मेरा कार्य नहीं है। ''मैं जाननहार हूँ'' यह सम्यग्दर्शन है।

सर्वज्ञ को सर्वचक्षु है। आत्मा के अंसख्य प्रदेश खिल गये हैं। जैसे वनस्पति फैलती है, वैसे ही आत्मा खिल उठा है। ध्रुव चिदानन्द आत्मा के अवलम्बन से केवलज्ञान का अंकुर प्रस्फुटित हुआ है; उसके ज्ञान में कोई भी चीज जानने से बाकी नहीं रहती।

वास्तव में, आत्मा के कारण दुकान नहीं चलती। विश्वश्नीय व्यक्ति हो तो दुकान अच्छी चलती है और यदि अविश्वश्नीय हो तो अच्छी नहीं चलती - ऐसा अज्ञानी अभिमान करता है। केवलज्ञान तीनकाल-तीनलोक को जानता है। छद्मस्थ ज्ञान तीनकाल को आंशिक जानता है। अज्ञानी को मिथ्यात्व-शल्य अड़ती है। आत्मा ज्ञानस्वभाव है और शेष सभी ज्ञेय हैं - ऐसे निर्णय बिना सच्ची बात का विश्वास नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ चित्रपट का दृष्टान्त देकर केवलज्ञान में तीनकाल की पर्यायें ज्ञात होती है यह बताया है। मुनि किसी मकान में आहार लेने आवें तो वहाँ मकान, स्त्री, बालक को देखते हैं - वे स्त्री, बालक आदि मुनि को ज्ञेय हैं और गृहस्थ को भी ज्ञेय हैं; किन्तु मिथ्यादृष्टि उन्हें अपना मानकर भूल करता है। भरत चक्रवर्ती को अंतिम देह है, अनादि-सांत होने का समय है। वे मुनि को आहारदान देने के लिये पधराते हैं; वहाँ मुनि महल आदि को देखते हैं और भरत भी देखते हैं; भरत को आशक्ति है किन्तु मुनि को आशक्ति नहीं है; यद्यपि दोनों की दृष्टि समान है किन्तु मुनि को चारित्र की स्थिरता है और भरत को कमजोरी का राग है। वहाँ साथ में कोई मिथ्यादृष्टि हो तो वह पर के ऊपर दृष्टि करता है और उसे मेरा मानता है; जबकि वस्तु तो सदा एक जैसी ही है।

'सर्व ज्ञेयकारों का वर्तमानपना अविरुद्ध है -'

यह कहते हैं कि भगवान के ज्ञान में वर्तमानपना दिखाई देता है। केवलज्ञान वर्तमान है इसलिये लोकालोक वर्तमान निमित्त होता है। केवलज्ञान नैमित्तिक वर्तमान है और लोकालोक वर्तमान में निमित्त है। ज्ञान का स्वभाव तो पूर्ण जानने का है वह भूत तथा भविष्य को वर्तमान में जानता है। वैसे ही ज्ञेय में वर्तमान में ज्ञात होने की पूर्ण शक्ति है। ज्ञेय में तात्कालिकता अविरुद्ध है। सर्वज्ञ परमात्मा के एक समय के ज्ञान में वर्तमानवत् ज्ञान में आया है।

आत्मा की ज्ञानत्वशक्ति अद्भुत है इस बात का विश्वास आना चाहिये। जो पदार्थ है उनको जानना वह ज्ञानस्वभाव है और जो पदार्थ है उनका ज्ञात होने का स्वभाव है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई स्वभाव नहीं है। जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओं के आलेख्याकार अर्थात् चित्र - योग्य वर्तमान ही हैं; वैसे ही अतीत और अनागत पर्याय के ज्ञेयाकार ज्ञान में वर्तमान के समान ही ज्ञात होते हैं।

ज्ञेय क्रमबद्ध होते हैं और ज्ञान भी क्रमबद्ध जानता है। जिस पदार्थ की जो अवस्था जैसी होनेवाली है वैसा ही ज्ञान जानता है। ऐसा जाने तो मैं उसकी रचना करता हूँ ऐसा अभिमान दूर हो जाता है और स्वभाव सन्मुखदशा, प्रतीति होकर स्थिरता होती है। सर्वज्ञ पूर्ण देखते हैं और अल्पज्ञ अपूर्ण देखते हैं किन्तु बीच में ज्ञान को दूसरा काम सौंपना वह भ्राँति है।

यहाँ कर्म को नाश करने की बात नहीं की; उन्होंने राग का नाश किया है ऐसा कहना वह भी उपचार है। ज्ञान और राग पृथक हैं ऐसे ज्ञानस्वभाव में श्रद्धा, ज्ञान, रमणता होने पर मोक्ष मार्ग होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावार्थ पर प्रवचन :-

शंका :- केवलज्ञान समस्त द्रव्यों की तीनकाल की पर्यायों को युगपद् जानता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जिसका नाश हो गया और जो उत्पन्न नहीं हुई ऐसी पर्यायों को ज्ञान वर्तमानकाल में कैसे जान सकता है ?

समाधान :- जगत में भी दिखाई देता है कि अल्पज्ञ जीव का ज्ञान भी नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओं को चिन्तवन कर सकता है - अनुमान के द्वारा जान सकता है - तदाकार हो सकता है ऐसा ज्ञान जानता है। यह खीला दीवाल में प्रविष्ट होता है - ऐसा ज्ञान जानता है। वहाँ अज्ञानी मानता है कि मैंने खीले को अन्दर बैठाया है; जबकि दीवाल का स्वभाव और खीले का स्वभाव ऐसा ही था। अज्ञानी अभिमान करता है; संयोग देखकर उसे भ्रम होता है।

मिट्टी में से घड़ा बनेगा ऐसा अनुमान करता है जो बराबर है; तो फिर पूर्ण ज्ञान भूतकाल की और वैसे ही भविष्य की पर्यायों को निश्चित ही जान सकता है। चित्रपट के समान ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह भूतकाल और भविष्य की पर्यायों को भी जान सकती है। और आलेख्यशक्ति की भांति द्रव्यों की ज्ञेयत्व शक्ति ऐसी है कि उनकी भूतकाल की तथा भविष्य काल की पर्यायें भी ज्ञान में ज्ञेयरूप होती हैं - ज्ञात होती हैं।

ज्ञेय का प्रमेयत्व धर्म है - ज्ञान का ज्ञान धर्म है। रोटी को मैं बनाऊँ - ऐसी मान्यता पर्याय बुद्धि है। इसप्रकार आत्मा की अद्भुत ज्ञेयत्व शक्ति के कारण, केवलज्ञान में समस्त द्रव्यों की तीनोंकाल की पर्यायों का एक ही समय में भाषित होना अविरुद्ध है।

❁ ❁ ❁

बाहर की विपदा वह वास्तव में विपदा नहीं है और बाहर की सम्पदा वह सम्पदा नहीं है। चैतन्य का विस्मरण ही महान विपदा है और चैतन्य का स्मरण ही वास्तव में सच्ची सम्पदा है।

- गुरुदेवश्री के वचनामृत, २०४

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ३८

अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्त्वं विदधाति -

जे णेव हि संजया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया।
ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा ॥३८॥

अब, अविद्यमान पर्यायोंकी (भी) कथंचित् (-किसी प्रकार से; किसी अपेक्षासे) विद्यमानता बतलाते हैं :-

उत्पन्न ना जो आज तक उत्पन्न होकर नष्ट जो।
वे हैं नहीं सद्भूत पर प्रत्यक्ष केवल ज्ञानी को ॥३८॥

गाथार्थ :- जो पर्यायें वास्तव में उत्पन्न नहीं हुई हैं, तथा जो पर्यायेंवास्तव में उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, वे अविद्यमान पर्यायें ज्ञान प्रत्यक्ष हैं।

टीका :- जो (पर्यायें) अभी तक भी उत्पन्न नहीं हुई और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, वे (पर्यायें)वास्तव में अविद्यमान होने पर भी, ज्ञान के प्रति नियत होने से (ज्ञान में निश्चित-स्थिर-लगी हुई होने से, ज्ञान में सीधी ज्ञात होने से) ज्ञान प्रत्यक्ष वर्तती हुई, पाषाण स्तम्भ में उत्कीर्ण, भूत और भावी देवों (तीर्थंकर देवों) की भाँति अपने स्वरूप को अकम्पतया (ज्ञान को) अर्पित हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं॥

* * *

गाथा ३८ पर प्रवचन

संयोग, राग और ज्ञान की अभेदता करना वह अधर्म है और तीनों की भेदता करना वह धर्म है.

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। आत्मतत्त्व ज्ञानतत्त्व है और ज्ञानतत्त्व आत्मत्व है; क्योंकि वस्तु का स्वभाव ही जानना-देखना है। जगत के पदार्थ जिस समय जैसे बदलते हैं उसे और आत्मा में जिसप्रकार का राग-द्वेष होता है उसे अपने ज्ञान में जानना वह धर्म है। यह मुद्दे की रकम है। आत्मा वस्तु है। उसका मुख्य-परम स्वभाव आत्मज्ञानरूप है। ज्ञानस्वरूप की क्रिया जानना-देखना है। किन्तु पुण्य-पाप का करना अथवा राग का एकपना होना वह स्वभाव नहीं है। अनन्त काल से जीव ज्ञान और राग की एकता मानता है। पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ ऐसी अभेदता करके मिथ्यात्व को करता है किन्तु उन तीनों का भेदज्ञान करना वह धर्म है।

संयोग समय-समय बदलते हैं वे ज्ञेय हैं, राग समय-समय बदलता है वह भी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञाता का ज्ञेय है - ऐसा नहीं मानकर निमित्त के कारण राग होता है अथवा राग के कारण ज्ञान होता है - ऐसा मानना वह संसार का बीज है।

तेरा रूप - तेरा स्वभाव ज्ञान सामर्थ्य है। तेरी सामर्थ्यशक्ति, सर्वज्ञ होने की है - सर्व को जानने की है; (किन्तु) निमित्त को देखने की, राग-द्वेषरूप होने की अथवा अल्पज्ञ रहने की तेरी शक्ति नहीं है और वह तेरावास्तविक स्वरूप भी नहीं है, क्योंकि तेरा स्वरूप ज्ञान है। अज्ञान तथा राग-द्वेष को जीतकर वीतराग-विज्ञानदशा प्रगट करके, वस्तु कायम रही है; उसे जैन, परमेश्वर कहते हैं - इसके अतिरिक्त दूसरा कोई परमेश्वर नहीं होता। भगवान आत्मा का ख्याल आना चाहिये क्योंकि वस्तु की खबर बिना वीर्य (पुरुषार्थ) को कहाँ लगायेगा।

सर्वज्ञ पूर्ण जानते हैं और छद्मस्थ अधूरा जानते हैं - ऐसा जानना यही स्वज्ञान है.

जगत के पदार्थों की अवस्था जो वर्त (हो) चुकी है, वर्तमान में वर्त रही है और भविष्य में वर्तेगी वे सभी पर्यायें वर्तमान में कथंचित विद्यमान हैं ऐसा यहाँ इस गाथा में सिद्ध करते हैं। आत्मा की सर्वज्ञ शक्ति का विकास होकर सर्वज्ञ होंगे। भूतकाल की पर्यायें जो हो गई हैं और भविष्य में होगी वे सभी पर्यायें वर्तमान में विद्यमान हो ऐसी केवलज्ञान में ज्ञात होती हैं - ऐसा ज्ञान का स्वभाव है और उन ज्ञेयों को वर्तमान जानने का स्वभाव है।

तेरा स्वभाव सर्वज्ञ होने का है। तेरा स्वभाव सभी को जानने का है - ऐसी प्रतीति करना वह धर्म है। तू ज्ञाता द्रव्य है। सर्वज्ञ पूर्णरूप से जानते और देखते हैं। उनको सभी पदार्थ पूर्णत: दृश्य और ज्ञेय होते हैं। निचलीदशा में अधूरा जानते और देखते हैं और अमुक ज्ञेय दृश्य और ज्ञेय होते हैं। फिर भी सभी पदार्थ ज्ञेय में - प्रतीति में वर्तते हैं; अर्थात् कि तू जाननहार है ऐसी प्रतीति होती है।

सर्वज्ञ हुए हैं वे कहाँ से हुए ? क्या राग द्वेष में से सर्वज्ञपना आया है ?

नहीं।

क्या अल्पज्ञपने में से सर्वज्ञपना आया है ?

नहीं।

अन्तर में सर्वज्ञ स्वभाव है ऐसी प्रतीति करनेवाले को पर पदार्थों की पर्याय में हेराफेरी करना नहीं रहता। अज्ञान से जीव मानता है कि मेरे कारण पर की अवस्था में हेरफेर होता है अथवा पर के कारण मेरे में हेरफेर होता है किन्तु यह अज्ञान भाव है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस जगत में अनन्त आत्मा, अनन्त पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और असंख्य काल है उन सभी की अवस्थाएँ हारबद्ध (क्रमबद्ध) हैं।

पूर्ण ज्ञान छह द्रव्यों की वर्तमान अवस्था को तो जाने किन्तु भूतकाल तथा भविष्य कीदशाओं को कैसे जाने ?

समाधान :- भूतकाल कीदशा तथा भविष्य कीदशा को जानने की शक्ति है, इसलिये उन सभी की किसीप्रकार से विद्यमानता है - ऐसा कहते हैं।

गाथार्थ :- 'जो पर्यायेंवास्तव में उत्पन्न नहीं हुई हैं, तथा जो पर्यायेंवास्तव में उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, वे अविद्यमान पर्यायें ज्ञान प्रत्यक्ष हैं।'

केवलज्ञान तीनों काल के पदार्थों को जानता है किन्तु उन्हें करता नहीं - यदि उनका कर्ता माने तो केवलज्ञान नहीं रहता.

इस जीव को केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु इस जीव को अमुक समय केवल ज्ञान होगा - ऐसा केवलज्ञानी जानते हैं। क्योंकि उस द्रव्य में ज्ञेय होने की वर्तमान योग्यता है। अमुक जीव को पाँच मिनट के बाद राग होगा वह भी क्रमबद्ध है। वह वर्तमान में नहीं होने पर भी ज्ञान में वह वर्तमानवत् भाषित होता है। इसलिये वह वर्तमान में हुआ - ऐसा सिद्ध होता है।

केवलज्ञानी को भविष्य की अवस्था का ज्ञान वर्तमान में होता है, इसलिये वे पदार्थ भी निमित्तरूप से वर्तमान ज्ञेयरूप हैं। एक आत्मा का ज्ञान दूसरे के साथ एकमेक हो जाय - ऐसा स्वभाव नहीं है। ज्ञान पर को जाननेवाला है किन्तु पर को करनेवाला नहीं है। त्रिकालवेत्ता जीव भूत, भविष्य और वर्तमान अवस्था को जाननेवाला है। यह पदार्थ पहले नहीं था किन्तु मैंने किया - ऐसा माने, तो फिर त्रिकालज्ञानी नहीं रहे; क्योंकि उन्हें भूतकाल का ज्ञान नहीं हुआ।

वास्तव में, वे तीनकाल के पदार्थों को जाननेवाले हैं इसलिये कोई पदार्थ नया उत्पन्न नहीं होता और कोई पदार्थ ज्ञात न हो - ऐसा भी नहीं होता। भूतकाल के पदार्थ का उनको ज्ञान है। इसलिये भूतकाल के पदार्थ थे - जो पदार्थ थे उनको जाना है इसलिये ये पदार्थ त्रिकाल है और सर्वज्ञ भी त्रिकाल है। सामान्यपने सिद्ध और केवल ज्ञान लिया जाये तो वह अनादि से है। किन्तु एक व्यक्ति की अपेक्षा से केवलज्ञान की आदि होती है; किन्तु सामान्यपने सिद्ध, केवलज्ञान, मोक्ष मार्ग अनादि से हैं। कोई पहले और कोई बाद में नहीं। देखो ! जैन दर्शन का मार्ग अपूर्व है। आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थों की भूत और भविष्य की पर्यायें होने पर भी, केवलज्ञान में प्रत्यक्ष भासित होती हैं.

तेरा स्वभाव अनादि से केवलज्ञान शक्तिरूप है। उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन प्रगट करके, केवलज्ञान प्रगट करना वही तेरा धर्म है। ज्ञेय में पूर्व अवस्था जो हो चुकी हैं और भविष्य में होगी - उसे ज्ञान जानता है, और ज्ञेय भी ज्ञात होने योग्य हैं। भूतकाल की अवस्था और भविष्य की अवस्था वर्तमान में ज्ञात हो - ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है और ज्ञान का जानने का स्वभाव है। चैतन्य मंदिर भगवान आत्मा में ज्ञान का पूर्ण भंडार भरा है। मैं भी सर्वज्ञ होने के स्वभाववाला हूँ किन्तु निमित्त और व्यवहार से सर्वज्ञ होनेवाला नहीं हूँ - ऐसा निर्णय हो वही सम्यग्दर्शन है; और अन्तरलीनता होती है वह चारित्र है। बीच में जो राग आता है वह ज्ञेय है।

देखो ! एक परमाणु अभी तो विष्टारूप है जो पाँच दिन के बाद अन्यरूप होगा यह पर्याय भविष्य की है; जिसे वर्तमान ज्ञान जानता है। वह पदार्थ वर्तमानवत् प्रमेयत्व होने की शक्ति को धारण करता है। आत्मा और परमाणु में नई पर्याय नहीं हुई है। तथा जो राग-द्वेष, दया-दान की पर्यायों का व्यय हो गया है, वहवास्तव में अविद्यमान होने पर भी ज्ञान में मानों चिपक (चोंट) गई है। वह ज्ञान के प्रति नियत है। पदार्थ में भी पर्याय नियत है। पाँच वर्ष के बाद उसमें जो पर्याय होनेवाली है वह नियत है। यह सभी पर्यायों की बात है।

कोई कहता है कि - सर्वज्ञ जानते हैं इसलिये विकार नियत है किन्तु विकारी अवस्था अपनी अपेक्षा से अनियत है तो यह भी भूल है। पदार्थ में भी पर्याय नियत है। वस्तु का स्वभाव अनियत नहीं है। फिर भी अनियत माना जाए तो केवलज्ञान में नियत किस तरह भाषित होगा ? इसलिये यह बात असत्य (खोटी) है।

जैसे नीला कपड़ा दर्पण में दिखाई देता है वह झांई (प्रतिबिम्ब) भी नीली है। दर्पण में नीली झांई पड़े और सामने काला कपड़ा हो ऐसा नहीं होता। ईंटों की पृथक-पृथक अवस्था भविष्य में जैसी होनेवाली है उसे केवलज्ञान पहले से जानता है। एक समय का केवलज्ञान भूत और भविष्य की अवस्था को जानता है; इसलिये पर्यायें निश्चित हो गई हैं और वे सर्वज्ञ के ज्ञान में चिपक गई हैं। अनन्तकाल की अनन्ती अवस्थाएँ जो बीत गई हैं और भविष्य की अनन्ती अवस्थाएँ जो होगी वे सभी सर्वज्ञ के ज्ञान में सीधी ज्ञात होती हैं। ऐसा सर्वज्ञ के ज्ञान का निर्णय करें तो सभी अज्ञान दूर हो जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग और कर्म का उदय भी ज्ञान में ज्ञेय है भविष्य में कैसा राग होगा ? वह सर्वज्ञ के ज्ञान में आ गया है इसलिये वह नियत है, किन्तु अल्पज्ञ उसे नहीं जानता। छद्मस्थ ज्ञानी को प्रतीति में आ गया है कि राग नियत है भले ही वह प्रत्यक्ष नहीं जानता हो, किन्तु वे सभी अवस्थायें नियत है - ऐसी उसे प्रतीति है। सर्वज्ञ के ज्ञान में अविद्यमान अवस्थाएँ वर्तमान प्रत्यक्ष ज्ञात होती है। प्रत्यक्ष अर्थात् प्रति + अक्ष। यहाँ अक्ष अर्थात् ज्ञान अथवा आत्मा और प्रति अर्थात् निकट में।

महाविदेह में सीमंधर भगवान विराजते हैं। उनके ज्ञान में जो अनन्ती पर्यायें बीत गई है वे प्रत्यक्षपने वर्तती है। ऐसे लाखों केवली मनुष्यदेह में विराजते हैं। सिद्धदशा में अनन्त केवली विराजते हैं उन केवलज्ञानी के ज्ञान में पदार्थ की सभी अवस्थाएँ ज्ञात होती है। भूत और भविष्य की अवस्थाएँ वर्तमान में ज्ञात होती है।

इस गाथा ३८ वीं में ज्ञान में सभी प्रत्यक्ष कहकर ज्ञेयों की अवस्था वर्तमानवत् है ऐसा बताते हैं। ज्ञान में भूतकाल और भविष्य की अवस्थाएँ प्रत्यक्ष वर्तमान दिखाई देती है इसलिये ज्ञेयों की भूतकाल और भविष्य की अवस्थाएँ वर्तमानवत् है।

यह समझे बिना अज्ञानी बाह्य क्रियाकाण्ड में रुक जाता है, किन्तु वह क्रियाकांड ज्ञानस्वभाव को समझने में काम नहीं आता। ज्ञान में पदार्थ - सामने पड़े हैं। भूतकाल के तीर्थंकर जो हो गये हैं वे सभी जैसे (ज्ञानरूपी) पत्थर में उत्तीर्ण हो गये हैं और वर्तमान में नजर के सामने पड़े (विद्यमान) हैं ऐसे ज्ञात होते हैं। वैसे ही अनन्त पदार्थों की भूत और भविष्य की सभी पर्यायें प्रत्यक्ष ज्ञात होती हैं।

लोकालोक तो केवलज्ञान में एक बिन्दु समान है.

प्रश्न :- इसलिए तो ज्ञान को बहुत बोझा बढ़ जायेगा ?

समाधान :- नहीं, ज्ञान को बोझा नहीं है। आत्मा के आधार से प्रगट हुआ पूर्ण-अतीन्द्रियज्ञान को जरा भी बोझा नहीं होता। परमार्थ प्रकाश में दृष्टान्त दिया है कि - जैसे बांस के मंडप के ऊपर चांदनी बांस के छोर तक जाती है किन्तु मंडप छोटा है इसलिये चांदनी (कपड़ा) छोटी है - ऐसा नहीं है। यदि, मंडप बड़ा हो तो चाँदनी भी वहाँ तक लम्बी हो जायगी। ऐसा तीनकाल-तीनलोक के मंडप को केवलज्ञान जानता है। यदि इसलिए अनन्त गुणा अधिक लोकालोक होता तो भी केवलज्ञान जान लेता। इस तरह अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को स्वभाव सन्मुख होकर जाने वह सम्यग्दर्शन है। यहाँ से धर्म की शुरुआत होती है।

दूसरा दृष्टान्त है यह है कि जैसे इस लोक में, एक नक्षत्र बिन्दु समान है; वैसे ही केवलज्ञानरूपी लोक में, लोकालोक नक्षत्र समान है - ऐसी ज्ञानस्वभाव की महिमा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। पूर्णस्वभाव में से जो पूर्णज्ञान प्रगट होता है वह क्या नहीं जानता ? आदि पुराण में लिखा है कि केवलज्ञान में तीनलोक परमाणु तुल्य (समान) है।

दिगम्बर मुनिराज के किसी भी ग्रन्थ को पढ़ो अर्थात् कि द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, कथानुयोग अथवा करणानुयोग - ऐसे चार अनुयोगों में से कोई भी हो तो वस्तु के मर्म में अन्तर नहीं होता। मात्र कथन, पद्धति में अन्तर है। देखो ! यह ज्ञानस्वभाव की मुद्दे की रकम है।

पदार्थ अपना स्वरूप केवलज्ञान को अर्पित करते हैं.

भूतकाल के और भविष्य के तीर्थंकर (जैसे कि वे) स्तंभ के ऊपर उत्कीर्ण हों (ऐसे) वे सीधे वर्तमान में जानने में आते हैं; वैसे ही अपने केवलज्ञान स्वरूप में पदार्थों की भूत और भविष्य की अवस्थाएँ वर्तमान में ज्ञात होती हैं। जिस समय जो अवस्था होगी वे सभी अकम्परूप से अर्थात् स्थिरपने ज्ञान को अर्पित होती हैं। भूत और भविष्य की सभी पर्यायें फेरफार रहित-एकरूप स्थिर हैं। जैसे स्थिर पदार्थ अकम्परूप से ज्ञान में आता है; वैसे ही भूत और भविष्य की पर्यायें अकम्परूप से वर्तती हैं वे केवलज्ञान में अर्पित हैं। जैसे केवलज्ञान-नैमित्तिकदशा पूर्ण है, वैसे ही सामने निमित्त भी पूर्ण है। यह विषय वस्तु का सम्यग्ज्ञान है।

ज्ञान का स्वभाव जानना है और ज्ञेय का स्वभाव ज्ञात होने का है। आत्मा के स्वभाव को जाने बिना धर्म कहाँ से होगा ? जैसे दीवाल के बिना चित्र नहीं होता; वैसे ही ज्ञानस्वभाव की स्थिर दृढ़ता के बिना, एकाग्रता का चित्रण नहीं होता। इस आत्मा में जो ज्ञानस्वभाव का लाभ हुआ है, वह अनन्त काल में जो कभी नहीं हुआ - ऐसा लाभ है।

ज्ञेय अकम्पपने मेरे ज्ञान में ज्ञात हों ऐसा मेरा स्वभाव है ऐसी प्रतीति करना वह आत्मा को लाभ है। कुन्दकुन्द आचार्य ने अन्तर का काम तो किया ही है, किन्तु शास्त्रों की रचना करके गजब काम किया है। केवलज्ञान को खड़ा करते हैं। ज्ञानस्वभाव प्रगट होने पर पर्याय पूर्ण न हों तो ज्ञान सिद्ध नहीं होता और ज्ञेय पूर्णरूप न हो तो ज्ञेय सिद्ध नहीं होता।

कोई कहता है कि भविष्य की अवस्था केवली भगवान वर्तमान में नहीं जानते किन्तु जब वह भविष्य में होगी तब जानेंगे - तो उसकी यह बात असत्य है। भविष्य में पर्याय होगी तब जाने वह केवलज्ञान नहीं कहलाता। पानी की अवस्था जब ठंडी होगी वह निश्चित है और उसे बरफ की निमित्तता भी निश्चित है। परमाणु में स्पर्श गुण की अवस्था बदलकर ठंडी होती है; क्योंकि एक सत् के कारण दूसरा सत् नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपना ज्ञान स्वरूप अकम्पतया है - आगे-पीछे नहीं और ज्ञेय जिस तरह जैसा है, वैसा ज्ञान को अर्पित होता है। अर्थात् कि सभी कुछ एक समय में ज्ञात हो जाता है। जैसा ज्ञान है वैसा ज्ञेय परिणमित होता है फिर भी ज्ञान को पराधीनता नहीं है। ज्ञेय की अवस्था ज्ञेय के कारण बदलती है और ज्ञान की अवस्था ज्ञान के कारण बदलती है।

इस तरह अर्हन्त का निर्णय करना वह सम्यग्दर्शन है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, उसमें से त्रिकालवेत्तापना होता है। यदि सभी अवस्था वर्तमान में न जाने तो वह त्रिकालवेत्ता नहीं रहा। सर्वज्ञ के ज्ञान में भूत भविष्य की पर्यायें, वर्तमान में अर्पित हैं। जैसे पूजा में स्वाहा करते हैं; वैसे ही भूत भविष्य की पर्यायें ज्ञान में वर्तमान स्वाहा करता है। ऐसे ज्ञेय अकम्पपने ज्ञान में वर्तते हैं।

ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होने से सर्वज्ञपना प्रगट होता है.

यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। जिसे धर्म करना हो उसे क्या करना चाहिये ? वह बताते हैं। आत्मा का ज्ञान और आनन्द स्वभाव है। उसकी प्रगट अवस्था ज्ञान और आनन्दरूप हुई वह - धर्म है। आत्मा वस्तु है, जो आदि-अन्त रहित है। आत्मा नई चीज (वस्तु) नहीं है - इसलिये उसका कोई कर्ता नहीं है; वैसे ही (वह) नाश होकर किसी में मिल जावे ऐसा भी नहीं है। इस जगत में जो आत्मा है उसका ज्ञानस्वभाव है; उसकी पूर्णदशा प्रगट करना वह पर्याय स्वभाव है।

ज्ञानगुण आत्मा के सम्पूर्ण भाग (क्षेत्र) में और आत्मा की सर्व अवस्थाओं में रहता है। यह ज्ञान, तत्त्व अथवा भाव है। ज्ञान नाम का स्वभाव आत्मा में अनादि-अनन्त है। उसकी पूर्ण पर्याय जो अंतर ज्ञान में एकाग्र होने पर प्रगट होती है, वह आत्मा में, सर्व भाग में रहती है किन्तु वह अवस्था एक समय की है। केवलज्ञान भी एक समय की अवस्था है।

यह भगवान आत्मा, उसका ज्ञान गुण और उसकी पूर्ण अवस्था केवलज्ञान की बात चलती है। अरिहंत तत्त्व वह मोक्ष तत्त्व है। विकार और कर्मों का नाश करके केवलज्ञान पर्याय स्वभाव में से प्रगट की है वे अरिहंत हैं। उनके स्वरूप के भान बिना उन्हें सच्चा नमस्कार नहीं हो सकता। सर्वज्ञ पद अथवा केवलज्ञान पद, ज्ञान गुण में एकाग्र होने से प्रगट होता है। वह ज्ञान तीनकाल और तीनलोक को पूर्ण जानता है जिसमें कुछ भी शेष नहीं रहता।

गाथा ३८ में कहा गया है कि पदार्थों की अवस्था एक के बाद एक होती है जो ज्ञान में आ जाती है, अथवा अनन्त पर्यायें क्रमबद्ध विकारी अथवा अविकारी जो होनेवाली हैं, वे ज्ञान में अर्पित हो जाती हैं - ऐसा कहा था और अब गाथा ३९ में ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की बात करते हैं। आत्मा का ज्ञानगुण परम स्वभाव है। राग वह आत्मा नहीं है और आत्मा वह राग नहीं है। शरीर आत्मा नहीं है और आत्मा शरीर नहीं है। ज्ञान वही आत्मा है - ऐसे निर्णय के फल में सम्यक्त्व होता है और उसके बाद केवलज्ञान प्रगट होता है। एक समय की केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक की तीनकाल की पर्यायें कि - जो हो चुकी हैं, हो रही है और होगी वे सभी उसमें अर्पित हो जाती हैं।

❁ ❁ ❁

व्यवहारनय से ज्ञान परप्रकाशक है; इसलिए दर्शन परप्रकाशक है। व्यवहारनय से आत्मा परप्रकाशक है इसलिए दर्शन परप्रकाशक है।

निश्चयनय से ज्ञान स्वप्रकाशक है; इसलिए दर्शन स्वप्रकाशक है। निश्चयनय से आत्मा स्वप्रकाशक है; इसलिए दर्शन स्वप्रकाशक है।

- श्री नियमसार १६४, १६५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा - ३९

अथैतदेवासद्भूतानां ज्ञानप्रत्यक्षत्वं दृढयति -

जदि पच्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स ।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वं ति हि के परूवेंति ॥३९॥

अब, इन्हीं अविद्यमान पर्यायों की ज्ञानप्रत्यक्षता को दृढ़ करते हैं :-

यदि अनुत्पन्न विनष्ट पर्यायें प्रत्यक्ष न ज्ञान के ।
तो ज्ञान है वह 'दिव्य' ऐसा कौन निश्चय से कहे ॥३९॥

गाथार्थ :- यदि अनुत्पन्न पर्याय तथा नष्ट पर्याय ज्ञान के (केवलज्ञान के) प्रत्यक्ष न हो तो उस ज्ञान को 'दिव्य' कौन प्ररूपेगा ?

टीका :- जिसने अस्तित्त्व का अनुभव नहीं किया और जिसने अस्तित्त्व का अनुभव कर लिया है ऐसी (अनुत्पन्न और नष्ट) पर्यायमात्र को यदि ज्ञान अपनी निर्विघ्न विकसित, अखण्डित प्रतापयुक्त प्रभुशक्ति के (-महा सामर्थ्य) द्वारा बलात् अत्यन्त आक्रमित करे (-प्राप्त करे), तथा वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्व को अक्रम से अर्पित करें (-एक ही साथ ज्ञान में ज्ञात हों) इसप्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे (-अपने में निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने), तो उस ज्ञान की दिव्यता क्या है ? इसलिए (यह कहा गया है कि) पराकाष्ठा को प्राप्त ज्ञान के लिये यह सब योग्य है।

भावार्थ :- अनन्त महिमावान केवलज्ञान की यह दिव्यता है कि वह अनन्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों को (अतीत और अनागत पर्यायों को भी) सम्पूर्णतया एक ही समय प्रत्यक्ष जानता है ॥३९॥

* * *

गाथा ३९ पर प्रवचन

अब, इन्हीं अविद्यमान पर्यायों की ज्ञान प्रत्यक्षता को दृढ़ करते हैं; वैसे ही भविष्य की अवस्था हुई नहीं है फिर भी उन सभी का ज्ञान में प्रत्यक्षपना दृढ़ करते हैं।

सर्वज्ञ की सत्ता के स्वीकार में अपने सर्वज्ञ स्वभाव का विश्वास (भरोसा) आया, यही पुरुषार्थ है.

प्रश्न :- केवलज्ञानी ने देखा है, उसमें फेरफार नहीं होता - तो फिर पुरुषार्थ नहीं रहा ?

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान :- जिस द्रव्य की जो अवस्था जैसे होनेवाली है उसको केवलज्ञान जानता है - ऐसा ज्ञान का जानने का स्वभाव है और ज्ञेय का ज्ञात होने का स्वभाव है। जो होनेवाला है वह होता है - ऐसे निर्णय में पुरुषार्थ है। जिसे जो विकार होनेवाला होता है वही होता है और जिसे जो धर्म होनेवाला है वही होगा - ऐसे ज्ञानस्वभाव की जिसे प्रतीति आई है - वह ज्ञाता-दृष्टा होनेवाला है। और ऐसी पूर्ण ज्ञान सम्पदावाला जगत में है जिसमें जगत की सभी पर्यायें ज्ञात हो जाती हैं; ऐसे केवलज्ञान की अस्ति अर्थात् सत्ता का भरोसा जिसे आया है, उसे विकार तथा अल्पज्ञता का भरोसा निकल गया है और अपने सर्वज्ञ स्वभाव का भरोसा आया है। जो पर्याय, जिस समय होनेवाली है उसे केवलज्ञान ने देखा है और उस पर्याय में जो निमित्त है उसे भी केवलज्ञान में देखा है - ऐसा निर्णय करना वह पुरुषार्थ है। नव-तत्त्व में मोक्ष तत्त्व की विद्यमानता है ऐसा निर्णय करने में ज्ञान की क्रिया हुई वह धर्म है।

उपादान और निमित्त दोनों ही सुनिश्चित हैं ऐसा जानना ही धर्म है.

टीका पर प्रवचन :- भगवान ने अनन्त आत्मा, अनन्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक और असंख्य कालाणु देखे हैं। उनकी भविष्य की पर्याय अभी नहीं हुई है इसलिये यहाँ ऐसा कहा है कि उन पर्यायों को अनुभव नहीं किया है। द्रव्यों में भविष्य की पर्याय नहीं हुई है किन्तु भविष्य में होनेवाली हैं। इस परमाणु की पर्याय ऐसी - भविष्य में होगी - ऐसा केवलज्ञान जानता है। जो नहीं होनेवाला है - वह नहीं होगा और जो होनेवाला है वह नहीं मिटेगा (टलेगा)। केवलज्ञान ने देखा है कि जिस पदार्थ की, जो अवस्था, जब होनेवाली है वह होगी इसमें फेरफार नहीं होता - ऐसा मानना ही धर्म है।

सर्वज्ञ देवाधिदेव जैन परमेश्वर के ज्ञान में जो ज्ञात हुआ है उसमें फेर-फार नहीं होता - ऐसी केवलज्ञान की सत्ता है; उसका निर्णय करना और अपने सर्वज्ञ स्वभाव को स्वीकार करना सम्यग्दर्शन है और उसमें स्थिरता चारित्र है - यही धर्म है। अज्ञानी ने ऐसे - केवलज्ञान का निर्णय नहीं किया फिर वह भले ही कहे कि सर्वज्ञ भगवान हैं किन्तु उसका निर्णय उसे नहीं है।

यह जीव एक भव में, यह जीव दो भव में और यह जीव तीन भव में - मोक्ष जायगा (यद्यपि) उनको वे पर्यायें आई नहीं है तथापि, केवलज्ञानी उन्हें जान लेते हैं। इस स्वाध्याय मंदिर को सत्तर वर्ष हुये, उसके पहले यहाँ वह नहीं था, किन्तु सत्तर वर्ष में ऐसी अवस्था यहाँ होगी ऐसा पहले से ही केवलज्ञान में ज्ञात हुआ है। यह पर्याय उस द्रव्य की होगी यह निश्चित है और शुभरागवाला जीव अर्थात् निमित्त भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चित है; इस तरह दोनों ही उसमें निश्चित हैं।

कोई किसी का करनेवाला नहीं है। आत्मा जानने-देखनेवाला है। सर्वज्ञ के निर्णय में, क्रमबद्ध का निर्णय होता है। पुद्गल की अवस्था को ज्ञान जाने अथवा राग होता है उसे ज्ञान जाने - ऐसी जानने की क्रिया धर्म है। इसके विपरीत पूजा करो, उपवास करो, हरितकाय नहीं खाना - इसमें अज्ञानी धर्म मानता है; किन्तु स्वभाव के भान बिना धर्म नहीं होता।

देखो ! परिणाम और परिणामी इन दोनों के बीच में रमत (खेल) है। द्रव्यदृष्टि हुई उसमें पर्याय, परिणामी के साथ में अभेद हुई तब जो परिणाम होता है वह धर्म है और परिणामी को भूलकर परिणाम की एकान्त दृष्टि वह अधर्म है। ऐसा निर्णय करे तो उसे सही वस्तु स्वभाव की खबर पड़े।

केवल ज्ञान अपने प्रभुत्त्व से - भूत और भविष्य की पर्याय को जान लेता है.

सन्मुख द्रव्यों में - आत्मा तथा पुद्गल में भविष्य की अवस्था नहीं हुई है, फिर भी उनको केवलज्ञान जानता है। जो भूतकाल की अवस्था अनन्त आत्मा और पुदगलों में हुई है वह अनुभव में आ गई है। ऐसे अनुत्पन्न और नष्ट पर्याय भाग को - केवलज्ञान जानता है।

देखो ! सर्वज्ञ के ज्ञान को विघ्न नहीं है। भूतकाल की अनन्त पर्यायें, वैसे ही भविष्य की अनन्त पर्यायों में अनन्त चौबीसी को ज्ञान जान लेता है। यदि कोई उसमें फेरफार माने तो - ज्ञान में दोष आता है। यह जैनदर्शन की बात है कि - तू सर्वज्ञ होने लायक है; किन्तु तू राग द्वेष करने के लायक नहीं है। तथा तू पर को निमित्त होने लायक भी नहीं है। इसलिये स्वभाव सन्मुख प्रतीति कर - निर्णय कर।

भगवान की ज्ञान पर्याय निर्विघ्नतया खिली हुई है। जैसे फूल की कली जो संकोचरूप थी वह स्वयं खिलती है, वैसे ही ज्ञान गुण में संकोचरूपदशा थी वह खिल गई है - निर्विघ्नरूप से खिल निकली (चुकी) है। जो शक्तिरूप था वह प्रगट हुआ है - व्यक्त हुआ है। संगमरमर की कली नहीं खिलती क्योंकि उसमें खिलने की शक्ति नहीं है; गुलाब की कली में शक्ति है इसलिये वह खिलती है; वैसे ही भगवान आत्मा में शक्ति है वह खिलती है, वह निर्विघ्न खिल चुकी है - ऐसा निर्णय करने में केवलज्ञान, देव और गुरु का निर्णय होता है।

भूत काल की अवस्था जो हो चुकी है और भविष्य की अवस्था जो नहीं हुई है उन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सभी को केवलज्ञान जानता है। यह ज्ञान पर्याय अखण्डित प्रतापयुक्त है। प्रभुत्त्व शक्ति स्वतंत्र शोभायमान शक्ति है। ज्ञान गुण में प्रभुत्त्व शक्ति है। अपनी प्रभुत्त्व शक्ति के बल से ज्ञान जानता है। भविष्य काल की अनन्त पर्यायें जो उत्पन्न नहीं हुई हैं उसे, तथा भूत काल की सभी पर्यायों को केवलज्ञान अपने बल (सामर्थ्य) से जानता है। यह ज्ञान का वीर्य बताया है। यह जीव भविष्य में तीर्थंकर होगा, यह जीव गणधर होगा अथवा इस जीव को इस देह का वियोग होकर सिद्धदशा होगी - ऐसा केवली भगवान अपने ज्ञानबल से जानते हैं अर्थात् उसमें प्रविष्ट हो गये हैं।

जैसे लौकिक में कहते हैं कि इस मनुष्य में ऐसी योग्यता है कि वह अच्छे मनुष्य का हृदय ले लेता है। वैसे ही केवलज्ञान में ऐसी शक्ति है कि वह भूतकाल की व उसी तरह भविष्य की पर्यायों को जान लेता है। गुरु प्रायश्चित के लिये शिष्य को कहते हैं कि सत्य बात प्रगट करने में तेरा भला है। बिना बात कहे ही वे शिष्य के अंतर की सभी बात जान लेते हैं; वैसे ही केवलज्ञान सभी पर्यायों को जान लेता है।

तीनकाल की सभी अवस्थाएँ एक ही साथ केवलज्ञान में अर्पित होती हैं.

सभी पर्यायें अपने स्वरूप सर्वस्व को, एक ही साथ जनाती हैं। केवलज्ञान ने देखा है कि यह विकार निश्चित है - ऐसा ज्ञान निश्चित है, वैसे ही विकार भी निश्चित ही है। इस तरह विकार निश्चित है - ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञानस्वभाव के ऊपर है। जिसे जो विकार होनेवाला होगा वही होगा, उसमें फेरफार नहीं होता - ऐसा जिसने निर्णय किया है उसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय होने पर भ्राँति और अनन्तानुबंधी की कषाय नहीं होती। तथा कोई कहता है कि 'केवलज्ञानी ने विकार देखा है यह निश्चित है किन्तु सामनेवाले जीव में विकार निश्चित नहीं है' - तो यह बात भी असत्य है क्योंकि, वे पर्यायें अपने स्वरूप सर्वस्व को, अक्रमरूप से अर्पित करती हैं। वहाँ पर्यायें तो क्रमबद्ध होती है किन्तु वे सभी एक ही साथ अक्रमरूप से ज्ञात होती हैं।

भगवान तो अक्रमरूप से जानते हैं किन्तु भूत, वर्तमान, भविष्य की पर्यायें एक ही साथ अर्पित हो जाती हैं अर्थात् कि ज्ञान में ज्ञात हो जाती हैं। वे पर्यायें क्रमशः होने पर भी एक ही साथ अक्रमरूप से ज्ञात हो जाती है। यह वस्तु (स्थिति) जगत को ख्याल में नहीं आती और क्रियाकांड के नाम से - संप्रदाय के नाम से लोक भ्रमित हैं और इस बात को विचार करने के लिये फुरसत नहीं निकालते।

प्रत्येक पदार्थ में जिस समय जो पर्याय होनेवाली होगी वही होगी - ऐसा निर्णय करने पर वह राग का कर्ता नहीं रहता। उसे राग की दृष्टि नहीं रही किन्तु ज्ञानस्वभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के ऊपर उसकी दृष्टि रही है और यही मोक्षमार्ग है। निमित्त तथा विकार दोनों निश्चित है अर्थात् सम्यक्त्व तथा सम्यक्त्व समय के गुरु दोनों निश्चित है। केवलज्ञान जगत की पर्यायों में (मानो कि) प्रविष्ट हो गया है। और जगत की पर्यायें - केवलज्ञान में अर्पित हो गई हैं। इस तरह उनको अपने प्रति नियत न करे तो उसे केवलज्ञान कौन कहेगा ?

देखो ! केवलज्ञान का निर्णय करने पर - पर का तथा राग का उल्टा पुरुषार्थ छूट जाता है और स्वभाव का सच्चा पुरुषार्थ होता है। ज्ञेय का ज्ञान में ज्ञात होने का स्वभाव है, किन्तु ज्ञान, ज्ञेय को दूर करे अथवा लावे - ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। जगत बाहर से (देखकर) आश्चर्य चकित होता है, किन्तु बाह्य में कोई चमत्कार नहीं है - राग में भी चमत्कार नहीं है; सचमुच तो चैतन्य ही चमत्कार स्वरूप है।

एक समय का केवलज्ञान - लोकालोक में प्रविष्ट हो जाता है और लोकालोक केवलज्ञान में अर्पित हो जाता है, इसलिये कहा है कि दिव्य ज्ञान अचिंत्य है। मन:पर्यय ज्ञान अनन्त में भागता है; यहाँ यह कहा कि पराकाष्टा को प्राप्त ज्ञान के लिये यह सब योग्य है। अपने ज्ञान की सम्पदा को निहारने पर उसकी पर्याय में, पूर्ण ज्ञान का प्रगट होना वह पराकाष्टा है। यह सब योग्य है। केवलज्ञान पर्याय सभी को जान ले और सभी अवस्था केवलज्ञान में अर्पित हो जाय यह योग्य है।

अज्ञानी जीव मानता है कि - 'मैं मौन रहा' किन्तु भाई ! भाषा आत्मा से नहीं होती - होंठ से भी नहीं होती; क्योंकि होंठ तो आहारवर्गणा के परमाणु से होते हैं और भाषा तो भाषा वर्गणा के परमाणु में से होती है। तथा धीरे से अथवा जोर से बोलना, आत्मा का कार्य नहीं है, क्योंकि पुद्गल की जो अवस्था होनेवाली है वह होती है। होनहार (जो होना है वह) मिथ्या नहीं होती। आत्मा ज्ञान करता है और सभी पर्यायें ज्ञान में ज्ञात हो जाती हैं।

केवलज्ञानी से प्रश्न पूछनेवाले जीव को ज्ञान की महिमा आई है इसलिये३१३३१२गाथा - ३९ उसे भव नहीं होता.

समवशरण में केवलज्ञानी से जो प्रश्न करता है उसे ज्ञान की महिमा है अत: उसे भव नहीं होता। गणधर, बलदेव आदि धर्मात्मा जो कि भगवान से प्रश्न पूछते हैं वे सर्वज्ञ स्वभाव की प्रतीति करके पूछते हैं उन प्रश्न पूछनेवालों को ज्ञान की महिमा आती है। उत्कृष्ट अवधि ज्ञानी असंख्य चौबीसी देखते हैं। इसमें भी ज्ञान की महिमा आती है; उन्हें ज्ञानस्वभाव का महात्म्य आया है, इसलिये उन्हें भी भव नहीं होते। अहो ! यह अवधि ज्ञानी यह मन:पर्यय ज्ञानी अहो ! यह केवलज्ञानी। जिसे ऐसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानस्वभाव की महिमा आती है उसे विकार की महिमा नहीं आती। ऐसे पूछनेवाले जीव को स्व-प्रकाशक ज्ञान का महात्म्य आया है। जो अपने ज्ञान के महात्म्य में पूछता है - उसे भव नहीं रहता।

तीर्थंकर से कौन प्रश्न पूछता है ?

साधारण मनुष्य नहीं पूछते। गणधर, बलदेव, चक्रवर्ती आदि धर्मात्मा प्रश्न पूछते हैं। उन्हें ज्ञानस्वभाव की महिमा आई है, इसलिये उन्हें भव नहीं होते।

यहाँ कहते हैं कि केवलज्ञान पराकाष्टा को प्राप्त हुआ है; वह भूतकाल और भविष्य की पर्यायों को जान लेता है। ज्ञानस्वभाव के निर्णयवाले को भव नहीं होता; क्योंकि स्वभाव में भव नहीं है इसलिये उसे भव नहीं होते। व्यवहार होता है तो निश्चय होता है और व्यवहार साधन है ऐसी सभी उल्टी मान्यताएं यह बात समझने पर निकल जाती है।

गाथा ३९ के भावार्थ पर प्रवचन

अनन्त महिमावंत केवलज्ञान की यह दिव्यता है कि वह अनन्त द्रव्यों की समस्त अवस्थाओं को - भूतकाल तथा भविष्य की अवस्थाओं को संपूर्णतया एक ही समय में प्रत्यक्ष जानता है। यह बात खास चर्चा करने जैसी है। कोई सर्वज्ञ देव को विशिष्ट विचारक कहता है और कोई दूसरे प्रकार से कहता है - वह सभी अज्ञान है।

एक परमाणु एक समय में हरा है - दूसरे समय काला होता है। दूसरा परमाणु जो अभी काला है वह दूसरे समय हरा होता है - इसका क्या कारण है ? द्रव्य और गुण दोनों समान है किन्तु वर्तमान पर्याय, योग्यता के अनुसार होती है ऐसा केवलज्ञान जानता है - ऐसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय किया है, उसे केवलज्ञान का विश्वास हुआ है - इसलिये उसे भव नहीं होता।

❁ ❁ ❁

हे जिनेन्द्र ! तू वक्ताओं में श्रेष्ठ है; 'चराचर जगत प्रतिक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षणवाला है' ऐसा यह तेरा वचन (तेरी) सर्वज्ञता का चिह्न है।

- श्री समन्तभद्राचार्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४०

अथेन्द्रियज्ञानस्यैव प्रलीनमनुत्पन्नं च ज्ञातुमशक्यमिति वितर्कयति -

अत्थं अक्खणिवदिदं ईहापुव्वेहिं जे विजाणंति ।
तेसिं परोक्खभूदं णादुमसक्कं ति पण्णत्तं ॥४०॥

अब, इन्द्रियज्ञान के लिये नष्ट और अनुत्पन्न का जानना अशक्य है (अर्थात् इन्द्रियज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थों को-पर्यायों को नहीं जान सकता) ऐसा न्याय से निश्चित करते हैं -

ईहादिक पूर्वक जानते जो अक्ष निपतित अर्थ को ।
जिनदेव कहते जानना ना शक्य उन्हें परोक्ष को ॥४०॥

गाथार्थ :- जो अक्षपतित अर्थात् इन्द्रियगोचर पदार्थ को ईहादिक द्वारा जानते हैं, उनके लिये परोक्षभूत पदार्थ को जानना अशक्य है ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है।

टीका :- विषय और विषयी का सन्निपात जिसका लक्षण (-स्वरूप) है, ऐसे इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष को प्राप्त करके, जो अनुक्रम से उत्पन्न ईहादिक के क्रम से जानते हैं वे उसे नहीं जान सकते जिसका स्व-अस्तित्त्वकाल बीत गया है तथा जिसका स्व-अस्तित्त्वकाल उपस्थित नहीं हुआ है क्योंकि (अतीत-अनागत पदार्थ और इन्द्रिय के) यथोक्त लक्षण (यथोक्तस्वरूप, ऊपर कहा जैसा) ग्राह्य-ग्राहक सम्बन्ध का असंभव है।

भावार्थ :- इन्द्रियों के साथ पदार्थ का (अर्थात् विषयी के साथ विषय का) सन्निकर्ष-सम्बन्ध हो तभी (अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणारूप क्रम से) इन्द्रियज्ञान पदार्थ को जान सकता है। नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थों के साथ इन्द्रियों का सन्निकर्ष-सम्बन्ध न होने से इन्द्रियज्ञान उन्हें नहीं जान सकता। इसलिये इन्द्रियज्ञान हीन है, हेय है ॥४०॥

* * *

गाथा ४० पर प्रवचन

बाह्य संयोग और इन्द्रिय की रति छोड़कर ज्ञानस्वभाव की रति से अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है.

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। इस आत्मा का स्वभाव, ज्ञान है यह उसका स्वरूप है। इस ज्ञान का अवलम्बन लेकर एकाग्र होना वह अतीन्द्रिय केवलज्ञान का कारण

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। ज्ञानस्वभाव की रुचि प्रतीति करके सर्वज्ञपद प्रगट करना ही आत्मा का हित है। पराधीन ज्ञान में रति करने से सर्वज्ञपद प्रगट नहीं होता; किन्तु आत्मा ज्ञानस्वभावी है जिसका जानने का स्वभाव है, उसका अवलम्बन लेकर एकाग्र होना ही परमात्मपद है। अनादि का अज्ञानी जीव वर्तमान इन्द्रियज्ञान की रुचि करके रुका हुआ है और स्वभाव की रुचि नहीं की इसलिये सर्वज्ञपद प्रगट नहीं हुआ।

अब, सर्वज्ञ का ज्ञान, तीनकाल के पदार्थों को जानता है तो जो पदार्थ थे उनको ज्ञान ने जाना इसलिये ज्ञान ने पदार्थों को किया हो, यह बात नहीं रहती। ईश्वर ने जगत की रचना की हो - यह बात भी नहीं रहती। इसी तरह यह आत्मा जाननहार है अर्थात् जाननहार में किसी भी अवस्था का करनेवाला नहीं आया। सर्वज्ञपद ज्ञानस्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ है, यह पद जिसे भी प्रगट होगा वह ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही प्रगट होगा।

अब इन्द्रिय के आधीन होनेवाले ज्ञान के लिये भूतकाल की अवस्था और भविष्य काल की अवस्था जो उत्पन्न नहीं हुई है ऐसे पदार्थों को तथा पर्यायों को जानना अशक्य है - ऐसा न्याय से निश्चित करते हैं।

गाथा ४० के गाथार्थ पर प्रवचन

इन्द्रियज्ञान निमित्त का आश्रय करता है इसलिये इन्द्रियज्ञान की रुचि छोड़ने लायक है। दया, दानादि का शुभराग तो आदरणीय नहीं है किन्तु इन्द्रियज्ञान भी आदरणीय नहीं है क्योंकि इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्ड जानता है और एक विषय को जानता है; इसलिए जिसे सर्वज्ञपद लेना है उस जीव को इन्द्रियज्ञान की रुचि छोड़कर ज्ञानस्वभाव की रुचि करना चाहिये।

इन्द्रियज्ञान इन्द्रिय और पदार्थ की समीपता में क्रम से उत्पन्न होता है इसलिये उसकी रुचि छोड़ना चाहिये.

टीका पर प्रवचन :- विषय अर्थात् पदार्थ और विषयी अर्थात् इन्द्रिय; इस तरह इन्द्रियों और पदार्थों की समीपता है उसको प्राप्त करके इन्द्रियज्ञान होता है। इन्द्रियां और पदार्थ अपने-अपने कारण से मिलाप को प्राप्त होते हैं। इन्द्रियज्ञान पर का आश्रय लेता है और अतीन्द्रयज्ञानस्वभाव का आश्रय लेता है। शब्द, रस, रूप आदि मिले हैं इसलिये मुझे ज्ञान हुआ - ऐसा अज्ञानी मानता है। इन्द्रियज्ञान पदार्थ के समीप में होता है किन्तु वह पदार्थ है इसलिये ज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं है।

इन्द्रियज्ञान अधूरा है और पराधीन है, इसलिये उसकी रुचि करना वह मिथ्यात्व है, क्योंकि उसमें ज्ञान की पर्याय स्वभाव का आश्रय नहीं लेकर पर का आश्रय लेती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। लोक (लोग) कहता है कि निमित्त आवें तो ज्ञान होता है, जड़इन्द्रिय और पदार्थ हो तो ज्ञान होता है किन्तु यह अज्ञानता है। जो ज्ञानपर्याय अतीन्द्रिय स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट होती है वह अतीन्द्रिय है इसमें निमित्त का झुकाव छूट जाता है।

इन्द्रियज्ञान, इन्द्रिय तथा विषय का आश्रय करता है इसलिये उसकी रुचि करने योग्य नहीं है। अतीन्द्रियज्ञान को, जितना स्वभाव का आश्रय हुआ उतना इन्द्रिय का आश्रय नहीं है; यह ज्ञान सर्वज्ञदशा का कारण है। जो ज्ञान इन्द्रिय और संयोग का आश्रय लेता है वह खण्ड-खण्डज्ञान रुचि करने लायक नहीं है। यह इन्द्रियज्ञान, इन्द्रिय और विषय एक साथ हैं कोई पहले अथवा बाद में नहीं।

इन्द्रियज्ञान पराधीनता से आत्मा स्वयं करता है; इसके बदले इन्द्रियों को पाकर के ज्ञान होता है - ऐसी पराधीनता माननेवाले को अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव की रुचि नहीं होती। अखण्ड आनन्द, सामान्य स्वभाव के साथ वर्तमान ज्ञान पर्याय का मेल होना चाहिये; उसके बदले संयोग के साथ वह मिलाप करता है, इसलिये उस इन्द्रियज्ञान की रुचि करने योग्य नहीं है। संयोग प्राप्त करके ज्ञान होता है इसलिये उसे संयोग अथवा निमित्त की शक्ति ने किया हो ऐसा भी नहीं है।

इन्द्रियज्ञान अधूरा है और पराधीन है यह पर का आश्रय करता है इसलिये वह हेय है। सम्यग्दर्शन होने पर आंशिक अतीन्द्रिय - ज्ञान होता है और जितना निमित्ताधीन ज्ञान बाकी है, उसकी रुचि नहीं है। जो खण्ड पड़ता है वह ज्ञान का ज्ञेय है; जैसे राग ज्ञेय है; वैसे ही खण्ड-खण्ड ज्ञान भी ज्ञेय है। यह इन्द्रियज्ञान विषयों का अवलम्बन लेता है; उसीप्रकार एक साथ ज्ञान नहीं होता; यह स्वयं पराधीन होता है, निमित्त इसे पराधीन नहीं करता।

यह ज्ञान की पर्याय - इन्द्रियों के विषय जो सभी एक समय में है। इन्द्रियज्ञान स्वभाव का अवलम्बन नहीं लेता इसलिये निमित्त का अवलम्बन लेता है अत: वह ज्ञान हेय है। स्वभाव का अवलम्बन लेनेवाले ज्ञान से, केवलज्ञान प्रगट होता है।

इन्द्रियज्ञान अनुक्रम से होता है। शब्द सुना वहाँ अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा होती है इस तरह वह क्रम से जानता है। जब वहरुपये का विचार करे वहाँ खाने का विचार नहीं करता; इस तरह वह अनुक्रम से उत्पन्न होता है, जबकि भगवान को अक्रम केवलज्ञान होता है।

इन्द्रियज्ञान भूत और भविष्य की अवस्था को नहीं जानता.

पदार्थों की भूतकाल की अवस्था जो बीत गई है उसे इन्द्रियज्ञान नहीं जानता, इसलिये इन्द्रियज्ञान हेय है। परावलम्बी ज्ञान अनुक्रम से जानता है इसलिये उसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आश्रय करने योग्य नहीं है। किन्तु अकारण ध्रुव-स्वभाव का आश्रय करने योग्य है।

यह ज्ञान अधिकार है। यहाँ कहते हैं कि तुझे क्या करना है ? तुझे मुक्ति करना है अथवा नहीं ? मोक्ष कैसे होता है ? क्या इन्द्रियज्ञान निमित्त के आधार से होता है ? नहीं। वह तो बन्ध का कारण है किन्तु स्वभाव के आश्रय से जो अतीन्द्रियज्ञान होता है वह मोक्ष का कारण है। इन्द्रियज्ञान हेयरूप है। अज्ञानी जीव जड़ की क्रिया में धर्म मानता है। यहाँ धर्म के स्वरूप को कहा जाता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है यदि यह ज्ञान, ज्ञान का आश्रय न ले और इन्द्रिय का आश्रय ले तो वह हेय है। ज्ञानस्वभाव के आश्रय से जो ज्ञान प्रगट होता है वह धर्म है।

भाई ! तू विचार कर। इन्द्रिय के मिलाप समय में ज्ञान की पर्याय होती है वह उसकी योग्यता है; उस समय इन्द्रियां और विषय होते हैं तथा वह वर्तमान अनुक्रम से जानता है। तथा भूतकाल की अवस्था जो हो गई है उसे इन्द्रियज्ञान नहीं जानता। कैरी (आम) का रंग, कल कैसा था उसे इन्द्रियज्ञान नहीं जानता।

सन्मुख रहे पदार्थ की अवस्था के अस्तित्त्व का काल बीत गया है; जो उन पर्यायों का स्व-अस्तित्त्वकाल था वह बीत गया है; वह पर्याय उनका स्वकाल था। यह महासिद्धांत है कि - जिस पदार्थ का, जो पूर्व में स्व अस्तित्त्व काल था, उस स्वकाल में पर्याय उत्पन्न हुई थी दूसरे काल में नहीं और दूसरे के कारण से भी नहीं। उस पर्याय का अस्तित्त्व काल बीत गया है। जब-जब जो पर्याय हो गई है वह उसके होने का काल था, वह बीत गया है। वर्तमान पर्याय के सिवाय अनन्त जीव, परमाणु आदि की एक एक पर्याय वर्तती थी वह बीत गई। इस लकड़ी की भूतकाल की अवस्था बीत गई है; यह जो सीधी पड़ी थी वह उसी के कारण से थी; उसका अस्तित्त्वकाल उस समय था वह बीत गया है; उसे इन्द्रियज्ञान नहीं जान सकता।

यहाँ इन्द्रियज्ञान की बात है। मन सम्बंधी ज्ञानों की बात बाद में आयेगी। जड़ और चैतन्य की अवस्था उनके काल में हुई थी, उसको इन्द्रियज्ञान नहीं जान सकता - ऐसा वह पराधीन है; इसलिये उसमें सुख नहीं है। व्यर्थ ही अनादि से हैरान होकर मर गया (रहा) है। ऐसा प्रथम निर्णय कर। इन्द्रियज्ञान वर्तमान अवस्था को जानता है किन्तु पदार्थों की भूतकाल की अवस्था जो उनके काल में थी - जो वर्तमान में नहीं है - उसे इन्द्रियज्ञान नहीं जानता। तेरी वर्तती पराधीनदशा, निमित्ताधीन हुई होने से - हेय है।

स्वभाव के आधार से हुये ज्ञान में सम्यग्दर्शन धर्म है।वास्तव में पाँच इन्द्रियाँ आत्मा को नहीं मिली है, किन्तु वे मात्र संयोगरूप है। दही मिल गया अर्थात् दही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जमकर के ढगला (ढीम) हो गया - इस तरह इन्द्रिय और आत्मा एक-मेक हो जावे तो मिले कहलावें, किन्तु इन्द्रियाँ एक-मेक नहीं होती किन्तु संयोगरूप हैं इसलिये इन्द्रियाँ मिली कहलाती हैं।

जड़ इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और उनके विषय से भेदज्ञान करते हैं - वे जितेन्द्रिय हैं.

अनन्त पदार्थों की वर्तमान अवस्था के सिवाय भविष्य की अवस्था का स्वकाल अभी आया नहीं है। वे सभी अवस्थाएँ क्रमबद्ध होती हैं। उसे इन्द्रियज्ञान नहीं जानता। देखो ! किसी ने निमित्त को स्वकाल कराया नहीं है। इसलिये उसका स्व अस्तित्त्वकाल उपस्थित नहीं हुआ - ऐसा यहाँ नहीं कहा किन्तु स्वयं के कारण से स्व-अस्तित्त्वकाल उपस्थित नहीं हुआ है - ऐसा कहा है। उस पर्याय को इन्द्रियज्ञान नहीं जानता इसलिये भाव इन्द्रियज्ञान हेय है।

श्री समयसार गाथा ३१ में यह बात आई है कि - जो द्रव्यइन्द्रियाँ, भावइन्द्रियाँ, तथा उनके विषयों को जीतता है वह जितेन्द्रिय है - उसने केवल भगवान की स्तुति की है अर्थात् कि जो इन्द्रियां, इन्द्रियों के विषय और भावेन्द्रिय का लक्ष्य छोड़कर, स्वभाव में एकाग्र होता है वह केवली की स्तुति करता है।

आत्मा केवल अर्थात् अकेला है; जिसने उसकी रुचि की है - वह जितेन्द्रिय है। रोटी नहीं खाय तो इन्द्रियाँ जीती जायेगी - ऐसा अज्ञानी मानता है। इन्द्रियां, इन्द्रियों के विषय तथा भावेइन्द्रिय खण्ड-खण्डपने की रुचि छोड़कर, ज्ञानस्वभाव को अधिकपने (भिन्नपने) जाने तो उसे इन्द्रिय को जीतकर सम्यग्दर्शन हुआ कहा जाता है। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय को जीते तो इन्द्रिय को जीता-कहा जाता है; इसलिये त्रिकाल अहेतुक स्वभाव है - उसकी महिमा कर।

इन्द्रियज्ञान भूत और भविष्य को नहीं जानता है - इसलिये वह हेय है.

अतीत, अनागत पदार्थ को और इन्द्रिय को यथोक्त लक्षण, ग्राह्य-ग्राहक सम्बंध का असंभवपना है। इन्द्रियज्ञान जाननहार है और वे पदार्थ ज्ञात होने योग्य हैं - ऐसा मेल, भविष्य और भूत समय में नहीं किन्तु मात्र वर्तमान को जानता है। जबकि अतीन्द्रिय केवलज्ञान भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों को जानता है। इसलिये केवलज्ञान प्रगट करने के लिये ज्ञानस्वभाव की रुचि करना चाहिये। भूतकाल की अवस्था और भविष्य की अवस्था की वर्तमान में अस्ति नहीं है, इसलिये इन्द्रियज्ञान को ग्राह्य-ग्राहक सम्बंध का असम्भव है। इन्द्रियज्ञान भूत और भविष्य को नहीं जानता; इन्द्रियज्ञान की ऐसी योग्यता नहीं है इसलिये वह हेय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ४० के भावार्थ पर प्रवचन

इन्द्रियज्ञान, इन्द्रियों के साथ पदार्थ का अर्थात् विषयी के साथ विषय का सन्निकर्ष सम्बंध होता है तब ही और वह भी अवग्रह-ईहा-अवाय- धारणारूप क्रम से, पदार्थ को जान सकता है। अपनी ज्ञानपर्याय प्रगट होती है तब उसे योग्य पदार्थ निमित्तरूप होता है। इन्द्रियज्ञान में, स्वकाल समय में सामने रहे पदार्थ निमित्त होते हैं। उन पदार्थों को भी वह ईहादिक क्रम पूर्वक जान सकता है। भूतकाल का अस्तित्त्व काल बीत गया है और भविष्य का अस्तित्त्व काल आया नहीं है, इन्द्रियज्ञान उनको नहीं जान सकता इसलिये इन्द्रियज्ञान हीन है और हेय है।

जो ज्ञान पर का आश्रय ले वह उपादेय नहीं है अपितु अपना ही आश्रय ले वही उपादेय है। इन्द्रियज्ञान का समय-समय स्वकाल है जो भूत और भविष्य को नहीं जानता इसलिये वह उपादेय नहीं है।

देखो ! जैसे निमित्त और संयोग आदरणीय नहीं है; वैसे ही व्यवहार रत्नत्रय और इन्द्रियज्ञान भी आदरणीय नहीं है अपितु मात्र स्वभाव ही आदरणीय है। पर के आधीन हुआ ज्ञान हितकर नहीं है। स्वकाल में ज्ञान होता है और पदार्थ भी उनके स्वकाल में संयोगरूप होते हैं किन्तु वह ज्ञान पराधीन होने से हेय है।

❁ ❁ ❁

जो मूढ़ पुरुष पाँच इन्द्रियों के सेवन में सुख को खोजता है वह तो ठंडक के लिए अग्नि में प्रवेश करने के समान है, उसे इस विपरित बुद्धि के कारण सुख के बदले दुःख ही होगा।

- श्री शुभचन्द्र आचार्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४१

अथातीन्द्रियज्ञानस्य तु यद्यदुच्यते तत्तत्संभवतीति संभावयति -

अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं ।
पलयं गदं च जाणदि तं णाणमदिंदियं भणियं ॥४१॥

अब ऐसा स्पष्ट करते हैं कि अतीन्द्रियज्ञान के लिऐ जो जो कहा जाता है वह सब संभव है :-

जो जानता अप्रदेश वा सप्रदेश मूर्त अमूर्त को ।
व भूत पर्यय भावि को जाने अतीन्द्रिय ज्ञान वो ॥४१॥

गाथार्थ :- जो ज्ञान अप्रदेशको, सप्रदेशको, मूर्तको और अमूर्तको तथा अनुत्पन्न और नष्ट पर्यायको जानता है, वह ज्ञान अतीन्द्रिय कहा गया है।

टीका :- इन्द्रियज्ञान उपदेश, अन्त:करण और इन्द्रिय इत्यादि को विरूप कारणतासे (ग्रहण करके) और उपलब्धि (-क्षयोपशम), संस्कार इत्यादि को अंतरङ्ग स्वरूप-कारणसे (ग्रहण करके)प्रवृत्त होता है; और वह प्रवृत्त होता हुआ सप्रदेशको ही जानता है क्योंकि वह स्थूलको जाननेवाला है, अप्रदेशको नहीं जानता, (क्योंकि वह सूक्ष्मको जाननेवाला नहीं है); वह मूर्तको ही जानता है क्योंकि वैसे (मूर्ति क) विषय के साथ उसका सम्बन्ध है, वह अमूर्तको नहीं जानता (क्योंकि अमूर्तिक विषय के साथ इन्द्रियका सम्बन्ध नहीं है); वह वर्तमानको ही जानता है क्योंकि विषय-विषयीके सन्निपात का सद्भाव है, वह प्रवर्तित हो चुकनेवालेको और भविष्यमें प्रवृत्त होनेवालेको नहीं जानता (क्योकि इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष का अभाव है)।

परन्तु जो अनावरण अतीन्द्रियज्ञान है उसे अपने अप्रदेश, सप्रदेश, मूर्त और अमूर्त (पदार्थ मात्र) तथा अनुत्पन्न एवं व्यतीत पर्यायमात्र, ज्ञेयता का अतिक्रमण न करने से ज्ञेय ही है - जैसे प्रज्वलित अग्निको अनेक प्रकारका ईंधन, दाह्यताका अतिक्रमण न करनेसे दाह्य ही है। (जैसे प्रदीप्त अग्नि दाह्यमात्र को-ईंधन को जला देती है, उसीप्रकार निरावरण ज्ञान ज्ञेयमात्र को - द्रव्यपर्यायमात्र को जानता है) ॥४१॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ४१ पर प्रवचन

अब, अतीन्द्रियज्ञान भूत-वर्तमान-भविष्य को जानता है - अक्रम जानता है - बाहर के पदार्थों के मिलाप बिना जानता है यह स्पष्ट करते हैं :-

इन्द्रियज्ञान में बहिरंग कारण होते हैं; वैसे ही इन्द्रियज्ञान स्थूल मूर्तिक पदार्थों को ही जानता है.

इस गाथा में अतीन्द्रियज्ञान की बात है किन्तु टीकाकार (श्री अमृतचंद्राचार्य) पहले इन्द्रियज्ञान की बात बताकर फिर अतीन्द्रियज्ञान की बात करेंगे। इन्द्रियज्ञान को सूर्य का प्रकाश, रात में दीपक का प्रकाश, इन्द्रियां, उपदेश इत्यादि निमित्तरूप से होते हैं। उपदेश, मन और इन्द्रियाँ पौद्गलिक होने से उनकारूप, ज्ञान के स्वरूप से भिन्न है और वे इन्द्रियज्ञान के बहिरंग कारण है; इस तरह विरूप कारणपने ग्रहण करते हैं। तथा बाह्य कारण होने पर भी (यदि) क्षयोपशम हो तो इन्द्रियज्ञान होता है, और पहले पदार्थ के सम्बंध में सुना हो और धारणा हो तो इन्द्रियज्ञान होता है। इस तरह इन्द्रियज्ञान को उपदेश आदि अंतरंग स्वरूप कारणपने ग्रहण करके वर्तते हैं।

तथा इन्द्रियज्ञान स्थूल स्कंधों को जानता है किन्तु वह एक परमाणु को तथा सूक्ष्म स्कंध को नहीं जानता। इस तरह इन्द्रियज्ञान की विरुद्धता और अल्पता है; इसलिये वह हेय है और अतीन्द्रियज्ञान आदरणीय है। इन्द्रियज्ञान सूक्ष्म परमाणु तथा सूक्ष्म स्कंध को नहीं जानता। जो कुछ भी दृष्य होते (दिखते) हैं वह स्थूल स्कंध दिखाई देते हैं किन्तु सूक्ष्म परमाणु व सूक्ष्म स्कंध तथा अरूपी पदार्थ इन्द्रिय से ज्ञात नहीं होते। इसप्रकार इन्द्रियज्ञान वर्तमान स्थूल को ही जानता है।

इन्द्रियज्ञान का मूर्तिक विषय के साथ सम्बन्ध है। इन्द्रियज्ञान अमूर्त आत्मा को नहीं जानता अर्थात् वह आत्मा को, उसके गुणों को तथा उसकी पर्यायों को नहीं जानता। मूर्तिक विषय के साथ इन्द्रियज्ञान का सम्बन्ध है और वह भी वर्तमान को जानता है क्योंकि विषय तथा विषयी के सन्निपात का सद्भाव है; किन्तु जो भूतकाल की अवस्था हो चुकी है तथा भविष्य की जो अवस्था नहीं हुई है - उसे इन्द्रियज्ञान नहीं जानता; क्योंकि वहाँ इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष का अभाव है।

इन्द्रियज्ञान निमित्त में और राग में अटकता है और स्वभाव में एकता को प्राप्त नहीं करता इसलिये वह हेय है.

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इसका ज्ञान बाहर नहीं आता। आत्मा वस्तु है जो अनादि-अनन्त है; जिसका परमभाव-स्वरूप ज्ञान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु जैसा-जैसा बाहर से प्रयोग करें तो ज्ञान खिले - ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। निमित्त और राग में जुड़े वह ज्ञान प्रगट करने का ३२५गाथा - ४१३२४वास्तविक उपाय नहीं है। इन्द्रियज्ञान भूत और भविष्य को नहीं जानता और वह इन्द्रिय और राग में अटक जाता है; इसलिये वह स्वाभाविक ज्ञान नहीं है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है इसमें एकाग्र होनेपर सर्वज्ञपद प्राप्त होता है। आत्मा पूर्णज्ञानस्वभावी है उसका ज्ञान होने के बाद थोड़ा इन्द्रिय का अवलम्बन रहता है, किन्तु वह इन्द्रियज्ञान अभेदता को प्राप्त नहीं होता; इसलिये इन्द्रियज्ञान हेय है। भगवान आत्मा एक अखण्ड भाग में पूर्णज्ञान और आनन्दस्वरूप है - ऐसी दृष्टि होनेपर जो ज्ञानपर्याय हुई है वह ज्ञानस्वभाव के साथ अभेद हुई है; जरा (थोड़ा सा) ज्ञान निमित्त में अटकता है, किन्तु इस ज्ञान का सम्यक्दृष्टि को आदर नहीं है। ज्ञान की हीनता और रागमिश्रित विचार वह हेय है और स्वभाव का ज्ञान उपादेय है; इसलिये यहाँ उपादेय और हेय दोनों एकता को प्राप्त नहीं होते।

सर्वज्ञ का निर्णय होनेपर - अपने ज्ञानस्वभाव की इष्टता, विकार की अनिष्टता और पर पदार्थों की ज्ञेयता भाषित होती है.

देखो ! यहाँ आचार्य सर्वज्ञ की बात कहना चाहते हैं। सर्वज्ञ भूत और भविष्य की सर्व पदार्थों की अवस्थाओं को एक समय में जानते हैं। यहाँ कोई कहता है कि - 'जीव के जितने विकार होते हैं वे सभी विकार केवली जानते हैं किन्तु इस जीव को इसीप्रकार के विकार का यही समय होगा - ऐसा वे नहीं जानते तो यह बात असत्य है। एक समय का केवलज्ञान अनन्त पदार्थों की भूत-भविष्य-वर्तमान अवस्थाएँ, जिस क्षेत्र में, जिस निमित्त से होनेवाली है उसे जानता है; अर्थात् सभी कुछ सर्वज्ञ के ज्ञान में निश्चित हुआ है।

अब यहाँ कोई प्रश्न करता है कि - तो फिर शास्त्र में विकार दूर करने के लिये किसलिये कहा ? और राग को तो दूर करना पड़ेगा ना ? राग को दूर किये बिना भी कभी धर्म होता है ? ऐसी दलील (तर्क) देता है।

किन्तु भाई ये तो सभी निमित्त के कथन है। पुण्य-पाप, दया-दानादि के परिणाम होते हैं वे जड़ नहीं, किन्तु अपनी भूल से जीव की पर्याय में होते हैं - वे सभी जीव का विकार है - ऐसा केवली भगवान जानते हैं। इस जगत में केवलज्ञानी है, मोक्ष तत्त्व है, दिव्यशक्ति को प्रगट हुए भगवान हैं - ऐसा निर्णय करे उसे राग और निमित्त से भेदज्ञान होता है और उसे स्वभाव का महात्म्य आये बिना नहीं रहता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवली भगवान एक समय में तीनकाल-तीनलोक को जानते हैं ऐसे स्वभाव की महिमा आने पर निमित्त और राग से भेदज्ञान हुए बिना नहीं रहता। ज्ञान की अस्ति की विद्यमानता की स्वीकारता - अल्पज्ञता, राग और निमित्त के आश्रय से नहीं होती, किन्तु स्वभाव के आश्रय से निर्णय होता है। तथा क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय होनेपर भ्राँति का नाश होता है।

सर्वज्ञ का ऐसा उपदेश आता है कि - हम द्रव्य-गुण-पर्याय के जाननेवाले हैं - ऐसा जानकर हम के सर्वज्ञ हुए हैं और तुम भी सर्वज्ञ होने लायक हो। निमित्त राग और संयोग के कारण सर्वज्ञता प्रगट नहीं होती। इस तरह निमित्त और राग से भेदज्ञान होनेपर मिथ्या भ्राँति नहीं रहती। "मैं राग से भेद-स्वरूप हूँ" इस तरह स्वभाव में एकाग्रता होनेपर निर्दोषता बढ़ती जाती है और दोष घटते जाते हैं। सम्पूर्ण निर्दोषता होनेपर केवलज्ञान होता है।

इस जगत में जो परमात्मा हैं वे मोक्षतत्त्व हैं; वे परम है इसलिये वे हितरूप है। परमात्मा व्यवहार से इष्ट हैं - ऐसा निर्णय करने पर ज्ञानस्वभाव निश्चय से इष्ट है - ऐसी प्रतीति हुये बिना नहीं रहती। पर पदार्थ इष्ट नहीं अपितु स्वभाव इष्ट है विकार अनिष्ट है और सर्वज्ञ स्वभाव परमार्थ से इष्ट है - ऐसा निर्णय करने पर राग अनिष्ट हो गया और पर वस्तु मात्र जाननेयोग्य रह जाती है। आगे यह बात आयेगी कि सर्वज्ञ को इष्ट की प्राप्ति हुई है और विकार जो अनिष्ट है वह नाश को प्राप्त हुआ है।

सर्वज्ञ परमात्मा को जो दिखा है वह होगा किन्तु उन्हें दिखा है इसलिये होगा - ऐसा नहीं है अपितु पदार्थ का ही ऐसा क्रमबद्ध परिणमित होने का स्वभाव है। पूर्णज्ञान, स्वभावपद, सर्वज्ञपद का निर्णय करने पर - स्वभाव की इष्टता, विकार की अनिष्टता और पर पदार्थों की ज्ञेयता भाषित होती है। उसकी भ्राँति नाश को प्राप्त होती है। जो ज्ञान अल्पज्ञपने काम करता है वह निर्णय करता है कि - सर्वज्ञ पर्याय है वह पर्याय सर्वज्ञ स्वभाव में से आती है - ऐसा निर्णय करने पर ज्ञानपर्याय ज्ञानगुण के साथ अभेद होती है और राग से भेदरूप पड़ती (होती) है।

निमित्त और विकार का पड़खा (पक्ष) छोड़कर
स्वभाव का पड़खा (पक्ष) ले.

सीमन्धर भगवान की दिव्य ध्वनि में जो आया है वह यहाँ कहा जाता है क्योंकि उस दिव्यध्वनि को सुनकर कुन्दकुन्द आचार्य ने शास्त्र लिखे हैं। उसमें प्रत्येक पदार्थ की पर्याय स्वतंत्र होती है - यह कहते हैं। मोटर पेट्रोल से नहीं चलती किन्तु वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसके अपने कारण से चलती है और उसमें बैठे हुये मनुष्यों का क्षेत्रान्तर, मनुष्यों के स्वयं के कारण से होता है क्योंकि पेट्रोल होने पर भी मोटर रुक जाती है। जिस समय मोटर के क्षेत्रान्तर का काल होता है उस समय उसका क्षेत्रान्तर होता है; उसमें पेट्रोल निमित्त मात्र है।

शंका :- कोई कहे कि - इस जीव को यही विकार होगा ऐसा भगवान ने नहीं देखा है ?

समाधान :- उसका समाधान यह है कि तुझे सर्वज्ञ की प्रभुता की रुचि नहीं है। इस जगत में सर्वज्ञपद है और वह तीनकाल-तीनलोक को जानता है। देवाधिदेव का महात्म्य आवे उसे स्वभाव, निमित्त और राग ऐसे तीन की पृथकता भाषित हुये बिना नहीं रहती। पदार्थों की अवस्था क्रम नियमित होती है। जीव, अजीव सभी की प्रत्येक समय की अवस्था निश्चित है। इसका नाम क्रमबद्धता है, उसे केवली जानते हैं। केवली किसी विकार को नहीं जानते - ऐसा कहनेवाले को मोक्षतत्त्व की खबर नहीं है। भगवान की वाणी में ऐसा आता है कि विकार और निमित्त का पड़खा (पक्ष) छोड़कर स्वभाव का पक्ष ले तो तुझे धर्म होगा - हमारी वाणी का सार वीतरागता है; इस तरह चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है।

भगवान की दिव्यध्वनि में पुरुषार्थ की बात आती है.

कोई कहता है कि भगवान की वाणी में पुरुषार्थ की बात किस तरह आवेगी ? क्योंकि भगवान को दिखा है वह होगा, तो फिर तीर्थंकर,वासुदेव, बलदेव आदि जो होनेवाले होंगे वे होते हैं वह सब नियत ही है; इसलिये ऐसा मानने में पुरुषार्थ नहीं रहा अत: भगवान की वाणी में पुरुषार्थ की बात नहीं रही - ऐसा अज्ञानी दलील करता है किन्तु यह असत्य बात है। भगवान की वाणी में पुरुषार्थ की ही बात आती है, वे कहते हैं कि - निमित्त और राग से परान्मुख हो, स्वभाव सन्मुख हो, स्वभाव का निर्णय कर इस तरह भगवान की वाणी पुरुषार्थवाली है।

तथा अज्ञानी कहता है कि - 'हे गौतम, एक समय मात्र का (भी) प्रमाद मत कर - ऐसा भगवान ने कहा है, किन्तु उन्होंने पुरुषार्थ करने को नहीं कहा।

उत्तर :- 'प्रमाद नहीं कर' - इसका अर्थ यह है कि तू वर्तमान में प्रमाद कर रहा है; इसलिये विकार की दृष्टि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि कर - वही पुरुषार्थ है - यह जैन नीति है। जो यह नहीं समझता - उसके ऊपर जिनवाणी का कोप वर्तता है।

देखो ! समयसार, प्रवचनसार में - केवलज्ञान का बीज है। जिस समय जो अवस्था होनेवाली है वह निश्चित ही होगी - ऐसा निर्णय ज्ञानस्वभाव में होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव सन्मुख होने पर स्वभाव की अस्ति और विभाव की, स्वभाव में नास्ति हुई वह सम्यग्ज्ञान है - यही पुरुषार्थ है।

जैसे बिना उत्कीर्ण किये हुए सादे बिम्ब (कपड़े पर छपाई करने के लिये प्रयोग किया जानेवाला लकड़ी का टुकड़ा) को रंग में डालकर छापे तो कपड़े के ऊपर धब्बा पड़ेगा किन्तु यदि लकड़ी में हिरण, मनुष्य आदि उत्कीर्ण करके छापे तो उसी चित्र का आकार (चित्र) बन जाय; इसी तरह सर्वज्ञ परमात्मा तीनकाल-तीनलोक को जानते हैं - ऐसा निर्णय अपने ज्ञान में उत्कीर्ण हुआ। यह सम्यग्ज्ञानकला मति-श्रुत ज्ञान द्वारा केवलज्ञान का निर्णय किया; उस स्वभाव-सन्मुख होने पर केवलज्ञान की कला खिलती है। यह करना है। इसलिये स्वभाव-सन्मुख ज्ञाता-दृष्टा हुआ वह सम्यग्दर्शन है। अमृतचन्द्र आचार्य जंगल में विचरते थे वे केवलज्ञान का निर्णय कराने के लिए इस टीका को लिखते हैं।

मूर्त, अमूर्तादि पदार्थ व उनकी भूत-भविष्य की पर्यायें केवलज्ञान में ज्ञेयपने को प्राप्त होती हैं.

केवलज्ञान को आवरण नहीं है तथा वह अतीन्द्रियज्ञान है। वह ज्ञान, अप्रदेश अर्थात् कालाणु व परमाणु को और सप्रदेश अर्थात् स्थूल स्कन्धादि, मूर्त-अमूर्त पदार्थ को जानता है। तथा जो अवस्थाएँ नहीं हुई है तथा जो अवस्थाएँ बीत चुकी है ऐसे सभी जानने में आने योग्य पदार्थों को वह जानता है।

जिस समय जो विकार होता है वह जानने में आने योग्य है। अनन्त अवस्थाएँ हो गई हैं और होगी उनका प्रमेय धर्म है - जानने में आने का धर्म है। इस जीव की पर्यायें जो वर्तमान नहीं हुई हैं और बीत गई हैं, वे ज्ञेयपने का उलंघन नहीं करती अर्थात् उसको ज्ञेयपना प्राप्त है। इसलिये वे ज्ञान में ज्ञात हो जाती हैं।

व्यवहार का आश्रय छूटकर स्वभाव का आश्रय करे तो सर्वज्ञ का निर्णय सच्चा कहलाय। जिस समय, जिस जीव को, जो विकार होनेवाला है वही होता है और वह केवलज्ञान में निश्चित ज्ञेय है।

सभी ज्ञेय, ज्ञेयपने का उल्लंघन नहीं करते इसलिये केवलज्ञान ज्ञेयमात्र को जानता है.

उसे दृष्टान्त देकर समझाते हैं - केवलज्ञान को प्रज्वलित अग्नि के साथ मिलान करते हैं। दीपक में प्रगट हुई अग्नि नहीं-उसकी बात नहीं, किन्तु यहाँ प्रज्वलित अग्नि की बात करते हैं। प्रत्येक आत्मा में केवलज्ञान प्रगट नहीं किन्तु शक्तिरूप से है और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान को केवलज्ञान प्रगट हुआ है। जैसे प्रज्वलित अग्नि अनेक प्रकार की हरी एवं सूखी वनस्पत्ति को जला डालती है, हरी वनस्पत्ति सूखने के पश्चात् जल जाती है। वैसे ही प्रकाशमान ज्ञानदीपकरूप सर्वज्ञ का ज्ञान वर्तमान को तो जानता ही है किन्तु भूत और भविष्य को भी जान लेता है - ऐसा उसका स्वभाव है।

आत्मा का ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव है वह स्वभाव, द्रव्य में पूर्ण है और पर्याय में प्रगट हो ऐसा स्वभाव है - ऐसा निर्णय करने पर क्रिया कांड के ऊपर पानी फिर जाता है। ऐसी भावना के भानवाले को भूमिका के योग्य राग आयगा किन्तु उसे हठपूर्वक शुभभाव करना नहीं रहता। जैसे अग्नि में सभी वस्तुएं जल जाती है हीरा भी खाक हो जाता है। सोने का कड़ा भस्म हो जाता है; वैसे ही निरावरण ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान द्रव्य-पर्यायमात्र सभी को जानता है - कोई शेष नहीं रहता - ऐसा जिनेन्द्र देव कहते हैं। कोई ज्ञेय ऐसे नहीं हैं कि जो केवलज्ञान में जानने में न आवें।

तथा कोई कहता है कि इस समय खाने का राग होगा फिर सोने का होगा ऐसा निश्चितरूप से केवलज्ञान नहीं जानता - ऐसा अज्ञानी कहता है। किन्तु भाई! वे सभी - ज्ञेयपने का उल्लंघन नहीं करते इसीलिये ज्ञान में ज्ञात हो जाते हैं। जो ज्ञान ज्ञेयों को देखकर राग में अटके तो क्या वह स्वाभाविक ज्ञान है ? वह वास्तविक ज्ञान का स्वरूप है ? नहीं। जो सामने ज्ञान में जानने लायक पदार्थ हैं, उसमें राग सहित ज्ञान अटके तो वहवास्तविक ज्ञान नहीं है। राग में अटक करके काम करता है वह तो विकार का अनुभव है - ज्ञान का अनुभव नहीं। जो ज्ञेय ऊपर लक्ष्य जाकर राग में अटकता है वह राग की क्रिया सहित पर को जानने में जो ज्ञान अटकता है, उसका ज्ञान में से उद्भव नहीं होता - ऐसी श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

❁ ❁ ❁

दौल समझ सुन चेत सयानें काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४२

अथ ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया ज्ञानान्न भवतीति श्रद्दधाति -

परिणमदि णेयमट्ठं णादा जदि णेव खाइगं तस्स।
णाणं ति तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता ॥४२॥

अब, ऐसी श्रद्धा व्यक्त करते हैं कि ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रिया ज्ञान में से उत्पन्न नहीं होती :-

यदि आत्मा ज्ञेयार्थ परिणमता तो क्षायिक ज्ञान ना।
वह कर्म को ही भोगता जिनदेव ने ऐसा कहा ॥४२॥

गाथार्थ :- ज्ञाता यदि ज्ञेय पदार्थरूप परिणमित होता हो तो उसके क्षायिक ज्ञान होता ही नहीं। जिनेन्द्रदेवों ने उसे कर्म को ही अनुभव करनेवाला कहा है।

टीका :- यदि ज्ञाता ज्ञेय पदार्थरूप परिणमित होता हो,तो उसे सकल कर्मवन के क्षय से प्रवर्तमान स्वाभाविक जानपने का कारण (क्षणिक ज्ञान) नहीं है; अथवा उसे ज्ञान ही नहीं है; क्योंकि प्रत्येक पदार्थरूप से परिणति के द्वारा मृगतृष्णा में जलसमूह की कल्पना करने की भावनावाला वह (आत्मा) अत्यन्त दु:सह कर्मभार को ही भोगता है ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा है।

भावार्थ :- ज्ञेय पदार्थरूप से परिणमन करना अर्थात् 'यह हरा है, यह पीला है' इत्यादि विकल्परूप से ज्ञेय पदार्थों में परिणमन करना वह कर्म का भोगना है, ज्ञान का नहीं। निर्विकार सहज आनन्द में लीन रहकर सहजरूप से जानते रहना वही ज्ञान का स्वरूप है; ज्ञेय पदार्थों में रुकना - उनके सन्मुख वृत्ति होना, वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है ॥४२॥

* * *

गाथा ४२ के गाथार्थ व टीका पर प्रवचन

सर्वज्ञ देव की सिद्धि करने के लिये न्याय देते हैं कि ज्ञेय का अवलम्बन लेकर जो ज्ञान, राग में अटके वह विभाविक ज्ञान है किन्तुवास्तविक ज्ञान नहीं - कुमति ज्ञान है।

ज्ञान ज्ञेय में और राग में अटके वह सच्चा ज्ञान नहीं है.

आत्मा जाननहार है। जाननहार भगवान जानने योग्य पदार्थ के आश्रय से परिणमित होता हो अथवा राग में अटक करके काम करता हो तो उसे सकल कर्मवन

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के क्षय से प्रवर्तित होनेवाले ज्ञायक का ज्ञान नहीं है। ज्ञेय, पदार्थरूप से परिणमित होता हो अर्थात् ज्ञातास्वभावरूप परिणमित नहीं होता किन्तु ज्ञाता को चूक करके पर को जानने जाय - वह ज्ञान राग में अटकता है। वह ज्ञान ज्ञातारूप नहीं परिणमित होता किन्तु ज्ञेयरूप परिणमित होता है - ऐसा कहा जाता है।

शंका :- कोई कहता है कि आत्मा शुद्ध है ऐसा जाना, इसके बाद तो पर्याय में अशुद्धता को दूर करना पड़ेगा ना ? विकार सहेतुक है इसलिये कर्म को दूर करो तो विकार दूर होगा (ऐसा अज्ञानी कहता है)।

समाधान :- भाई ! तू स्वभाव का आश्रय ले तो विकार दूर हो जावेगा और कर्म भी उनके कारण दूर हो जायेंगे। यदि स्वभाव का आश्रय न ले तो कर्म के ऊपर लक्ष्य जाता है। इसलिये विकार को सहेतुक कहते हैं। निश्चय से विकार स्वयं करता है इसलिये निश्चय से विकार भी अहेतुक है - ऐसा समझना; क्योंकि यहाँ कहते हैं कि - ज्ञाता स्वयं अपने को भूलकर ज्ञेय में अटक करके काम करता है वह विकार का अनुभव है।

अज्ञानी ऐसे ज्ञाता का निर्णय नहीं करता और बाहर की क्रिया में रुक जाता है। अपने को तो दो ही हरियाली खाना है तो बाकी वनस्पति को भय नहीं रहे - ऐसा अज्ञानी कहता है। भाई ! यह सभी अज्ञान भाव है। जैसे उल्टे बर्तन में अनाज भरे तो एक दाना भी नहीं आता; वैसे ही वस्तुस्वभाव से विपरीतता करे और माने कि हमें धर्म करना चाहिये तो वह भ्रम है। वनस्पति के जीव को होनेवाला भय स्वयं के कारण है किन्तु किसी दूसरे के कारण नहीं।

तथा कोई कहता है कि वृक्ष के नीचे बैठे हुए मनुष्य को छाया के कारण साता होती है और इसलिए वृक्ष को पुण्य होता है तो यह बात भी असत्य है। अज्ञानी जीव को कुछ ख़बर नहीं है। वस्तुस्वरूप की ख़बर नहीं इसलिये यह सभी भ्रम होते हैं।

तथा दूसरे को उपदेश देने से अपने को धर्म होगा और दूसरे को धर्म होगा - ऐसा अज्ञानी अनेक प्रकार से खोटी (झूठी) बातें करता है। ज्ञातास्वभाव को भूलकर, ज्ञेय का अवलम्बन लेकर राग का कार्य करता है - उसे ज्ञान नहीं कहते; क्योंकि वह ज्ञेयार्थ परिणमन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह पर पदार्थरूप परिणमित होता है; अपितु रागरूप परिणमता है ऐसा यहाँ समझना। और पर ज्ञेयों को जानने के लिये जाता हुआ ज्ञान, राग में अटकता है इसलिये उसे ज्ञान नहीं कहते अर्थात् कि उसे क्षायिक ज्ञान नहीं कहते। ज्ञान राग में अटके तो वह क्षायिक ज्ञान नहीं है। राग और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञेय में अटककर राग का कार्य करे वह सच्चा ज्ञान नहीं है अपितु राग और ज्ञेय का भेद करके ज्ञान का कार्य करे वही सच्चा ज्ञान है।

ज्ञेयों में इष्ट-अनिष्ट का विभाग करके रुकता है,
वह भ्राँति व राग-द्वेष का अनुभव करता है.

यह ज्ञानस्वभाव भाव का अधिकार है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है। वह दूसरे ज्ञेयों को जानकर, इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें प्रीति-अप्रीति करता है वह बन्ध का कारण है। सर्वज्ञ को ऐसा नहीं होता। जो ज्ञेयों को इष्ट-अनिष्ट कल्पित करके राग-द्वेषरूप होता हो उसे केवलज्ञान नहीं हो सकता। केवलज्ञान, कहीं भी अटके बिना भूत-भविष्य और वर्तमान को जानता है। जो ज्ञान एक के बाद एक जानता हुआ राग में अटके वह क्षायिकज्ञान नहीं कहलाता।

आत्मा ज्ञानस्वभावरूप नहीं परिणमता और एक-एक ज्ञेय में अटक कर काम करता है और पर पदार्थों की इष्ट-अनिष्ट की कल्पना में अटकता है तो उस कल्पना में ज्ञान नहीं और सुख भी नहीं है। इस ज्ञेय से मुझे ज्ञान होगा, मुझे आनन्द होगा इस तरह ज्ञेय के इष्टपने में अटकता हुआ अज्ञानी राग-द्वेष का अनुभव करता है। जो आत्मा पर में सावधानपने अनुभवता है, वह कर्म के बोझ को अनुभवता है।

ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी ज्ञेयार्थ परिणमनस्वरूप क्रिया और उसका फल किसमें से उत्पन्न होता है ? अर्थात् कि मिथ्याभ्राँति, राग-द्वेष का होना ऐसी क्रिया और उनका फल किसमें से उत्पन्न होता है ? अर्थात् किस कारण से होता है ? इसकी अब आगे की गाथा में व्याख्या करते हैं।

❁ ❁ ❁

जैसे कोई मूर्ख मनुष्य राख के लिए अति मूल्यवान चन्दन को जला डाले वैसे ही अज्ञानी जीव विषयों के लोभ से मनुष्य भव को नष्ट करता है।

- भगवती आराधना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४३

अथ कुतस्तर्हि ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया तत्फलं च भवतीति विवेचयति -

उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया ।
तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठोवाण बन्धमणुभवदि ॥४३॥

(यदि ऐसा है) तो फिर ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रिया और उसका फल कहाँ से (किस कारण से) उत्पन्न होता है, ऐसा अब विवेचन करते हैं :-

हैं नियति से जो उदयगत कर्मांश जिनवर ने कहा ।
उनमें विमोही रक्त द्वेषी बन्ध का अनुभव करे ॥४३॥

गाथार्थ :- (संसारी जीव के) उदयप्राप्त कर्मांश (ज्ञानावरणीय आदि पुद्गलकर्म के भेद) नियम से जिनवर वृषभों ने कहे हैं। जीव उन कर्मांशों के होने पर मोही, रागी अथवा द्वेषी होता हुआ बन्ध का अनुभव करता है।

टीका :- प्रथम तो, संसारी के नियम से उदयगत पुद्गल कर्मांश होते ही हैं। अब वह संसारी, उन उदयगत कर्मांशों के अस्तित्त्व में, चेतते-जानते-अनुभव करते हुए, मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से ज्ञेय पदार्थों में परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी (ज्ञेयार्थ-परिणमनस्वरूप) क्रिया के साथ युक्त होता है; और इसीलिये क्रिया के फलभूत बन्ध का अनुभव करता है। इसलिए (ऐसा कहा है कि) मोह के उदय से ही (मोह के उदय में युक्त होने के कारण से ही) क्रिया और क्रियाफल होता है, ज्ञान से नहीं।

भावार्थ :- समस्त संसारी जीवों के कर्म का उदय है, परन्तु वह उदय बन्ध का कारण नहीं है। यदि कर्मनिमित्तक इष्ट-अनिष्ट भावों में जीव रागी-द्वेषी-मोही होकर परिणमन करे तो बन्ध होता है। इसलिए यह बात सिद्ध हुई कि ज्ञान, उदय प्राप्त पौद्गलिक कर्म या कर्मोदय से उत्पन्न देहादिकी क्रियाएं बन्ध का कारण नहीं है, बन्ध के कारण मात्र राग-द्वेष-मोहभाव हैं इसलिये वे भाव सर्वप्रकार से त्यागने योग्य हैं ॥४३॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ४३ पर प्रवचन

ज्ञानस्वभाव, कर्म का उदय और संयोग बन्ध का कारण नहीं है मात्र मोह-राग-द्वेष बन्ध का कारण है.

संसारी जीव को कर्म का उदय होता है; वह उदय में जुड़ान करता है। उसमें जीव राग-द्वेष को अनुभवता है।

१. ज्ञानस्वभाव बन्ध का कारण नहीं है अर्थात् जानना-देखना बन्ध का कारण नहीं है,

२. जड़ कर्म का उदय, बन्ध का कारण नहीं है, और

३. अघाति कर्म के कारण मिले हुये संयोग भी बन्ध के कारण नहीं है, अपितु

४. ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को भूलकर जो कर्म के उदय अनुसार जुड़ान करके, इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करता है, वह मोह-राग-द्वेष को अनुभवता है यह बन्ध का कारण है।

संसारी जीव को नियम से कर्मों का उदय होता है। उस कर्म के उदय के समय-जीव उस तरफ झुकाव करे तो मोह-राग-द्वेष होता है। लोग कहते हैं कि कर्म का उदय आए तो विकार होता है जबकि यह बात असत्य है। संसारी जीव को कर्म का उदय होता है। अब, उस उदय की विद्यमानता में चिदानन्द ज्ञानस्वभाव को भूलकर, दर्शनमोह अथवा चारित्रमोह की विद्यमानता में - उसके तरफ झुकाव में मोह-राग-द्वेष में परिणति करता है इसलिये उसका ज्ञेय पदार्थों में परिणमन है, किन्तु ज्ञातास्वभाव तरफ परिणमन नहीं है।

एक तरफ कर्म का उदयभाव वर्तमान है और एकतरफ त्रिकालज्ञानभाव है। अब वर्तमान ज्ञान पर्याय, त्रिकाल स्वभाव का आश्रय नहीं लेकर, कर्म तरफ झुके तो वह मोह-राग-द्वेष करता है; और कर्म का उदय होने पर भी ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव तरफ झुकाव रखे तो मोह-राग-द्वेष नहीं होते किन्तु यदि स्वभाव सन्मुख न हो और ज्ञान पर्याय, कर्म के उदय तरफ जुड़ी और वह मोह-राग-द्वेष में एकाग्र हुआ।

देखो ! यहाँ द्रव्य-कर्म का उदय आवे तो भाव-कर्म होगा ही - इस बात से इन्कार करते हैं; क्योंकि जड़-द्रव्य-कर्म का उदय संसारी को सदा ही है, किन्तु उस समय ज्ञानपर्याय, ज्ञातास्वभाव में जुड़ान करे तो कर्म खिर जाते हैं। किसी समय कर्म बलवान होते हैं और किसी समय जीव बलवान होता है - ऐसा अज्ञानी कहता है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु यह असत्य है।

भाई ! कर्म की विद्यमानता के कारण बन्धन अनुभवता है - चैतन्य को नहीं अनुभवता - जानने योग्य पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट का भाग करता है किन्तु ज्ञानस्वभाव में ऐसा इष्ट-अनिष्टपना नहीं है; फिर भी जो पर में यह ठीक नहीं है - ऐसा मानता है वह कर्म को भोगता है। कर्म जड़ है किन्तु उस तरफ के झुकाव के भाव को वह भोगता है। इसलिये कोई पदार्थ अनुकूल-प्रतिकूल नहीं है।

'मैं ज्ञाता हूँ' ऐसा जाने तो यही सर्वज्ञदशा को साधने का उपाय है। सर्वज्ञ पूर्णत्व को प्राप्त हो गये हैं उन्हें अब साधना करना शेष नहीं रहा।

ज्ञानस्वभाव में सहजपने जानना वह ज्ञान का कार्य है
किन्तु ज्ञेय में अटकना वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है.

'स्वरूप की सावधानी धर्म है और ज्ञेय की सावधानी अधर्म है।'

भावार्थ पर प्रवचन :- ज्ञेय पदार्थरूप से आत्मा परिणमता है अर्थात् आत्मा ज्ञेयरूप नहीं होता किन्तु वैसा विकल्प उठता है। यह हरा है, यह पीला है, यह जड़ पदार्थ ठीक लगता है, यह ठीक नहीं लगता - ऐसी कल्पना में अटकना वह विकार का अनुभव है; इसलिये वह अधर्म है और स्वभाव का अनुभव वह धर्म है।

जाननार ज्ञान, ज्ञात होने योग्य पदार्थ में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना में रुके और ज्ञान में न रुके वह अधर्म है। भगवान आत्मा ज्ञानभाव है; जगत के ज्ञेय आहार-पानी, देव-गुरु-शास्त्र सभी ज्ञेयों को जानता हुआ स्वभाव की सावधानी छोड़कर, ज्ञेय की सावधानी में रुककर, उनमें इष्ट-अनिष्टपने की कल्पना करता है वह कर्म का अनुभव है - धर्म का अनुभव नहीं। एक तरफ ज्ञानस्वभाव है, उसकी एकता-सावधानी वह आत्मा का अनुभव है और स्वरूप की सावधानी छोड़कर, पर पदार्थों में, अनुकूलता-प्रतिकूलता में सावधानी करना वह कर्म का अनुभव है - ज्ञान का अनुभव नहीं - आत्मा के धर्म का अनुभव नहीं।

ज्ञानस्वभाव में सहजपने जानना वह ज्ञान का कार्य है,
किन्तु ज्ञेय में अटकना ज्ञान का कार्य नहीं है.

भगवान आत्मा का स्वरूप निर्विकार आनन्द है उसमें एकाग्र रहना और जगत के पदार्थों को जानना किन्तु उनमें ठीक-अठीक की कल्पना नहीं करना - यह आत्मा का स्वरूप है। यह धार्मिक क्रिया है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी है। उसके स्वभाव सन्मुख एकाग्रता का होना वह आत्मा का अनुभव है। जड़ कर्म के उदय में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग मिश्रित विचार करके अनुभव करना वह ज्ञेय का अनुभव है, किन्तु ज्ञान का अनुभव नहीं। लोक बाह्य से धर्म-अधर्म की कल्पना करता है किन्तु आत्मा ज्ञानस्वभावी है उसे छोड़कर जानने योग्य पदार्थों में रुकना और उसके सन्मुख एकान्तवृत्ति में रुका रहना वह ज्ञान का स्वभाव नहीं है और वह धर्म भी नहीं है।

पर जीव ज्ञेय है। उसकी सावधानी वह तो मोह है। जानने योग्य पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट का विभाग करना वह धर्म का अनुभव नहीं है उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी नहीं है। शरीर रोगी हो तो ठीक नहीं है और निरोगी हो तो ठीक है - ऐसे दो विभाग करके रुकना वह आश्रव की क्रिया है। वह क्रिया ज्ञेयार्थ परिणमन में रुक गई है इसलिये वह अनात्मा की क्रिया है - वह अधर्म है।

पर तरफ के झुकाव में सावधानी होती है वह कर्म का अनुभव है किन्तु धर्म का अनुभव नहीं। आत्मा ज्ञानतत्त्व है। अपने ज्ञानस्वभाव की सावधानी भूलकर कर्मांश में जुड़ता है तो मोह-राग-द्वेषरूप परिणमन होता है, उसमें ज्ञानस्वभाव के ऊपर लक्ष्य नहीं जाता अत: वह भ्राँति है।

तथा कोई कहे कि कर्म का जोर है इसलिये जीव धर्म नहीं करता तो यह बात भी असत्य (खोटी) है। एक तरफ चैतन्य ज्ञानस्वभावी है और एक तरफ कर्म के अंश है। अब, ज्ञानभाव में नहीं जुड़कर, कर्म में जुड़ान किया - वह अपनी भूल है। वर्तमान विपरीतता की भूल है - कर्म की भूल नहीं।

यह ज्ञानतत्त्व है। ज्ञानस्वभाव अथवा चैतन्य स्वभाव को धारण करनेवाला आत्मा है। उसकी वर्तमान अवस्था में निमित्तरूप कर्म के अंश है। यदि कर्म के अंश नहीं हो तो वह सिद्ध हो जाय। अब 'मैं ज्ञानस्वभावी हूँ' - ऐसे ज्ञानभावरूप नहीं परिणमित होता अपितु कर्मों के अंश तरफ झुकने पर मोह-राग-द्वेषरूप परिणमित होता है - वह संसार है।

कर्म के उदय में जुड़ने से ही राग-द्वेष होता है और उसे भोगता है.

अज्ञानी, जड़ की विद्यमानता में यह पदार्थ ठीक है और ज्ञानस्वभाव ठीक नहीं है इस तरह उनमें अटकता है। ज्ञानस्वभाव की रुची और प्रतीति छोड़कर, पर पदार्थों में झुकाव का होना वही संसार और बन्ध का अनुभव है। उस क्रिया का फल - बंधन है। इसलिये वह अबंध स्वभाव का अनुभव नहीं करती। क्रिया और अनुभव एक साथ है - पृथक नहीं। इसलिए यह कहा कि मोह के उदय में जुड़ने के कारण ही क्रिया और क्रियाफल है, किन्तु ज्ञान से नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञाता की कमजोरी के राग-द्वेष, ज्ञेयार्थ क्रिया नहीं है वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। कर्म के उदय के निमित्त में - ज्ञातास्वभाव को भूलकर मोह-राग-द्वेष करता है वही क्रिया है, उसका फल स्वयं भोगता है। स्वयं ज्ञानस्वभावी है, उसमें एकाग्रता नहीं करता। ज्ञानस्वभाव में आवे वह निर्दोषता है और पर में जुड़ान होना वही दोष है।

मोह का उदय अर्थात् क्या ?

मोह कर्म में जुड़ने से राग-द्वेष की क्रिया होती है वह उसे भोगता है। ज्ञानस्वभाव में जुड़ने से मोह-राग-द्वेषरूप क्रिया नहीं होती और उसका फल भी नहीं भोगता।

कर्म के कारण विकार माननेवाले को साततत्त्व की श्रद्धा नहीं है अपितु ज्ञानभावना के स्वीकार में ही साततत्त्व की श्रद्धा है.

गाथा ४३ के भावार्थ पर प्रवचन - सभी संसारी जीवों को ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय, मोहनीय आदि का उदय है। किन्तु वह उदय, बन्ध का कारण नहीं है यदि कर्म का उदय राग-द्वेष का कारण हो तो संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्व नहीं रहते। साततत्त्व की यथार्थ श्रद्धा भी नहीं रहती क्योंकि सभी जीवों को कर्म का उदय है। यदि वह निमित्त बन्ध का कारण हो, तो शुद्ध उपादान स्वभाव तरफ, झुकना नहीं हो सकता।

एक तरफ ज्ञानस्वभाव है और एक तरफ कर्म का अंश निमित्तरूप है। अब, जो निमित्त के अंश तरफ जुड़ता (लगता) है वह बन्ध को अनुभवता है और जो ज्ञानस्वभाव तरफ जुड़ता है वह बन्ध को नहीं अनुभवता। अब उन कर्म के अंश तरफ झुकाव करके एकान्त सावधानी करता है, वह मिथ्यात्व की उत्पत्ति करता है। किन्तु जो ज्ञानस्वभाव की तरफ झुकाव होता है वह बन्ध का कारण नहीं है।

यदि ज्ञायकस्वभाव स्वीकार करे तो ज्ञायकतत्त्व सिद्ध हुआ और कर्म का उदय-अजीव भी सिद्ध हुआ। आत्मा की ओर जुड़ान हुआ वह संवर निर्जरा का अंश है। उसमें मोक्ष की प्रतीति आती है और अल्प राग-द्वेष रहते हैं वे आश्रव-बन्ध ज्ञेय में रहते हैं, इस तरह साततत्त्व आते हैं। आत्मा ज्ञानस्वभावी है ऐसे ज्ञानभाव की तरफ. झुकाव करने पर ज्ञानभाव का निश्चिय हुआ और झुकाव में संवर, निर्जरा आती है। इसमें मोक्ष की प्रतीति आई है। कर्म का अंश अजीव है, अल्प राग-द्वेष में आश्रव-बन्ध है इस तरह साततत्त्व सिद्ध हुए।

मिथ्यादृष्टि जीव एकान्त पर में रुका है, उसे अजीव, आश्रव, बन्ध तत्त्व रह गये और जीव, संवर, निर्जरा व मोक्षतत्त्व श्रद्धा में से उड़ (निकल) गये; अर्थात् उसे एक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी तत्त्व की श्रद्धा नहीं रहती। कर्म के उदय के कारण राग-द्वेष होता है - ऐसा माने तो संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सभी नहीं होते। कर्म के अंशो में एकाग्र होता है तो बन्ध होता है।

(१) निर्दोष ज्ञानतत्त्व बन्ध का कारण नहीं है।

(२) कर्म का बन्ध, उदय का कारण नहीं है।

(३) कर्म के निमित्त से मिले हुए संयोग, बन्ध का कारण नहीं है। अपितु,

(४) कर्म के साथ जुड़ना वह बन्ध का कारण है।

कर्म का उदय हो तो मुझे विकार करना पड़ेगा - ऐसा जो मानता है वह मिथ्यात्वभाव को उत्पन्न कर रहा है, क्योंकि निमित्त बन्ध का कारण नहीं है अपितु निमित्त तरफ का झुकाव बन्ध का कारण है। यदि, ज्ञान पर्याय को स्वभाव में जोड़े तो उसने कर्म के उदय को निमित्त नहीं बनाया तब कर्म के उदय की विद्यमानता होने पर भी ज्ञान में से राग-द्वेष नहीं आते। ज्ञान, स्वभाव तरफ न जुड़े और निमित्त तरफ जुड़े तो बन्ध का कारण है।

कर्म के कारण दोष मानना वह बड़ी अनीति है.

ज्ञानस्वभाव को भूलकर कर्म तरफ का झुकाव - बन्ध का कारण है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी है, उसकी तरफ का झुकाव बन्ध का कारण नहीं है। कर्म का उदय जड़ है वह भी बन्ध का कारण नहीं है। हिलने की, चलने की, बोलने की क्रिया तथा मन-वाणी की क्रिया सदोषता का कारण नहीं है, अपितु स्वभाव को भूलकर कर्म के झुकाव में जुड़ना सदोषता का कारण है; फिर भी कोई कर्म के ऊपर दोष लगावे वह बड़ी अनीति है। जिनवाणी का उसके ऊपर कोप है। यहाँ चार बोल लिये है :-

(१) ज्ञानस्वभाव ज्ञायक तत्त्व है, वह बन्ध का कारण नहीं।

(२) जड़ कर्म का उदय जड़ है वह अजीव तत्त्व, बन्ध का कारण नहीं।

(३) कर्म के कारण मिली हुई बाह्य सामग्री बन्ध का कारण नहीं।

(४) कर्म को निमित्त बनाकर मोह-राग-द्वेष करे तो अजीव आश्रव बन्ध ही रहते हैं किन्तु जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष नहीं रहते।

इस प्रकार आत्मा, ज्ञानस्वभाव की रुचि करे तो आत्मा ज्ञायक तत्त्व सिद्ध हुआ। स्वभाव के आश्रय में संवर, निर्जरा निश्चित हुए व मोक्षतत्त्व निश्चित हुआ, कमजोरी के राग-द्वेष अर्थात् आश्रव-बन्ध निश्चित हुए, इस जीव के सिवाय अन्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीव हैं वे मुझ जीव नहीं है। सभी ज्ञान में, ज्ञेय (तरीके) आ जाते हैं। अज्ञानी कर्मान्श तरफ झुकता है उसे संसार का अनुभव है और क्रिया के फल का अनुभव है जबकि साधक को ज्ञान का अनुभव है। आश्रव बन्ध मुख्यरूप से नहीं - गौण है। ज्ञान के अनुभव में राग का अनुभव नहीं और राग के अनुभव में ज्ञान का अनुभव नहीं है। स्वयं को स्वज्ञेय बनावे तो धर्म हो।

यदि स्वभाव को भूले तो निमित्त पाकर के विकार किया ऐसा कथन करने में आता है.

निमित्त पाकर विकार होता है ऐसा लोग कहते हैं किन्तु निमित्त को प्राप्त हुआ यह कब कहलाता है ?

ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को छोड़कर, पर तरफ झुकाव का होना वह मिथ्यात्व का दोष है यह मिथ्यात्व है और यही निमित्त पाकर विकार हुआ ऐसा कहा जाता है।

स्वभाव तरफ की सावधानी होने पर, थोड़ी अस्थिरता का झुकाव होता है वह चरित्र का दोष है।

सर्वज्ञ ज्ञातास्वभाव में पूर्ण लीन है इसलिए उनको मिथ्यात्व तथा चरित्र का दोष नहीं है।

अज्ञानी जीव एक के बाद एक ज्ञेय की ओर झुकता है। कर्म का उदय है इसलिये राग होता है ऐसा माननेवाले की (विपरीत) रुची ही दोष का कारण है। कर्म का उदय जड़ में है वह स्वयं जड़ का कार्य है, किन्तु वह आत्मा में कार्य करे ऐसा नहीं होता। यह अज्ञानी का, स्वयं का दोष है फिर भी वह कर्म के ऊपर दोष डालता है।

इस तरह दो विभाग है; पर के अभाव स्वभावरूप ज्ञानभाव में झुकाव करना अथवा क़र्म के अंश में झुकाव करना; वह तेरे हाथ की बात है। तू ज्ञानतत्त्व आत्मा है, कर्म और आश्रव-बन्ध ज्ञायक में नहीं है इसलिये जो स्वभाव विद्यमान है उसे देख - पुरुषार्थ से देख। जिस उल्टे पुरुषार्थ को - कर्म की तरफ झुका रहा है उसके बदले उसे स्वभाव की तरफ झुका। विपरीत (पुरुषार्थ) करना तेरे हाथ में है और विपरीतता को दूर करना भी तेरे हाथ में है।

यहाँ ज्ञानतत्त्व और कर्म के उदय के बीच भेद ज्ञान कराते हैं.

श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि कर्म का उदय बन्ध का कारण नहीं है। ज्ञान भी बन्ध का कारण नहीं है अपितु मोह-राग-द्वेष, बन्ध का कारण है। शुद्ध भावना छोड़कर कर्म की भावना करता है, वह बन्ध का कारण है। स्वयं ज्ञाता स्वभाव है, इसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आश्रय से विकार का परिणमन नहीं होता, किन्तु शुद्ध स्वभाव से च्युत होता है तो कर्मों ने च्युत कराया ऐसा कहने में आता है।

मोह-राग-द्वेष बन्ध का कारण है किन्तु स्वभाव बन्ध का कारण नहीं है - ऐसा बताने के लिये पर- द्रव्य को बन्ध का कारण कह दिया है किन्तुवास्तव में, यदि कर्म का उदय बन्ध का कारण हो तो गति नहीं बदल सकती। स्वभाव तरफ का झुकाव कर तो मोह-भ्राँति का नाश होगा। स्वभाव का झुकाव होने के पश्चात् थोड़ा पर का झुकाव होता है, वह अल्प चरित्रदोष है और स्व का सर्वथा झुकाव हो तो दोनों दोषों का नाश होकर वीतरागता और केवलज्ञान होता है।

आचार्य यहाँ पर ज्ञानतत्त्व और कर्म के उदय की भिन्नता (वहेचनी) करना चाहते हैं। कर्म के उदय तरफ जुड़ान करनेवाले को भेदज्ञान करना अच्छा नहीं लगता। स्वभाव तरफ जुड़ान करनेवाले को भेदज्ञान करना अच्छा लगता है। स्वभाव तरफ जुड़ान करनेवाले को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र प्रगट होता है और जो कर्म तरफ जुड़ान करे उसे बन्ध होता है।

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलावे - यह तेरा जैनपना कैसा ? जिस घर में प्रतिदिन भक्ति पूर्वक देव-गुरु-शास्त्र के दर्शन-पूजन होते हैं, मुनिवर आदि धर्मात्माओं को आदर पूर्वक दान दिया जाता है वह घर धन्य है; इसके बिना घर तो श्मशान तुल्य है।

- करुणासागर पूज्य कानजीस्वामी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४४

अथ केवलिनां क्रियापि क्रियाफलं न साधयतीत्यनुशास्ति -

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं।
अरहंताणं काले मायाचारो व्व इत्थीणं ॥४४॥

अब ऐसा उपदेश देते हैं कि केवलीभगवान के क्रिया भी क्रियाफल (बन्ध) उत्पन्न नहीं करती :-

धर्मोपदेश विहार आसन स्थान श्री अरहन्त के ।
होते सहज उस समय में ज्यों मायाचारी नारि के ॥४४॥

गाथार्थ :- उन अरहन्त भगवन्तों के उस समय खड़े रहना, बैठना, विहार और धर्मोपदेश - स्त्रियों के मायाचार की भाँति, स्वभाविक ही प्रयत्न बिना ही - होता है।

टीका :- जैसे स्त्रियों के, प्रयत्न के बिना भी, उसप्रकार की योग्यता का सद्भाव होने से स्वभावभूत ही माया के ढक्कन से ढँका हुआ व्यवहार प्रवर्तता है, उसीप्रकार केवलीभगवान के, प्रयत्न के बिना ही (प्रयत्न न होने पर भी) उसप्रकार की योग्यता का सद्भाव होने से खड़े रहना, बैठना, विहार और धर्मदेशना स्वभावभूत ही प्रवर्तते हैं। और यह (प्रयत्न के बिना ही विहारादिका होना), बादल के दृष्टान्त से अविरुद्ध है। जैसे बादल के आकाररूप परिणमित पुद्गलों का गमन, स्थिरता, गर्जन और जल वृष्टि पुरुष - प्रयत्न के बिना भी देखी जाती है, उसीप्रकार केवलीभगवान के खड़े रहना इत्यादि अबुद्धिपूर्वक ही (इच्छा के बिना ही) देखा जाता है। इसलिये यह स्थानादिक (खड़े रहने बैठने इत्यादि का व्यापार), मोहोदयपूर्वक न होने से, क्रियाविशेष (क्रिया के प्रकार) होने पर भी केवलीभगवान के क्रियाफलभूत बन्ध के साधन नहीं होते।

भावार्थ :- केवलीभगवान के स्थान, आसन और विहार, यह काययोग सम्बन्धी क्रियाएँ तथा दिव्यध्वनि से निश्चय-व्यवहार स्वरूप धर्म का उपदेश-वचनयोग सम्बन्धी क्रिया-अघाति कर्म के निमित्त से सहज ही होती है। उसमें केवली भगवान की किंचित्मात्र इच्छा नहीं होती, क्योंकि जहाँ मोहनीय-कर्म का सर्वथा क्षय हो गया है वहाँ उसकी कार्यभूत इच्छा कहाँ से होगी ? इसप्रकार इच्छा के बिना ही - मोह-राग-द्वेष के बिना ही होने से केवलीभगवान के लिये वे क्रियाएं बन्ध का कारण नहीं होती।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ४४ पर प्रवचन

संयोग कर्म और ज्ञानस्वभाव बन्ध का कारण नहीं है, अपितु मोह-राग-द्वेष बन्ध का कारण है.

यह अधिकार ज्ञानतत्त्व का है। आत्मा ज्ञानस्वभावरूप है। मैं ज्ञानस्वभाव हूँ - ऐसी चैतन्य क्रिया बन्ध का कारण नहीं है। पुराने कर्मों के उदयकाल में अपनी सावधानी न रखे और कर्म में जुड़े तो मिथ्याभ्राँति और राग-द्वेष होता है जो संसार का कारण है। कर्म के उदय, शरीर की क्रिया और जो राग होता है उनका जाननेवाला रहे तो वह बन्ध का कारण नहीं है। शरीर की क्रिया भी सदोषता का कारण नहीं है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है - ज्ञान सार है! ऐसे चैतन्य स्वभाव के दृष्टिवंत जीव - संयोग तथा राग को जाने - वह जानने की क्रिया बन्ध का कारण नहीं है- किन्तु मोक्ष का कारण है। उन कर्मों के उदय के समय कर्म मुझे हैरान करते हैं अथवा संयोग में अनुकूलता माने - वह बन्ध का कारण है किन्तु ज्ञानस्वभाव बन्ध का कारण नहीं है। कर्म का उदय और शरीर की क्रिया भी बन्ध का कारण नहीं है, अपितु निर्दोष आत्मस्वभाव को भूलना तथा निर्दोष स्वभाव का भान रखकर, जितनी अस्थिरता हुई वह बन्ध का कारण है।

मेरा स्वभाव तो शरीर की क्रिया तथा राग की क्रिया जो क्रमबद्ध होती है, उसको जानने का है और वह धर्म है। कर्म के अंश में रुची-झुकाव वह बन्ध का कारण है अथवा अधर्म है। केवली भगवंतो को क्रिया है किन्तु क्रिया, फल उत्पन्न नहीं करती अर्थात् उनका हलना, चलना क्रियाफल उत्पन्न नहीं करता; इसलिये शरीर आदि की बाह्यक्रियाएं बन्ध का कारण नहीं है। केवली भगवान को हलने चलने आदि क्रिया है ऐसा कहना - यह व्यवहार कथन है। यहाँ जो केवली भगवान की क्रिया कही गई है वह जड़ की क्रिया है; यह संयोग का कथन किया है। अज्ञानी संयोग का स्वामी होता (मानता) है।

आत्मा जाननेवाला प्रभु है; स्व-प्रकाशक में रहे, तो पर को जाननेवाला है। ऐसी जानने की क्रिया आत्मा की है। केवली भगवान की क्रिया कहना और उसका बन्धन नहीं - ऐसा कहना वह निमित्त का कथन है। ज्ञान सार तत्त्व है। उस ज्ञान में जो दृष्टि और लीनता होती है वह बन्ध का कारण नहीं है। कर्म का अंश बन्ध का कारण नहीं है। यदि वह बन्ध का कारण हो तो बन्ध कभी नहीं छूटेगा। यदि बाह्य संयोग सदोषता का कारण हो तो फिर बाह्य संयोग ही मोक्ष का कारण हो जाय लेकिन ऐसा कभी नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्त्रियों को माया(चारी) स्वयं की पर्याय की योग्यता से सहज होती है.

टीका पर प्रवचन :- दृष्टांत देते हैं कि जैसे स्त्रियों को प्रयत्न बिना ही उस प्रकार की योग्यता के सद्भाव से माया होती है - ऐसा कहा है। यहाँ प्रयत्न तो है किन्तु जैसे स्वभाव में माया समा गई हो - ऐसा बतातें है। यहाँ शब्द का भाव पकड़ना चाहिये। चैतन्य आनन्दकंद ध्रुव स्वभाव के ऊपर दृष्टि नहीं जाती, उसका पूर्व कर्म के ऊपर लक्ष्य जाता है वह संसार का कारण है।

यहाँ स्त्री का दृष्टांत देते हैं। शरीर युवा, सुन्दर और मजबूत हो तब उसे हाथ, पैर, आंख की चेष्टा की उस स्त्री को खबर नहीं होती; वैसी चेष्टा में स्त्री को माया सहज होती है। यहाँ प्रयत्न बिना कहा है; इसलिये कर्म के कारण माया होती है - ऐसा नहीं कहा। पूर्व की माया के फल में स्त्री का देह मिला है। जहाँ तक माया के बीज का नाश न करे वहाँ तक वह माया रहती है। उसकी पर्याय में माया का प्रयत्न है, किन्तु उग्रबुद्धिपूर्वक ख्याल नहीं, इसलिये उसे प्रयत्न बिना कहा है।

तथा यहाँ उसप्रकार की योग्यता के सद्भाव से कहा; योग्यता शब्द बहुत जगह आता है। उसप्रकार की योग्यता के सद्भाव से स्त्री का स्वभाव माया का हो गया है - ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है। जो माया साधारण मनुष्य नहीं पकड़ सकते जैसे अन्दर ज़हर हो और ऊपर अमृत का ढक्कन हो; वैसे ही स्त्री के अन्दर में तो माया भरी है उसकी उसे खबर नहीं होती वह विभाव है फिर भी उसका विभाव दूसरे प्रकार का है। साधारण प्राणी की अपेक्षा वह अलग प्रकार का है इसलिये उसे स्वभावभूत ही कहा है। शास्त्र का कथन (१) भावार्थ (२) शब्दार्थ (३) आगमार्थ (४) नयार्थ (५) मतार्थ से समझना चाहिये।

किस नय का कथन है वह न समझे तो शास्त्र, शस्त्र हो जाते हैं.

क्योंकि कोई स्त्री सरल (भगवती) भी होती है और कोई पुरुष मायाचारी भी होते हैं। यहाँ समान्य अपेक्षा से स्त्री मायाचारी होती है - ऐसा कहना है। स्त्री का दृष्टांत देते हैं; वहाँ आँख के पलक में - उसके झपकने में माया कहाँ होती है ? यह स्त्री को भी खबर नहीं पड़ती; इसलिये वह माया स्वभाविक कही गई है। स्त्री का दृष्टांत देकर, उसका केवलज्ञानी में सिद्धांत उतारते हैं।

तीर्थंकरों के शरीर आदि का हलना-चलना, बैठना-उठना शरीर की सहज योग्यता से होता है

शरीर आदि की जो अवस्था होनेवाली है वह होती है; वह उसकी योग्यता है। श्री कुन्दकुन्द आचार्य 'काल' शब्द कहते हैं उसमें से श्री अमृतचन्द्राचार्य योग्यता कहते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। अरहन्त का काल तो केवलज्ञान का काल है किन्तु यहाँ उनके साथ रहे हुये शरीर आदि के परमाणुओं के काल की बात कहते हैं कि शरीर का ऊंचा होना - वह उसका स्वकाल है। निचलीदशा में भी शरीर का ऊंचा-नीचा होना पुद्गल की योग्यता के कारण है - इच्छा के कारण नहीं।

भगवान खड़े रहे वह पुद्गल परमाणु का वर्तमान काल है। क्रमबद्ध में वही काल है - वही योग्यता है किन्तु आत्मा के कारण बिलकुल नहीं। विहार होते हुये शरीर ठहर जाय वह परमाणु की योग्यता के कारण है। शरीर खड़ा हो और बैठे वह उसके स्वकाल के क्रमबद्ध के कारण बैठता है। भगवान के प्रयत्न के कारण नहीं। नामकर्म तो उसमें निमित्त मात्र है क्योंकि वह पुद्गल की क्रिया का वर्तमान काल है। तथा वह विहायोगति नामकर्म कार्माणवर्गणा में से बनता है। शरीर आहार वर्गणा में से शरीर की अवस्था उस समय की उसकी योग्यता है। नामकर्म के निमित्त से वह हुई है - ऐसा कहना वह मात्र व्यवहार का कथन है।

कोई कहता है कि 'योग्यता' कहाँ से कहते हैं ?

समाधान :- यहाँ आचार्य योग्यता कहते हैं योग्यता अथवा उसके काल के काल से पर्याय होती है। यहाँ श्री अमृतचन्द्र आचार्य योग्यता कहते हैं। जिस समय जिस परमाणु की जो अवस्था होनेवाली है, वह होती है। आत्मा की जिसप्रकार की अवस्था, जैसी अवस्था होनेवाली है वह होती है। भगवान का शरीर हिले-चले वह सभी क्रिया शरीर की योग्यता के कारण है। भगवान का शरीर हजारों गावों का विहार करे वह विविध परमाणुओं के गमन स्वभाव के कारण होता है। कहा भी है कि - तनता, मनता, वचनता, लघुता, गमनता ये अजीव के खेल हैं।

भगवान दूसरों को उपदेश देने के लिये विहार नहीं करते। भगवान तो आत्मा हैं वे शरीर की क्रिया कैसे करें ? अर्थात् नहीं करते। कोई कहता है कि भगवान पूर्व कर्मों का नाश करने के लिये विहार करते हैं तो यह बात असत्य है। शरीर के परमाणुओं की अवस्था स्वयं क्षेत्रान्तर होती है। गमन करना वह पुद्गल का स्वभाव है। गमनता अजीव का खेल है। अज्ञानी मानता है कि मेरे कारण शरीर की अवस्था हुई है।

केवलज्ञान के स्वकाल में, शरीर के विहार का काल नहीं है। परमाणु स्वयं उनके कारण विहार करते हैं उस कार्य का काल है। उस पर्याय के काल में पर्याय होती है। अज्ञानी कहता है कि -'निचलीदशा में इच्छा के कारण शरीर चलता है और केवलज्ञानी - कर्म के कारण चलते हैं' - तो यह दोनों ही बातें असत्य है। शरीर में क्रियावती शक्ति है जिससे वह चलता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सच्चे देव, निर्ग्रन्थ भावलिंगी मुनि और अनेकान्त शास्त्र के मिलने पर भी इस बात की लोगों को खबर नहीं होती। शरीर की क्रिया को केवली भगवान की क्रिया कहना, वह व्यवहारनय का कथन है, क्योंकि वह क्रिया केवली भगवान की नहीं है, फिर भी केवली की कही है क्योंकि शरीरादि की क्षेत्रान्तर अवस्था होती है उसमें केवली भगवान का गमन निमित्त है इसलिये उसे केवली की क्रिया कही है। तथा नामकर्म प्रकृति भी निमित्त मात्र है क्योंकि उसके कारण शरीर का क्षेत्रान्तर नहीं होता। शरीर के उपादान की वर्तमान अवस्था काल है इसलिए खड़ा होना, बैठना और विहार होता है। तथा कर्म तो कार्माण वर्गणा में से होते हैं और शरीर आहार वर्गणा में से बनता है

भगवान की दिव्यध्वनि भगवान के कारण नहीं निकलती किन्तु भाषा के परमाणुओं के कारण निकलती है.

तथा भगवान की वाणी भी भाषा वर्गणा के स्वकाल के कारण बनती है किन्तु आत्मा के कारण नहीं। कोई कहता है कि केवली भगवान भाषा के परमाणु को ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं - तो यह बात असत्य है। भगवान की दिव्यध्वनि स्वभावभूत है। वाणी, वाणी के कारण निकली है। भगवान को बैसाख बदी दसमीं के दिन केवलज्ञान हुआ था, ६६ दिन वाणी नहीं निकली, गौतम गणधर आये, तब वाणी निकली - इसे देखकर अज्ञानी कहता है कि गणधर के कारण वाणी निकली; इसलिये निमित्त का प्रभाव है; लेकिन यह बात भी असत्य है।

एक परमाणु की अवस्था और दूसरे परमाणु की अवस्था इन दोनों के बीच अन्योन्य अभाव है तो फिर किसी दूसरी आत्मा के कारण वाणी निकले - ऐसा कभी नहीं होता। तथा भगवान की वाणी तो निकले लेकिन उस समय उसे सुननेवाले पात्र जीव न हो - ऐसा भी कभी नहीं होता। मैं पूर्ण होऊं और अन्य जीव धर्म को पावे - ऐसे विकल्प में जो परमाणु बंधे थे उनके उदय के समय उस वाणी को झेलनेवाले न हो - ऐसा नहीं होता; फिर भी वाणी निकली तब झेलनेवाले नहीं थे ऐसा माननेवाला (अज्ञानी) सर्वज्ञ को नहीं समझता। वाणी स्वयं निकलती है किसी पर के कारण नहीं निकलती।

विहार, धर्म देशना आदि भगवान को स्वभावभूत ही प्रवर्तते हैं.

तथा भगवान की धर्म देशणा स्वभावभूत है। चारों अनुयोग को धर्म देशणा कहते हैं। धर्म अर्थात् वीतरागता; शास्त्र का तात्पर्य भी वीतरागता है। यहाँ निमित्त और विकार की उपेक्षा और स्वभाव की अपेक्षा बताया है। 'तेरे से धर्म नहीं होगा अथवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तू अटक जायगा' - ऐसी बात भगवान की वाणी में नहीं आती अपितु 'तू तेरे स्वभाव को देख तो धर्म होगा' - ऐसी बात आती है।

तथा धर्म देशणा के परमाणु का स्वकाल था तो वे परिणमते हैं जिस पुद्गल की पर्याय दिव्यध्वनिरूप परिणमित होना थी वह परिणमित होती है। उल्टा-सीधा परिणमित नहीं होता। आगे कहेंगे कि जैसे भगवान की देह, वाणी स्वकाल में परिणमित होती है; वैसे ही निचलीदशा में भी देह आदि की अवस्था आत्मा के कारण नहीं, किन्तु उनके (परमाणुओं) के कारण प्रगट होती है।

तथा जो काया, उपदेश आदि की क्रिया को स्वभावभूत कहा है वह शरीर आदि की स्कन्धरूप अवस्था है, इसलिये वह विभाव पर्याय है; फिर भी वह विभाव भी स्वभाव है क्योंकि स्व में होता है इसलिये स्वभावभूत है। इस तरह भगवान को प्रयत्न बिना खड़े रहना, बैठना और धर्मदेशणा प्रवर्तती है।

केवली भगवन्तो की विहार आदि की क्रिया इच्छा रहित - सहज है, इसलिये वह बन्ध का कारण नहीं है.

अब इसे समझाने के लिये दृष्टांत देते हैं कि जैसे बादल के आकार स्वरूप से हुए पुद्गलों को कौन करता है ? वहाँ पुरुष का प्रयत्न नहीं होता। बादल स्वकाल में अपने कारण गमन करते हैं। जैसे बादल बदलते हैं उसमें पुरुष का प्रयत्न नहीं होता; वैसे ही केवली की देह गमन करे, इसमें आत्मा का प्रयत्न नहीं है। निचलीदशा में भी आत्मा के कारण देह की क्रिया नहीं होती। आत्मा तो जानने-देखनेवाला है - ऐसा होने पर भी मेरे कारण पर की क्रिया हुई है - ऐसा मानना वह मोह है। तथा बादल गमन करते हैं, घट होता है और पानी होता है वह उनके स्वकाल में होता है।

इसी तरह दुकान में माल भी पुद्गल के स्वकाल में आता है और जाता है - ऐसा निर्णय करने पर मैं ज्ञान हूँ, मेरी क्रिया पर में नहीं होती; पुद्गल की क्रिया उनके स्वकाल के कारण होती है - ऐसा निर्णय होता है। तथा जैसे बादल रुक जाते हैं अथवा बादल का गरजना होता है वह परमाणु के कारण है; उसी तरह भगवान की वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। तथा पानी की बूंद पड़ती है वह पुरुष के प्रयत्न बिना ही है - बादलों की अवस्था का वह स्वकाल है।

जैसे बादलों का स्थिर होना, चलना, गरजना और जल बरसना यह सब पुरुष के प्रयत्न बिना ही देखने में आता है; इसी तरह केवली भगवान का खड़ा रहना, बैठना इत्यादि इच्छा बिना ही देखने में आता है। केवली भगवान का और शरीर आदि का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है इसलिये उनके स्थानादि खड़े रहनेरूप इत्यादि व्यापार इच्छा पूर्वक नहीं होते। भगवान की वाणी तीन अथवा चार समय ६-६ घड़ी निकलती है, तो भी केवली भगवंतो को क्रिया फलभूत बन्ध के साधन नहीं होते। वैसे ही निचलीदशा में भी बाह्य क्रिया बन्ध का कारण नहीं है अपितु पर पदार्थों के साथ एकत्व बुद्धि बन्ध का कारण है।

आत्मा जानने-देखने की क्रिया करे - यह एक ही धर्म है.

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है; आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है। आनन्द का अधिकार बाद में लेंगे। जड़ की क्रिया करे अथवा राग को लावे - ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। राग होता है वह जुदी बात है किन्तु वह स्वभाव नहीं है। आत्मा ज्ञानस्वभाव है - ऐसा निर्णय करना चाहिये। पैसा, शरीर अथवा संयोग से सुख-दुःख नहीं है किन्तु अशुद्ध अवस्था वह दुःख है और शुद्ध अवस्था सुख है।

जिसे सुखी होना हो उसे क्या करना चाहिये ?

आत्मा ज्ञानस्वभावी है अतः वह जानने-देखने की क्रिया करे; वही शान्तिरूप सुखदशा है। शरीर-मन-वाणी आदि पर की अवस्था पर के कारण होती है - आत्मा के कारण नहीं। अंतर विकार होता है वह क्षणिक है। क्षणिक ऊपर दृष्टि न रखकर, नित्य ज्ञानस्वभाव ऊपर दृष्टि रखना वही धर्म है किन्तु राग धर्म नहीं है। राग तो पर प्रकाशक ज्ञान में ज्ञेय तरीके आता है। पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-तप आश्रव तत्त्व है वह ज्ञानतत्त्व नहीं। शरीर-मन-वाणी बाहर की अवस्था है। शरीर-मन-वाणी पर है। जो राग आदि होते हैं वे ज्ञानस्वभाव को जानने पर राग जानने में आ जाता है - ऐसा स्व-पर प्रकाशक ज्ञान पर्याय हो - वह धर्म है।

केवली भगवंतों को मोह-राग-द्वेष का अभाव है इसलिये उन्हें काययोग सम्बन्धी क्रिया बन्ध का कारण नहीं है.

यहाँ केवली भगवंतो की बात करते हैं। केवली भगवान की शरीर की क्रिया खड़े रहने की अथवा बैठने की होती है - वह जड़ की क्रिया है। केवली भगवान उस क्रिया को नहीं करते। अन्दर में प्रदेश का कम्पन है बाह्य जड़ की क्रिया है। भगवान के श्री मुख से जो वाणी निकलती है वह अघाति कर्म के निमित्त से सहज होता है और वाणी आदि की अवस्था भगवान के कारण नहीं होती। शरीर आदि की अवस्था आत्मा नहीं करता उसमें इच्छा लेश मात्र भी नहीं है। जैसे जिन्हें ज्ञानतत्त्व के अवलम्बन से केवलज्ञान पूर्ण हो गया है उनकी शरीर आदि की क्रिया बन्ध का कारण नहीं है; वैसे ही निचलीदशा में मैं जानने-देखनेवाला हूँ, मेरा स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है ऐसे स्वभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सन्मुख का निर्णय होने पर भी जितना राग-द्वेष होता है वह बन्ध का कारण है किन्तु जो शरीर की हलने-चलने की क्रिया होती है वह बन्ध का कारण नहीं है।

जानने-देखने की क्रिया - धर्म का कारण है। केवलीभगवान को सर्वथा मोह का अभाव है। चौथे गुणस्थान में दर्शनमोह का नाश होता है। केवली भगवान को दर्शनमोह, चारित्रमोह दोनों का अभाव है, इसलिये उनको इच्छा नहीं है। इसप्रकार इच्छा बिना ही तथा मोह-राग-द्वेष बिना ही शरीर आदि की क्रिया होने से केवली भगवंतो को वे क्रियाएं बन्ध का कारण नहीं होती।

जैसे, बाहर की क्रिया बन्ध का कारण नहीं है, वैसे ही ज्ञानस्वभाव भी बन्ध का कारण नहीं है। राग की रुचि करके विकार की उत्पत्ति करे वह तो सदोषता का कारण है। धर्मी को जितनी अस्थिरता - इच्छा है उतना बन्ध है। भगवान को एक भी इच्छा नहीं है। निमित्त, निमित्त के कारण है - राग, राग के कारण आता है और ज्ञान समय-समय होता है। इस तरह स्वतंत्रता की बात अज्ञानी को स्वीकार नहीं होती जिससे उसे मिथ्यात्व का पाप लगता है।

जैसे विकारीदशा निरपेक्ष है; वैसे ही अविकारीदशा भी निरपेक्ष है - ऐसा स्वीकार करने के बाद व्यवहार से सापेक्ष कहा जाता है.

आत्मा विकार करे तो कर्म निमित्त कहलाते हैं। जिसप्रकार देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग होता है इसलिए निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। शुद्ध आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता निरपेक्ष है। उसीप्रकार आत्मा की पर्याय में राग-द्वेष, मिथ्याभ्राँति भी निश्चय से निरपेक्ष ही है। स्व की अपेक्षा से भी निरपेक्ष है।

आत्मा जो दया-दान, व्रत-तप करता है वह सभी विकार है। विकार का कर्ता जीव है। निमित्त की अपेक्षा रहित विकार का कार्य स्वयं का है; निमित्त के साधन बिना, विकार का कर्ता स्वयं है स्वयं विकार का दान देता है और स्वयं के आधार से विकार करता है; इस तरह विकार निरपेक्ष है। इस तरह स्व, वह निरपेक्ष है, उसे कर्म की अपेक्षा कहना वह व्यवहार है। सापेक्षता व्यवहार से लागू पड़ती है अर्थात् सापेक्षता निमित्त बताने के लिये कहते हैं। इसप्रकार विकार के छहों कारक स्वतंत्र है।

अब हिंसा, झूठ, चोरी, दया-दान आदि के परिणाम आते हैं उस समय अज्ञानी जीव की दृष्टि विकार के ऊपर होने से वह विकार को अपना कार्य स्वीकार करता है। वास्तव में जो विकार दृष्टि अर्थात् विपरीत दृष्टि है - वह भी निरपेक्ष है; किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसकी उसे (अज्ञानी को) खबर नहीं है। वह एकान्त सापेक्ष मानता है किन्तु निरपेक्ष नहीं मानता। अखंड चिदानन्द आत्मा की प्रतीति, ज्ञान, रमणतारूप मोक्षमार्ग में किसी की अपेक्षा नहीं है - ऐसा निर्णय होने के बाद थोड़ा राग सहचर है इसलिये व्यवहार से सापेक्षता कही जाती है। इसीप्रकार आत्मा, शुद्ध चैतन्य स्वभाव की दृष्टि अर्थात् अविकार वृत्ति चूककर (छोड़कर) विकार में सर्वस्व मानता है वह विकारदृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि है - यह पर्याय भी निरपेक्ष है। इस तरह विकार करे तो पर की अपेक्षा बताने के लिये उसे सापेक्ष कहा जाता है।

निचलीदशा में भी बाह्यक्रिया बन्ध का कारण नहीं है किन्तु राग-द्वेष बन्ध का कारण है.

जैसे केवली भगवान को शरीर का हलना-चलना, उपदेश इत्यादि बन्ध का कारण नहीं है, क्योंकि उनको इच्छा का अभाव है; वैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव की बाह्य शरीर आदि की क्रिया वह बन्ध का कारण नहीं किन्तु मोह-राग-द्वेष बन्ध का कारण है।

''सभी पर्यायें निरपेक्ष - अहेतुक है - ऐसा निर्णय करे तो फिर सापेक्षता लागू पड़ती है। निरपेक्षता बिना - सापेक्षता कैसी ? उपादान बिना, निमित्त कैसा ?''

केवली भगवान को मोह-राग-द्वेष बिना ही होती हुई होने से वे क्रियाएं बन्ध का कारण नहीं है। उसीप्रकार मैं शुद्ध चैतन्य स्वभावी हूँ, ऐसी दृष्टि, ज्ञान, रमणता बन्ध का कारण नहीं है। जितना कमजोरी का राग है, उतना बन्ध है। शरीरादि की बाह्य क्रिया वह बन्ध का कारण नहीं है। इस तरह प्रथम अभिप्राय बांधना (होना) चाहिये। ऐसा अभिप्राय बांधे बिना धर्म नहीं होता।

अज्ञानी जीव व्यवहार पहले और निश्चय बाद में कहता है किन्तु यह बात असत्य है। आत्मा ज्ञानस्वभावी चैतन्य चमत्कार है - ऐसा जाने तो राग को जाना कहा जाता है। ज्ञान के बिना व्यवहार जो अंधा है - उसे व्यवहार तरीके कौन जानेगा ? इसलिये निश्चय बिना व्यवहार नहीं होता। ज्ञान का विकास पूर्ण हुआ है - ऐसे भगवान की जो बाहर की क्रिया आदि होती है वह बन्ध का कारण नहीं है। इसीप्रकार धर्मात्मा को जड़ की क्रिया बन्ध का कारण नहीं है; वैसे ही चैतन्य स्वभाव की दृष्टि-ज्ञान-रमणता भी बन्ध का कारण नहीं है किन्तु जो अल्प राग-द्वेष हैं वे बन्ध का कारण है।

अज्ञानी जीव चौवीहार (उपवासादि) क्रिया से धर्म मानता है। अब वहाँ तो राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के कर्तापने से मिथ्यात्व बंधता है। मंद कषाय से अल्प पुण्य बंधता है किन्तु साथ ही मिथ्यात्व का बड़ा पाप बंधता है। तेरे भंडार में क्या विकार भरा है ? तेरे भंडार में तो ज्ञान भरा है। जो भंडार में भरा हो वह लावे; विकार लाया - ऐसा तू कहता है तो क्या तेरे भंडार में विकार है ? मैने विकार को किया, दया की - ऐसा माननेवाले ने अपना भंडार विकारी माना है वह तो मिथ्यादृष्टि है।

मैं ज्ञानस्वभावी हूँ। स्व-पर प्रकाशक ज्ञान हुआ है - ऐसे ज्ञान में राग को जानता है। भन्डार में ज्ञान है - निज निधी ज्ञान है। ज्ञान निधि पाकर धर्मी अपना अनुभव करते हैं किन्तु पर के साथवाद-विवाद करना योग्य नहीं है। अज्ञानी की तो दृष्टि ही विपरीत है। किसके साथ वाद-विवाद करेगा ?

आत्मा रागरूप परिणमता है इसलिये कर्ता कहलाता है किन्तु राग के कर्तापने की बुद्धि - विपरीत बुद्धि है। शरीर आदि की अवस्था पुद्गल परावर्तन के नियम के अनुसार जो होनेवाली है - वह होती है। अब आत्मा का लक्ष्य किसके ऊपर है ? शरीर की क्रिया ऊपर है ? राग के ऊपर है ? अथवा ज्ञानस्वभाव से भरे हुए भंडार के ऊपर है ? उसमें ज्ञानस्वभाव ऊपर दृष्टि वह धर्म का कारण है। धर्मात्मा को चैतन्य स्वभाव की दृष्टि बन्ध का कारण नहीं है। अल्प राग-द्वेष व अल्प बन्धन है जो क्रम से दूर हो जाएगा।

बाहर की वस्तुएं बन्ध का कारण नहीं है। अज्ञानी जीव विकार एकान्त मानता है - वह असत्य बात है। विकार निरपेक्ष स्वयं करे तो होता है - ऐसा निर्णय करे; फिर बाद में कर्म की सापेक्षता आती है। अब आगे कहते हैं कि जो राग होता है उससे लाभ माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

आचार्य कहते हैं कि - भाई !वाद-विवाद नहीं करना, क्योंकि जीव अनेक प्रकार के हैं। कम-अधिक उघाड़वाले बहुत होते हैं, इसलिये तुमवाद-विवाद नहीं करना। श्री समयसार नाटक में पं. बनारसीदास जी ने कहा है कि -

'टेक डारि एक में, अनेक खोजे सो सुबुद्धि ।
खोजी जीवेवादी मरे, सांची कहवती है ॥'

'मैं ज्ञाता हूँ' ऐसा निर्णय करे - वह स्वभाव है। उसके निर्णय में पुरुषार्थ है। जिस समय अपने तरफ झुका वह काललब्धि है। जो होनेवाला था वह हुआ है - वह काललब्धि है, उसी समय कर्म का अभाव हुआ; इस तरह पाँचों समवाय एक साथ निश्चित करे वह सम्यक्दृष्टि है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एकेन्द्रिय जीव, मनुष्य होने पर कर्म की स्थिति बढ़ाता है वही विकार की निरपेक्षता बाताते हैं.

कोई प्रश्न करता है कि आत्मा को स्वभाव सन्मुख होकर, विकार घटाकर - कर्म में स्थिति-रस घटाया जा सकता है; किन्तु जब कर्म में स्थिति कम होती है तब कर्म में स्थिति बढ़ जाती है; तो फिर कर्म की स्थिति बढ़ाने में निमित्त बिना - विकार कहाँ से आया ? स्वभाव में तो विकार है नहीं ?

समाधान :- नीम के वृक्ष का एकेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट एक सागर की स्थिति का कर्म बांधता है और वह जीव मनुष्य होवे तो वहाँ रस्ते में अन्त: कोड़ाकोड़ी की स्थिति बांधता है। अब उसे लम्बी स्थितिवाले कर्म तो नहीं है; वैसे ही स्वभाव में विकार नहीं है तो विकार किस तरह हुआ ? इसलिये निश्चित हुआ कि स्वयं अपनी पर्याय में विकार करता है। स्वयं विकार की उग्रता करता है तो बाह्य नये कर्म की स्थिति बढ़ती है (उसे) बांधने में निमित्त होता है; किन्तु यदि कर्म के प्रमाण में विकार होता हो तो विकार अधिक अथवा कम नहीं हो सकता लेकिन ऐसा नहीं होता।

अज्ञानी जीव ज्ञानस्वभाव को भूलकर विकार करे अथवा ज्ञानी जीव अस्थिरता का विकार करे, वे दोनों ही निरपेक्ष हैं। एकेन्द्रिय जीव को कर्म का उदय थोड़ी स्थितिवाला है और आगामी कर्म में स्थिति बढ़ गई, इस कारण वह वर्तमान पर्याय में स्वयं उल्टा पुरुषार्थ विशेष करता है। क्योंकि भरे हुए भंडार के ऊपर नजर कर तो तू है; वैसे ही भंडार को भूल जाय तो भी तू है।

'विकार स्वतंत्र-निरपेक्ष है' - ऐसी बात जिसे नहीं बैठे उसे विकार रहित अव्यक्त स्वभाव की बात भी नहीं बैठती। ऐसे ज्ञान रहित जीव को आत्मा का अनुभव नहीं होता अत: उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र भी नहीं होता। ऐसा होने से तीर्थंकरों को पुण्य का विपाक अकिंचित कर है अर्थात् कुछ नहीं करता; वह स्वभाव का किंचित भी घात नहीं करता। तीर्थंकर भगवान को बहुत पुण्य होता है लेकिन वह उन्हें बन्ध का कारण नहीं होता। उनके पुण्य का उदय स्वभाव का किंचित भी घात नहीं करता - ऐसा अब निश्चित करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४५

अथैवं सति तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर एवेत्यवधारयति -

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया ।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा ॥४५॥

इसप्रकार होने से तीर्थंकरों के पुण्य का विपाक अकिंचित्कर ही है (कुछ करता नहीं है, स्वभाव का किंचित् (भी) घात नहीं करता) ऐसा अब निश्चित करते हैं :-

हैं पुण्यफल अरहन्त उनकी क्रिया औदयिकी कही ।
मोहादि विरहित हैं इसी से क्षायिकी मानी गई ॥४५॥

गाथार्थः- अरहन्त भगवान पुण्य फलवाले हैं और उनकी क्रिया औदयिकी है; मोहादि से रहित है इसलिये वह क्षायिकी मानी गई है।

टीका :- अरहन्त भगवान जिनकेवास्तव में पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के समस्त फल भलीभाँति परिपक्व हुए हैं ऐसे ही हैं, और उनकी जो भी क्रिया है वह सब उसके (-पुण्य के) उदय के प्रभाव से उत्पन्न होने के कारण औदयिकी ही है। किन्तु ऐसी (पुण्य के उदय से होनवाली) होने पर भी वह सदा औदयिकी क्रिया महामोहराजा की समस्त सेना के क्षय से उत्पन्न होती है इसलिये मोह-राग-द्वेषरूपी उपरंजकों का अभाव होने से चैतन्य के विकार का कारण नहीं होती इसलिये कार्यभूत बन्ध की अकारणभूतता से और कार्यभूत मोक्ष की कारणभूतता से क्षायिकी ही क्यों न माननी चाहिये ? (अवश्य माननी चाहिये) और जब क्षायिकी ही माने तब कर्म विपाक (-कर्मोदय) भी उनके (अरहन्तों के) स्वभाव विघात का कारण नहीं होता (ऐसा निश्चित होता है)

भावार्थ :- अरहन्त भगवान के जो दिव्य ध्वनि, विहार आदि क्रियाएँ हैं वे निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व के प्रदेशपरिस्पंद में निमित्तभूत पूर्वबद्ध कर्मोदय से उत्पन्न होती है इसलिये औदयिकी हैं। वे क्रियाएं अरहन्त भगवान के चैतन्य विकाररूप भावकर्म उत्पन्न नहीं करती, क्योंकि (उनके) निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्व के राग-द्वेष-मोहरूप विकार में निमित्तभूत मोहनीय कर्म का क्षय हो चुका है। और वे क्रियाएं उन्हें, राग-द्वेष-मोह का अभाव हो जाने से नवीन बन्ध में कारणरूप नहीं होती, परन्तु वे पूर्व कर्मों के क्षय में कारणरूप हैं क्योंकि जिन कर्मों के उदय से वे क्रियाएं होती हैं वे कर्म अपना रस देकर खिर जाते हैं। इसप्रकार मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने से और कर्मों के क्षय में कारणभूत होने से अरहन्त भगवान की वह

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

औदयिकी क्रिया क्षय की कहलाती है।

* * *

गाथा ४५ पर प्रवचन

तीर्थंकर भगवान को उत्कृष्ट पुण्य होता है और उसके फल में समवशरण आदि होते हैं.

यह ४५ वीं गाथा अलौकिक है; इसमें महान सिद्धांत है। पूर्व पुण्य प्रकृति के कारण से सभी फल मिले हैं। समवशरण की ऐसी रचना होती है जिसे देखकर इन्द्र भी आश्चर्य चकित हो जाता है। जबकि इन्द्र स्वयं समवशरण की रचना करता है फिर भी उसे विस्मयता होती है। वह भगवान के पुण्य के कारण रचा गया है अर्थात् कि समवशरण की रचना उनके कारण है जिसमें भगवान का पुण्य निमित्त है।

आदिपुराण में भी यह बात आती है। अहो ! भगवान का पुण्य फल है। इतना पुण्य है कि इन्द्र समवशरण रचता है उसकी रचना अद्भुत होती है। जो साक्षात् तीर्थंकर के समवशरण को स्वयं आँखों से देखे उसे ही उसकी खबर होती है। अहो ! भगवान के पुण्य के कारण ऐसी रचना हो जाती है। अर्हन्त को समस्त ही फल परिपक्व हुए हैं। संसार में पुण्य के स्थान ही न बचे हो - भगवान का पुण्य अचिंत्य है; मानो कल्पवृक्ष फल गया हो। सर्वोत्कृष्ट पुण्य बंधता है। मात्र शुभराग से ऐसा पुण्य बंधता है तो फिर उनकी पवित्रता की क्या बात करना ?

जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है वह भी ज़हर है - ऐसी हेय बुद्धि से बंधे हुए कर्म के फल में ये सब ढेर (पुण्य के संयोग) हैं। तथा चारों ओर से समस्त फल बराबर परिपक्व हुए हैं।

जिस भाव से तीर्थंकर नाम कर्म बंधता है वह भाव भी ज़हर है-धर्म से विरुद्ध अधर्म है क्योंकि धर्म से बन्धन नहीं होता और जिससे बन्धन होता है वह भाव अधर्म है। इस बात को सुनकर अज्ञानी भड़क उठता है।वास्तव में, पाँच महाव्रत का भाव आश्रव है और जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बन्धता है वह भी अधर्म है।

विभाव कहो, आश्रव कहो अथवा विरुद्ध भाव कहो यह सब एक ही है; ये धर्म में मददगार नहीं - विभाव हैं। मोक्ष अधिकार में कहा है कि सम्यग्दृष्टि के प्रतिक्रमण का शुभराग ज़हर है। आत्मा के भानवाले को सहचर जानकर उसे व्यवहार से अमृत कहा है किन्तु निश्चय से तो वह ज़हर है। अपेक्षा से दोनों मिथ्यादृष्टि को दृष्टि अपेक्षा वैसे ही अस्थिरता की अपेक्षा से दोनों ज़हर है। सम्यक्दृष्टि को दृष्टि अमृत है और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अस्थिरता ज़हर है - यह बात अज्ञानी को नहीं बैठती (स्वीकार नहीं होती) क्योंकि अज्ञानी को तो राग में मिठास लगती है।

भगवान को औदयीकी क्रिया बन्ध का कारण नहीं किन्तु क्षायिकी मानी गई है.

भगवान को जो कुछ क्रिया है वह सभी उनके उदय के प्रभाव से उत्पन्न होने से औदयीकी है। केवली को कम्पन (योग), शरीर आदि की क्रिया तथा बाह्य समवशरण होने पर भी वह सदा औदयीकी क्रिया महामोह राजा की समस्त सेना के अत्यन्त क्षय से उत्पन्न हुई होने से मोह-राग-द्वेषरूप उपरंजकों (मलिनता करनेवाले) के अभाव के कारण चैतन्य के विकार का कारण नहीं होती।

वास्तव में, शरीर-मन-वाणी आदि बन्ध का कारण नहीं किन्तु मोह-राग-द्वेषरूप संसार बन्ध का कारण है। बाह्य क्रिया और कम्पन संसार का कारण नहीं है; किन्तु उन्हें समय-समय में कर्म के परमाणु खिरते जाते हैं। इसलिए कार्यभूत मोक्ष के कारणभूतपने के द्वारा उसे क्षायिकी क्यों नहीं मानना चाहिये ?

'मैं ज्ञान आनन्द हूँ' - ऐसे स्वभाव सन्मुख दृष्टि गई है, फिर जड़ कर्म का उदय होने पर भी स्वभाव तरफ दृष्टि है इसलिये उन्हें निर्जरा कहते हैं। जैसे मैं चैतन्य अनन्द हूँ - ऐसे स्वभाव सन्मुख दृष्टि होने से उतने अंश में निर्जरा कहते हैं; उसीप्रकार केवली भगवान की औदयीकी क्रिया को क्षायिकी क्रिया कही गई हैं।

जैसे, धर्मात्मा को जड़कर्म का उदय होने पर भी स्वभाव में जितना जुड़ान है उतना कर्म का उदय नहीं कहकर कर्म की निर्जरा कही हैं। उसीप्रकार केवली भगवान में निर्जरा लागू पड़ती है। मुनि कहते हैं कि धर्मात्मा को चारित्र मोह का उदय वर्तता है किन्तु जितनी स्वभाव में लीनता होने से उतने कर्मों के अंशों को निर्जरा कही है। उसीप्रकार भगवान की औदयिक क्रिया को क्षायिकी कहा है। कम्पन समय-समय छूटता जाता है इसलिये उसे क्षायिक कह देते हैं। समय-समय क्षायिकदशा बढ़ती जाती है इसलिये औदयीकी को क्षायिकी कहा है। धर्मात्मा के भोग निर्जरा के हेतु (कारण) कहे - उसका अर्थ ऐसा है कि जिनता भोग है वह तो बन्ध का कारण है किन्तु स्वभाव सन्मुख दृष्टि होने के कारण उस भोग को निर्जरा का कारण कहा है।

आत्मा तरफ के झुकाव से कर्म खिर जाते हैं और कर्म तरफ के झुकाव से कर्म बंधते हैं.

यह अधिकार ज्ञानस्वभाव का है। जिसे ज्ञानस्वभाव की अन्तर रुची हुई है उनके कर्म खिर जाते हैं। कर्म के उदय के कारण विकार होता है - ऐसी श्रद्धावाले को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विकार होता है। 'ज्ञानस्वभाव है' - ऐसी श्रद्धावाले को कर्म उदय होने पर भी कर्म के अंश खिर जाते हैं। आत्मा को प्राप्त करके स्वभाव की दृष्टि होती है और कर्म को पाकर विकार होता है। जो ज्ञानानन्द स्वभाव तरफ नहीं ढलता वह कर्म तरफ झुकाव करता है।

आत्मा जानने-देखनेवाला है और विकार कमजोरी का है - ऐसा नहीं मानकर, कर्म पाकर मुझे विकार करना पड़ेगा - ऐसे माननेवाले को आत्मा को पाकर जानना नहीं रहा। यह सिद्धांत इस ४५ वीं गाथा में कहेंगे कि - कर्म है तो विकार है ऐसा माननेवाले को विकार नहीं मिटता; क्योंकि उसका कर्म तरफ झुकाव होता है। आत्मा है तो आनन्द है, आत्मा है तो ज्ञान है - ऐसा माने तो आत्मा तरफ झुकाव होता है; और कर्म है तो विकार होता है। ऐसे दृष्टिवंत की श्रद्धा कर्म तरफ ढलती है जिससे राग हुए बिना नहीं रहता, इसलिये कर्म बंधते हैं।

गाथा ४३ में कहा था कि सभी संसारी जीवों को कर्मों के अंश उदय में है किन्तु अज्ञानी जीव कर्म के अंशों में झुका हुआ है। उनकी तरफ झुका हुआ है; वे कर्मों के अंश हैं तो विकार है - ऐसा मानने से वह कर्मों के अंश तरफ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कर रहा है।

चारित्रमोह का उदय होने पर भी यदि जीव उसमें न जुड़े, तो कर्म के उदय को निर्जरा कहते हैं.

जड़कर्म का उदय होने पर भी भावमोहरूप न परिणमे तो कर्म की निर्जरा हो जाती है। श्री जयसेन आचार्य इस गाथा की टीका में कहते हैं कि - स्वभाव सन्मुख होकर भावमोहरूप न परिणमे तो द्रव्य-कर्म का उदय बन्ध का कारण नहीं होता।

शंका :- यहाँ कोई कहता है कि - आगम में कर्म के उदय को बन्ध का कारण कहा है न ?

समाधान :- कर्म के उदय के साथ मोहभाव करे तो वह बन्ध का कारण कहलाता है और यदि आत्मा मोह-भाव न करे तो वह बन्ध का कारण नहीं कहलाता। मिथ्यात्व के जाने के बाद चारित्र मोहनीय का उदय है फिर भी पर में सावधानी न करे और स्व में सावधानी करे तो बन्ध नहीं होता। यहाँ अघातिकर्म के उदय की बात है - ऐसा कोई कहे तो उसके लिये श्री जयसेनाचार्य स्पष्टीकरण करते हैं कि - मोहनीय कर्म का उदय होने पर भी यदि जीव उसमें न जुड़े तो वह उदय, बन्ध का कारण नहीं कहलाता।

स्वभाव तरफ झुकना अथवा कर्म तरफ झुकना यह तेरे हाथ की बात है। यदि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव तरफ झुके तो कर्म के उदय को उदय नहीं कहते अपितु वह कर्म की निर्जरा कहलाती है। पहले कर्म सत्तारूप थे, फिर कर्म का पाक आता है; वह कर्म का पाक कर्म में आता है किन्तु आत्मा में वह पाक नहीं आता। जड़ का फल जड़ में आता है। अब वहाँ जीव, जड़ तरफ झुकता है और आत्मा की योग्यता आदि से उसरूप परिणमता है इसलिये उस कर्म को जीव विपाकी कहा जाता है किन्तु कर्म, जीव को पाक नहीं देता। स्वभाव तरफ झुके तो उसे कर्म की निर्जरा हो जाती है। सभी जीवों को कर्मांशों का उदय है। जीव कर्म तरफ झुकता है तो वह मिथ्यात्व भाव करता है। निमित्त तरफ झुकाव करना अथवा स्वभाव तरफ झुकाव करना यह आत्मा के हाथ की बात है। जगत के मार्ग से यह पृथक मार्ग है।

धर्मात्मा के कर्म के उदय को निर्जरा कहते हैं और अज्ञानी के कर्म के उदय को - बन्ध का कारण कहते हैं.

इस ४५ वी गाथा में केवली भगवान की औदयिक क्रिया को क्षायिकी कहना है।

औदयिकी होने पर भी उसे क्षायिकी क्यों कहा ? निचलीदशा में धर्मात्मा के कर्म के उदय को निर्जरा क्यों कहा ?

अज्ञानी जीव को कर्म का उदय दूसरे समय में तो छूट जाता है। कर्म पुद्गल की विकारी पर्याय है जिसका उत्पाद होकर, दूसरे समय में व्यय होता है। उस कर्म के उत्पाद समय में ज्ञानी का स्वभाव तरफ झुकाव है, इसलिये उस कर्म के उदय को निर्जरा कहते हैं।वास्तव में तो वहाँ पुद्गल कर्म का उदय है किन्तु उसी समय में उसे निर्जरा कहा है। पूजा-पाठ में आता है कि -

''कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई''

अर्थात् की तेरी भूल है। कर्म के उत्पाद का उस समय उदय ही है किन्तु ज्ञानानन्द स्वभाव की दृष्टि और रमणता होने से उस उत्पाद को निर्जरा अथवा व्यय कह दिया है। स्वभाव के झुकाव की अपेक्षा से उसे व्यय कहते हैं और कर्म तरफ झुकाव हो तो उत्पाद को उदय ही कहा है। जिस समय, जिसका उत्पाद होता है - उसका उसी समय व्यय नहीं होता। पूर्व पर्याय का व्यय होता है किन्तु वर्तमान उत्पाद का वर्तमान समय में व्यय नहीं होता; किन्तु स्वभाव सन्मुख दृष्टि के कारण कर्म के उदय के उत्पाद को व्यय अथवा निर्जरा कहते हैं।

अज्ञानी कर्म तरफ जुड़ान करता है इसलिए उस उत्पाद को उत्पाद कहा और उसे बन्ध का कारण कहा। धर्मात्मा को कर्म के उदय के समय स्वभाव सन्मुख दृष्टि होने से उस उत्पाद के उदय को निर्जरा कहते हैं। जिस समय कर्म का उत्पाद है उस समय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ने कर्म तरफ जुड़ान नहीं किया इसलिये उस कर्म के उत्पाद को निर्जरा कहते हैं। यह सिद्धांत नीचे से शुरू होकर केवली में पूरा होता है।

तीर्थंकर देव को पारिणामिकभाव शुद्ध होता जाता है, इसलिए उनकी औदयीकी क्रिया क्षायीकी है.

जैसे, इस ऊंगली के सीधेपने का उत्पाद जिस समय है उसी समय व्यय नहीं होता - दूसरे समय व्यय होता है; वैसे ही कर्मांशों का जिस समय उत्पाद हुआ वह तो ज्ञानी और अज्ञानी सभी को दूसरे समय उनकी निर्जरा हो जाएगी। कर्म के उदय के समय ज्ञानी स्वभाव सन्मुख जुड़ता है इस कारण उस उदय को निर्जरा कहा है, क्योंकि वह आगामी बन्ध का कारण नहीं होता।

यशोविजय जी (एक श्वेताम्बर साधु) ने इस गाथा में भूल निकाली है कि - जिस समय उत्पाद होता है उस समय को निर्जरा क्यों कहा ? उन्हें इस गाथा का अर्थ समझ में नहीं आया। केवली भगवान की औदयीकी क्रिया को क्षायीकी कहा है। उस उदय के काल में उसे क्षायिकी कहते हैं। उदय के दूसरे समय में क्षय तो ज्ञानी अज्ञानी सभी को होता है; यह तो है ही, किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि उदय के काल में ही वह क्षायीकी कहलाती है। यशोविजय जी कहते हैं कि उदय को व्यय क्यों कहा ? ऐसी यहाँ उन्होंने आपत्ति उठाई थी; किन्तु वे समझे ही नहीं। निमित्त है तो विकार होता है - ऐसी विपरीत दृष्टिवंत को यह बात नहीं बैठेगी।

समकिती जीव को चारित्रमोह के उदय के समय स्वभाव में जुड़ान है इस कारण उसे निर्जरा कहा है। समकिती के भोग को भी निर्जरा का कारण कहा है। लोभ के परिणाम के समय, उदय होने पर भी स्वभाव सन्मुख दृष्टि है, इस कारण निर्जरा कही गई है। श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने यह बात स्पष्ट कही है कि जिस समय औदयिकी क्रिया है उस समय क्षायीकी क्रिया कहते हैं। केवली भगवान को समय-समय का पारिणामिकभाव शुद्ध होता जाता है।

यशोविजय जी कहते हैं कि - जिस समय कर्म का उदय है उसे क्षय कैसे कहा जाय ? दूसरे समय क्षय कहलाये। इस तरह उनको यह बात नहीं बैठती; क्योंकि उनकी दृष्टि कर्म ऊपर गई है - स्वभाव तरफ दृष्टि नहीं है। जिस समय कर्म का उदय है उस समय विकार है और उस समय कर्म का बन्ध है।

केवली भगवान को हलने-चलने व उपदेश आदि की क्रिया होती है उस समय औदयीकी क्रिया होने पर भी वह बन्ध का कारण नहीं है, किन्तु सर्वज्ञ का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पारिणामिक भाव जो शुद्ध होना बाकी है - वह शुद्ध होता जाता है इसलिये उसे कार्यभूत मोक्ष का कारणभूत कहा है। केवली भगवान को जिस समय आश्रव होता है उसी समय खिर जाता है - ऐसा कहा है। ज्ञानी का झुकाव स्वभाव तरफ है और अज्ञानी का झुकाव कर्म तरफ।

(१) निचलीदशा में सम्यक्दृष्टि को चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होने पर भी जितने अंशो में जीव उसमें नहीं जुड़ता उतने अंश में उस कर्म के उदय को निर्जरा कहते हैं।

(२) केवली भगवान को साता वेदनीय कर्म के परमाणु का आश्रव जो समय-समय होता है, वह उस समय चला जाता है - ऐसा शास्त्र में कथन है।

शंका :- जिस समय आश्रव है तो क्या उसी समय व्यय हो जाता है ?

समाधान :- नहीं। फिर भी जिस समय आश्रव का भाव है उसी समय व्यय कहा है। स्वभाव की अपेक्षा से आश्रव को चला गया कहा है।वास्तव में तो दूसरे समय परमाणु जाते हैं, किन्तु यहाँ उसी समय निर्जरा कही है। इस कारण जो कर्म के आश्रव का सद्भाव है उसे उसी समय अभावरूप कह दिया है।

(३) केवली भगवान को पूर्व कर्म का उदय है किन्तु समय-समय शुद्धता बढ़ती जाती है; इस कारण औदयीकी क्रिया को क्षायिकी कहा है। अज्ञानी को कर्म तरफ का झुकाव है इसलिये उसे यह समझ में नहीं आता; क्योंकि स्वभाव की अपेक्षा से उसे क्षायिकी कहा है।

सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण कहा है, वह दूसरे समय के भोग की बात नहीं है क्योंकि दूसरे समय तो सभी को निर्जरा होती ही है किन्तु भोग के समय स्वभाव की दृष्टि से निर्जरा कही है। औदयीकभाव का जिस समय उत्पाद है उसे उसी समय व्यय कहा है। अज्ञानी को ऐसी दृष्टि नहीं होती। स्वभाव का विकास होता है इसलिये उसे क्षायिक कहा है।

केवली भगवान को समय-समय शुद्ध पर्याय होती जाती है इसलिये औदयीक का कार्य, क्षायिक कहा है। वह औदयीक क्रिया चैतन्य के विकार का कारण नहीं होती किन्तु मोक्ष का कारण होती है इसलिये औदयीकी क्रिया को उसी समय क्षायीकी मानना। औदयीक क्रिया मोह रहित है, इसकारण वह बन्ध का कारण नहीं है अत: उसी समय उसे क्षायीकी कहा है।

अज्ञानी का झुकाव कर्म तरफ है किन्तु स्वभाव तरफ झुकाव नहीं है। ज्ञानी का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

झुकाव स्वभाव तरफ है। जिस समय कर्म का उदय आता है उस समय समकिती (सम्यक्दृष्टि) को स्वभावदृष्टि होने से निर्जरा कही है। जो राग आया उसे निर्जरा कहा है। इस तरह इस शैली को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक लिया है। एक समय के कर्म के परमाणु उसी समय चले जाय - यह व्यवहार दृष्टिवाले को नहीं जंचता। 'केवली को एक समय में कर्मरूप परिणाम आवे, दूसरे समय उदय आवे और तीसरे समय व्यय हो' - ऐसा श्वेताम्बर कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि केवली भगवान को जिस समय कर्म आते हैं - उसी समय खिर जाते हैं।

भाई ! अज्ञानी की श्रद्धा निमित्त पर जोर देती है और ज्ञानी की श्रद्धा स्वभाव तरफ है। केवली भगवान को नये परमाणु आते हैं वे उसी समय खिर जाते हैं - ऐसा कहा है तथा पूर्व कर्म के उदय आते हैं उन्हें क्षायिक कहा है। व्यवहाराभास दृष्टिवाले को यह बात स्वीकार नहीं होती। जिस समय उदय होता हैं उस समय क्षय नहीं होता - ऐसा अज्ञानी कहता है। भाई ! यह गाथा, बहुत ऊंची हैं।

यशोविजय जी श्वेताम्बर में उपाध्याय हो गये हैं; उन्होंने इस ४५वी गाथा की टीका की है और दिगम्बरों को कहा है कि 'तुम केवली भगवान को औदयीकभाव नहीं लेते और क्षायिक कहते हो तो जैसे आकी की रूई (फूल) उड़ती है; वैसे ही केवली का आत्मा उड़ता फिरेगा। इस तरह वे टीका (आलोचना) करते हैं।

समाधान :- कर्म और व्यवहार की दृष्टिवाले को यह बात नहीं बैठेगी। अघातिकर्म के उदय को यहाँ निर्जरा कहा है। यह बात बराबर - न्याय से निश्चित करना चाहिये। स्वभाव सन्मुख दृष्टिवंत को स्वभाव का उदय होने के कारण - कर्म के उदय को क्षायिक कहा है। यदि उदय के कारण विकार होता हो तो, संसार का अभाव नहीं होगा। कर्म का उदय, कर्म में है और आत्मा तो अपनी सत्ता में है - ऐसा भान हो, उसके कर्म के उदय को निर्जरा कहा है। उसीप्रकार केवलदशा में औदयीकी क्रिया को - क्षायीकी कहा है और उनके कर्म के आश्रव को उसी समय चले जाते हैं - ऐसा कहा है।

जैसे नदी में पानी का पूर आने पर भी जिसे तैरना आता हो तो वह तिर जाता है; वैसे ही कर्म का उदय होने पर भी स्वभाव-दृष्टिवंत तिर जाता है किन्तु कर्म के उदय की तरफ झुकाववाला नहीं तिरता। 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' - ऐसे भानवाले के कर्म के उदय को निर्जरा कहते हैं। केवली के आश्रव को उसी समय अभाव कहा और औदयीकी क्रिया को क्षायिकी कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अब, यदि औदयीकी क्रिया को क्षायिकी मानना चाहिये तो कर्म का उदय भी अर्हंत भगवंतों को, स्वभाव विघात का कारण नहीं होता। जिस समय कर्म का उदय आया उसका दूसरे समय में क्षय होना तो सभी को लागू पड़ता है - यह बात यहाँ नहीं है अपितु उदय के समय में ही उसे क्षायिकी कहा है; इसलिये जिस ओर (तरफ) दृष्टि है उसी के ऊपर धर्म-अधर्म का आधार है।

ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को छोड़कर पर को तथा राग को अपना मानना वह संसार है.

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है; यह ज्ञान बाहर में से नहीं आता किन्तु अंतर में से आता है - ऐसी अंतरदृष्टि करके जिसने केवलज्ञान प्रगट किया है, उसे सदोषता नहीं रहती। अर्हन्त भगवान को अंदर स्वभाव में से केवलज्ञान प्रगट हुआ है यह ज्ञान जानने-देखने का काम करता है। सम्यग्दर्शन से लेकर सीधे केवलज्ञान तक आत्मा, जानने की क्रिया करनेवाला है। सम्यग्दर्शन न हुआ हो तो भी आत्मा जानना-देखना करता है किन्तु भ्रम से 'मैं पर को करता हूँ' और वह मेरी क्रिया है - ऐसा भ्रम करता है; जो अज्ञान भाव है और वही संसार है क्योंकि मिथ्या भ्राँति ही मुख्यरूप से संसार है और अस्थिरता गौणरूप से संसार है। शरीर-मन-वाणी, कुटुम्ब अथवा कर्म संसार नहीं है अपितु पर की क्रिया मैं करता हूँ अथवा राग, ज्ञान के लिये सहायक है - ऐसी मान्यता संसार है अथवा तो वह पाप और पाखण्ड है और वही स्वयं 'संसरणम्' है। संसरणम् अर्थात् सरक जाना। ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव से हटकर (छोड़कर) पर को अथवा राग को अपना मानना वह संसारण है, वही भ्राँति और संसार है।

'मैं ज्ञानस्वभावी हूँ' - पुण्य-पाप उपाधि है जो ज्ञानस्वभाव में नहीं है - संयोग पृथक है। संयोग की पृथकता का और विभाव की विपरीतता का ज्ञान होना चाहिये अथवा 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' - यह मानना धर्म है। पर की दया अथवा पर की क्रिया दोष का कारण नहीं है। धर्मात्मा को मिथ्यात्व का बंधन नहीं है; (अन्य) अल्प बंधन है - वे भी दूर हो जायेंगे और वह पूर्णदशा प्रात करेगा।

पर वस्तु, शरीर आदि की जो अवस्था होती है वह जड़ से होती है किन्तु अज्ञानी को भ्रम है कि - मेरी सत्ता के कारण शरीर की अवस्था है; ऐसा माननेवाला जड़ की सत्ता का नाश करता है और कहता है कि - क्या आत्मा के बिना भी बोला जा सकता है ? क्या आत्मा के बिना भी चला जा सकता है ? ऐसा भ्रम अज्ञानी को पड़ा हुआ है। शरीर-मन-वाणी आदि जड़ की क्रिया जड़ से होती है और आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसी दृष्टि होने के बाद भी जो अल्प राग-द्वेष होते हैं वे भी दूर हो जायेंगे।

भगवान को मोह-राग-द्वेष का अभाव है इसलिये उन्हें कर्म का क्षय कहा है.

यहाँ भगवान की बात है। भगवान की जो उत्कृष्ट ध्वनि निकलती है वह आत्मा से नहीं निकलती; वह ध्वनि स्वयं निकलती है। उससे भगवान को दोष नहीं है। आत्मतत्त्व निष्कंप अर्थात् प्रदेश के कंपन से रहित है। उनकी पर्याय में जो प्रदेश परिस्पंदन क्रिया होती है वह निमित्तभूत पूर्व में बंधे हुये कर्म के उदय से उत्पन्न हुई है इसलिये वह औदयीकी है अर्थात् वह आत्मा के प्रदेश में कम्पन नाम कर्म के निमित्त से है; वैसे ही कर्म के निमित्त से जो बाह्य हलन-चलन की क्रिया होती है वह औदयीकी क्रिया है। वे क्रियाएं आत्मा में विकार नहीं करवाती।

हजारों गांवों में विहार हो - दिव्यध्वनि छूटती हो किन्तु वे क्रियाएं मोह-राग-द्वेष नहीं करवाती। भगवान को मोह-राग-द्वेष नहीं है क्योंकि उन्होंने मोह कर्म का नाश किया है अर्थात् कर्म अन्य अवस्थारूप परिणमित हो गये हैं। तथा वे क्रियाएं उन्हें, मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण - नये बन्ध में कारणरूप नहीं होती अपितु वे पूर्व कर्म के क्षय में कारणरूप है। इस तरह उदय, क्षय में कारण है क्योंकि उस समय का स्वकाल शुद्ध है इस कारण उदय को क्षय कहा है।

कर्म के उदय से विहार आदि होते हैं - यह निमित्त का कथन हैं। दिव्य ध्वनि का छूटना, शरीर के हिलने आदिरूप अवस्था का होना स्वयं के कारण होती है उसमें कर्म निमित्त है; इस तरह कर्म अपना रस देकर खिर जाते हैं। इसप्रकार मोहनीय कर्म के क्षय में कारणभूत होने से अर्हंत भगवान की वह औदयीकी क्रिया क्षायीकी कहने में आई है।

(१) यहाँ दिशा परिवर्तन की बात है। 'मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ' - ऐसा जिसे भान है ऐसे धर्मात्मा को कर्म का उदय होने पर भी दृष्टि अपेक्षा से उसे निर्जरा कहा है।

(२) आगे जाकर चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होने पर भी जितने अंशों में उसमें नहीं जुड़ता उतने कर्म के उदय को निर्जरा कहा है।

(३) केवलीभगवान को जिस समय साता के परमाणुओं का आश्रव होता है वह उसी समय छूट जाता है ऐसा यहाँ कहा है, क्योंकि भगवान को आगामी बन्ध नहीं होता।

(४) पूर्व कर्म का उदय भगवान को आता है वह विहार, दिव्यध्वनि आदि में निमित्त है; वे कर्म छूटते जाते हैं और पारिणामिकभाव शुद्ध होता जाता है इसलिये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

औदयिकी भाव को क्षायिक भाव कहा है।

निचलीदशा में भी जीव शरीर की क्रिया नहीं कर सकता। पैर में लकवा लग जावे तब इच्छा होने पर भी नहीं चल सकता। जड़ की क्रिया जड़ से होती है उससे किसी को भी बन्ध नहीं होता। अज्ञानी मानता है कि 'मेरे से जड़ की क्रिया होती है'- जो अज्ञान भाव है।

वस्तु का स्वभाव जैसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा है - वैसी मान्यता जीव ने की नहीं। शरीर के खण्ड-खण्ड टुकड़े करे फिर भी शुक्ल लेश्या के परिणाम किया; परन्तु आत्मा के भान बिना एक भी भव नहीं छूटा। छहढाला में कहा है कि -

मुनिव्रत धार अनन्तबार, ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो ।।

अनन्त बार शरीर के खण्ड-खण्ड टुकड़े किये गये वहाँ भी क्षमा धारण करता है किन्तु वह मिथ्यादृष्टि की क्षमा है। जो पुण्य बन्ध को क्षमा मानता है उसे धर्म की खबर ही नहीं है; उसने शुक्ल लेश्या से पार (रहित) आत्मा की दृष्टि नहीं की। आत्मा के भान बिना की क्रिया मरुस्थल में विलाप करने के समान (निष्फल) है।

चिदानन्द भगवान आत्मा है। पर्याय में पुण्य-पाप होते हैं वे विकार हैं - ऐसे यथार्थ भान बिना धर्म नहीं होता। यहाँ भगवान की औदयिक क्रिया क्षायिकी कही गई है। उनके पारिणामिक भाव की समय-समय शुद्धता बढ़ती जाती है इसलिये औदयिकी क्रिया को क्षायिकी कहा है।

कोई कहता है - यदि तुम औदयिकी क्रिया को क्षायिकी कहोगे तो वे आक के फूल के समान ऊपर उड़ जावेंगे ?

समाधान :- जिसे ऐसी शंका है उसे आत्मा की, सनातन जैन धर्म की तथा सनातन वस्तु-दृष्टि की खबर नहीं है। औदयिकी क्रिया को क्षायिकी क्रिया क्यों कहा ? इस तरह अज्ञानी को यह नई बात लगती है। अथवा कोई कहता है कि उदय भाव का दूसरे समय क्षय होगा - तो ऐसा भी नहीं है। जिस समय औदयिकी भाव है उसे उसी समय क्षायिकी भाव कहा है किन्तु अज्ञानी को यह बात नहीं बैठती। जैसे नीचेवाला घड़ा यदि उल्टा रखा गया हो तो ऊपर रखे गये सभी घड़े उल्टे ही होंगे; वैसे ही 'जिसकी दृष्टि उल्टी है उसके सभी आचरण उल्टे ही हैं।'

भगवान की औदयीकी क्रिया अल्पदोषवाली होने पर भी अंतर शुद्धि बढ़ती जाती है इसलिये यहाँ औदयीकी को क्षयिकी कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४६

अथ केवलिनामिव सर्वेषामपि स्वभावविघाताभावं निषेधयति-

जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण।
संसारो वि ण विज्जदि सव्वेसिं जीवकायाणं ॥४६॥

अब, केवलीभगवान की भाँति समस्त जीवों के स्वभावविघात का अभाव होने का निषेध करते हैं:-

यदि आत्मा शुभ अशुभ स्वयं स्वभाव से होता नहीं।
तो सर्व जीव समूह के संसार भी बनता नहीं ॥४६॥

गाथार्थः- यदि (ऐसा माना जाये कि) आत्मा स्वयं स्वभाव से (-अपने भाव से) शुभ या अशुभ नहीं होता (शुभाशुभभाव में परिणमित ही नहीं होता) तो समस्त जीवनिकायों के संसार भी विद्यमान नहीं है ऐसा सिद्ध होगा।

टीकाः- यदि एकान्त से ऐसा माना जाये कि शुभाशुभभावरूप स्वभाव में (-अपने भाव में) आत्मा स्वयं परिणमित नहीं होता, तो यह सिद्ध हुआ कि (वह) सदा ही सर्वथा निर्विघात शुद्धस्वभाव से ही अवस्थित है; और इसप्रकार समस्त जीवसमूह, समस्त बन्ध कारणों से रहित सिद्ध होने से संसार अभावरूप स्वभाव के कारण नित्य मुक्तता को प्राप्त हो जायेंगे अर्थात् नित्य मुक्त सिद्ध होवेंगे ! किन्तु ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि आत्मा परिणाम धर्मवाला होने से, जैसे स्फटिकमणि, जवाकुसुम और तमालपुष्प के रंगरूप स्वभावयुक्तता से प्रकाशित होता है उसीप्रकार, उसे (आत्माके) शुभाशुभ-स्वभाव-युक्तता प्रकाशित होती है। (जैसे स्फटिकमणि लाल और काले फूल के निमित्त से लाल और काले स्वभाव में परिणमित दिखाई देता है उसीप्रकार आत्मा कर्मोपाधि के निमित्त से शुभाशुभ स्वभावरूप परिणमित होता हुआ दिखाई देता है)।

भावार्थः- जैसे शुद्धनय से कोई जीव शुभाशुभभावरूप परिणमित नहीं होता उसीप्रकार अशुद्धनय से भी परिणमित न होता हो तो व्यवहारनय से भी समस्त जीवों के संसार का अभाव हो जाये और सभी जीव सदा मुक्त ही सिद्ध हो जावें ! किन्तु यह तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इसलिये जैसे केवली भगवान के शुभाशुभ परिणामों का अभाव है उसीप्रकार सभी जीवों के सर्वथा शुभाशुभ परिणामों का अभाव नहीं समझना चाहिये ॥४६॥

* * *

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ४६ पर प्रवचन

उत्थानिका पर प्रवचन :- अब केवली भगवंतो के समान ही सभी जीवों को स्वभाव विघात के अभाव होने का निषेध है। सभी आत्मा चैतन्य ज्योत है इसलिये, संसारी को भी दोष नहीं है - ऐसा अज्ञानी दलील करता है। जैसे केवली भगवान को बन्ध नहीं है, वैसे ही अज्ञानी को भी बन्ध नहीं होगा क्योंकि आत्मा निर्दोष है; इसलिये उसे (अज्ञानी को) दोष नहीं - ऐसा अज्ञानी कहता है। आत्मा का द्रव्य-गुण शुद्ध है तो फिर पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आई ? अत: कर्म के कारण अशुद्धता आई है - ऐसा अज्ञानी मानता है। द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है - पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आती है ? इसलिये कर्म के कारण अशुद्धता आती है ऐसा अज्ञानी कहता है। जैसे भगवान को औदयिकी क्रिया क्षायिकी कही; वैसे ही मैं भी आत्मा हूँ - मुझे भी दोष नहीं है - ऐसा मानकर वह सभी दोषों को कर्म में रखता है ऐसा वह मूर्ख-मिथ्यादृष्टि मानता है।

यदि संसारी को पर्याय में विकार न माने तो संसार सिद्ध नहीं होगा.

श्री कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं कि यदि यह माना जावे कि आत्मा स्वयं अपने भाव से दया-दान, व्रत-तप और हिंसा, झूठ, चोरी के भावरूप नहीं होता तो सर्व जीवों को संसार ही विद्यमान नहीं है ऐसा ठहरेगा। स्वभाव को छोड़कर - विभावरूपदशा स्वयं न करे तो संसार सिद्ध नहीं होता। शुभ-अशुभ परिणाम अपनी अशुद्ध पर्याय की सत्ता है। दया-दान पुण्यरूप सत्ता है और हिंसा, झूठ, चोरी, भ्राँति अशुभ-पापरूप सत्ता है और उसरूप स्वयं नहीं परिणमें तो संसार कहाँ ठहरेगा ? क्या कर्म संसार है ? कर्म में संसार है ? शरीर संसार है ? शरीर में संसार है ? - नहीं। जैसे दर्पण में मुंह का मैल दिखाई देता है, उस मैल को निकालने के लिये यदि दर्पण को घिसने लग जावे तो मैल नहीं निकलता; इसी तरह आत्मा की पर्याय में मैल है उसे निकालने के लिये - कर्म के नाश करने को उपाय कहे तो वह व्यर्थ है। इसलिये शुभ-अशुभभाव स्वयं करता है।

यदि शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत (प्रतिष्ठा) आदि संसार हो तो मृत्यु के समय ये सभी पड़े रहेंगे तो फिर तेरा मोक्ष हो जाना चाहिये। अत: ममता संसार है। ममता आत्मा की पर्याय में रहती है। स्त्री, पुत्र संसार में नहीं। कोई परदेश जावे तो वह स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब से तो बहोत दूर चला जाता है - तो क्या उससे संसार दूर रहता होगा ? नहीं किन्तु संसार भी साथ चलता है। यदि, आत्मा की पर्याय में शुभ-अशुभ नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होते और कर्म के कारण संसार होता तो संसार - कर्म में होना चाहिये और अपनी मुक्ति हो जाना चाहिये।

मिथ्यादृष्टि चाहे जहाँ रहे - समवरण में भी रहे परन्तु उसे वस्तु स्वभाव की खबर नहीं है। विकार मेरे में नहीं इसलिये विकार पर के कारण है - ऐसा माने तो विकार नहीं मिटता। पर्याय में संसार किसका है ? क्या वह कर्म के कारण है ? नहीं। यदि उसे कर्म के कारण माने तो संसार का अस्तित्त्व ही नहीं रहेगा।

तथा कोई कहे कि - विकार का परिणमन हमारा है किन्तु वह कर्म के बिना नहीं होता इसलिये वह कर्म के कारण होता है - ऐसा अज्ञानी कहता है तो यह बात भी असत्य है। अनन्त जीवों का संसार स्वयं के कारण है। आत्मा के भान द्वारा मिथ्यात्वरूपी संसार का नाश होता है और स्थिरता द्वारा राग का संसार नाश होता है।

पर पदार्थ का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में नहीं है किन्तु राग का ग्रहण-त्याग भी आत्मा में नहीं है। यदि, राग का ग्रहण-त्याग माना जावे तो स्वभाव, रागमय हो जायेगा इसलिये स्वभाव में राग नहीं है पर्याय में राग है - ऐसा भान करके स्वभाव में झुके तो संसार दूर हो जाता है। यदि पर्याय में भी संसार को स्वीकार नहीं करे तो संसार किसका ?

यदि राग का ग्रहण-त्याग स्वभाव में माने तो स्वभाव - रागमय हो जायेगा; इसलिये आत्मा का स्वभाव ज्ञानानन्द है - ऐसी दृष्टि होने पर मिथ्यात्व का पर्याय में से त्याग हो जाता है किन्तु मिथ्यात्व का त्याग नहीं करना पड़ता और अंतर लीनता होने पर राग का त्याग हो जाता है किन्तु राग का त्याग नहीं करना पड़ता।

अब स्वभाव में विकार नहीं - ऐसा कहा, इसलिए कोई अज्ञानी ऐसा माने कि - 'विकार पर्याय में भी नहीं है' तो यह भ्रम है। उसने तो आत्मा को 'अहम् ब्रह्मास्मि' मान लिया है किन्तु यह तो भूल है। वस्तु स्वरूप जैसा है वैसा भगवान ने जाना है - वैसा ही वाणी में आया है। संसार पर्यायरूप जीव स्वयं परिणमित होता है और पर्याय आत्मा का अंश है; इस कारण अंशी आत्मा स्वयं विकाररूप क्षणिक परिणमित होता है - निमित्त का आश्रय करके स्वयं परिणमित होता है; और यदि स्वभाव का आश्रय ले तो विकार छूट जाता है।

संसारी को पर्याय में भी अशुद्धता नहीं माने तो वह सदा ही -सर्वथा मुक्त ठहरेगा .

टीका पर प्रवचन :- यदि एकान्त से ऐसा माना जावे कि - पुण्य-पाप के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणामरूप तीन शुभ लेश्या और तीन अशुभ लेश्यारूप से आत्मा स्वयं परिणमित नहीं होता तो सदा ही सर्वथा निर्विघात शुद्धस्वभाव से आत्मा अवस्थित ठहरेगा। जैसे केवली भगवान को निर्विघात है वैसा ही संसारी को माने तो संसार सिद्ध नहीं होगा।

आत्मा स्वयं के कारण - स्वयं विकाररूप नहीं परिणमित हो तो सदा ही- त्रिकाल, सर्वस्व शुद्धस्वभाव ठहरेगा। सर्वथा कब माना ? जैसे, द्रव्य-गुण में निर्विघात है; वैसे ही पर्याय निर्विघात ले तब सर्वथा हो जायगा। पर्याय विकाररूप नहीं हो तो वह सर्वथा निर्दोष हो जायगी। द्रव्य-गुण तो सदा ही और सर्वथा शुद्ध हैं किन्तु पर्याय को सदा ही और सर्वथा शुद्ध माने तो पर्याय का स्वभाव शुद्ध ही ठहरेगा। ऐसा मानने पर उसने अनादि से पर्याय को शुद्ध मान लिया है - परन्तु ऐसा नहीं है।

तथा कोई कहे कि 'अशुद्धता पर्याय में है किन्तु कर्म के कारण अशुद्धता है इसलिये, कर्म को दूर (नष्ट) करो तो अशुद्धता दूर होगी और कर्म को दूर (नष्ट) करने के लिये बाह्य त्याग करो - पर का त्याग करने से कर्म छूटेंगे और कर्म घटने से राग घटेगा' - ऐसा माननेवाला अज्ञानी है। उसे वस्तु (स्वभाव) की खबर नहीं है।

यह एल.एल.बी. की अथवा ऊंची क्लास की बात नहीं है। लोग कहते हैं कि - जगत में जबतक जीता है तबतक समाज में ऋणी है। इसलिये जगत पर उपकार करना चाहिये। जिस वस्तु का जिस समय जो परिणमन होना होता है उस समय अनुकूल निमित्त होता है।

यदि, संसारी जीव को भी पर्याय में शुद्धता माने तो सभी जीव, बन्ध कारणों से रहित होने से, संसार अभावरूप स्वभाव के कारण वे नित्य मुक्तपने को प्राप्त होंगे। 'मैं सदैव मुक्त हूँ - सदा शिव हूँ' - ऐसा अज्ञानी मानता है; यदि पर्याय में पूर्ण शुद्धता हो तो - वर्तमान में आनन्द - पूर्ण प्रगट होना चाहिये। अज्ञानी पर्याय में अशुद्धता नहीं मानता अथवा कर्म के कारण अशुद्धता मानता है - वह भ्राँति है। पर्याय में अशुद्धता है किन्तु स्वभाव में अशुद्धता नहीं है - ऐसे स्वभाव का भान करे तो मिथ्यात्व की अशुद्धता दूर हो जायगी और अंतर स्थिर होने पर राग-द्वेष दूर होंगे। ऐसा होने पर पूर्ण वीतरागता होगी। इसीका नाम धार्मिक क्रिया है।

आत्मा क्या है ? द्रव्य क्या है ? इसके भान बिना अज्ञानी त्याग करना चाहता है, सादा जीवन बिताना चाहता है। आत्मा पूर्णानन्द है; विभाव, स्वभाव में नहीं - ऐसे भेदज्ञान बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहावत भी है कि -

'बुद्धी बिना ना बाबा (साधु) भव सागर में डूबी मुआ।'

श्रीमद् राजचंद्र जी ने भी कहा है कि :-

यम नियम संयम आप कियो,
पुनि त्याग विराग अथाह लियो ।
वह साधन बार अनन्त कियो,
तदपि कछु हाथ हजू न धर्यो ॥

यम, नियम, संयम ऐसे साधन बहुत बार किये है। मेरे स्वरूप में आनन्द है; पर्याय में अशुद्धता मेरे कारण है। इसलिये पर्याय दृष्टि छोड़कर स्वभाव दृष्टि कर, उसके बाद चारित्रदशा आती है। आत्मा के भान पूर्वक अतीन्द्रिय आनन्द आये - वह चारित्र है किन्तु बाहर की क्रिया में चारित्र नहीं है। बाह्य त्याग करके, पर को उपदेश दे तो बहुत लाभ होगा - ऐसा अज्ञानी मानता है; किन्तु आत्मा पर को उपदेश नहीं दे सकता और उपदेश से पर को लाभ नहीं होता। भगवान ने भी उपदेश नहीं दिया; भगवान तो ज्ञाता-दृष्टा है। भगवान को तीर्थंकर नाम कर्म की निर्जरा करने के लिये उपदेश देना पड़ा अथवा उन्हें विहार करना पड़ा यह बात भी खोटी (असत्य) है।

भाई ! भगवान ज्ञाता-दृष्टा है। अज्ञानी जीव कहता है कि 'जैसे किसी तपेले (बर्तन) के ऊपर मैंल है उसे राखादि से घिसने पर मैल निकलता है; वैसे ही कर्म का मैल निकालने के लिये बाह्य तप करना पड़ता है' परन्तु वह सच्चा रास्ता नहीं है। बाह्य क्रिया से रहित और पुण्य से रहित, आत्मा का भान करे तो अज्ञानरूपी मैल निकले - यही एक उपाय है।

यदि पर वस्तु के कारण विकार हो तो विकार हेय नहीं हो सकता.

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है। उसमें विकार कहाँ से आया ? ऐसा कोई प्रश्न करता है।

जैसे यदि आत्मा द्रव्य-गुण से शुद्ध है वैसे ही पर्याय से भी शुद्ध हो तो वह अनादि से नित्य शुद्ध ठहरता है और ऐसा मानने पर संसार सिद्ध नहीं होगा। संसार, आत्मा की पर्याय नहीं किन्तु पर की है - ऐसा माने तो उसे हेय नहीं जान सकता, क्योंकि पर वस्तु तो ज्ञेय है। आत्मा ज्ञान स्वरूप चैतन्य है; यदि उसकी पर्याय में भी केवली भगवान के समान विकार नहीं हो तो संसार सिद्ध नहीं होगा। आत्मा आदि-अन्त रहित है, जैसे सिद्धों की पर्याय में मोह-राग-द्वेष नहीं है; वैसे ही इस संसारी की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय में भी मोह-राग-द्वेष नहीं हो तो मोह-राग-द्वेष हेय नहीं रहते। यदि पर वस्तु-संसार हो तो पर वस्तु तो ज्ञेय है इस तरह तो विकार ज्ञेय हुआ परन्तु हेय नहीं रहा। यदि संसार पर वस्तु का हो तो पर वस्तु तो ज्ञेय है; वैसे ही विकार भी ज्ञेय हो गया इसलिये यह बात ठीक नहीं है। आत्मा परिणमन धर्मवाला है। विकार अपनी सत्ता में होता है; पर वस्तु तो ज्ञेय है, विकार हेय है और स्वभाव उपादेय है। इस तरह इसमें तीन बात आई है -

(१) यदि, विकार पर्याय में न हो तो विकार को हेय करके स्वभाव को उपादेय नहीं बनाया जा सकता।

(२) यदि मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग - पर वस्तु में हो तो पर वस्तु तो ज्ञेय है इसलिये यह बराबर (ठीक) नहीं है।

(३) आत्मा, परिणाम स्वभाववाला होने से अवस्थान्तर भावान्तर होना यह स्वयं का धर्म है; इसलिये विकार अपना परिणाम है। स्वभाव ऊपर दृष्टि करे तो विकार हेय हो जाता है। यदि विकार पर का हो तो पर का परिणमन अपने आधीन नहीं होता इसलिये विकार भी नहीं बदल सकेगा। अत: अपनी पर्याय में विकार होता है इसलिये वह बदल सकता है।

अपने स्वभाव को भूलकर, जीव स्वयं शुभाशुभभावरूप परिणमता है.

जैसे स्फटिक (मणि) को जासुंद पुष्प और तमाल पुष्प के रंगरूप स्वभाववालापना प्रकाशित होता है। वहाँ लाल और हरी अवस्थारूप होता है तो वह स्फटिक का स्वभाव है। यदि तमाल पुष्प और जासुंद पुष्प के कारण (स्फटिक में) झांई पड़ती हो तो - किसी लकड़ी के नीचे पुष्प रखें तो लकड़ी मे भी झांई पड़ना चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता। स्फटिक का वैसा पर्याय स्वभाव है इस कारण उस पुष्प के निमित्त से वह लाल-हरी झांईरूप स्वयं परिणमता है; वैसे ही आत्मा परिणाम स्वभाववाला है, उसे शुभाशुभ स्वभाववालापना प्रकाशित होता है। अपनी पर्याय का स्वभाव शुभाशुभ होने का है।

स्फटिक में क्रमबद्ध लाल, कालेरूप अवस्था जो होनेवाली है वही होती है - ऐसा देखना वह स्वभाव से देखना है किन्तु संयोग से देखना वह तो विपरीत दृष्टि है। इन दोनों दृष्टियों के बीच पूर्व-पश्चिम का अंतर है। आत्मा की पर्याय में विकार होता है, किन्तु वह विकार इन्द्रियों और शरीर में नहीं होता। लोग समझे बिना ही इसका उल्टा अर्थ करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा का स्वभाव मुक्त होने का है, किन्तु जब वह पर द्रव्य का आश्रय लेता है तो विकार होता है। 'जब शुद्धस्वभाव से च्युत होता है तब व्यवहार से कहा जाता है कि - वह पर द्रव्य से परिणमित होता है।' अपना शुद्ध द्रव्य, बन्ध का कारण नहीं है किन्तु पर द्रव्य की दृष्टि बन्ध का कारण है; पर द्रव्य की ममता बन्ध का कारण है किन्तु लोग पर द्रव्य के ऊपर दोष लगाते हैं यह उनकी भूल है।

वास्तव में, पर द्रव्य की ममता अशुद्धता का कारण है.

श्री समयसार नाटक बन्ध अधिकार के श्लोक ३४ में कहा है कि -

जैसै नाना बरन पुरी बनाइ दीजै हेठ,
उज्जवल विमल मनि सूरज-करांति है ।
उज्जवलता भांसै जब वस्तुकौ विचार कीजै,
पुरीकी झलकसौं बरन भांति भांति है ।
तैसैं जीव दरबकौं पुग्गल निमित्तरूप,
ताकी ममतासौं मोह मदिराकी मांति हैं ।
भेदग्यान द्रिष्टिसौं सुभाव साधि लीजै तहां,
सांची शुद्ध चेतना अवाची सुख सांति है ॥३४॥

पर वस्तु से परिणमित होता है इसका अर्थ यह है कि - पर वस्तु की ममता से परिणमता है; किन्तु पर वस्तु से परिणमित नहीं होता अपितु पर वस्तु की ममता से रागी होता है; स्व द्रव्यस्वभाव की रुचि छोड़ता है और पर द्रव्य की ममता करता है इसलिए रागी होता है।

आत्मा परिणाम धर्मवाला है अपनी पर्याय में विकार होता है - ऐसा निश्चित करे तो उसे हेय कर सकेगा; क्योंकि स्वभाव में लीनता होने पर विकार हेय हो जाता है। आगे तो विकार को निश्चयनय से अपना कह दिया है। गाथा १८९ में कहा है कि शुद्धपने और अशुद्धपने दोनों प्रकार से द्रव्य की प्रतीति कराते हैं परन्तु यहाँ निश्चयनय साधकतम होने से ग्रहण करने में आया है।

देखो ! यहाँ अपनी विकारी पर्याय को शुद्धपने कहा है। यहाँ अपनी अशुद्धता अपने से होती है ऐसा बताने के लिये शुद्धपना कहा है और कर्म के निमित्त से होता है - ऐसा कहने में अशुद्धपना कहा है, अतः विकार तेरा है ऐसा निर्णय कर। यदि विकार अपना है - ऐसा जाने तो उसे छोड़ सकता है।

निमित्त, नैमित्तिक की प्रसिद्धी करता है। कर्म के निमित्त से शुभाशुभ स्वभाव से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमता हुआ दिखाई देता है। जिसे पराधीनता ही ढूंढना है वह अपनी दृष्टि से उल्टी बात निकालता है। राग की उपेक्षा कब होगी ? कि जब स्वयं पर्याय में राग करता है - ऐसा निर्णय करे तो उसकी उपेक्षा और स्वभाव की अपेक्षा कर सकता है।

भावार्थ :- जहाँ शुद्धनय से कोई जीव शुभाशुभभावरूप परिणमित नहीं होता - ऐसा कहा है वहाँ विकार स्वभाव में नहीं - ऐसा बताया है; उसीप्रकार यदि अशुद्धनय से भी विकार-दया-दान आदि न हो तो व्यवहारनय से भी समस्त जीवों को संसार का अभाव होगा, किन्तु स्वयं के कारण पर्याय में संसार है और दया-दान, पूजा-पाठ, पुण्य-पाप के परिणाम होते हैं वे जड़ के कारण नहीं होते, अपनी पर्याय में होते हैं।

जैसे केवली भगवान को शुभाशुभ परिणामों का अभाव है; वैसे यदि सभी जीवों को सर्वथा शुभाशुभ परिणामों का अभाव नहीं समझना। सर्वथा कहने का आशय यह है कि - शुभाशुभ परिणाम स्वभाव में नहीं है यह शुद्धनय से बात है किन्तु पर्याय में शुभाशुभभाव होते हैं, इसलिये सर्वथा शब्द का प्रयोग किया गया है।

मोहकर्म का उदय होने पर भी जीव अपने पुरुषार्थ अथवा शुद्ध आत्मबल की भावना से राग-द्वेषरूप नहीं परिणमित हो तो बन्ध नहीं होता। स्वयं कर्म ऊपर लक्ष्य करे तो बन्ध होता है अथवा स्वभाव की दृष्टि नहीं रखे तो बन्ध होता है।

जिसप्रकार धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य दोनों यहाँ है। यदि, यह लकड़ी चले तो धर्मद्रव्य निमित्त कहा जाता है और स्थिर रहे तो अधर्म द्रव्य निमित्त कहलाता है; इसीप्रकार सभी निमित्त धर्मास्तिकायवत् है - ऐसा इष्टोपदेश में कहा है। कर्म का उदय होने पर भी शुद्धात्मा की भावना से रागरूप परिणमित नहीं होता तो बन्ध नहीं होता। ज्ञानस्वभाव पूर्ण शक्तिरूप है इस शक्ति से केवलज्ञान प्रगट होता है, यह बात यहाँ सिद्ध करना है। इसमें यह गाथा ऐसी आई है कि कोई कहता है कि जैसे केवली भगवान को मोह-राग-द्वेष नहीं है; वैसे ही सभी जीवों को संसार नहीं है - ऐसा माने तो यह बात (असत्य) है; क्योंकि संसारी जीवों को विकार और राग-द्वेष है।

अब, फिर से इसी विषय का अनुसरण करके अतीन्द्रियज्ञान का सर्वज्ञपने अभिनन्दन करते हैं। अहो ! अतीन्द्रियज्ञान सर्व को जाननेवाला है इस तरह उसकी प्रशंसा करते हैं।

ज्ञान और ज्ञेय दोनों स्वतंत्र है उनमें परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है.

यहाँ कोई किसी प्रोफेसर को कहे कि - मेरे ज्ञान में तुम प्रोफेसर दिखाई दिये हो, इसलिये तुम मेरे ज्ञान के आधीन हो; यदि आधीन नहीं हो और स्वतंत्र हो तो तुम

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तुम्हारे पितारूप अथवा अन्यरूप हो जाओ ?

उत्तर :- कोई एक दूसरे के आधीन नहीं है। ज्ञान तथा ज्ञेय दोनों का निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। ज्ञान, ज्ञान के कारण परिणमता है और ज्ञेय, ज्ञेय के कारण परिणमता है। जैसा सर्वज्ञ जानते हैं; वैसे ही ज्ञेय परिणमते हैं, और जैसे ज्ञेय परिणमते हैं वैसा ही सर्वज्ञ जानते हैं - ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। इस तरह केवलज्ञान का निर्णय करनेवाले को विकार और अल्पज्ञता की रुची छूट जाती है और अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय होता है।

तथा कोई कहता है कि - सर्वज्ञ भगवान ने पर की सभी पर्यायों को देखा है तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

सर्वज्ञ भूत, भविष्य और वर्तमान जानते हैं। यदि वे भविष्य की पर्यायों को पहले से नहीं जाने तो सर्वज्ञ नहीं रहे, किन्तु भगवान तो केवलज्ञान प्रगट हुआ तभी से उसे जानते हैं।

सर्वज्ञ के निर्णय में अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय है और यही पुरुषार्थ है.

तथा कोई कहता है कि जैसा होनेवाला होगा वही होगा - ऐसा भगवान ने देखा है, यदि ऐसा माना जाए तो इसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

समाधान :- अपनी पर्याय में निर्णय किया कि इस जगत में सर्वज्ञ है - ऐसा अपनी अल्पज्ञ पर्याय में निर्णय करता है। सर्वज्ञ अर्थात् ज्ञान पर्याय का पूर्ण स्वभाव जगत में है - ऐसा स्वीकार अपनी पर्याय में करता है; ऐसा निर्णय करने पर विकार और अल्पज्ञता की हेयबुद्धि होती है, अपने सर्वज्ञ स्वभाव की उपादेय बुद्धि होती है और अधूरी (अपूर्ण) पर्याय की भी हेय बुद्धि होती है; वैसे ही मैं भी सर्वज्ञ होने योग्य हूँ। इस तरह ज्ञाता स्वभाव का निर्णय होने पर अन्दर ठहरता है वह चारित्र है किन्तु क्रिया-काण्ड चारित्र नहीं है।

अब आगे सर्वज्ञपना तीन गाथा में सिद्ध करेंगे। अतीन्द्रियज्ञान भूतकाल की व्यतीत हो चुकी तथा भविष्य की अनुत्पन्न, वैसे ही वर्तमान पर्याय को जानता है। जैसा सर्वज्ञ को दिखा होगा वैसा ही क्रमबद्ध होगा - ऐसे क्रम का निर्णय करने पर, अक्रम स्वभाव का निर्णय होता है। यही भव के नाश करनें का उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ४७

अथ पुनरपि प्रकृतमनुसृत्यातीन्द्रियज्ञानं सर्वज्ञत्वेनाभिनन्दति

जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं ।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइयं भणियं ।।४७।।

अब पुनः प्रकृत का (चालू विषय का) अनुसरण करके अतीन्द्रियज्ञान को सर्वज्ञरूप से अभिनन्दन करते हैं । (अर्थात् अतीन्द्रियज्ञान सबका ज्ञाता है ऐसी उसकी प्रशंसा करते हैं):-

जो तात्कालिक इतर युगपद् विषम सर्व पदार्थ को ।
जाने विचित्र समन्ततः क्षायिक कहें उस ज्ञान को ।।४७।।

गाथार्थ :- जो एक ही साथ सर्वतः (सर्व आत्म प्रदेशों से) तात्कालिक, विचित्र (-अनेक प्रकार के) और विषम (मूर्त, अमूर्त आदि असमान जाति के) समस्त पदार्थों को जानता है उस ज्ञान को क्षायिक कहा है ।

टीका :- क्षायिक ज्ञान वास्तव में एक समय में ही सर्वतः (सर्व आत्म प्रदेशों से), वर्तमान में वर्तते तथा भूत-भविष्यकाल में वर्तते उन समस्त पदार्थों को जानता है जिनमें पृथकरूप से वर्तते स्वलक्षणरूप लक्ष्मी से आलोकित अनेक प्रकारों के कारण वैचित्र्य प्रगट हुआ है और जिनमें परस्पर विरोध से उत्पन्न होनेवाली असमान जातीयता के कारण वैषम्य प्रगट हुआ है । (इसी बात को युक्ति पूर्वक समझते है :-) क्रम-प्रवृत्ति के हेतुभूत क्षयोपशम अवस्था में रहनेवाले ज्ञानावरणीय कर्म पुद्गलों का उसके (क्षायिक ज्ञान के) अत्यन्त अभाव होने से वह तात्कालिक या अतात्कालिक पदार्थ - मात्र को समकाल - में ही प्रकाशित करता है; (क्षायिक ज्ञान) सर्वतः विशुद्ध होने के कारण प्रतिनियत प्रदेशों की विशुद्धि (सर्वतः विशुद्धि) के भीतर डूब जाने से वह सर्वतः (सर्व आत्म प्रदेशों से) भी प्रकाशित करता है; सर्व आवरणों का क्षय होने से, देश-आवरण का क्षयोपशम न रहने से वह सबको भी प्रकाशित करता है, सर्वप्रकार ज्ञानावरण के क्षय के कारण (सर्व प्रकार के पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान के आवरण में निमित्तभूत कर्म के क्षय होने से) असर्वप्रकार के ज्ञानावरण का क्षयोपशम (-अमुक ही प्रकार के पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान के आवरण में निमित्तभूत कर्मों का क्षयोपशम) विलय को प्राप्त होने से वह विचित्र को भी (अनेक प्रकार के पदार्थों को भी) प्रकाशित करता है; असमानजातीय-ज्ञानावरण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के क्षय के कारण (असमानजाति के पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान के आवरण में निमित्तभूत कर्मों के क्षय के कारण) समानजातीय ज्ञानावरण का क्षयोपशम (समानजाति के ही पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान के आवरण में निमित्तभूत कर्मों का क्षयोपशम) नष्ट हो जाने से वह विषम को भी (-असमानजाति के पदार्थों को भी) प्रकाशित करता है। अथवा, अतिविस्तार से पूरा पड़े (कुछ लाभ नहीं) ? जिसका अनिवार (रोका न जा सके ऐसा अमर्यादित) फैलाव है ऐसा प्रकाशमान होने से क्षायिक ज्ञान अवश्यमेव सर्वदा, सर्वत्र, सर्वथा, सर्व को जानता है।

भावार्थ :- क्रमपूर्वक जानना, नियत आत्मप्रदेशों से ही जानना, अमुक को ही जानना इत्यादि मर्यादायें मति-श्रुतादि क्षायोपशमिक ज्ञान में ही सम्भव है। क्षायिकज्ञान के अमर्यादित होने से एक ही साथ सर्व आत्मप्रदेशों से तीनोंकाल की पर्यायों के साथ सर्व पदार्थों को - उन पदार्थों के अनेक प्रकार के और विरुद्ध जाति के होने पर भी जानता है अर्थात् केवलज्ञान एक ही समय में सर्व आत्मप्रदेशों से समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जानता है ॥४७॥

* * *

गाथा ४७ पर प्रवचन

यहाँ क्षायिक ज्ञान के ऊपर जोर दिया गया है -

निज लक्षण से शोभायमान - समान और असमान द्रव्यों को केवलज्ञान जानता है.

क्षायिकज्ञान एक समय में सभी पर्यायों को जानता है। यदि आत्मा, सर्वज्ञ को बराबर समझ ले तो राग की हेय-बुद्धि होती है और स्वभाव की उपादेय-बुद्धि होती है।

तथा कोई कहता है कि - जैसा सर्वज्ञ ने देखा होगा, वैसा ही हमें राग होगा इसलिए हमें पुरुषार्थ नहीं रहा ?

समाधान:- सर्वज्ञ के निर्णय में ज्ञाता-दृष्टा का निर्णय हुआ है और उस निर्णय में भ्राँति नहीं होगी। ज्ञाता-दृष्टा का निर्णय हुआ - यही पुरुषार्थ है। वहाँ अल्प राग ज्ञेयरूप रह गया है।

भगवान के ज्ञान में भूत और भविष्यकाल-सभी कुछ जानने में आता है। ज्ञान समस्त पदार्थों को जानता है। वे ज्ञेय पदार्थ कैसे हैं कि जिसमें पृथकपने वर्तते स्व लक्षणोंरूप लक्ष्मी से आलोकित - अनेक प्रकारों के कारण वैचित्र्य प्रगट हुआ है अर्थात् कि - अनन्त आत्मा और अनन्त पुद्गल होने पर भी सभी - पृथकपने वर्तते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। द्रव्यों के भिन्न-भिन्न वर्तते ऐसे निज-निज लक्षण वे द्रव्यों की लक्ष्मी है - सम्पत्ति और शोभा है।

एक परमाणु भी अपने स्व-लक्षण लक्षित से शोभायमान है। निज लक्षण वह द्रव्य की शोभा और सम्पत्ती है। जड़ की जड़ सम्पदा है और चैतन्य की चैतन्य सम्पदा है। स्वयं अपने लक्षणरूपी लक्ष्मी से स्वयं शोभित हो रहा है। निगोद का जीव, सिद्ध का जीव, पृथक रहा परमाणु अथवा स्कंध में रहा परमाणु स्वयं के लक्षण से शोभित हो रहा है किन्त वे पर से शोभायमान नहीं है। पुद्गल-पुद्गल समान है, आत्मा-आत्मा समान है - फिर भी वे स्वयं के लक्षणों से शोभावाले है।

इस लकड़ी के स्कंध में रहे हुये प्रत्येक परमाणु स्वयं के लक्षण की लक्ष्मी से शोभित हैं किन्तु वे किसी दूसरे परमाणुओं के कारण शोभित नहीं होते। नीचे परमाणु है, इसलिये शोभायमान है - ऐसा नहीं है अपितु वे स्वयं की लक्ष्मी से शोभित हैं।

तथा चैतन्य से परमाणु असमान है, चैतन्य से धर्मद्रव्य असमान है; इस तरह असमानजातीयपने को जो वैषम्य (विषमतारूप) प्रगट हुआ है उसे केवलज्ञान जानता है। इसतरह समानजातीयपने तथा असमानजातीयपनेवाले पदार्थों को वह जानता है।

ज्ञानावरणीय कर्म का अभाव होने से केवलज्ञान तीन काल के पदार्थों को जानता है.

इसी बात को युक्तिपूर्वक समझाते हैं केवलज्ञान होने के पहले जो क्रम-प्रवृत्ति का हेतुभूत क्षयोपशम अवस्था में रहे हुए ज्ञानावरणी पुद्गल कर्म थे उनका क्षायिक ज्ञान होने पर अभाव होता है; इसकारण वह ज्ञान वर्तमान, भूत और भविष्यत् पदार्थ मात्र को समकाल में ही प्रकाशित करता है। कोई कहता है कि 'इस जीव को ऐसा ही निश्चित विकार इस काल में होगा - ऐसा भगवान नहीं जानते' तो यह बात असत्य है।

तथा कोई यह भी कहता है कि - 'द्रव्य में ऐसा कोई गुण नहीं है जिससे क्रमबद्ध पर्याय हो' किन्तु ये सभी बातें असत्य है। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन क्रमबद्ध है और भगवान ऐसा ही जानते हैं; दोनों स्वतंत्र है। क्रमबद्ध के कारण केवलज्ञान नहीं और केवलज्ञान के कारण क्रमबद्ध परिणमन नहीं है।

तथा भगवान सभी को अक्रम जानते हैं। भविष्य में होगा तब भगवान जानेंगे तो इसमें क्रम हो गया किन्तु भगवान को जानने में क्रम नहीं है वे युगपत् जानते हैं। क्षयोपशम ज्ञान में क्रम पड़ता है वहाँ उन्हें ज्ञानावरणी-कर्म निमित्त था, किन्तु यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षायिक ज्ञान में क्रम नहीं पड़ता; और उनको ज्ञानावरणी कर्म का अभाव हुआ है, इसलिये केवलज्ञान सभी को एक साथ अक्रम जानता है।

फेरफार करने की दृष्टि को छोड़कर, ज्ञानस्वभाव का निर्णय करना.

क्षायिक ज्ञान सर्व को पृथक-पृथक जानता है इस बात को यहाँ सिद्ध करते हैं। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है; उसकी अवस्था पूर्ण प्रगट होती है वह क्षायिक ज्ञान है। क्षायिक ज्ञान के निर्णय में सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ है। जगत में क्षायिक ज्ञान है ऐसे क्षायिक ज्ञान का क्या स्वरूप है ? इस बात के निर्णय में आत्मा का निर्णय होता है।

शंका :- कोई प्रश्न करता है कि- केवलज्ञान में जो दिखाई दिया है, उसमें फेरफार नहीं होता, इसलिये हमें क्या करना रहा ?

समाधान:- तेरी दृष्टि फेरफार ऊपर है अथवा ज्ञानस्वभाव ऊपर है ? ज्ञानस्वभाव का निर्णय यही पुरुषार्थ है। क्षायिक ज्ञान में सभी अवस्थाएँ निश्चित हैं; इसमें तेरी फेरफार ऊपर दृष्टि है अथवा सर्वज्ञ के निर्णय ऊपर दृष्टि है ? पर में फेरफार नहीं कर सकता। सर्वप्रथम सर्वज्ञ का निर्णय कर।

क्षायिक ज्ञान को सर्व ज्ञानावरणी कर्म का अभाव होने से वह तात्कालिक अथवा अतात्कालिक पदार्थ मात्र को समकाल में प्रकाशित करता है। इसप्रकार क्षायिक ज्ञान का निर्णय करने पर निमित्त, राग और अल्पज्ञता की दृष्टि छूटकर, स्वभाव का निर्णय होता है। यहाँ फेरफार करने का निर्णय करवाना ही नहीं है, किन्तु सर्वज्ञ स्वभाव का निर्णय करवाना है। फेरफार करने ऊपर की दृष्टि - पर्याय ऊपर जाती है।

छद्मस्थ जीव का ज्ञान - क्षयोपशम ज्ञान है। जैसे क्षयोपशम ज्ञान के आश्रय से निर्णय नहीं होता; वैसे ही निमित्त और राग के आश्रय से भी निर्णय नहीं होता। 'पुरुषार्थ करता हूँ' - ऐसे विकल्प के आश्रय से निर्णय नहीं होता, अपितु ज्ञानस्वभाव के आश्रय से पर्याय पूर्ण क्षायिकरूप व्यक्त होती है।

जगत में केवलज्ञान है इसकी स्वीकारोक्ति ज्ञाता-स्वभाव को स्वीकार किये बिना नहीं होती। केवली भगवान कहते हैं कि - 'हम कौन है - यह तेरे स्वभाव-सन्मुख होकर निर्णय कर।'

केवली की भक्ति कौन करता है ? जो अतीन्द्रिय त्रिकाल ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होता है वह केवली की यथार्थ स्तुति है। केवल अर्थात् अकेला (मात्र) ज्ञान - निमित्त और राग रहित अकेले ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करके एकाग्र हुआ वह स्तुति है। मेंरा स्वभाव सर्वज्ञ होने का है इस निर्णय के बिना अज्ञानी बाहर से - क्रिया कांड से धर्म करना चाहता है किन्तु उसे धर्म नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसे ज्ञानस्वभाव की महिमा आती है, उसे अप्रतिहत-अक्रमिक क्षायिक ज्ञान प्रगट होता है.

भगवान अर्थात् महिमावन्त । ज्ञानस्वभाव महिमावन्त है किन्तु अल्पज्ञान महिमावन्त नहीं है और राग-द्वेष की भी महिमा नहीं है। ज्ञानस्वभाव महिमावन्त है - ऐसा निर्णय करनेवाला ज्ञाता-दृष्टा होता है।

''ज्ञान, ज्ञान को जानता है - यह परमार्थ है और पर को तथा राग को जानता है यह व्यवहार है।''

जिसकी बाहर में रुचि होती है उसका वीर्य (पुरुषार्थ) उसी तरफ झुकता है। यह ४७, ४८, ४९ गाथा बहुत ऊँची है। सर्वज्ञ का ज्ञान पूर्ण है, इसमें क्षयोपशमज्ञान तथा ज्ञानावरणीकर्म का अभाव है इस कारण उन्हें क्रम से जानना नहीं रहता - वे अक्रम जानते हैं।

इस निर्णय के बिना अज्ञानी बाहर में रुक जाता है - स्वभाव से दूर हो जाता है।

आत्मा, शरीर-मन-वाणी का कुछ भी नहीं कर सकता, फिर भी मैं पर को करता हूँ - ऐसा मिथ्याभाव अज्ञानी करता है। पर जीव की दया, शरीर की क्रिया इत्यादि कुछ भी आत्मा नहीं कर सकता; उनकी जो अवस्था होनेवाली है, वही होती है। अज्ञानी ज्ञानस्वभाव को भूलकर अपने को, पर के करनेरूप मानता है। ज्ञानी को राग आता है किन्तु पर का करता हूँ - ऐसा जोर (वजन) नहीं है। 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' - ऐसे स्वभाव में से क्षायिक, अप्रतिहत अक्रमिक ज्ञान प्रगट होता है। ऐसा निर्णय करने पर अक्रम द्रव्य, अक्रम गुण का निर्णय होता है और क्रम पर्याय को, अक्रम द्रव्य-स्वभाव में झुकाता है तो निर्णय होता है।

केवली भगवान असंख्य प्रदेश से सभी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जानते हैं.

भगवान के क्षायिकज्ञान को क्षयोपशमज्ञान तथा कर्म का अभाव होने से वे सर्व को समकाल में प्रकाशित करते हैं। तथा सर्वथा विशुद्ध होने के कारण वे सर्वतः सर्व आत्मप्रदेशों से भी प्रकाशित करते हैं। अपूर्णदशा में क्षयोपशम सर्व प्रदेश में हैं, वहाँ आत्मप्रदेश की रचना, वह आत्मा की द्रव्यइन्द्रिय है उसमें उघाड़ - भाव इन्द्रिय है। अब, क्षयोपशमज्ञान अमुक निश्चित प्रदेशों से जानता है। क्षयोपशम सम्पूर्ण (प्रदेशों) में होता है; वहाँ अमुक प्रदेश निमित्त होने पर भी केवली भगवान को ऐसा नहीं होता। उनको तो ज्ञान असंख्य-प्रदेश से सर्वथा विशुद्ध एक साथ उपयोगरूप हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गया है। असंख्य-प्रदेश से ज्ञान होता है। सम्पूर्ण ही क्षेत्र निर्मल हो गये हैं।

तथा सर्व आवरण के क्षय के कारण उनको आवरण का क्षयोपशम नहीं रहा इस कारण वह ज्ञान, सर्व को प्रकाशित करता है। क्षयोपशमज्ञान थोड़ा जानता था किन्तु भगवान को थोड़ा विकास नहीं अपितु पूर्ण विकास होने से वह सर्व को जानता है - कुछ बाकी नहीं रहता। तथा सर्वप्रकार के, ज्ञानावरण के क्षय के कारण, सर्वप्रकार के पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान को, आवरण में निमित्तभूत कर्म के क्षय के कारण, अमुक ही प्रकार के पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान को आवरण में निमित्तभूत कर्मों का क्षयोपशम विलय हुआ है; इसलिए वह ज्ञान विचित्र प्रकाशता है।

चैतन्य और जड़ में रही हुई विचित्रता को जानते हैं। असमानजाति ज्ञानावरण के क्षय के कारण और समानजाति ज्ञानावरणकर्मों का क्षयोपशम नाश को प्राप्त होने से, उन विषय को भी अर्थात् असमानजाति के पदार्थों को भी प्रकाशित करता है। इसप्रकार सर्व द्रव्यों को, सर्व क्षेत्र को, काल से अक्रम और भाव से पूर्णत: जानता है।

परमाणु और आत्मा असमानजाति है उनको केवलज्ञान जानता है। अति-विस्तार से बस होओ - सभी पदार्थों को आवरणता अंश रहित भाव से जानता है - ऐसा होने से क्षायिकज्ञान अवश्यमेव सर्वदा अर्थात् सभी काल को, सर्वत्र अर्थात् सभी क्षेत्र को, सर्वथा अर्थात् सभी भाव को और सर्व को अर्थात् सभी द्रव्यों को जानता है।

जिसने केवलज्ञान को स्वीकार किया है वह तो सर्वज्ञपद लेने की तैयारीवाला है .

कोई पूछता है कि - यदि भगवान ने हमारे दस भव देखे हैं तो उसमें फेरफार नहीं होगा ?

समाधान:- तेरी दृष्टि भव के ऊपर - फेरफार करने के ऊपर गई है इसलिये यह मिथ्याबुद्धि है। भव अर्थात् जो राग और उसके फल ऊपर दृष्टि है वह पर्यायबुद्धि है। तेरा स्वभाव तो ज्ञान है; उसके ऊपर तेरी दृष्टि जाना चाहिये।

'हमारे भगवान केवली है' - इतना बोलने मात्र से नहीं चलता। एक समय में ज्ञान की अवस्था पूर्ण जानती है - ऐसी ज्ञान की सम्पदा-शोभा है। ऐसा निर्णय ज्ञानस्वभाव के आश्रय बिना नहीं होता। इसमें चौदहपूर्व का रहस्य है। ज्ञानी को अल्पराग होता है; मुझे पर को तो नहीं बदलना है किन्तु ज्ञान में भी कुछ नहीं बदलना है। आत्मा एक समय में सर्वप्रदेश से, सर्व द्रव्यों को, सर्वभाव से जानता है। पूर्ण द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जानता है। यह धर्म के लिये मुख्य (मुद्दे की) रकम है - ऐसे निर्णय बिना करणानुयोग अथवा चरणानुयोग आदि का ज्ञान, सच्चा नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षायिकज्ञान विद्यमान है - ऐसा जिसके ज्ञान में स्वीकार हुआ है - वह सर्वज्ञ पद लेने की तैयारीवाला है। आत्मवस्तु का यथार्थ निर्णय कर। सर्वज्ञ का निर्णय होने पर, निमित्त से कार्य होता है, पुण्य से लाभ होता है अथवा मैं ज्ञानपर्याय में फेरफार करूँ - ऐसी बुद्धि नहीं रहती। ज्ञानस्वभाव के निर्णय में राग घटता जाता है और स्थिरता बढ़ती जाती है। भूमिका अनुसार अणुव्रत और महाव्रत का राग आता है; किन्तु इस (उक्त) बात को समझे बिना धर्म नहीं होता।

चैतन्य स्वभाव में से केवलज्ञान प्रगट होता है, किन्तु निमित्त और राग में से केवलज्ञान प्रगट नहीं होता.

भावार्थ पर प्रवचनः- छद्मस्थ-जीव, क्रम से जानता है किन्तु ऐसा जानना केवली को नहीं होता। अमुक नियत आत्मप्रदेश से जानना अथवा अमुक को ही जानना आदि मर्यादाएँ मति-श्रुतादि क्षयोपशम ज्ञान में सम्भवित है किन्तु क्षायिकज्ञान तो मर्यादित व उसीतरह अमर्यादित सभी को जानता है। अनन्त गुण अनादि से हैं उसे जानता है, पर्याय को जानता है। केवलज्ञान के निर्णय में मोक्ष-तत्त्व का अथवा देव का निर्णय आता है - ऐसा निर्णय ज्ञानस्वभाव के आश्रय से होता है।

लोग पुकार करते हैं कि - 'इसमें पुरुषार्थ नहीं रहता' किन्तु पुकार करो तो करो! वस्तु तो ऐसी ही है। जो पदार्थ नित्य है - वही अनित्य है। अर्थात् पदार्थ द्रव्य से नित्य है और पर्याय से अनित्य है। वस्तु तो एक ही है और गुण व पर्याय अनेक हैं - ऐसी बात सुनकर लोग पुकार करें तो करें! वस्तु तो ऐसी ही है।

केवलज्ञान सर्व पदार्थों के, सर्व क्षेत्र को, सर्व काल से, सर्व भाव से जानता है। यह क्षायिकज्ञान बाहर से नहीं आता, राग की क्रिया में से अथवा निमित्त में से क्षायिकज्ञान नहीं आता, अपितु परम पारिणामिकभाव - चैतन्य भाव में से क्षायिकज्ञान आता है। क्षयोपशमज्ञान तो अल्प है - अल्प ज्ञान में से पूर्णज्ञान कहाँ से आयेगा ? परम चैतन्यभाव को निमित्त और राग की अपेक्षा नहीं है - ऐसे परम पारिणामिक भाव में से केवलज्ञान पर्याय आती है। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और कारण शुद्ध पर्याय ये तीनों होकर परम पारिणामिकभाव है - उसे कारण परमात्मा कहते हैं और उसे नित्य-स्वभाव, कारण जीव, कारण समयसार, कारण द्रव्य अथवा शुद्ध जीवास्तिकाय कहो यह सभी एक ही (एकार्थवाची ही) हैं।

अब, आगे की गाथा में, सर्व को नहीं जाननेवाला - एक को भी नहीं जानता - ऐसा निश्चित करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४८

अथ सर्वमजानन्नेकमपि न जानातीति निश्चिनोति -

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तिक्कालिगे तिहुवणत्थे।
णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वयमेगं वा ॥४८॥

अब ऐसा निश्चित करते हैं कि जो सबको नहीं जानता वह एक को भी नहीं जानता -

जाने नहीं युगपत् त्रिकाल त्रिलोकवर्ती अर्थ को ।
वह जानने में शक्य न पर्याययुत इक द्रव्य को ॥४८॥

गाथार्थ :- जो एक ही साथ त्रैकालिक त्रिभुवनस्थ (तीनों काल के और तीनों लोक के) पदार्थों को नहीं जानता, उसे पर्याय सहित एक द्रव्य भी जानना शक्य नहीं है।

टीका :- इस विश्व में एक आकाशद्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, असंख्य कालद्रव्य और अनन्त जीवद्रव्य तथा उनसे भी अनन्तगुने पुद्गल द्रव्य है, और उन्हीं के प्रत्येक के अतीत, अनागत और वर्तमान ऐसे (तीन) प्रकारों से भेदवाली निरवधि वृतिप्रवाह के भीतर पड़नेवाली (समा जानेवाली) अनन्त पर्यायें हैं। इसप्रकार यह समस्त (द्रव्यों और पर्यायों का) समुदाय ज्ञेय है। उसी में एक कोई भी जीवद्रव्य ज्ञाता है। अब यहाँ, जैसे समस्त दाह्य को दहकती हुई अग्नि समस्त-दाह्यहेतुक (समस्त दाह्या जिसका निमित्त है ऐसा) समस्त दाह्याकार पर्यायरूप परिणमित सकल एक दहन जिसका आकार (स्वरूप) है ऐसे अपनेरूप में (अग्निरूप में) परिणमित होती है, वैसे ही समस्त ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञाता (आत्मा) समस्त ज्ञेयहेतुक समस्त ज्ञेयाकार पर्यायरूप परिणमित सकल एक ज्ञान जिसका आकार (स्वरूप) है ऐसे निजरूप से - जो चेतना के कारण स्वानुभव प्रत्यक्ष है उस-रूप-परिणमित होता है। इसप्रकारवास्तव में द्रव्य का स्वभाव है। किन्तु जो समस्त ज्ञेय को नहीं जानता वह (आत्मा), जैसे समस्त दाह्य को न दहती हुई अग्नि समस्त दाह्यहेतुक समस्त दाह्याकार पर्यायरूप परिणमित सकल एक दहन जिसका आकार है ऐसे अपनेरूप में परिणमित नहीं होता उसीप्रकार, समस्त ज्ञेयहेतुक समस्त ज्ञेयाकार पर्यायरूप परिणमित सकल एक ज्ञान जिसका आकार है ऐसे अपनेरूप में - स्वयं चेतनता के कारण स्वानुभव प्रत्यक्ष होने पर भी - परिणमित नहीं होता, (अपने

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को परिपूर्णतया अनुभव नहीं करता - नहीं जानता) इसप्रकार यह फलित होता है कि जो सबको नहीं जानता वह अपने को (आत्मा को) नहीं जानता।

भावार्थ :- जो अग्नि, काष्ठ, तृण, पत्ते इत्यादि समस्त दाह्य पदार्थों को नहीं जलाता, उसका दहन स्वभाव (काष्ठादिक समस्त दाह्य जिसका निमित्त है ऐसा) समस्त दाह्याकार पर्यायरूप परिणमित न होने से अपूर्णरूप से परिणमित होता है - परिपूर्ण -रूप से परिणमित नहीं होता, इसलिये परिपूर्ण एक दहन जिसका स्वरूप है ऐसी वह अग्नि अपनेरूप ही पूर्ण रीति से परिणमित नहीं होती; उसीप्रकार यह आत्मा समस्त द्रव्य-पर्यायरूप समस्त ज्ञेय को नहीं जानता, उसका ज्ञान (समस्त ज्ञेय जिसका निमित्त है ऐसे) समस्त ज्ञेयाकार पर्यायरूप परिणमित न होने से अपूर्णरूप से परिणमित होता है - परिपूर्णरूप से परिणमित नहीं होता, इसलिये परिपूर्ण एक ज्ञान जिसका स्वरूप है ऐसा वह आत्मा अपनेरूप से ही पूर्ण रीति से परिणमित नहीं होता अर्थात् निज को ही पूर्ण - रीति से अनुभव नहीं करता - नहीं जानता। इसप्रकार सिद्ध हुआ कि जो सबको नहीं जानता वह एक को - अपने को (पूर्ण रीति से) नहीं जानता ॥४८॥

* * *

गाथा ४८ पर प्रवचन

छह द्रव्य और उनकी तीनकाल की पर्यायों का समुदाय ज्ञेय है और जीवद्रव्य ज्ञाता है.

एक समय के केवलज्ञान को सिद्ध करने की युक्ति है। इस विश्व में एक आकाश द्रव्य है, एक धर्म द्रव्य है। आत्मा की निर्विकारीदशा को भी धर्म कहते हैं किन्तु उस धर्मदशा की यह बात नहीं है अपितु यह धर्म द्रव्य अचेतन-अरूपी पदार्थ है वह लोक प्रमाण व्यापक है, उसकी बात है जबकि धर्म पर्याय अपनी आत्मा के असंख्य प्रदेशों में व्यापक है; इसकी स्थिति एक समय की है और धर्म द्रव्य अनादि-अनन्त है तथा लोक प्रमाण असंख्य प्रदेशी है।

धर्म पर्याय एक समय की है। केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान पर्याय ऐसी की ऐसी रहती है इसलिये वह नित्य और कूटस्थ भी कही जाती है; यह अपेक्षा से कथन किया है, किन्तु वह एक समय की पर्याय है। दो समय की पर्याय एक समय में एक साथ नहीं होती और एक समय की पर्याय दूसरे समय नहीं रहती। यहाँ केवलज्ञान सिद्ध करते हैं। इस जगत में आकाश द्रव्य है, धर्म द्रव्य है, असंख्य कालद्रव्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, अनन्त जीवद्रव्य है और उनसे भी अनन्तगुणा (अधिक) पुद्गल द्रव्य है।

तथा उनको भी अर्थात् प्रत्येकद्रव्य को भूतकाल, वर्तमान और भविष्य की ऐसे तीन भेदों की भेदवाली उपाधि रहित वृत्तिप्रवाह के भीतर पड़नेवाली (समा जानेवाली) अनन्त पर्यायें हैं, इसप्रकार ये समस्त द्रव्यों और पर्यायों का समुदाय ज्ञेय है। इसप्रकार द्रव्यों और उनकी तीनकाल की पर्यायें ज्ञान का ज्ञेय हो गई हैं। उसी में कोई भी एक जीवद्रव्य ज्ञाता है। पाँच द्रव्य अलग करो और अनन्त जीवों में से कोई एक जीव द्रव्य लो तो वह एक जीव उन सभी ज्ञेयों का ज्ञाता है।

जैसे अग्नि का स्वभाव सभी को जलाने का है; वैसे ही ज्ञाता का स्वभाव सभी को पूर्णरूप से जानने का है.

अब यहाँ जैसे समस्त जलने योग्य लकड़ी आदि पदार्थों को जलाती हुई अग्नि समस्त जलने योग्य पदार्थों के आकाररूप परिणमित होती है। उन सभी को जलाना अग्नि का स्वरूप है (यदि) अग्नि पूर्णरूप से सभी को न जलाये तो (वह) अग्नि नहीं है।

अग्नि सभी जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप परिणमित हो जाती है। यदि वह सभी को न जलावे तो अग्नि सिद्ध नहीं होती। अग्नि हरियाली को सुखाकर जला डालती है। यदि अग्नि सभी को जलानेरूप नहीं परिणमें तो वह अग्नि नहीं कहलाये। सभी को जलानेरूप परिणमित हो, यह अग्नि का पूर्ण स्वरूप कहा जाता है - नहीं तो जलाने का पूर्ण स्वरूप नहीं कहलाता। अपूर्ण रहे तो अग्नि नहीं कहलाती। इस दृष्टांत से समस्त ज्ञेय को जानने पर ज्ञाता, समस्त ज्ञेयहेतुक समस्त ज्ञेयाकार पर्यायरूप परिणमित सकल एक ज्ञान जिसका आकार है - ऐसे निजरूप से जो चेतनता के कारण स्वानुभव प्रत्यक्ष है उसरूप परिणमित होता है।

सर्व को जानना - ऐसे ज्ञानरूप है। यदि सर्व को नहीं जाने तो अपनी पर्याय पूर्ण नहीं होती। सम्पूर्ण-परिपूर्ण ज्ञान उसका स्वरूप है इसप्रकार स्वानुभव प्रत्यक्षरूप से परिणमित होता है। ऐसा वास्तव में द्रव्यों का स्वभाव है। छह द्रव्य उनकी तीनकाल की पर्यायों सहित ज्ञेय हैं। उनमें एक, जीव (मात्र) ज्ञाता है। जैसे अग्नि सभी को जलानेरूप परिणमित होती है, वैसे ही सभी ज्ञेयों को जानता हुआ अपने ज्ञानाकाररूप से परिणमित होता है। स्वानुभव प्रत्यक्ष है। इस प्रकार वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है। ज्ञाता पूर्ण ज्ञानपर्यायरूप से परिणमित हो - ऐसा वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है।

यहाँ केवलज्ञान सिद्ध करना है। ज्ञाता का स्वभाव है कि सभी ज्ञेयों को जाननेरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्णपर्यायरूप से होना - ऐसा स्वभाव है किन्तु अपूर्णरूप से रहना स्वभाव नहीं है। यहाँ ज्ञाता कहकर - पर्याय कहना है। अनन्त द्रव्यों को गुण-पर्याय सहित जानने में ज्ञाता पूर्णरूप से परिणमित हो - ऐसा इसका स्वभाव है। सभी द्रव्यों को जाने। स्वयं पूर्ण हुआ - ऐसा ज्ञाता का स्वभाव है। सर्व को जाना उसने एक को जाना है और सब को नहीं जाना, उसने एक को नहीं जाना है।

यह आत्मा ज्ञान स्वरूप है। एक समय में सर्व ज्ञेयों को जाने - ऐसा इसका स्वभाव है अर्थात् कि तीनकाल, तीनलोक को जानना - ऐसा स्वभाव है। इसलिये यदि आत्मा सर्व को नहीं जानता तो एक को भी नहीं जानता। यदि, एक साथ तीनकाल, तीनलोक के पदार्थों को नहीं जानता तो एक द्रव्य की पूर्णपर्याय सहित एक द्रव्य को जानना सम्भव नहीं है। यदि, सर्व को नहीं जाने तो उसका पर्याय सहित एक द्रव्य को भी जानना सम्भव नहीं हैं, एक समय की पूर्ण पर्याय है उसके सहित द्रव्य को जानना सम्भव नही है। एक समय में पूर्ण जाने - वह ज्ञाता है। यदि अनन्त पदार्थों को नहीं जानता हो तो वह एक समय की केवलज्ञान की पर्याय को नहीं जानता इसलिये वह द्रव्य को भी नहीं जानता।

गाथार्थ में 'पर्याय सहित एक द्रव्य कहा है।' इसका अर्थ यहाँ केवलज्ञान पर्याय सहित द्रव्य की बात चलती है। आत्मा ज्ञाता अर्थात् एक समय की पर्याय की पूर्णतावाला आत्मा ज्ञाता है - ऐसा अर्थ लेते (कहते)है।

अब, यहाँ कोई ऐसा माने कि - प्रत्येक पदार्थ का परिणमन जिस समय जैसा होनेवाला होगा, वही होगा - ऐसा है तो फिर अपने को क्या पुरुषार्थ करना रहा ?

समाधान :- सर्वज्ञ के स्वीकार में पुरुषार्थ है। फेरफार ऊपर दृष्टि करना नहीं रहा। ज्ञानस्वभाव का निर्णय अल्प ज्ञान में हुआ है। यहाँ केवलज्ञान की बात चलती है। एक समय में लोकालोक नहीं जाने तो एक समय की पर्याय - केवलज्ञान पर्याय सहित द्रव्य को जानना सम्भव नहीं है।

एक ओर समस्त ही द्रव्य पर्याय सहित ज्ञेय हैं और दूसरी ओर केवलज्ञान सहित जीव द्रव्य है.

टीका पर प्रवचन :- इस विश्व में एक आकाशद्रव्य है, एक धर्मद्रव्य है, असंख्य कालद्रव्य है, अनन्त जीवद्रव्य है और उससे भी अनन्तगुणा अधिक पुद्गल द्रव्य है। तथा उनको अर्थात् प्रत्येक द्रव्यों को भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल ऐसे भेद हैं। वहाँ मर्यादा रहित वृत्तिप्रवाह चलता जाता है। उनमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्पाद-व्यय ध्रुव का प्रवाह उनके वर्तन का प्रवाह निश्चित है। प्रत्येक द्रव्य का वृत्ति-प्रवाह चलता है। प्रत्येक अस्तित्त्ववाला प्रवाह परिणति प्रवाह बराबर चला करता है। इसप्रकार समस्त ही द्रव्य और पर्याय का समुदाय ज्ञेय है और आत्मा जाननेवाला है।

एक तरफ अनन्त द्रव्य और अनन्त पर्यायें यह ज्ञेय एक साथ है। उसीमें एक कोई भी जीवद्रव्य ज्ञाता है। एक समय की पूर्ण ज्ञान की पर्यायवाला जीव ज्ञाता है। मूल गाथा में नास्ति से बात है और टीका में प्रथम, अस्ति से बात करते हैं।

सकल पदार्थों को जानते हुए केवलज्ञानपर्यायरूप परिणमित होना - यही द्रव्य का स्वभाव है.

अब यहाँ जैसे समस्त दाह्य को दहकती हुई अग्नि समस्त दाह्यहेतुक, समस्त दाह्य आकार पर्याय परिणमित हुआ, सकल एक दहन जिसका आकार है ऐसे निजरूप से परिणमित होता है। जलने योग्य पदार्थों के आकाररूप स्वयं के कारण परिणमित होती है - ऐसी अग्नि निजरूप परिणमित होती है। जलने योग्य पदार्थ हेतु में अपने स्वरूप से दाह्याकार हो जाते हैं; उसीप्रकार समस्त ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञाता अर्थात् पूर्ण ज्ञान पर्यायरूप से परिणमित हुआ ज्ञानी सभी को जानता है। विकार-अविकार अथवा, जिसका जिस समय भव नाश होनेवाला है - उन सभी को जानता है। इसप्रकार समस्त ज्ञेय को जानता हुआ अपने स्वरूप से परिणमित होता है।

यहाँ ज्ञान की पूर्ण पर्याय की बात है। भगवान आत्मा स्वयं पूर्णरूप से प्रगट हुआ है; उसमें उसका चेतनापना है। प्रत्येक जीव में पर्याय चाहे वह विकारी हो अथवा अविकारी हो सभी क्रमबद्ध होती है। विकार अक्रमबद्ध होता है और अविकार क्रमबद्ध - ऐसा अनेकान्त नहीं है। सभी पर्यायें क्रमबद्ध ही हैं।

जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वही होती है। जैसे सांकल में एक के बाद एक कड़ी है। मोती की माला के मोती एक के बाद एक है उसे आगे - पीछे करने जाये तो धागा टूट जाता है; वैसे ही सभी द्रव्य में एक के बाद एक पर्याय होती है। आत्मा का पूर्ण ज्ञान सभी को जान ले - ऐसा है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय पूर्णरूप से परिणमित होती है। स्वानुभव प्रत्यक्ष है - ऐसावास्तव में द्रव्य का स्वभाव है।

यहाँ स्व पर्याय प्रगट हुई उससे सहित के द्रव्य की बात है। एक समय की पूर्ण पर्याय प्रगट होती है उससे सहित द्रव्य को यहाँ द्रव्य कहा है। इसप्रकार निर्णय करे तो निशंकता आती है कि - अहो ! मैं सर्वज्ञ का निर्णय करनेवाला हूँ - पूर्ण ज्ञान स्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ; इसप्रकार निर्णय होने पर झगड़ा मिट जाता है और निमित्त आवे तो कार्य हो और नहीं आवे तो न हो अथवा पर्याय आगे-पीछे होती है - ऐसा अज्ञान भाव नष्ट हो जाता है। अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करने पर सभी निर्णय हो जाते हैं।

जो अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, उसके मोह का नाश होकर (वह) सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। किन्तु जिसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय नहीं है उसे मुद्दे की रकम का ही निर्णय नहीं है। वह चाहे जितना शुभभाव करे तो भी वह सभी रेगिस्तान में विलाप करने के समान है। इसप्रकार अस्ति से बात की है।

जो सर्व को नहीं जानता वह स्वयं को नहीं जानता.

जो समस्त ज्ञेय को नहीं जानता वह - आत्मा को नहीं जानता। इसे समझाने के लिये दृष्टांत कहते हैं कि - जैसे यदि, अग्नि सभी को एक ही साथ पूर्णतः जला नहीं सके तो यह अग्नि कावास्तविक स्वरूप नहीं है। राग तेरा स्वरूप नहीं है - अल्पज्ञता भी तेरा स्वरूप नहीं है। सर्व ज्ञेयों को एक ही साथ आत्मा नहीं जाने तो वह आत्मा नहीं है - ऐसा यहाँ कहते हैं।

तथा लोकालोक तो अनादि से है किन्तु जब स्वयं केवलज्ञानरूप परिणमित हो तो लोकालोक निमित्त कहलाय। एक समय में पूर्ण ज्ञानरूप होना - वह ज्ञाता का स्वभाव है। तथा आत्मा स्वयं चेतनपने के कारण - स्वानुभव प्रत्यक्ष है। अनुभव प्रत्यक्ष होता है अथवा एक समय में - पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट हो - ऐसा तेरा स्वरूप है, यह सर्वज्ञ का निर्णय वह आत्मा का निर्णय है। श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है - इतना अंतर है। जानने योग्य पदार्थ निमित्त है उनको जाननेरूप स्वभाव है फिर भी पूर्ण पर्यायरूप परिणमित नहीं होता। इसप्रकार यह फलित होता है कि - जो सर्व को नहीं जानता वह अपनी आत्मा को भी नहीं जानता।

आत्मा महासत्य है, उसका ज्ञान महासत्य है और उसकी पर्याय (जो) पूर्ण प्रगट होती है वह भी महासत्य है। स्वयं -लोकालोक को जाने - ऐसा है। अपूर्ण रहे वह उसकावास्तविक स्वरूप नहीं है। यदि एक समय में अनन्त पदार्थों को नहीं जाने तो अपनी एक समय की केवलज्ञान की पर्याय को नहीं जानने पर वह द्रव्यों को (भी) नहीं जानता। छद्मस्थ को इस विधि से पूर्णता की प्रतीति होती है।

जो ज्ञाता पूर्ण ज्ञेय को नहीं जानता वह स्वयं को नहीं जानता। एक समय में पर्याय पूर्ण हो जाय - उसे द्रव्य कहना चाहिये। इसलिए फलित हुआ कि - जो सर्व को नहीं जानता वह अपने आत्मा को नहीं जानता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा कोई कहे कि - श्रुतज्ञान-अपेक्षित धर्मों को जानता है किन्तु केवलज्ञान अपेक्षित धर्मों को नहीं जानता - तो यह बात असत्य है। जब केवलज्ञान श्रुतज्ञान को जानता है तो - केवलज्ञान उसके विषयों को नहीं जाने - ऐसा नहीं बनता। श्रुतज्ञान अपेक्षित धर्मों को जानता है और उस श्रुतज्ञान को केवलज्ञान जानता है इसलिये वह सर्व धर्मों को जानता है। एक समय में पूर्णज्ञान प्रगट होता है - वही ज्ञाता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- जो अग्नि काष्ठ (लकड़ी), तृण, पत्ते इत्यादि समस्त दाह्य पदार्थों को नहीं जलाती उसका दहन स्वभाव समस्त दाह्याकार पर्यायें परिणमित न होने से अपूर्णरूप से परिणमित होती है किन्तु परिपूर्णरूप से परिणमित नहीं होती। जैसे परिपूर्ण एक दहन जिसका स्वरूप है - ऐसी वह अग्निरूप ही पूर्ण रीति से परिणमित नहीं होती; उसीप्रकार यह आत्मा समस्त द्रव्य पर्यायरूप समस्त ज्ञेय को नहीं जानता। उसका ज्ञान समस्त ज्ञेय जिसका निमित्त है - ऐसे समस्त ज्ञेयाकार पर्यायरूप परिणमित नहीं होने से अपूर्णरूप परिणमित होता है - परिपूर्णरूप से परिणमित नहीं होता; इसलिये परिपूर्ण एक ज्ञान जिसका स्वरूप है ऐसा वह आत्मा अपनेरूप से ही पूर्ण रीति से परिणमित नहीं होता; अर्थात् निज को ही पूर्ण रीति से अनुभवता-जानता नहीं, इसप्रकार सिद्ध हुआ कि जो सबको नहीं जानता वह एक को - अपने को पूर्ण रीति से नहीं जानता। सर्वज्ञ के ज्ञान में कुछ भी (जानने से) बाकी नहीं रहता। तीनकाल तीनलोक की पर्याय जानने में आ जाती है।

हे परमात्मा ! तेरे होते हुए मैं अपने जैसे (संसारियों जैसे) मोहमुग्ध और कामवश बुद्ध को तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश को क्यों पूजूँ ? जिसने भवों को जीता है उसकी मैं वंदना करता हूँ - उसे प्रकाशमान ऐसे श्रीजिन कहो, सुगत कहो, गिरिधर कहो, वागीश्वर कहो या शिव कहो।

- श्री नियमसार कलश, १

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ४९

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति-

दव्वं अणंतपज्जयमेगमणंताणि दव्वजादाणि ।
ण विजाणदि जदि जुगवं किध सो सव्वाणि जाणादि ।।४९।।

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि एक को न जाननेवाला सबको नहीं जानता।

जो एक द्रव्य अनन्तपर्यय नन्तद्रव्य समूह को ।
नहिं जानता युगपत् यदि वह कैसे जाने सर्व को ।।४९।।

गाथार्थ :- यदि अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्य को (आत्म द्रव्य को) तथा अनन्त द्रव्य समूह को एक ही साथ नहीं जानता तो वह पुरुष सब को (अनन्त द्रव्य समूह को) कैसे जान सकेगा ? (अर्थात जो आत्मद्रव्य को नहीं जानता हो वह समस्त द्रव्यसमूह को नहीं जान सकता)।

प्रकारान्तर से गाथार्थ :- यदि अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्य को (आत्मद्रव्य को) नहीं जानता तो वह पुरुष एक ही साथ सर्व अनन्त द्रव्य-समूह को कैसे जान सकेगा ?

टीका :- प्रथम तो आत्मा वास्तव में स्वयं ज्ञानमय होने से ज्ञानतत्त्व के कारण ही है; और ज्ञान प्रत्येक आत्मा में वर्तता (रहता) हुआ प्रतिभासमय महासामान्य है। वह प्रतिभासमय महासामान्य प्रतिभासमय अनन्तविशेषों में व्याप्त होनेवाला है : और उन विषयों में व्याप्त होनेवाले प्रतिभासमय महासामान्यरूप आत्मा का स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं करता, वह (पुरुष) प्रतिभासमय महासामान्य के द्वारा व्यय व्याप्य (व्याप्य होने योग्य) जो प्रतिभासमय अनन्त विशेष है उनकी निमित्तभूत सर्व द्रव्यपर्यायों को कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा ? (नहीं कर सकेगा) इसलिए ऐसा फलित हुआ कि जो आत्मा को नहीं जानता वह सबको नहीं जानता।

अब इसलिए ऐसा निश्चित होता है कि सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान और आत्मा के ज्ञान से सर्व का ज्ञान (होता है); और ऐसा होने से, आत्मा ज्ञानमयता के कारण स्वयं चेतक होने से, ज्ञाता और ज्ञेय का वस्तुरूप से अन्यत्व होने पर भी प्रतिभास और प्रतिभास्यमान कर अपनी अवस्था में अन्योन्य मिलन होने के कारण (ज्ञान और ज्ञेय, आत्मा की ज्ञान की अवस्था परस्पर मिश्रित - एक मेकरूप होने से) उन्हें भिन्न करना अत्यन्त अशक्य होने से मानो सब कुछ आत्मा में निखित (प्रविष्टि हो गया हो इसप्रकार प्रतिभासित होता है - ज्ञात होता है (आत्मा ज्ञानमय होने से वह

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपने को अनुभव करता है - जानता है, और अपने को जानने पर समस्तज्ञेय ऐसे ज्ञात होते हैं - मानों वे ज्ञान में स्थित ही हो, क्योंकि ज्ञान की अवस्था में से ज्ञेयाकारों को भिन्न करना अशक्य है।) यदि ऐसा न हो तो (यदि आत्मा सबको न जानता हो तो) ज्ञान के परिपूर्ण आत्म सचेतन का अभाव होने से परिपूर्ण एक आत्मा का भी ज्ञान सिद्ध न हो।

भावार्थ :- ४८ और ४९ वीं गाथा में ऐसा बताया गया हैं कि जो सबको नहीं जानता वह अपने को नहीं जानता, और जो अपने को नहीं जानता वह सबको नहीं जानता। अपना ज्ञान और सबका ज्ञान एक साथ ही होता है। स्वयं और सर्व इन दो में से एक का ज्ञान हो और दूसरे का न हो यह असम्भव है।

यह कथन एकदेश ज्ञान की अपेक्षा से नहीं किन्तु पूर्णज्ञान की (केवलज्ञान की) अपेक्षा से है ॥४९॥

* * *

गाथा ४९ पर प्रवचन

यहाँ गाथा में अनन्त पर्यायवाला द्रव्य कहा है अर्थात् एक समय की केवलज्ञान पर्याय में अनन्त भेदवाला द्रव्य लेना (समझना, किन्तु) तीनकाल की पर्याय अनन्त है - ऐसा यहाँ नहीं लेना।

एक समय की केवलज्ञान की पर्याय में अनन्त भेद हैं - उस पर्याय में ज्ञान-गुण व्याप्त है.

टीका पर प्रवचन :- आत्मा स्वयं ज्ञानमय होने से - ज्ञान स्वरूप है। वह ज्ञान प्रत्येक आत्मा में रहता हुआ प्रतिभासमय महासामान्य है। लोकालोक को जानने की शक्तिरूप ज्ञान को महासामान्य कहते हैं क्योंकि आत्मा का ज्ञान गुण शक्तिरूप है। वह प्रतिभासमय अनन्त भेदों में व्याप्त होनेवाला है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय - अनन्त भेदों को जानती है। केवलज्ञान पर्याय में अनन्त भेद हैं। अपनी पर्याय अनन्त भेदरूप हैं; उसमें महाशक्ति व्याप्त है। एक समय की पूर्ण पर्याय - अनन्त भेदवाली है। उसमें महासामान्य ज्ञान व्याप्त है - ऐसे आत्मा को जो नहीं जानता वह - पर को भी नहीं जानता।

केवलज्ञान पर्याय में अनन्त भेद हैं। यहाँ महासामान्य अर्थात् ज्ञानगुण शक्तिरूप लेना है। आत्मा का ज्ञानगुण महासामान्य है। यह दर्शन उपयोग की बात नहीं। केवलज्ञान पर्याय जो अनन्त में भेदरूप है - उस केवलज्ञान पर्याय में ज्ञानगुण व्याप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय ऐसी ताकतवाली है - अनन्त भेदवाली है; ज्ञान पर्याय में ऐसी ताकत है। ज्ञान गुण सामान्य है। वह अनन्त भेदवाली पर्याय में परिणमित होता है - ऐसी ज्ञान पर्याय की ताकत है।

यहाँ प्रथम, अपनी पर्याय की बात करते हैं अर्थात् प्रथम निश्चय कहते हैं फिर निमित्त बतायेंगे। जो एक को जानता है वह सर्व को जानता है और बाद में कहेंगे कि जो एक को नहीं जानता वह सर्व को नहीं जानता। यहाँ एक समय की केवलज्ञान पर्याय की बात है। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त भेद हैं। जो सामान्य ज्ञान था वह विशेषरूप परिणमता है। उस एक समय की केवलज्ञान पर्याय के अनन्त भेदों को सर्व द्रव्य पर्यायें निमित्त है। एक समय के ज्ञान के भेद में ज्ञान व्याप्त है।

यह अर्हंत के केवलज्ञान की बात चलती है। सभी क्रमबद्ध होता है। सर्वज्ञ को दिखा है वही होगा (ऐसा माने) वह ज्ञाता-दृष्टा होता है। पर के कार्य में सावधानी नहीं चलती। इसलिये तू ज्ञान में नजर कर तो शान्ति मिले - ऐसा स्वरूप है।

एक समय की केवलज्ञान पर्याय में अनन्त प्रकार पड़ते हैं.

जो एक को नहीं जानता वह सर्व को नहीं जानता। यह ज्ञान की पूर्णता की महिमा है। आत्मा ज्ञान स्वरूपी है। वह अपने को जाने और पर को नहीं जाने - ऐसा नहीं बनता। स्व तथा पर को जानना एक ही साथ है। स्व को जाने और पर को नहीं जाने - ऐसा नहीं बनता और पर को जाने और स्व को नहीं जाने ऐसा भी नहीं बनता। जानना स्वयं का स्वभाव है किन्तु निमित्त और राग को लाना स्वभाव नहीं है।

"सर्वज्ञ का स्वभाव और अपना स्वभाव एक ही है।"

स्वयं को जाननेपर, पर को जानता है - एक ही साथ दोनों को जानता है। पर को जानना - अपना स्वरूप है। जैसे, दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है - वहाँ बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों को जानता है। वैसे ही, स्वयं को तथा पर को दोनों का जानना एक ही साथ है। साधकदशा में भी स्व-पर को जानने का स्वभाव है। स्व को जाने और निमित्त और राग को नहीं जाने - ऐसा नहीं बनता और राग को जाने और स्व को नहीं जाने - ऐसा भी नहीं बनता। यहाँ, स्व-पर को जानने की बात है।

छद्मस्थ को अल्प ज्ञान है इसलिये वह क्रम से जानता है, वह बात यहाँ नहीं होती। भले ही उसका उपयोग एक में लगता है किन्तु दोनों को जानने की ताकत प्रगट है। स्व को जानने पर, पर को जानने का विकास खिला हुआ है। एक समय की ज्ञान की पर्याय में अनन्त भेद हैं, उसे यहाँ अनन्त पर्यायवाला द्रव्य कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान अपनी पर्याय है। एक समय में ज्ञानपर्याय में अनन्त भेद हैं। जिसप्रकार लेंड़ीपीपर का स्वभाव ६४ पुटी तिखास का है। ६४ पुटी अर्थात् परिपूर्ण। एक-एक पीपर में परिपूर्ण तिखास है। उसमें से उग्र तिखास और हरापना प्रगट होता है। जिसप्रकार लेंड़ीपीपर में जो शक्तिरूप तिखास है - वह प्रगट होती है ; उसीप्रकार शक्तिरूप ज्ञान है उसमें से केवलज्ञान प्रगट होता है।

यहाँ केवलज्ञान की बात चलती है। केवली, पूर्ण ज्ञाता हैं। वह वस्तु का स्वभाव है। चौदह पूर्व आदि का ज्ञान वह वस्तु का पूर्ण स्वभाव नहीं है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय में अनन्त भेद हैं। वह ज्ञान स्वयं को जानते हुए - पर को जानता है। दोनों को युगपद् जानता है। कोई कहे कि उसने आत्मा को जाना और पर को नहीं जाना - तो यह झूठी बात है। दर्पण में जो आम दिखाई देता है वह दर्पण की स्वच्छता दिखाई देती है वह प्रतिबिम्ब है। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब एक साथ है; वैसे ही स्व का ज्ञान और ज्ञेयों का ज्ञान एक साथ होता है। साधक ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति करता है।

एक समय की केवलज्ञान की पर्याय में अनन्त भेद हैं। यहाँ, अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें - नहीं लेना तथा एक ज्ञान गुण की - तीनकाल की पर्यायें भी यहाँ नहीं ली हैं अपितु एक समय की केवलज्ञान पर्याय में अनन्त भेद हैं - वह बात यहाँ ली गई है। एक समय की ज्ञान की पर्याय की व्याख्या है। अनन्त पर्यायवाला अर्थात् अनन्त भेदवाला। एक समय की पर्याय में अनन्त भेद पड़ते हैं। समझाने के लिये अथवा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध बताने के लिये कहा जाता है कि अनन्त ज्ञेय हैं - ऐसे ही ज्ञान में अनन्त भेद - ज्ञान के कारण पड़ते हैं।

ज्ञान पर्याय - स्व-विकल्प है। जितनी स्व की विशेषता है; उतना ज्ञान जानता है। ज्ञेयाकार के प्रमाण में - अपने ज्ञानमय भेदरूप परिणमित होता है। जो आत्मा अनन्तों भेदवाले आत्मा को तथा अनन्त द्रव्य समूह को युगपद् नहीं जानता तो वह आत्मा सर्व को - अनन्त द्रव्य समूह को किसप्रकार जान सकता है ? अर्थात् जो अपनी अनन्त भेदवाली ज्ञान पर्यायवाले आत्मद्रव्य को नहीं जानता हो तो वह समस्त द्रव्य समूह को भी नहीं जान सकता।

ज्ञान गुण एक समय की केवलज्ञान पर्याय के अनन्त भेदों में व्याप्त होता है.

जिसप्रकार चंद्रमा में सोलह कला प्रगट होती है। सोलह अर्थात् रुपया अर्थात् जैसे पूर्ण सोना सोलहवान है वह पूर्ण है। उसीप्रकार आत्मा सम्पूर्ण पर्याय को जाने और सम्पूर्ण पदार्थों को जानें। यहाँ ज्ञान की बात है, अन्य गुण तथा अपनी पर्याय ज्ञेय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में आ जाती है। प्रथम तो आत्मा वास्तव में स्वयं ज्ञानमय होने से ज्ञातापने के कारण ज्ञान ही है; भगवान आत्मा ज्ञान है।

आत्मा चैतन्य है तो फिर वह किसका काम करें ? क्या वह पुण्य को लावे ? मुझे पर का काम करना है - पर को निमित्त होना है - यह सभी अज्ञानभाव है। क्योंकि आत्मा का तो ज्ञाता स्वभाव है। वह ज्ञान प्रत्येक आत्मा में रहता हुआ प्रतिभासमय महासामान्य है। ज्ञान की महाशक्ति है। ज्ञान स्व-पर का प्रतिभास करे - ऐसी शक्तिरूप है। वह ज्ञानगुण - स्व के ज्ञानमय और पर सम्बंधी - स्व के ज्ञानमय अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला है। वह अपनी तीनकाल की पर्यायों में व्याप्त है - ऐसा यहाँ नहीं लेना (समझना) अथवा ज्ञान गुण सभी में व्याप्त होता है ऐसा भी नहीं लेना, तथा अनन्त गुणों की अनन्त पर्याय भी यहाँ नहीं ली गई है अपितु एक समय की केवल ज्ञानपर्याय के अनन्त ज्ञानमय प्रकारों में व्याप्त होता है यह कहा है।

आत्मा का ज्ञान गुण शक्तिरूप है - उसकी केवलज्ञान पर्याय कैसी है ? एक समय की पर्याय में अनन्त भेद हैं। जैसे स्व वैसे ही लोकालोक सभी हैं - ऐसे अनन्त भेद केवलज्ञान में पड़ते हैं। यहाँ सामान्यगुण पूर्ण और पूर्ण पर्याय होकर द्रव्य कहना है।

केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त प्रकार हैं
उसमें अनन्त द्रव्य-गुण-पर्यायें निमित्त है.

परमभाव ग्राहक दृष्टि से ज्ञान वही आत्मा है। ज्ञान पर्याय एक समय में अनन्त विशेषतावाली है। ज्ञान आकार का अर्थरूपी नहीं किन्तु भेद सहित है। एक समय की ज्ञान पर्याय अनन्त प्रकार, भेदरूप परिणमित होती है - वह केवलज्ञान है। वह द्रव्य के साथ अभेद हुई है। जो पूर्ण पर्याय हुई वह द्रव्य का स्वभाव है किन्तु अपूर्ण रहना उसका स्वभाव नहीं है।

गाथा ४८ में कहा था कि अनन्त द्रव्य - उनके सामान्य और विशेष सहित अथवा तीनकाल की पर्याय सहित सभी ज्ञेय हैं; और उसी में एक कोई भी केवलज्ञान पर्याय सहित जीवद्रव्य ज्ञाता है। यहाँ पूर्ण पर्याय की बात है। अनन्त ज्ञेयों के गुणों का, पर्यायों का, स्व तथा पर के भेद - स्व ज्ञानपर्याय में पड़ते हैं। ज्ञान में ज्ञान के कारण ज्ञान के विशेष पड़ते हैं। आत्मा का ज्ञान गुण त्रिकाल है। उसके एक समय की ज्ञान पर्याय में अनन्त (भेद) पड़े हैं।

अब, उस ज्ञान पर्याय के अनन्त भेदों का निमित्त स्व और पर पदार्थ हैं यह कहते हैं। जगत को ज्ञान की महिमा नहीं आती तब वह बाहर के क्रिया कांड में रुक जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो अपनी पूर्ण पर्याय को नहीं जानता तो वह सर्व को नहीं जानता और जो सर्व को नहीं जानता वह अपनी पूर्ण पर्याय को नहीं जानता। एक समय में केवलज्ञान पूर्णतः स्व-पर को जानता है।

मोक्षमार्ग प्रकाशक में अष्ट सहस्त्री का आधार दिया गया है। मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३५० में स्याद्वाद का अर्थ श्रुतज्ञान लिया है। वह श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों सर्वतत्त्वों को प्रकाशित करनेवाले हैं। अन्तर मात्र इतना ही है कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष है और श्रुतज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूप से ये दोनों एक दूसरे से अन्यरूप नहीं हैं।

केवलज्ञान का निर्णय ज्ञाता-स्वभाव की तरफ ले जाता है.

यहाँ तीन बातें कही गई हैं -

(१) आत्मा का महासामान्य ज्ञानगुण शक्तिरूप है।

(२) उसकी एक समय की केवलज्ञान पर्याय में अनन्त भेद हैं।

(३) ज्ञान पर्याय में स्व-पर अनन्त ज्ञेय अक्रम एक साथ निमित्त हैं।

यहाँ केवलज्ञान का निर्णय कराते हैं। इसप्रकार केवलज्ञान का निर्णय होने पर निमित्त, राग आदि का ज्ञाता होता है यह धार्मिक क्रिया है। उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ जाते हैं। जगत इस केवलज्ञान तत्त्व को नहीं समझता। केवलज्ञान अथवा मोक्षतत्त्व अथवा देव का स्वरूप यह सभी एक ही हैं। यहाँ केवलज्ञान से परिणत द्रव्य को द्रव्य लिया है। अपूर्ण ज्ञानपर्याय को यहाँ द्रव्य में नहीं लिया इसलिये महासामान्य गुणवाले द्रव्य की तरफ एकाग्रता यही मोक्षमार्ग है।

अनन्त विशेषोंवाली केवलज्ञान पर्याय सहित आत्मा को प्रत्यक्ष नहीं जानता वह पदार्थों को भी प्रत्यक्ष नहीं जानता.

अब जो पुरुष (आत्मा) सर्वद्रव्य पर्यायें जिसके निमित्त हैं ऐसे अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला, प्रतिभासमय महासामान्यरूप आत्मा को स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं करता वह सर्वद्रव्य-पर्यायों को प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। यहाँ प्रतिभासमय महासामान्यरूप आत्मा कहकर, गुण-गुणी अभेद कर दिया है। एक समय की ज्ञानपर्याय में प्रतिभासमय महासामान्य आत्मा व्याप्त है। ऐसे आत्मा को ज्ञान के अनुभव में नहीं लाता अर्थात् केवलज्ञानरूप नहीं परिणमता।

जिसे द्रव्य-पर्याय निमित्त है - ऐसे अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाले महासामान्यरूप आत्मा को जो स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं करता, वह सर्व द्रव्य-पर्याय को किसप्रकार प्रत्यक्ष जान सकता है ? अर्थात् कि प्रतिभासमय महासामान्य द्वारा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्याप्त होने योग्य, जो प्रतिभासमय अनन्त विशेष हैं, उनके निमित्तभूत सर्व द्रव्य-पर्यायों को किसप्रकार प्रत्यक्ष करके जान सकता है ? जीवों को ज्ञान का उत्साह (महात्म्य) नहीं आता किन्तु बाह्य क्रिया-काण्ड का उत्साह आता है। जो विशेष भेदवाले पर्यायस्वरूप आत्मा को नहीं जानता तो वह निमित्तों को भी नहीं जानता, क्योंकि एक को जानने में दोनों आ जाते हैं।

केवलज्ञान साकार है सभी पदार्थों को अक्रम-बराबर जान लेता है.

तथा कोई कहता है कि - भगवान, लोकालोक को जानते हैं- वह व्यवहार से है और व्यवहार अभूतार्थ है, इसीलिये केवलज्ञान का पर को जानना अभूतार्थ है - ऐसा अज्ञानी कहता है। किन्तु पर सम्बंधी ज्ञान, स्वयं का है। स्व-पर प्रकाशक ज्ञान, स्वयं का स्वभाव है। केवलज्ञान लोकालोक को तन्मय होकर नहीं जानता इसलिये केवलज्ञान पर को व्यवहार से जानता है - ऐसा कहा जाता है। अपने में तन्मय होकर जानता है इसलिये (स्व को) निश्चय से जानता है - ऐसा कहा है।

जिसने केवलज्ञान पर्याय के अनन्त भेदों को जाना है उसने आत्मा को जान लिया है अर्थात् जो स्व विशेष के निमित्तों को जान लेता है - वह एक साथ स्व-पर दोनों को जान लेता है; किन्तु राग-द्वेष करना और पर का ग्रहण-त्याग करने में तत्पर रहना वह अन्धकाररूपी अज्ञान का भोजन है अर्थात् कि वह रात्रि भोजन है। इस बात की तो उसे खबर नहीं कि - मेरा स्वरूप तो ज्ञानमय है और ज्ञान का विशेषरूप परिणमित होना वह पर्याय धर्म है। ज्ञान का पूर्णरूप परिणमित होना यही मेरा स्वभाव है।

अब, यदि विकार अक्रम होता है ऐसा माने तो - ज्ञान झूठा हुआ; और यदि ज्ञान स्व-पर को युगपद् नहीं जाने तो ज्ञान ने जाना है - यह नहीं कहलाय। जगत के पदार्थों की अवस्था क्रम-क्रम से होती है और केवलज्ञान अक्रम अर्थात् एक साथ नहीं जाने तो केवलज्ञान नहीं कहलाय। और केवलज्ञान एक साथ जानता है तो सामने (रहा) विकार अक्रम उल्टा-सीधा होता है - ऐसा माने तो भी भूल है।

केवलज्ञान सभी में प्रविष्ट हो जाता है; ज्ञानगुण साकार है। वह स्व-पर को जानता है। ज्ञान को साकार कहा अर्थात् उसका अर्थ मूर्त नहीं लेना, किन्तु स्व-पर अनन्त द्रव्य, उनके गुण-पर्याय आदि ज्ञेयाकाररूप अपनी ज्ञानपर्याय भेदरूप होती है - अनन्त स्वरूप, अनन्त भेदरूप परिणमित होती है इसीलिये ज्ञान को साकार कहते हैं।

तथा कोई कहे कि - ज्ञान सविकल्प है; और विकल्प का अर्थ - दोष है इसलिये ज्ञान में दोष है, तो यह भी भूल है। यहाँ सविकल्प का अर्थ भेद से है। सिद्ध का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान भी सविकल्प है अर्थात् वहाँ सविकल्प का अर्थ दोष नहीं अपितु वह भेद सहित जानता है यह है। मैं आत्मा हूँ ऐसा भेद, दर्शन नहीं करता। भेद करना यह ज्ञान का कार्य है। ज्ञान सर्व पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्याय को भेद करके जानता है इसलिए वह साकार है। सर्वज्ञ पर्याय अनन्त भेदरूप परिणमित होती है। ऐसी पर्यायवाले आत्मा को जो नहीं जानता वह सर्व को भी नहीं जानता।

ज्ञान सामान्यशक्ति और पूर्ण पर्याय सहित ही आत्मा है। जो सर्व को नहीं जानता वह आत्मा को नहीं जानता और जो आत्मा को नहीं जानता वह सर्व को नहीं जानता। स्वयं ज्ञाता पूर्ण पर्यायरूप से परिणमित हुआ स्वयं को जानता है वह अनन्त पर को जानता है - ऐसा स्व-पर एक साथ पूर्णरूप से जानने का आत्मा का स्वभाव है।

पूर्णज्ञान और आनन्दरूप होना यह आत्मा का स्वभाव है.

जो एक को जानता है वह सर्व को जानता है। यहाँ जो महासामान्य प्रतिभासमय कहा है वह ज्ञानगुण की बात है। यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। आत्मा वस्तु है, उसका स्वरूप ज्ञान है किन्तु देह-मन-वाणी उसका स्वरूप नहीं है। ज्ञानगुण एक समय की केवलज्ञान पर्याय में व्याप्त है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान ही है वह एक समय के अंदर पूर्णरूप से परिणमित हो जाता है। त्रिकाल ज्ञानतत्त्व का एक समय का भाव, अनन्त भेदरूप परिणमित होता है - ऐसी पर्यायवाले आत्मा को जो नहीं जानता वह एक समय की पर्याय में ज्ञात होनेवाले अनन्त द्रव्यों को भी नहीं जानता। पूर्णरूप से परिणमित होना यह उसका स्वभाव है।

द्रव्य अक्रम, गुण अक्रम और पर्याय क्रमिक (क्रमशः) हैं - ऐसा आत्मद्रव्य यदि, सभी भेदों को जाननेरूप परिणमित नहीं हो तो उसे द्रव्य नहीं कहते। लेंड़ीपीपर में ६४ पुटी तिखास की ताकत है और हरे रंगरूप होने की भी ताकत है। प्रगट (पर्याय) में अल्प तिखास और कालापन दिखाई देता है, किन्तु अंदर लेंड़ीपीपर में हरापन और ६४ पुटी तिखास भरी है। यदि वह पीपर ६४ पुटी तिखासरूप और पूर्ण हरे रंगरूप नहीं हो तो वह पीपर नहीं कहलाती। ६४ अर्थात्, ६४ पैसे - सोलह आना- पूर्णरूपया। एक समय की पर्याय में ६४ पुटी और हरे रंगरूप नहीं हो तो वह लेंड़ीपीपर नहीं अपितु चूहे की लेड़ी है। उसीप्रकार भगवान आत्मा देह से भिन्न है। आत्मा, देह-मन-वाणी से पृथक है। उसमें पूर्ण सोलह आने सर्वज्ञ स्वभाव है अर्थात् कि- आत्मा का स्वयं को तथा लोकालोक को जानने का पूर्ण स्वभाव है। यदि वह पूर्ण सर्वज्ञपने न हो तो वह आत्मा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रत्येक आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द है किन्तु देह-मन-वाणी उसका स्वरूप नहीं है। अंदर पूर्णज्ञान और आनन्द भरा पड़ा है यदि उसरूप न हो तो वह आत्मा नहीं है। इसप्रकार जैन परमेश्वर क्या कहते हैं - यह विचार करने के लिए अवकाश (समय) नहीं निकालता। स्त्री-पुत्र तथा संसार के काम से फुर्सत नहीं मिलती और कहीं तो शास्त्र के नाम से और पंडिताई से फुर्सत नहीं मिलती; अथवा तो क्रियाकाण्ड के नाम से - यह चलेगा यह नहीं चलेगा इसीसे फुर्सत नहीं होता। इसप्रकार आत्मा का विचार करने के लिये अवकाश नहीं होता।

आत्मा की एक समय की ज्ञान पर्याय पूर्णरूप न हो तो वह आत्मा नहीं है; उसीप्रकार यदि वह पूर्ण आनन्दरूप न हो तो भी वह आत्मा नहीं है। पूर्णज्ञान और आनन्दरूप होना वही वस्तु का स्वरूप है। एक समय में ऐसा आत्मा जानने पर उसकी पर्याय पूर्णपने प्रगट होती है। संचेतन उसका स्वभाव है। स्वयं पूर्ण पर्यायरूप से प्रगट होने पर - स्वयं को पूर्ण जानता है और लोकालोक को भी पूरा जानता है। दोनों एक ही साथ हैं - ऐसे पूर्ण प्रगट हो गये जीव इस जगत में हैं और ऐसा ही मेरा स्वभाव है। इसप्रकार स्वभाव सन्मुख होने पर अपने में धर्मदशा प्रगट होती है। संसारदशा हो तो उसे भी जानने की ताकत है। वह जानने का ज्ञान पूर्ण होने पर स्वयं को तथा पर को पूर्ण जानता है। यदि आत्मा पूर्णपर्याय को नहीं जाने तो वह अनन्तों को नहीं जानता। एक जानने में आये और दूसरा जानने में नहीं आये - ऐसा नहीं होता।

यह आत्मा सर्वज्ञपने और सर्व आनन्दरूप हो - ऐसा इसका स्वभाव है। ऐसे आत्मा का भान होने के बाद ज्ञानी को दया-दानादि के विकल्प आते हैं यह बात सही है और आर्त-रौद्रध्यान के परिणाम भी होते हैं फिर भी (वे) स्वयं तो जानने का काम करते हैं। वे समझते हैं कि अभी अपूर्णज्ञान है और पूर्ण ज्ञान होने पर राग भी दूर हो जायगा। तब वह सभी को जान लेगा।

एक को नहीं जानता तो सर्व को नहीं जानता
अथवा एक को जानता है तो वह सर्व को जानता है.

इसप्रकार यह फलित होता है कि जो आत्मा को नहीं जानता वह सर्व को नहीं जानता। सोलहवान सोना पूर्ण है। तिखासपूर्ण होती है। वह लेंड़ीपीपर का स्वभाव है। आत्मा, सौ टंच के सोने के समान है। चन्द्रमा सोलहकलावाला है। द्वितीया का चन्द्रमा उदित हुआ है तो पूनम (पूर्णिमा) का होगा। यह द्वितिया का चन्द्रमा तीन बातों को बताता है - (१) द्वितीया का चन्द्रमा द्वितिया को बताता है (२) द्वितीया का आकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्ण आकार को बताता है और (३) कितना अंधकार बाकी है उसे भी बताता है।

जैसे चन्द्रमा की सोलहकला होती है उसमें एक कला सदा ही खुली रहती है और पन्द्रह कला ढकी हुई है वैसे ही आत्मा में ज्ञान का उघाड़ थोड़ा तो रहता ही है किन्तु सर्वथा आवरण कभी नहीं होता। जिसप्रकार द्वितिया के चन्द्रमा में तीनकला होती है वह पूर्ण को, उदित हुए चन्द्रमा को तथा कितना बाकी है उसे बताता है; उसीप्रकार आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी तीनकला चौथे गुणस्थान में खिलती हैं।

श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि - जीव एक अखंड द्रव्य, सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसकी ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। जो सम्पूर्ण वीतराग होता है वही सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है। जीव अर्थात् आत्मा, यह प्रत्येक आत्मा की बात है। खण्ड रहित आत्मा की ताकतपूर्ण है। जो राग रहित स्वभाव की दृष्टि करके स्थिरता करता है वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है। ऐसे आत्मा के जानने पर साथ में लोकालोक को भी जानता है। ऐसे सर्वज्ञ तीर्थंकर देवाधिदेव जगत में हैं। इस तरह यहाँ परमात्मा का निर्णय कराते हैं।

आत्मा को तो जाने किन्तु लोकालोक जानने में न आवे ऐसा नहीं होता तथा लोकालोक के छह द्रव्य जानने में आवें किन्तु तू तुझे नहीं जाने ऐसा भी नहीं होता। दोनों युगपद् हैं। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब और बिम्ब दोनों का ज्ञान होता है। वैसे ही भगवान आत्मा ज्ञान-दर्पण समान है। जाननेवाला ज्ञान है; इस दर्पण में एकाकार होने पर पूर्ण अवस्था प्रगट होती है और सर्व जगत के पदार्थ जानने में आते हैं। इस बात को भगवान कुन्दकुन्द आचार्य सिद्ध करते हैं।

आत्मा ज्ञानमय है वह स्व को पूर्ण जानने पर
सभी पदार्थों को पूर्ण जानता है.

भावार्थ पर प्रवचन :- सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान और आत्मा के ज्ञान से सर्व का ज्ञान दोनों साथ होते हैं। आत्मा स्वयं ज्ञान पर्यायरूप हुआ अर्थात् इसमें सर्व का ज्ञान आ गया - लोकालोक आ गये। इस तरह भगवान आत्मा ज्ञानमय है, वह स्वसंचेतक है। जानना-जानना इसका स्वभाव है। स्वयं को पूर्णपने अनुभवता होने से इसमें ज्ञेय का ज्ञान आए बिना नहीं रहता। स्व-संचेतन हुआ अर्थात् इसमें लोकालोक का ज्ञान आ गया।

जैसे मकान में टंगे हुए कांच के गोले (दर्पण) में आजू-बाजू की सभी चीजें दिखाई देती हैं। अर्थात् कि गोला कैसा है, कितना है, कौन से रंग का है; इसीतरह मकान की सभी वस्तुएँ भी दिख जाती है; उसीप्रकार चैतन्यज्ञानमयता के कारण स्वयं को जाना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् लोकालोक का घर जानने में आ गया। जिसप्रकार कांच के गोले में कांच का गोला तथा मकान युगपद् दिखाई देता है। उसीप्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में ज्ञान गोला पड़ा है। कांच में प्रकाश साथ है; वैसे ही भगवान आत्मा में ज्ञान प्रकाश साथ है। इसे जानने पर लोकालोक जानने में आ जाता है। भगवान आत्मा ज्ञानमय अभेद स्वभाव के कारण स्वयं का अनुभव करता है।

ज्ञेय सम्बंधी ज्ञान को और स्वयं के ज्ञान को पृथक करना अशक्य है.

तथा, जैसे कांच का गोला (दर्पण) और घर, पृथक वस्तु होने पर भी दर्पण में एक साथ दोनों ज्ञात होते हैं; वैसे ही आत्मा और पर वस्तु भिन्न होने पर भी प्रतिभास और प्रतिभास्यमान का अपनी अवस्था में अन्योन्य मिलन होने के कारण अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय, आत्मा की ज्ञान की अवस्था में परस्पर मिश्रित हैं - एकमेकरूप हैं। जैसे ज्ञान ने आत्मा को जाना है; वैसे ही उस ज्ञान ने लोकालोक को जाना है - ऐसे ज्ञान का निर्णय करे उसे आत्मा की सामर्थ्य का ख्याल आने पर सम्यग्दर्शन होता है। इसके बाद में जो अन्तर स्थिरता होती है वह चारित्र है।

यहाँ कहते हैं कि - जाननेवाला ज्ञान है और पदार्थ जानने योग्य हैं। एक समय की ज्ञान अवस्था में ज्ञेय सम्बंध का ज्ञान आ गया है। इस कारण ज्ञान और ज्ञेय आत्मा की ज्ञान की अवस्था में परस्पर मिश्रित एकमेकरूपता के कारण उनको भिन्न करना अत्यन्त अशक्य है अर्थात् ज्ञान को पृथक करना अशक्य है। ऐसा ज्ञान प्रगट शक्तिवाला है - ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि स्व-स्वभाव ऊपर जाती है; बीच में जो राग-द्वेष आते हैं वे जानने लायक है।

निश्चय-आत्मा को जाना अर्थात् राग-द्वेष को जाने; वैसे ही आत्मा की पूर्ण ज्ञानदशा होने पर वह पूर्णरूप से सभी ज्ञेयों को जानता है। इसलिए ऐसा ज्ञात होता है कि मानो कि ज्ञान ज्ञेय में स्थित हो गया है और ज्ञेय ज्ञान में स्थित हो गये हैं; इसप्रकार उनको भिन्न करना अत्यन्त अशक्य है।

जैसे दर्पण में आम दिखता है वह दर्पण की अवस्था है; यह निकाली नहीं जा सकती। मुँह (चेहरे) के ऊपर का तल, दर्पण में दिखता है। अब यदि उस तल के प्रतिबिम्ब को दर्पण में से निकालना चाहो तो दर्पण टूट जायेगा; वैसे ही केवलज्ञान में लोकालोक ज्ञात होते हैं; यदि उसे निकालना चाहे तो ज्ञान पर्याय का नाश हो जायेगा। तथा अपने को निकालना चाहे तो लोकालोक निकल जायेगा, क्योंकि एक समय की पर्याय में लोकालोक दिखता है।

यहाँ ऐसा लगता है कि जैसे ज्ञेय, ज्ञान में घुस (प्रविष्ट हो) गये हैं। जबकि ज्ञेय तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञेय में हैं; इसलिये ज्ञेय सम्बंधी का ज्ञान - वह तो स्वयं का ज्ञान है; स्वयं का ज्ञान, वह ज्ञेय का ज्ञान है; दोनों एक साथ हैं - आगे पीछे नहीं। यह कोई अलग प्रकार की पिसाई (बात) है। ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान और स्वयं का ज्ञान दोनों को पृथक करना अशक्य है।

देखो ! जैसे पानी में पत्थर डालने से वह नीचे उतर जाता है; वैसे ही ज्ञान जल में लोकालोक भीतर उतर गया है। आत्मा की जो सर्वज्ञ पर्याय हुई है उसमें से यदि एक का ज्ञान निकाल दे अथवा पर के ज्ञान को निकाल दिया जावे तो स्वयं भी नहीं रहता - ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। निमित्त और पुण्य का लक्ष्य छोड़े तो एक समय की पूर्ण ज्ञान पर्याय प्रगट हो - ऐसा स्वभाव है इसलिये उसकी दृष्टि कर - उसे निहार - उसका निरीक्षण कर।

आत्मा ज्ञानमय होने से अपने को संचेतता है-अनुभवता है-जानता है और स्वयं को जानते हुये सर्व ज्ञेय इसप्रकार ज्ञात होते हैं मानों कि वे ज्ञान में स्थित हों; क्योंकि ज्ञान की अवस्था में से ज्ञेयाकारों को इसतरह भिन्न करना अशक्य (असंभव) है। स्वयं सर्वज्ञपने हुआ तब बाहर की अवस्था का ज्ञान पृथक करना असंभव है।

आंख की काली पुतली (रेटिना) में सम्पूर्ण मकान-बाड़ी इत्यादि दिखाई देते हैं; आँख की पुतली तथा मकान सभी दिखता है। पुतली को निकाल देने पर पुतली में दिखाई देनेवाले मकान का नाश होगा - ऐसा जब परमाणु की स्वच्छता का स्वभाव है, तो फिर आत्मा के स्वभाव का क्या कहना ! तथा आँख की पुतली सभी को देखती है - ऐसी पुतली की स्वच्छता को ज्ञान जानता है। पुतली में से मकान निकाल दिया जाये तो पुतली चली जायेगी। जैसे पुतली को देखने पर सभी को देखता है उसीप्रकार आत्मा को जानने पर सभी को जानता है और सभी को जानने पर आत्मा को जानता है।

मैं हूँ तो ज्ञान प्रगट होता है ऐसा मानना धर्म है और मैं हूँ
तो पर का कार्य होता है ऐसा मानना अधर्म है.

प्रश्नः- इसमें धर्म क्या आया ? दया पालना अथवा दान देने की बात इसमें कहाँ आई ?

समाधानः- "वस्तु स्वभाव वह धर्म है।" आत्मा वस्तु है उसका स्वभाव ज्ञान है - ऐसा निर्णय करना वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी धर्म है यह आत्मा को देखकर चलने की बात है। आत्मा में ज्ञान और आनन्द स्वभाव शक्तिरूप है, उसका स्वभाव पर्याय में पूर्णरूप हो - ऐसा है। दूसरे को निमित्त हो अथवा राग-द्वेषरूप हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

- ऐसा उसका स्वभाव नहीं है।

महासामान्य ज्ञान विशेष में व्याप्त होकर पूर्णरूप प्रगट होता है तो उसमें लोकालोक निमित्त कहलाता है। लोकालोक अनादि से है यदि उससे ज्ञान होता हो तो केवलज्ञान अनादि से होना चाहिये किन्तु केवलज्ञान प्रगट करे तो लोकालोक निमित्त कहलाता है।

जो सर्वज्ञ परमेश्वर हुये हैं वे तेरी जाति के थे। पहले वे आत्मा आलू आदि में परिभ्रमण करते थे। वे भगवान कहाँ से हुये ? जैसे लेंडीपीपर में चौंसठपुटी तिखास शक्तिरूप से भरी है उसमें से पर्याय में बाढ़ आती है; वैसे ही आत्मा का ज्ञान और आनन्द स्वभाव है उसमें से ज्ञान और आनन्द की बाढ़ आती है।

जैसे सर्वज्ञ सभी को जानते हैं किन्तु किसी का कुछ भी नहीं करते; वैसे ही यह (मेरा) आत्मा भी पर का नहीं करता.

यह सभी मकान आदि ज्ञान में आते हैं किन्तु वह (आत्मा) मकान को नहीं बना सकता। प्रथम जिसने मकान का नक्शा बनाया है उसे पूरा मकान ख्याल में आ गया है। मकान बनते समय अज्ञानी मानता है कि मेरे से यह मकान बनता है। आटे की लोई में से रोटी बनेगी ऐसा पहले से ख्याल में है। अब रोटी बनने पर ज्ञान उसे जानता हुआ विशेष प्रगट होता है किन्तु अज्ञानी मानता है कि मेरे से रोटी बनती है।

इसी तरह मिट्टी में से घड़ा बनेगा ऐसा पहले से ख्याल में है और बालू में से घड़ा नहीं बनेगा ऐसा भी ख्याल में है। जब मिट्टी में से घड़ा बनता है तब अज्ञानी मानता है कि मैं उसे बनाता हूँ किन्तु पहले से ख्याल है कि मिट्टी में से घड़ा बनेगा फिर क्षण-क्षण जो अवस्था होगी उसे जानना वह धर्म है; इसके विपरीत मैं हूँ तो उनकी अवस्था होती है यह मानना अधर्म है; मैं हूँ तो ज्ञान है ऐसा माने तो धर्म है।

जैसा घड़ा होता है, वैसा ज्ञान होता है और जैसा ज्ञान होता है, वैसा घड़े का परिणमन घड़े के कारण से होता है; किन्तु घड़े की अवस्था के कारण ज्ञान की अवस्था हुई है ऐसा मानना वह भ्रम है और ज्ञान की अवस्था के कारण घड़े की अवस्था हुई है ऐसा मानना वह भी भ्रम है। प्रथम से ही सामान्यज्ञान ख्याल में है कि मिट्टी में से घड़ा बनेगा फिर समय-समय घड़े की अवस्था होती है वैसे विशेषरूप जानता है, ऐसे ज्ञान को छोड़कर मैं हूँ तो घड़ा बनता है ऐसा मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

क्या केवलज्ञान परिणमित होता है इसलिये लोकालोक परिणमित होता है ?

नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लोकालोक परिणमित होता है इसलिये केवलज्ञान परिणमित होता है ?

नहीं।

क्योंकि दोनों स्वतंत्र हैं; उसीप्रकार निचलीदशा में भी ज्ञान और ज्ञेय स्वतंत्र हैं फिर भी निमित्त के कारण ज्ञान माने अथवा राग के कारण ज्ञान माने और ज्ञान के कारण ज्ञेय माने - यह सभी भ्रम हैं। देह का हलन-चलन होता है वह - देह के कारण से होता है क्योंकि आकाश द्रव्य के प्रदेश चलने की योग्यतावाले नहीं हैं इसकारण वे नहीं चलते; फिर भी अज्ञानी मानता है कि मैं हूँ तो शरीर चलता है किन्तु यह भ्रम है।

यदि आत्मा सर्व को नहीं जाने तो ज्ञान को आत्मसंचेतन का अभाव होने से परिपूर्ण एक आत्मा का ज्ञान पूर्ण नहीं होता। स्वयं को नहीं जाने तो वह पर को नहीं जानता और पर को नहीं जानता वह स्व को नहीं जानता।

गाथा ४८ में बताया था कि जो सर्व को नहीं जानता वह एक को भी नहीं जानता। अब इस (४९वीं) गाथा में कहते हैं कि अपने चिदानन्द स्वभाव के अवलम्बन से ज्ञान परिपूर्णता को प्राप्त होता है - ऐसी परिपूर्णता को जो नहीं जानता वह सर्व को नहीं जानता। स्वयं पूर्ण कौन है ? उसे जो नहीं जानता वह सर्व को नहीं जानता और सर्व को जानता है वह एक को जानता है और जो एक को जानता है वह सर्व को जानता है।

यह जैन शासन का महा रहस्यपूर्ण स्वरूप है। तेरा स्वभाव ज्ञान है, जो स्वभाव है वह अपूर्ण (अधूरा) नहीं होता और वह पराधीन भी नहीं होता - ऐसे पूर्ण स्वभाव के सन्मुख होकर, ज्ञायक का निर्णय करना वही सम्यग्दर्शन है। क्रमबद्ध का निर्णय, सात तत्त्व की श्रद्धा, स्व-पर भेद विज्ञान और सर्वज्ञ का निर्णय इसमें आ जाता है।

आत्मा वस्तु है और वह अनादि से पर से भिन्न है। वस्तु का स्वभाव पूर्ण और अखण्ड है इस स्वभाव के सन्मुख होकर, पूर्णदशा प्रगट करते हैं वे अपने को पूर्ण जानने पर जगत के सर्व पदार्थों को जानते हैं। जगत के सभी पदार्थों को; वैसे ही आत्मा के ज्ञान के अतिरिक्त सभी गुणों को जाननेवाला ज्ञान है। उस ज्ञानस्वभावी आत्मा का सम्यक् निर्णय, ज्ञान और स्थिरता करने पर जो पूर्णज्ञान प्रगट होता है वह ज्ञान सभी पदार्थों को जानता है। इसप्रकार जो सर्व को जानता है वह आत्मा को जानता है और जो पूर्ण अवस्था को जानता है वह सर्व को जानता है।

जिसप्रकार अन्यमति कहते हैं कि - भगवान जगत के कर्ता हैं - ऐसा मानें तो वह भगवान को माननेवाले कहलाये। उसीप्रकार जैन नाम धारी मिथ्यादृष्टि ऐसा कहते हैं कि तुम निमित्त से उपादान में कार्य होता है - ऐसा मानो तो तुम निमित्त के माननेवाले

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहलाओगे। जबकि ये दोनों ही बातें असत्य हैं; क्योंकि ईश्वर स्वयं सिद्ध है। यदि ईश्वर जगत के कर्ता हैं तो फिर ईश्वर का कर्ता कौन है ? यदि तुम कहोगे कि ईश्वर स्वयं सिद्ध हैं। यदि, ईश्वर स्वयं सिद्ध है तो जगत के सभी पदार्थ भी स्वयं सिद्ध है। इसलिए ईश्वर को जगत का कर्ता मानना मिथ्या है। वैसे ही यदि निमित्त उपादान में कुछ करता है - ऐसा मानें तो निमित्त-उपादान इन दोनों में से एक भी नहीं रहता।

आत्मा की स्वयं के कारण, जिस समय विशेषपर्याय - पूर्णज्ञानरूप है, उसी समय जगत के जो सर्व पदार्थ हैं उन सभी को, पूर्णज्ञान एक समय में - एक ही साथ जानता है। पूर्णज्ञान में, लोकालोक निमित्त है इसलिये ज्ञान है - ऐसा नहीं है। यहाँ अपनी पर्याय में नैमित्तिक की पूर्ण ज्ञानदशा हुई है और वहाँ लोकालोक जानने में निमित्त है। यह आत्मा स्वयं के ज्ञानपने जब पूर्णरूप से परिणमित हुआ वहाँ सम्पूर्ण लोकालोक का ज्ञान आ जाता है। स्व और सर्व - इन दोनों में से एक का ज्ञान होता है और दूसरे का ज्ञान नहीं होता - यह असम्भवित है अर्थात् ऐसा नहीं होता।

लोकालोक है इसलिए केवलज्ञान नहीं है और केवलज्ञान है इसीलिए लोकालोक नहीं है, क्योंकि दोनों स्वतंत्र हैं। आत्मा को पूर्णरूप से जानने पर उसमें लोकालोक भी जानने में आ जाता है। जाननहार स्वरूप से आत्मा है और वह जाननार स्वरूप है - ऐसा प्रथम श्रद्धा-ज्ञान हो वही सम्यग्दर्शन है।

एक समय में पूर्णज्ञान लोकालोक को परिपूर्ण जानता है - यह कथन एक देश ज्ञान की अपेक्षा से नहीं परन्तु पूर्णज्ञान की (केवलज्ञान की) अपेक्षा से है। मति-श्रुत ये एकदेश ज्ञान है - वे सर्व को एक ही साथ नहीं जान सकते। आगे गाथा ५९ की टीका में आता है कि - महासामान्य एकरूप ज्ञान उसके ऊपर महाविकास से व्याप्त होकर रहनेवाला ज्ञान आत्माधीन है और वह प्रत्यक्ष ज्ञान - केवलज्ञान है। उस केवलज्ञान की क्या बात करना ? उसमें जानने से कुछ भी शेष रह जाये ऐसा नहीं होता। यहाँ तो आनन्द की अपेक्षा से ज्ञान की बात है। यह स्वत: केवलज्ञान आत्माधीन होने से निराकुल है और वह आनन्दरूप है उसमें बिल्कुल भी दु:ख नहीं है। यह बात तो सरल और सुगम है किन्तु लोग उनकी रुचि के अभाव से इसे कठिन बनाते हैं यदि स्व-स्वभाव की रुचि पूर्वक समझे तो स्वरूप समझ में आवे।

यहाँ जो केवलज्ञान ऊपर रहा है ऐसा कहा है वह पर्याय की बात है। वह पर्याय, ध्रुव स्वभाव में से आई है किन्तु ध्रुव स्वभाव में प्रविष्ट नहीं हुई है और ऊपर है अर्थात् प्रगट है - बाहर है।

जिसप्रकार समुद्र में तरंग (लहर) है वह ऊपर है अर्थात् प्रगट है-बाहर है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसीप्रकार महासामान्य एकरूप ज्ञान के आश्रय से प्रगट हुई पूर्ण ज्ञानपर्याय, महासामान्यरूप स्वभाव (के) ऊपर है अर्थात् प्रगट है। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण ज्ञान-आनन्द स्वरूप है उसकी श्रद्धा, ज्ञान और भावना करने पर प्रगट हुआ जो निराकुल आत्माधीन केवलज्ञान है वह बाहर है-ऊपर है। यह बात मुद्दे की है इसे समझने में विशेष उघाड़ (क्षयोपशम) की जरूरत नहीं होती, किन्तु रुचि की ही खास जरूरत है।

लोकालोक के पदार्थों की पर्यायें जो क्रम-क्रम से होती हैं उन सभी को केवलज्ञान अक्रम जानता है। सामने जो पर्यायें क्रमबद्ध परिणमित होती हैं उसे वह क्रम से नहीं जानता, क्योंकि पूर्णज्ञान सम्पूर्ण विकसित हो गया है।

❁ ❁ ❁

दिगम्बर साधु यानि साक्षात् मोक्ष का मार्ग - ये तो छोटे सिद्ध हैं, शुद्धोपयोगी हैं, पंच परमेष्ठी की पंक्ति में जिनका स्थान है - ऐसे मुनिराज के दर्शन हो तो ही महान आनन्द की बात है - ऐसे मुनिवरों के तो हम दासानुदास हैं। हम उनके चरणारविन्द को नमन करते हैं। धन्य है यह मुनिदशा; हम भी इस दशा की भावना भाते हैं।

- स्वानुभव प्रेरणा मुर्ति पू. श्री कानजी स्वामी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ५०

अथ क्रमकृतप्रवृत्त्या ज्ञानस्य सर्वगतत्त्व न सिद्धयतीति निश्चिनोति -

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अट्ठे पडुच्च णाणिस्स।
तं णेव हवदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं ॥५०॥

अब ऐसा निश्चित करते हैं कि क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञान की सर्वगतता सिद्ध नहीं होती :-

यदि ज्ञान ज्ञानी का प्रगट हो क्रमिक अर्थालम्ब से ।
तो नहीं होता नित्य क्षायिक सर्वगत उस ज्ञान से ॥५०॥

गाथार्थ :- यदि आत्माका ज्ञान क्रमशः पदार्थों का अवलम्बन लेकर उत्पन्न होता हो तो वह (ज्ञान) नित्य नहीं है, क्षायिक नहीं है, और सर्वगत नहीं है।

टीका :- जो ज्ञान क्रमशः एक-एक पदार्थ का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है वह (ज्ञान) एक पदार्थ के अवलम्बन से उत्पन्न होकर दूसरे पदार्थ के अवलम्बन से नष्ट हो जाने से नित्य नहीं होता तथा कर्मोदय के कारण एक व्यक्ति को प्राप्त करके फिर अन्य व्यक्ति को प्राप्त करता है इसलिये क्षायिक भी न होता हुआ, वह अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त होने से (जानने में) असमर्थ होने के कारण सर्वगत नहीं है।

भावार्थ :- क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञान अनित्य है, क्षायोपशमिक है; ऐसा क्रमिक ज्ञानवाला पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

* * *

गाथा ५० पर प्रवचन

अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञान की सर्वगतता सिद्ध नहीं होती :-

एक समय में जिसे सम्पूर्ण लोकालोक और स्वयं का पता मिलता है - ऐसा ज्ञान सर्व ज्ञेयों को अक्रम न जाने ऐसा इसका स्वरूप ही नहीं है और क्रम-क्रम से स्वयं को और पर को जाने - ऐसा पूर्ण ज्ञान का स्वरूप ही नहीं है। भविष्य की पर्याय होगी तब केवली भगवान जानेंगे - यह बात सही नहीं है। भविष्य की अनन्त पर्यायों को वर्तमान में केवली जानते हैं। पर्याय होगी तब जाने वह केवलज्ञान नहीं कहलाता।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसा केवलियों ने जाना है - उसी अनुसार तीनों काल की पर्यायें हैं - ऐसा निर्णय करने पर निमित्त आये तो कार्य होगा और नहीं आये तो नहीं होगा यह मान्यता रहती ही नहीं; वैसे ही भविष्य की पर्याय होगी तब केवली जानेंगे - यह मान्यता भी नहीं रहती। केवलज्ञान के निर्णय में निमित्त व उपादान दोनों सुनिश्चित् होते हैं और ज्ञान में आ जाता है। केवली के निर्णय में ही ज्ञातापने का निर्णय और अनन्त पुरुषार्थ है।

जो क्रमशः एक-एक पदार्थ का अवलम्बन लेकर प्रवर्तता है वह ज्ञान एक पदार्थ के अवलम्बन द्वारा नष्ट हुआ होने से नित्य नहीं होता। एक समय में एक ज्ञेय को जाने, दूसरे समय में दूसरे को जाने - ऐसा जानने पर ज्ञान नित्य नहीं रहता; वह अनित्य ज्ञान खण्ड-खण्ड हो गया इसीलिये वह ज्ञान सर्वगत नहीं है। ज्ञाता स्वभाव के निर्णय के बिना साम्यभाव होता ही नहीं और साम्यभाव के बिना केवलज्ञान प्रगट नहीं होता।

इन्द्रियज्ञान कर्मोदय के कारण एक व्यक्ति को प्राप्त करके, फिर अन्य व्यक्ति को प्राप्त करने से क्षायिक भी नहीं होता। क्रम-क्रम से होनेवाले ज्ञान में दो भेद पड़े। एक निमित्त में भेद अर्थात् पहले इस निमित्त का अवलम्बन, फिर इस निमित्त का अवलम्बन; वैसे ही स्वयं में पहले इस ज्ञान की प्रगटता, फिर इस ज्ञान की प्रगटता - ऐसे भेद पड़ गये हैं इसलिये वह क्षायिक ज्ञान नहीं कहलाता। अतः वह क्रमिक ज्ञान है - क्षयोपशम ज्ञान है - अनित्य ज्ञान है।

आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द स्वरूप है। उसका निर्णय करके ज्ञान में ठहरना (स्थिर होना) वही धार्मिक क्रिया है। इसके बिना निमित्त से कार्य होता है और दया-दानादि से धर्म होता है - ऐसी मान्यता में धार्मिक क्रिया नहीं है।

हे भाई ! एक बार क्षायिकज्ञान निर्विकल्प अक्रमिक ज्ञान-सर्वगतज्ञान का निर्णय करे तो निर्णय में ही शान्ति और धर्म है। क्रमिक ज्ञान अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त होने (अर्थात्) जानने के लिये असमर्थ होने के कारण सर्वगत नहीं है। जो सर्व को नहीं जानता - वह ज्ञान ही नहीं कहलाता।

लोग ऐसा मानते हैं - कि श्रीखंड, हलुआ, गुलाब-जामुन आदि में मिठास है - उस गुलाब जामुन में कैसी मिठास है - वह देखना हो तो गुलाब जामुन को मुंह में डालकर दर्पण में देखे तो कुत्ते की विष्टा जैसा दिखाई देगा इसलिये उसमें थोड़ी भी मिठास नहीं है। मिठास तो आत्मा में है जो ज्ञान और आनन्द स्वरूप है उसी में है। उसकी रुचि करने पर, पर्याय में आनन्द प्रगट होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो ज्ञान पूर्ण हो गया है उसमें सर्व जीव की विकारी अथवा अविकारी जो-जो भी पर्यायें ज्ञेय हैं वे सभी जानने में आती हैं। पूर्ण ज्ञान में कुछ भी जानने से बाकी (शेष) रह जाय - यह बात सही नहीं है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है, वह पूर्ण होकर सर्व को नहीं जाने तो वह अक्रमिकज्ञान-नित्यज्ञान-क्षायिकज्ञान-केवलज्ञान अथवा पूर्णज्ञान नहीं कहलाता।

भावार्थ पर प्रवचन :- क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञान अनित्य है क्षायोपशमिक है - ऐसा क्रमिक ज्ञानवाला पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता। त्रिकालवेत्ता किसे कहा जाय ? जगत के तीनों काल के पदार्थों को मात्र जाने किन्तु किसी को करे नहीं और जानना कम नहीं रखे। यदि ईश्वर भूतकाल के पदार्थों को करे तो भूतकाल के पदार्थों का ज्ञेय नहीं आया तो वे त्रिकालवेत्ता नहीं रहे और जो अल्प जाने तो वे भी त्रिकालवेत्ता नहीं कहलाते। जो हो चुका है, आगे होगा और हो रहा है वह सभी केवलज्ञान में आ जाता है।

आत्मा ज्ञेयों को भी जाननेवाला है। जो जाननेवाला है - वह करनेवाला (कर्ता) नहीं होता और जो करनेवाला है वह जाननेवाला नहीं होता। पूर्णज्ञान भूतकाल के पदार्थों का कर्ता नहीं, भविष्यकाल के पदार्थों का कर्ता नहीं और वर्तमान काल के पदार्थों का भी कर्ता नहीं है; वैसे ही उस पूर्णज्ञान में तीनोंकाल के पदार्थों का पूर्ण ज्ञान आये बिना नहीं रहता। यदि ऐसा नहीं हो तो वे सर्वज्ञ नहीं कहलाय। ऐसे सर्वज्ञ का निर्णय करे, उसका अपना आत्मा, जागृत हुए बिना नहीं रहे। सर्वज्ञ के निर्णय में निमित्त, संयोग आदि किसी को लाना अथवा किसी को हटाना रहता ही नहीं।

❁ ❁ ❁

जिनके चित्त का चरित्र उदात्त है ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धांत का सेवन करें कि - 'मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूँ; और जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं वे मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सभी मेरे लिए परद्रव्य हैं'।

- श्री समयसार कलश, १८५

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ५१

अथ यौगपद्यप्रवृत्त्यैव ज्ञानस्य सर्वगतत्त्वं सिद्धयतीति व्यवतिष्ठते -

तिक्कालणिच्चविसमं सयलं सव्वत्थसंभवं चित्तं ।
जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं ॥५१॥

अब ऐसा निश्चित होता है कि युगपत् प्रवृत्ति के द्वारा ही ज्ञान का सर्वगतत्त्व सिद्ध होता है (अर्थात् अक्रम से प्रवर्तमान ज्ञान ही सर्वगत हो सकता है) :-

त्रैकाल्य नित्य विषम सकल सर्वत्र स्थित विविध को ।
जिन-ज्ञान का माहात्म्य यह जो जानता युगपद् अहो ॥५१॥

गाथार्थ :- तीनोंकाल में सदा विषम (असमान जाति के), सर्व क्षेत्र के अनेक प्रकार के समस्त पदार्थों को जिनदेव का ज्ञान एक साथ जानता है अहो ! ज्ञान का माहात्म्य !

टीका :- वास्तव में क्षायिक ज्ञान का, सर्वोत्कृष्टता का स्थानभूत परम माहात्म्य है; और जो ज्ञान एक साथ ही समस्त पदार्थों का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है वह ज्ञान - अपने में समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकार टंकोत्कीर्ण - न्याय से स्थित होने से जिसने नित्यत्व प्राप्त किया है और समस्त व्यक्ति को प्राप्त कर लेने से जिसने स्वभाव प्रकाशक क्षायिकभाव प्रगट किया है ऐसा - त्रिकाल में सदा विषम रहनेवाले (असमान जातिरूप से परिणमित होनेवाले) और अनन्त प्रकारों के कारण विचित्रता को प्राप्त सम्पूर्ण सर्व पदार्थों के समूह को जानता हुआ, अक्रम से अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त होने से जिसने अद्भुत माहात्म्य प्रगट किया है ऐसा सर्वगत ही है।

भावार्थ :- अक्रम से प्रवर्तमान ज्ञान एक ज्ञेय से दूसरे के प्रति नहीं बदलता इसलिये नित्य है, अपनी समस्त शक्तियों के प्रगट हो जाने से क्षायिक है - ऐसे अक्रमिक ज्ञानवाला पुरुष ही सर्वज्ञ हो सकता है। सर्वज्ञ के इस ज्ञान का कोई परम अद्भुत माहात्म्य है ॥५१॥

* * *

गाथा ५१ पर प्रवचन

अब, ऐसा निश्चित होता है कि युगपद् प्रवृत्ति के द्वारा ही ज्ञान का सर्वगतत्त्व सिद्ध होता है अर्थात् अक्रमरूप से प्रवर्तमान ज्ञान ही सर्वगत हो सकता है -

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वज्ञ तीनकाल के पदार्थों को मात्र जानते हैं; उसमें इस जीव की मुक्ति इस काल में होगी ऐसा भगवान वर्तमान में जानते हैं किन्तु मैं उसकी मुक्ति करता हूँ अथवा मेरे से उसकी मुक्ति होगी - ऐसा वे ज्ञान में नहीं जानते। इस जीव को इस समय में मुक्ति अथवा इस समय धर्म अथवा अधर्म होगा ऐसा मात्र केवलज्ञानी जानते हैं और उसीमें त्रिकालवेत्तापना अथवा सर्वज्ञपना सिद्ध होता है। इनकी मुक्ति मैं करूं - यदि ऐसा जाने तो वे त्रिकालवेत्ता कहलाये ही नहीं।

जैसे द्वितीया का चन्द्रमा दूज को, पूर्ण चंद्र को और उसका आवरण कितना बाकी है इन तीन बातों को बताता है; वैसे ही सम्यग्ज्ञान, स्वयं को कितना उघाड़ है, पूर्णज्ञान कैसा होता है, वैसे ही पूर्ण हित का स्वरूप क्या है ? और पूर्ण होने में अपूर्णता कितनी है ? वह भी जानता है।

अनन्तकाल से परिभ्रमण करते हुए आत्मा का किसी की कृपा से कल्याण हो जाये ऐसा नहीं होता। भगवान की कृपा से कल्याण होता है ऐसा माना जाये तो इसका अर्थ यह हुआ कि अभी तक भगवान की अकृपा से (कारण) परिभ्रमण करता था; तो फिर उसमें तो भगवान का दोष था - अपना तो कोई दोष नहीं था। इसलिये यह मानना तो भगवान को गाली देने जैसा है।

अब वास्तव में क्षायिकज्ञान की सर्वोत्कृष्टता का स्थानभूत परम महात्म्य है। अहो ! ऐसे ज्ञान का कितना महात्म्य और महिमा है - ऐसे क्षायिकज्ञान के भण्डार स्वरूप आत्मा की महिमा आये उसे धर्म हुये बिना नहीं रहता - उसकी भव (से) कट्टी हो जाती है अर्थात् मित्रता टूट जाती है।

केवलज्ञान सर्वोत्कृष्ट परम महात्म्यवाला है.

टीका पर प्रवचन :-

भगवान का क्षायिकज्ञान कैसा है ?

देखो ! क्रमिकज्ञान, क्षायिकज्ञान नहीं कहलाता।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा कि -

'जे स्वरूप श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहि पण, ते श्री भगवान जो।
तेह स्वरूप ने अन्य वाणी ते शुं कहे,
अनुभव गोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो ॥

एक समय की ज्ञान पर्याय में - असंख्य प्रदेशी आत्मा जानने में आता है किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उस चेतन द्रव्य को, जड़-वाणी द्वारा कहना अर्थात् अरूपी को रूपी द्वारा कहना - चेतन को जड़ के द्वारा कहें तो वह कितना कहा जा सकता है ? सर्वज्ञ के सिवाय चार ज्ञान के धनी गणधर भी क्या कह सके ? चिदानन्द सरोवर अन्तर में से उछलता है और जैसे बाढ़ आती है। उस मध्यसरोवर में से केवलज्ञान पर्याय प्रगट होती है - उसका क्या कहना ! क्योंकि वह परम माहात्म्यवान् है।

केवलज्ञान में समस्त पदार्थ उत्कीर्ण हो गये हैं.

तथा वह केवलज्ञान लोकालोक के पदार्थों का अवलम्बन लेकर प्रवर्तता है। जिस समय जो विकार होनेवाला है वह सब जानते हैं। स्वयं में ऐसी नैमित्तिकदशा होती है तो लोकालोक उसमें निमित्त कहलाता है। पत्थर में टांकी से उकेरी हुई आकृति के समान लोकालोक केवलज्ञान में उत्कीर्ण हो गया है। देखो ! ऐसे केवलज्ञान का माहात्म्य करे वह स्वभाव-सन्मुख होता है; उसे निमित्त और राग का माहात्म्य उड़ (समाप्त हो) जाता है। अल्पज्ञ पर्याय का माहात्म्य आना भी मिथ्याभाव है।

इस क्षायिकज्ञान ने नित्यपना प्राप्त किया है। एक समय में केवलज्ञान में सब दिखाई देता है - ऐसा जिसने निर्णय किया वह (यह भी) निर्णय करता है कि 'मैं आनन्द का कंद हूँ' - ऐसी प्रतीति की वही सम्यग्दर्शन है वहाँ निमित्त और राग से भेद पड़ गया। मेरा स्वभाव पूर्ण है ऐसा जिसने निर्णय किया उसने केवलज्ञान का निर्णय किया है। जिसने उत्पाद व्यय, ध्रुव तीन अंशो को एक समय में पकड़ (ग्रहण कर) लिया है - ऐसे हे प्रभु ! तुम्हें सर्वज्ञदशा है ऐसा सिद्ध होता है; नयी पर्यायपने उत्पन्न हो, पूर्व पयार्यपने नाश को प्राप्त हो और स्वयं ध्रुव रहे ऐसे तीन अंशों को उसने पकड़ लिया है यह तेरी सर्वज्ञता सिद्ध करते हैं।

यहाँ लोकालोक केवलज्ञान में प्रविष्ट हो गया है अर्थात् ज्ञान में लोकालोक जानने में आया है; इसीलिये केवलज्ञान ने नित्यपना प्राप्त किया है - ऐसा कहते हैं। एक समय में केवलज्ञान पूर्ण है और सामने लोकालोक पूर्ण है इसीलिये नित्य कहा है। क्षयोपशमज्ञान में व्यक्तता अल्प है और भगवान के ज्ञान में पूर्ण व्यक्तता है; ऐसे केवलज्ञान को भगवान ने प्राप्त किया है। यहाँ स्वभाव प्रकाशक क्षायिकभाव प्रगट करते हैं। यह केवलज्ञान है।

अशुद्ध पर्याय का अन्त आता है किन्तु केवलज्ञानादि शुद्ध पर्याय का अन्त नहीं आता.

यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है; अन्य किसी दूसरी जगह ऐसा अधिकार नहीं है। यह टीका और ऐसा वर्णन अन्य कहीं नहीं है। कुन्दकुन्द आचार्य ने तीर्थंकर जैसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

काम किया है और अमृतचन्द्र आचार्य ने गणधर जैसा काम किया है। देखो ! केवलज्ञान को शीघ्र ही (पा) लेंगे ऐसी आवाज आ रही है। कुन्दकुन्द आचार्य और अमृतचन्द्र आचार्य तुरन्त केवलज्ञान लेंगे (इसमें ऐसी ध्वनि गूंजती है)। अहो ! यह केवलज्ञान वे अल्पकाल में लेंगे। आचार्य का पंचमकाल में जन्म हुआ है वे देव होकर फिर केवलज्ञान लेंगे।

भविष्य का सभी कुछ निश्चित होता है ऐसा केवलज्ञान जानता है इस जगत में सर्वज्ञपद है ऐसा जाने तो इसमें ज्ञानस्वभाव की महिमा आती है। हम भी एक भव में सर्वज्ञ होनेवाले हैं। यह सर्वज्ञ होने की क्रिया है। भगवान चिदानन्द ज्ञानस्वभाव है। अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें प्रगट होगी किन्तु कभी समाप्त नहीं होगी। अशुद्धता का प्रवाह तो समाप्त होता है किन्तु केवलज्ञान समाप्त नहीं होता। द्रव्य रहता है तबतक केवलज्ञान रहेगा अर्थात् वह सादि-अनन्तकाल रहेगा। इसलिए भूतकाल की अपेक्षा भविष्य का काल अनन्त गुना अधिक है क्योंकि अशुद्धता की पर्याय का तो अन्त आता है किन्तु शुद्ध पर्याय का अन्त कभी नहीं आता। इसप्रकार भूत काल की पर्याय की अपेक्षा भविष्य की पर्याय अनन्त गुनी है। भूतकाल की अशुद्धता का अन्त आता है किन्तु शुद्ध पर्याय तो, द्रव्य रहेगा तबतक रहेगी। इसीलिए शुद्ध पर्याय सादि-अनन्त काल रहेगी।

केवलज्ञान अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त होता है इसीलिये वह सर्वगत् ही है.

जीव चेतन है और पुद्गल अचेतन है इसलिये वे असमान जाति है उन पदार्थों को केवलज्ञान जानता है। कोई कहता है कि किसी जीव में जो बुद्धिपूर्वक राग होता है वह अक्रम से होता है क्योंकि उनकी बुद्धि से फेरफार किया जा सकता है और अबुद्धिपूर्वक का सभी राग क्रमबद्ध ही होता है। किन्तु यह बात असत्य है क्योंकि बुद्धिपूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक - सभी राग क्रमबद्ध ही होते हैं।

तथा चैतन्य परिणाम में अनन्त प्रकार हैं और जड़ में भी अनन्त प्रकार है उस विचित्रता को प्राप्त किये हुए ऐसे समस्त सर्व पदार्थों को केवलज्ञान जानता है। बाह्य मन्दिर आदि जब होना हो तब होता है और जब जैसे विकल्प आने हो वही आते हैं। प्रचनसार की टीका का विकल्प श्री अमृतचन्द्र आचार्य को आया उसके भी वे ज्ञाता है।

भगवान का ज्ञान सारी दुनिया के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त होता है अर्थात् उस सम्बन्धी ज्ञान - ज्ञानरूप से परिणमित हो जाता है। अनन्तकाल में नहीं था - ऐसा ज्ञान प्रगट किया है वह सर्वगत ही है। जिसने एक भाव को यथार्थ समझता है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसने सर्व भावों को यथार्थ समझा है। यथार्थता से कोई भी एक भाव समझे अर्थात् की एक आत्मा, एक संवर कोई भी भाव यथार्थपने समझे तो उसमें सभी कुछ आ जाता है।

प्रवचनसार गाथा ४९ की जयसेन आचार्य की टीका में इसी अर्थ का श्लोक है। केवलज्ञान सभी को प्राप्त करता है - ऐसे ज्ञान का निर्णय करनेवाला अपने स्वभाव को प्राप्त करता है किन्तु निमित्त, राग और अल्पज्ञता को प्राप्त नहीं करता; इसीलिये उसे भव नहीं होता और वह राग को दूर करके वीतराग हो जायगा।

भावार्थ पर प्रवचन :- एक साथ अर्थात् युगपद् प्रवर्तता ज्ञान एक ज्ञेय से दूसरे के प्रति नहीं बदलता। पहले मौसम्बी को जाने, फिर रस को जाने ऐसा नहीं होता। यह पूर्णज्ञान अक्रम होने से नित्य है। अपनी समस्त शक्तियों के प्रगट हो जाने से क्षायिक है - ऐसे अक्रमिक ज्ञानवाला पुरुष ही सर्वज्ञ हो सकता है। धर्म का मूल सर्वज्ञ है, इसीलिये सर्वज्ञ के सिवाय (बिना) धर्म का तू किसप्रकार निर्णय कर सकेगा ? ऐसे अक्रमिक ज्ञानवाला पुरुष सर्वज्ञ है। यह इनके ज्ञान का महात्म्य है।

केवली भगवान को जानने की क्रिया का परिणमन होता है फिर भी उन्हें बन्ध का फल नहीं है; क्योंकि ज्ञान की क्रिया बन्ध का हेतु नहीं है अपितु ज्ञेयार्थ क्रिया बन्ध का कारण है।

कोई कहता है कि जानने की क्रिया दु:ख दायक है तो यह बात असत्य है। क्योंकि जानने की क्रिया दु:खदायक नहीं है। पहले समय का केवलज्ञान दूसरे समय नहीं रहता, दूसरे समय दूसरा होता है; वह ज्ञान क्रिया है। क्रिया पर्याय की फेरनी है यही ज्ञान की क्रिया है किन्तु ज्ञेयार्थ क्रिया नहीं; इसलिए बन्ध नहीं होता ऐसा कहकर ज्ञान अधिकार पूर्ण करते हैं।

❁ ❁ ❁

जैनदर्शन में मात्र बाह्य क्रिया का ही प्रतिपादन नहीं है परन्तु उसमें सुक्ष्म तत्त्वज्ञान भरपूर भरा है।

- गुरुदेवश्री के वचनामृत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

गाथा ५२

अथ ज्ञानिनो ज्ञप्तिक्रियासद्भावेऽपि क्रियाफलभूतं बन्धं प्रतिषेधयन्नुपसंहरति -

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु।
जाणण्णवि ते आदा अबंधगो तेण पण्णत्तो ॥५२॥

अब, ज्ञानी के (केवलज्ञानी आत्मा के) ज्ञप्तिक्रिया का सद्भाव होने पर भी उसके क्रिया के फलरूप बन्ध का निषेध करते हुए उपसंहार करते हैं (अर्थात् केवलज्ञानी आत्मा के जानने की क्रिया होने पर भी बन्ध नहीं होता, ऐसा कहकर ज्ञान अधिकार पूर्ण करते हैं)-

ना परिणमन ना ग्रहण ना उत्पन्न अर्थ समूह में ।
जो मात्र जानें अर्थ को इसलिए अबंधक जिन कहे ॥५२॥

गाथार्थ :- (केवलज्ञानी) आत्मा पदार्थों को जानता हुआ भी उसरूप परिणमित नहीं होता, उन्हें ग्रहण नहीं करता और उन पदार्थों केरूप में उत्पन्न नहीं होता इसलिये उसे अबन्धक कहा है।

टीका :- यहाँ 'उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया। तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठोवा बन्धमणु भवदि॥ इस गाथा सूत्र में उदयगत पुद्गल कर्मांशों के अस्तित्त्व में चेतित होने पर-जानने पर-अनुभव करने पर मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से ज्ञेयार्थ परिणमनस्वरूप क्रिया के साथ युक्त होता हुआ आत्मा क्रियाफलभूत बन्ध का अनुभव करता है, किन्तु ज्ञान से नहीं' इसप्रकार प्रथम ही अर्थपरिणमनक्रिया के फलरूप से बन्ध का समर्थन किया गया है (अर्थात् बन्ध तो पदार्थरूप में परिणमनरूप क्रिया का फल है ऐसा निश्चित किया गया है) तथा 'गेण्हदि णेव ण मुञ्चदि ण परं परिणमदि केवली भगवं। पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं॥

इस गाथा सूत्र में शुद्धात्मा के अर्थ परिणमनादि क्रियाओं का अभाव निरुपित किया गया है इसलिये जो (आत्मा) पदार्थरूप में परिणमित नहीं होता उसे ग्रहण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता उस आत्मा के ज्ञप्तिक्रिया का सद्भाव होने पर भीवास्तव में क्रियाफलभूत बन्ध सिद्ध नहीं होता।

भावार्थ :- कर्म के तीन भेद किये गये हैं - प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलीभगवान के प्राप्य कर्म, विकार्य कर्म और निर्वर्त्य कर्म ज्ञान ही है, क्योंकि वे ज्ञान को ही ग्रहण करते हैं, ज्ञानरूप ही परिणमित होते हैं और ज्ञानरूप ही उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार ज्ञान ही उनका कर्म और ज्ञप्ति ही उनकी क्रिया है। ऐसा होने से केवली भगवान के बन्ध नहीं होता, क्योंकि ज्ञप्तिक्रिया बन्ध का कारण नहीं है किन्तु ज्ञेयार्थ परिणमनक्रिया अर्थात् ज्ञेय पदार्थों के सन्मुख वृत्ति होना (ज्ञेय पदार्थों के प्रति परिणमित होना) वह बन्ध का कारण है। ॥५२॥

* * *

गाथा ५२ पर प्रवचन

स्वभाव की ज्ञान पर्याय पूर्ण हुई; वह पूर्णता कायम रहने की अपेक्षा से नित्य कही गई है; यह पर्याय समय-समय बदलती जाती है किन्तु इसमें राग नहीं है इसीलिये बन्ध भी नहीं। पहले समय की पर्याय दूसरे समय में नहीं आती - ऐसा परिणमन होता है; यह ज्ञान का बदलना बन्ध का कारण नहीं है अपितु मोह, बन्ध का कारण है।

४३ वीं गाथा सूत्र में कहा है कि - उदयगत् पुद्गल कर्मांशों के अस्तित्त्व में चेतित होने पर-जानने पर-अनुभव करने पर मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से, ज्ञेयार्थ परिणमन स्वरूप क्रिया के साथ युक्त होता हुआ आत्मा क्रिया-फलभूत बन्ध का अनुभव करता है। जीव राग के साथ युक्त होता है किन्तु ज्ञान के साथ युक्त नहीं होता।

अज्ञानी जीव को ज्ञान की महिमा नहीं आती, वह सामायिक आदि अपनी मानी हुई क्रिया करता है वहाँ पुण्य के कारण अनुकूलता मिलेगी - ऐसा मानकर वह मिथ्याभाव का सेवन करता है। यहाँ तो कहते हैं कि जीव कर्म के अंश में मोह करके राग-द्वेष करता है। ज्ञान से बन्ध नहीं होता। ज्ञान का अनुभव करे वह बन्ध का कारण नहीं है अपितु अन्तर में मोह-राग-द्वेष का होना बन्ध का कारण है। तथा ३२ वीं गाथा में कहा कि शुद्ध आत्मा को अर्थ परिणमन आदि क्रिया का अभाव है इसी से वह आत्मा परपदार्थरूप परिणमित नहीं होता, उसे ग्रहण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता। उस आत्मा को ज्ञान की क्रिया का सद्भाव है फिर भी क्रियाफल अर्थात् बन्ध नहीं है।

यह ज्ञान का अधिकार है उसका पूर्णरूप से प्रगट होना यह उसका रूप है। ज्ञानस्वभाव संयोग के कारण से नहीं है। ज्ञानस्वभाव अवस्थारूप से पूर्ण होता है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फिर (किसी का) नहीं जानना - नहीं रहता। ऐसे सर्वज्ञ - राग का नहीं अपितु ज्ञान का कार्य कर रहे हैं। आत्मा है वह ज्ञानस्वभाव है - वह अनादि अनन्त है। उसके साथ वर्तमान अवस्था तन्मय होती है तो वह पूर्ण होती है। निमित्त और राग का आश्रय छोड़कर ज्ञान पर्याय स्वभाव के साथ तदाकार होती है, तो केवलज्ञान प्रगट होता है।

केवली भगवान केवलज्ञान को प्राप्त हुये हैं किन्तु
वे पर और राग को प्राप्त नहीं होते.

भावार्थ पर प्रवचन :- कर्म के तीन भेद किये गये हैं। कर्म के परमाणुओं की अवस्था वह जड़ कर्म है, आत्मा की पर्याय में शुभाशुभभाव होते हैं वे भावकर्म है और शरीर-मन-वाणी आदि नोकर्म हैं। भावकर्म दु:खदायक है, द्रव्य-कर्म निमित्त है और नोकर्म संयोग है; किन्तु यहाँ उनकी बात नहीं है। यहाँ तो प्रत्येक द्रव्य में होनेवाले तीनप्रकार के कार्य की बात है कार्य अर्थात् दशा-कर्त्तव्य। उसके तीन भेद हैं। केवली भगवान का कार्य जानना ही है किन्तु राग को प्राप्त हो अथवा राग को उत्पन्न करे अथवा राग में फेरफार करे वे केवली नहीं होते। इसी तरह केवली भगवान पर को प्राप्त हो, पर को उत्पन्न करे अथवा पर में फेरफार करे ऐसा कभी नहीं होता।

प्राप्य अर्थात् प्राप्त होना (पहुंचना); जैसे किसी गांव को मनुष्य पहुंचता है इसीलिये ग्राम प्राप्य है। आटे की रोटी होती है वह विकार्य है और ताने-बाने में से कपड़ा बनता है वह निर्वर्त्य है।

केवली भगवान समय-समय ज्ञान को ग्रहण करते हैं। अज्ञानी को भी जिस समय जो राग-द्वेष होनेवाला है, उस समय में अज्ञानी उसे पहुंचता है - अज्ञानी का वह प्राप्य है। ज्ञानी राग का अकर्ता है वह राग में नहीं पहुंचता क्योंकि ज्ञानी ज्ञान को ग्रहण करता है वह उसका कार्य है। ज्ञानी का राग प्राप्य नहीं है, अज्ञानी का राग-द्वेष प्राप्य है। चैतन्य की निर्मल पर्याय हुई उसे ग्रहण करे - यह ज्ञानी का कार्य है।

केवली भगवान पूर्ण पर्याय को ग्रहण करते हैं। समय-समय केवलज्ञान को पहुंचाते हैं। एक समय में प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य एक साथ है। छहों पदार्थ की जिस समय जो अवस्था है - उसमें प्रत्येक द्रव्य पहुंचता है। एक समय में छहों द्रव्यों में ऐसी ही स्थिति है। एक समय में जगत के जितने भी द्रव्य हैं वे अपने स्वकाल में परिणमन करते हैं उसे (उनके) द्रव्य पहुंचते हैं किन्तु अन्य नहीं पहुंचते; वह पर्याय उसे पहुंचती है।

काललब्धि अर्थात् स्व-काल पर्याय उसे पहुंचती है। वह पर्याय होनेवाली है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे प्राप्त करता है। वह पर्याय ध्रुव है अर्थात् निश्चल है-निश्चित है उसे पहुंचता है। छह द्रव्यों में अनन्त आत्मा, अनन्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल की पर्याय निश्चल है जो होनेवाली होगी उसे ही वह द्रव्य पहुंच जाता है, यही प्राप्य है। जीवों की दया, दान, राग-द्वेष, भ्राँतिरूप अवस्था अथवा पुद्गल की काली, सफेद, पीली अवस्था जो होनेवाली है उसे ही वह द्रव्य पहुंचता है।

केवलज्ञानी आत्मा केवलज्ञान को प्राप्त करता है, वह उनका प्राप्य है। साधक को अपूर्ण ज्ञानपर्याय प्राप्य है। मिथ्यादृष्टि को भ्राँति राग-द्वेष प्राप्य है। परमाणु की पर्याय जिस समय जो निश्चित होनेवाली है वह उसे पहुंचता है; उसी समय वही पर्याय होनेवाली है, इसीलिये यहाँ निश्चल कहा है।

छहों द्रव्यों की उत्पाद पर्याय में प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य - ऐसे तीन प्रकार सिद्ध करने में आये हैं; उसमें यहाँ प्राप्य की बात चलती है। केवलज्ञानी को केवलज्ञान प्राप्य है। वह पर्याय उनका कर्त्तव्य है - अवस्था है, इसप्रकार वस्तु स्वरूप समझे बिना बाहरी क्रिया-काण्ड में जीव अटक जाता है। जगत में छः द्रव्य है, उनकी वर्तमान अवस्था वह उनका प्राप्य है। केवलज्ञानी को केवलज्ञान प्राप्य है, साधक को अपूर्णज्ञान प्राप्य है।

साधक को अपूर्णज्ञान प्राप्य है मिथ्यादृष्टि को रागादि प्राप्य हैं और पुद्गलादि को उनकी अवस्था प्राप्य है.

परमाणु स्थूल स्कन्ध में आवे तब वह स्थूलता को प्राप्य है। उस समय की योग्यता वह उसका प्राप्य है किन्तु स्कन्ध के कारण से वह नहीं है। निमित्त अप्राप्य है। वर्तमान अवस्था निश्चित है उनको वे द्रव्य प्राप्य करते हैं। कर्म का उदय वह परमाणु का प्राप्य है। जैसे उल्टे बर्तन से अनाज भरे तो थोड़ा भी अनाज नहीं भरा जा सकता; वैसे ही अज्ञानी विपरीत बुद्धि करता है इसीलिए उसे थोड़ा भी धर्म नहीं होता।

यहाँ केवली भगवान का प्राप्य कहते हैं; उसीप्रकार छहों द्रव्यों में भी समझ लेना चाहिये। केवली भगवान की पूर्णपर्याय ज्ञान को पहुंचती है किन्तु राग को अथवा निमित्त को ग्रहण करे यह उनका कार्य नहीं है। अज्ञानी जीव शास्त्र को, अपनी दृष्टि रखकर के पढ़ता है, इसीलिये उसे समझ में नहीं आता।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है; सम्यग्ज्ञान उसका कार्य है। अज्ञानी को दया-दान प्राप्य है, उसका द्रव्य निर्मल पर्याय को नहीं पहुंचता। चाहे कोई भी जिन वचन लिया जाय तो उसमें से क्रमबद्ध की बात उठती (आती) है अर्थात् सिद्ध होती है। जिस समय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिस द्रव्य की जो पर्याय है उसे द्रव्य पहुंचता है। इससे थोड़ा भी विपरीत माना जाये तो सर्वज्ञ अथवा द्रव्य स्वभाव कुछ भी सिद्ध नहीं होगा।

सर्वज्ञ का निर्णय होने पर स्वभाव का निर्णय होता है। यह सभी क्रम से होता है - वह द्रव्य में होता है। द्रव्य ज्ञानस्वभाव है; ज्ञानस्वभाव के निर्णय बिना पर की कर्ताबुद्धि नहीं छूटती। निचली (साधक)दशा में भी 'मैं चैतन्य हूँ' ऐसा सम्यग्ज्ञान प्राप्य है। अज्ञानी, को राग-द्वेष प्राप्य है और केवली भगवान को पूर्ण ज्ञानपर्याय प्राप्य है। धर्मादि द्रव्य को उनकी अवस्था उनका प्राप्य है।

देखो ! एक भाव को यथार्थ जाने तो उसमें सभी भाव यथार्थ आ जाते हैं। अज्ञानी मानता है कि निमित्त से ज्ञान हुआ किन्तु ऐसा नहीं है, इसीलिये स्वयं के कारण ज्ञान होता है - ऐसा निश्चित कर। केवली भगवान पूर्ण ज्ञानपर्याय को पहुंचते हैं। स्वभाव ऊपर दृष्टि हो तो स्वभाव में से निकला हुआ कार्य उनका प्राप्य हैं और यदि राग ऊपर दृष्टि हो तो राग उनका प्राप्य है।

विकार्य :- केवली भगवान ज्ञानरूप ही परिणमन करते हैं अर्थात् कि पूर्ण अवस्था पलटकर कार्य हुआ है, इसमें व्यय होकर कार्य हुआ यह बताते हैं। प्राप्य-विकार्य-निर्वर्त्य ऐसी एक ही अवस्था तीन प्रकार से बोली जाती है किन्तु यह तीन अवस्था नहीं हैं; वैसे ही इनके तीन समय भी नहीं है अपितु एक पर्याय में ही तीन अपेक्षा लागू पड़ती हैं। दूसरे प्रकार में ज्ञानरूप परिणमित होता है - ऐसा कहा है।

निर्वर्त्य :- केवली भगवान स्वयं ज्ञानरूप से ही उत्पन्न होते हैं। यह उत्पाद सूचक है। इसप्रकार एक समय में तीन अपेक्षा लागू पड़ती हैं।

निमित्त अपनी पर्याय को पहुंचता है और तू तेरे
ज्ञान को पहुंचता है - ऐसा निर्णय कर.

जैसे छहों कारक एक समय की पर्याय में लागू पड़ते हैं; वैसे ही एक समय की पर्याय में ये तीन अपेक्षा लागू पड़ती हैं। एक कर्म के तीन बोल हैं। जो है उसे ग्रहण किया, पलटा और उत्पन्न हुआ - ऐसे केवलज्ञान पर्याय का भेद एक समय में है। इसप्रकार समझे तो निमित्त, उपादान को पहुंचता है - यह बात नहीं रहती। निमित्त स्वयं द्रव्य है इसलिये निमित्त अपनी पर्याय को पहुंचता है। स्वयं में फेरफार करे और उत्पन्न हो - ऐसे इनके भी तीन प्रकार हैं। स्वयं है - इसे पहुंचते हैं इस अपेक्षा से वे प्राप्य है, पूर्व का व्यय होकर फेरफार हुआ इस अपेक्षा यह विकार्य है और नया उत्पन्न हुआ इस अपेक्षा से निर्वर्त्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक समय की पर्याय सत् है। उस पर्याय का सत् जिस काल में है उसे द्रव्य पहुंचता है - वह प्राप्य है। वह पर्याय पहले नहीं थी इस अपेक्षा से इसे विकार्य कहते हैं और वह नई उत्पन्न हुई है इस अपेक्षा से उसे निर्वर्त्य कहते हैं। इसका अर्थ ऐसा ही हुआ कि जिस समय जो ज्ञान की पर्याय निश्चित है उसे तू पहुंचता है किन्तु राग को तू नहीं पहुंचता - ऐसा निर्णय कर। पहले नहीं था और हुआ इस अपेक्षा से विकार्य है और उत्पन्न होने की अपेक्षा से निर्वर्त्य है।

जिस समय की जो पर्याय है उसे द्रव्य पहुंचता है। अज्ञानी को राग प्राप्य है, ज्ञानी को अपूर्ण ज्ञान प्राप्य है और केवलज्ञान को पूर्ण ज्ञानपर्याय प्राप्य है। यह लकड़ी जो सीधेपने में से, टेढ़ी हुई है उसे परमाणु पहुंचते हैं। फेरफार होकर के कार्य होना वह विकार्य है और उत्पन्न होना वह निर्वर्त्य है। इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ में समझना। उस समय की वह पर्याय ध्रुव अर्थात् निश्चल सत् है। छहों द्रव्यों की विकारी अथवा अविकारी पर्यायें - उनकी वह प्राप्य है। इस समय कौन सा निमित्त होता है - ऐसा यहाँ निमित्त का प्रश्न नहीं है।

क्रिया पर्याय की फेरनी है, केवली को ज्ञान क्रिया फिरती है
और अज्ञानी को राग की क्रिया फिरती है.

इसप्रकार केवलज्ञानी का केवलज्ञान कर्म है - यह बात समझे तो स्वद्रव्य और परद्रव्य की स्वतंत्रता समझ में आये। द्रव्य ईश्वर है, गुण ईश्वर है और पर्याय भी ईश्वर है। विकार का ईश्वर विकारी (पर्याय) है, अविकार का अविकारी (पर्याय) है; पूर्णता का, पूर्णता ईश्वर है। कहा भी है -

'कर्ता परिणामी द्रव्य है, कर्मरूप परिणाम।
क्रिया पर्याय की फेरनी, वस्तु एक त्रय नाम॥'

स्वयं परिणमित होनेवाला कर्ता है; वर्तमान परिणाम उसका कार्य है और जो पर्याय बदलती है वह उसकी क्रिया है। केवली को ज्ञान की क्रिया बदलती (होती) है। अज्ञानी को राग बदलता है। जड़ को जड़ की अवस्था है। भगवान को विहार, दिव्यध्वनि आदि जड़ की क्रिया है। कोई कहता है कि भगवान भाषा को ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं तो यह बात असत्य है। केवली भगवान को ज्ञप्तिक्रिया है - ऐसा ज्ञान का निर्णय करे तो ज्ञान को प्राप्त हो। इसके विपरीत यदि राग को सर्वस्व माने तो वह राग को पहुंचता है।

चिदानन्द स्वभाव के आश्रय से पूर्ण विकास को प्राप्त किया हो, उसे क्या शेष

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहा ? भगवान की ज्ञप्ति एक क्रिया है - ऐसा होने पर केवली भगवान को बन्ध नहीं होता। विकार सत् है। जिस समय जो विकार है, वह पारिणामिक भाव का है और वह अटकी हुई पर्याय है। विकार पारिणामिक भाव है क्योंकि वह अपनी पर्याय है - ऐसा निर्पेक्ष निर्णय कर। अपेक्षा-व्यवहार भी बताते हैं, किन्तु निश्चय बिना व्यवहार कैसा ? अशुद्ध उपादान और शुद्ध उपादानरूप से परिणमित होना वही निर्पेक्ष है।

यहाँ कहते हैं कि केवली भगवान को बन्ध नहीं होता। क्योंकि जानने की क्रिया बन्ध का कारण नहीं है, परन्तु निमित्त और राग का लक्ष्य करके अथवा ज्ञेय पदार्थ का लक्ष्य करके रागरूप से परिणमित होना बन्ध का कारण है। ज्ञेयरूप से परिणमित होना वह ज्ञेयार्थ परिणमन है।

❁ ❁ ❁

श्लोक ४

(अब, पूर्वोक्त आशय को काव्य द्वारा कहकर, केवलज्ञानी आत्मा की महिमा बताकर यह ज्ञान-अधिकार पूर्ण किया जाता है।)

* स्रग्धरा *

जानन्नप्येष विश्वं युगपदपि भवद्भाविभूतं समस्तं ।
मोहाभावाद्यदात्मा परिणमति परं नैव निर्लूनकर्मा ॥
तेनास्ते मुक्त एव प्रसभविकसितज्ञप्तिविस्तारपीत ।
ज्ञेयाकारां त्रिलोकीं पृथगपृथगथ द्योतयन् ज्ञानमूर्तिः ॥४॥

- इति ज्ञानाधिकारः

अर्थ :- जिसने कर्मों को छेद डाला है ऐसा यह आत्मा भूत, भविष्य और वर्तमान समस्त विश्व को (अर्थात् तीनोंकाल की पर्यायों से मुक्त समस्त पदार्थों को) एक ही साथ जानता हुआ भी मोह के अभाव के कारण पररूप परिणमित नहीं होता, इसलिये अब, जिसने समस्त ज्ञेयाकारों को अत्यन्त विकसित ज्ञप्ति के विस्तार से स्वयं पी गया है ऐसे तीनोंकाल के पदार्थों को पृथक् और अपृथक् प्रकाशित करता हुआ वह ज्ञानमूर्ति मुक्त ही रहता है।

इसप्रकार ज्ञान-अधिकार समाप्त हुआ।

* * *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्लोक ४ पर प्रवचन

अब पूर्वोक्त आशय को काव्य द्वारा कहकर केवलज्ञानी आत्मा की महिमा करके इस ज्ञान अधिकार को पूर्ण करते हैं। ज्ञान के साथ आनन्द की बात करते हैं।

केवलज्ञान लोकालोक के समस्त पदार्थों को पी गया है.

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने आठ कर्मों को छेद डाला है, यह निमित्त का कथन है। स्वभाव में लीन होने पर भावकर्म उत्पन्न नहीं होते; उस समय कर्मरूप से अवस्था नहीं हुई, इसे ही कर्मों को छेद डाला - ऐसा कहने में आया है। राग-द्वेष और कर्म का सम्बन्ध था, वह छूट गया है - ऐसा यह आत्मा भूत, वर्तमान और भविष्य समस्त पदार्थों को युगपद् जानता हैं।

जैसा होनेवाला है, वैसा ही केवली जानते हैं - ऐसा जानने पर रागरूप परिणमित नहीं होते। इसीलिये अब वे समस्त ज्ञेयाकारों को अत्यन्त विकसित ज्ञप्ति के विस्तार द्वारा, लोकालोक की पर्याय को मानो पी गये हैं। जैसे पेट बड़ा हो और पानी थोड़ा हो, इसे पी गया कहा जाता है; वैसे ही केवलज्ञान लोकालोक को पी जाता है। ऐसे तीनलोक के समस्त पदार्थों को पृथक-पृथक और अपृथक प्रकाशित करती वह ज्ञानमूर्ति मुक्त ही रहती है। वे फिर से अवतार नहीं लेते। जब साधक जीव अपनी साधकदशा से पीछे नहीं फिरते, तो फिर केवलज्ञानी पीछे फिर जायें - ऐसा कभी नहीं होता। इसप्रकार यह ज्ञान अधिकार पूर्ण हुआ। अब उसके साथ आनन्द की बात करेंगे।

इसप्रकार यह आत्मा कर्मकृत (रागादि और शरीरादि) भावों से असंयुक्त होने पर भी अज्ञानियों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है; वह प्रतिभास वास्तव में संसार का बीज है।

- पुरुषार्थ सिद्धि-उपाय, १४

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधक जीव की दृष्टि

अध्यात्म में सदा निश्चयनय ही मुख्य है; उसी के आश्रय से धर्म होता है। शास्त्रों में जहाँ विकारी पर्यायों का व्यवहारनय से कथन किया जाये वहाँ भी निश्चयनय को ही मुख्य और व्यवहारनय को गौण करने का आशय है - ऐसा समझना; क्योंकि पुरुषार्थ द्वारा अपने में शुद्ध पर्याय प्रगट करने अर्थात् विकारी पर्याय टालने के लिए सदा निश्चयनय ही आदणीय है; उस समय दोनों नयों का ज्ञान होता है परन्तु धर्म प्रगट करने के लिए दोनों नय कभी आदरणीय नहीं है। व्यवहारनय के आश्रय से कभी धर्म अंशतः भी नहीं होता, परन्तु इसके आश्रय से तो राग-द्वेष के विकल्प ही उठते हैं।

छहों द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायों के स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए कभी निश्चयनय की मुख्यता और व्यवहारनय की गौणता रखकर कथन किया जाता है और कभी व्यवहारनय को मुख्य करके तथा निश्चयनय को गौण रखकर कथन किया जाता है; स्वयं विचार करे उसमें भी कभी निश्चयनय की मुख्यता और कभी व्यवहारनय की मुख्यता की जाती है; अध्यात्म शास्त्र में भी जीव की विकारी पर्याय जीव स्वयं करता है इसलिए होती है और वह जीव का अनन्य परिणाम है - ऐसा व्यवहारनय से कहने में-समझाने में आता है; परन्तु वहाँ प्रत्येक समय निश्चयनय एक ही मुख्य तथा आदरणीय है ऐसा ज्ञानियों का कथन है। शुद्धता प्रगट करने के लिए कभी निश्चयनय आदरणीय है और कभी व्यवहारनय आदरणीय है - ऐसा मानना वह भूल है; अपितु तीनों काल अकेले निश्चयनय के आश्रय से ही धर्म प्रगट होता है - ऐसा समझना।

साधक जीव प्रारम्भ से अंत तक निश्चय की ही मुख्यता रखकर व्यवहार को गौण ही करते जाते हैं, इसलिए साधकदशा में निश्चय की मुख्यकता के बल से शुद्धता की वृद्धि ही होती जाती है और अशुद्धता टलती ही जाती है। इसप्रकार निश्चय की मुख्यता के बल से पूर्ण केवलज्ञान होने पर वहाँ मुख्य-गौणपना नहीं होता और नय भी नहीं होते।

- गुरुदेवश्री के वचनामृत, १६

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com